ग्रन्थ-संख्या—१३३

प्रकाशक तथा विक्रेता

भारती-भण्डार

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

प्रथम संस्करण

सं० २००५ वि०

मूल्य ६)

मुद्रक

पं० मणिशंकर मालवीय

अभ्युदय प्रेस, इलाहाबाद

दो शब्द

हिन्दी-साहित्य में वीरकाव्य की परम्परा जिन कवियों से आरम्भ हुई उनकी कविताओं का कोई ऐसा संग्रह-ग्रंथ अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ था जिसमें कविता के साथ-साथ आलोचनात्मक एवं विवेचनात्मक-दृष्टि से प्रकाश डाला गया हो। कलकत्ता-विश्वविद्यालय की ओर से वर्षों पूर्व स्वर्गीय लाला सीताराम जी बी० ए० के सम्पादकत्व में "वार्डिक सेलेक्शन" नामक संकलन अवश्य प्रकाशित हुआ था; किन्तु उस में प्राय: ऐसी सामग्री का अभाव था जो वीरकाव्य के रसिकों के साथ-साथ उच्च कक्षा के विद्यार्थियों के भी काम की हो। आज से आठ वर्ष पूर्व हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने 'वीर काव्य-संग्रह' नाम की एक पुस्तक प्रकाशित की थी जिसका सम्पादन पं० भगीरथ प्रसाद जी दीक्षित के साथ मैंने किया था; किन्तु उसकी अपेक्षा इस संग्रह में बहुत-सी नई सामग्री समाविष्ट की गई है। गत पिछले आठ वर्षों में वीररस के कवियों के सम्बन्ध में जो अनुसंधान हुए हैं, उनकी पूर्ण समीक्षा इस संग्रह में की गई है, विशेषकर, चन्दबरदाई तथा नरपतिनाल्ह के सम्बन्ध की सभी नई खोजें इसमें आ गई हैं।

वीर-काव्य के विकास में आरम्भ से ही चारणों का विशेष हाथ रहा है, अतएव प्रस्तुत-संग्रह में चारणों तथा उनके काव्य के सम्बन्ध में एक निबंध जोड़ दिया गया है। भारतीय-वीर-काव्य की यह विशेषता है कि उसके प्रणयन में ऐतिहासिक-तथ्यों का ही आश्रय लिया गया है और एक प्रकार से यह कहा जा सकता है कि वीर-काव्य की पृष्ठ-भूमि में ऐतिहा-

ग्रन्थ-संख्या—१३३

प्रकाशक तथा विक्रेता
भारती-भण्डार
लीडर प्रेस, इलाहाबाद

प्रथम संस्करण
सं० २००५ वि०
मूल्य ६)

मुद्रक
पं० मणिशंकर मालवीय
अभ्युदय प्रेस, इलाहाबाद

दो शब्द

हिन्दी-साहित्य मे वीरकाव्य की परम्परा जिन कवियों से आरम्भ हुई उनकी कविताओं का कोई ऐसा संग्रह-ग्रंथ अभी तक प्रकाशित नही हुआ था जिसमें कविता के साथ-साथ आलोचनात्मक एवं विवेचनात्मक-दृष्टि से प्रकाश डाला गया हो। कलकत्ता-विश्वविद्यालय की ओर से वर्षों पूर्व स्वर्गीय लाला सीताराम जी बी० ए० के सम्पादकत्व मे "वार्डिक सेलेक्शन" नामक संकलन अवश्य प्रकाशित हुआ था; किन्तु उस में प्रायः ऐसी सामग्री का अभाव था जो वीरकाव्य के रसिकों के साथ-साथ उच्च कक्षा के विद्यार्थियो के भी काम की हो। आज से आठ वर्ष पूर्व हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने 'वीर काव्य-संग्रह' नाम की एक पुस्तक प्रकाशित की थी जिसका सम्पादन पं० भगीरथ प्रसाद जी दीक्षित के साथ मैंने किया था; किन्तु उसकी अपेक्षा इस संग्रह मे बहुत-सी नई सामग्री समाविष्ट की गई है। गत पिछले आठ वर्षों मे वीररस के कवियो के सम्बन्ध मे जो अनुसंधान हुए है, उनकी पूर्ण समीक्षा इस सग्रह मे की गई है, विशेषकर, चन्दबरदाई तथा नरपतिनाल्ह के सम्बन्ध की सभी नई खोजे इसमे आ गई हैं।

वीर-काव्य के विकास मे आरम्भ से ही चारणों का विशेष हाथ रहा है, अतएव प्रस्तुत-संग्रह में चारणों तथा उनके काव्य के सम्बन्ध मे एक निबंध जोड़ दिया गया है। भारतीय-वीर-काव्य की यह विशेषता है कि उसके प्रणयन मे ऐतिहासिक-तथ्यो का ही आश्रय लिया गया है और एक प्रकार से यह कहा जा सकता है कि वीर-काव्य की पृष्ठ-भूमि मे ऐतिह

सिक सामग्रियों पर ही कवि-कल्पना का आवरण चढ़ाया गया है। मैंने ऐसी सामग्रियों पर प्रामाणिक इतिहास के तथ्यों से सामञ्जस्य स्थापित करने की भर सक चेष्टा की है। वीर-काव्य के कई ग्रन्थों में ऐसी घटनाओं का भी उल्लेख मिलता है जिनकी ओर आधुनिक इतिहास लेखकों का ध्यान नहीं गया है। वस्तुत उस सम्बन्ध में कोई विवेचना न प्रस्तुत कर, मैंने उस ओर इतिहास के अन्वेषकों का ध्यान भर आकर्षित कर दिया है।

आज इस रूप में इस संग्रह को प्रकाशित होते देखकर जहाँ मुझे प्रसन्नता हो रही है, वहाँ अपनी कनिष्ठ कन्या आयुष्मती कलावती [अवस्था १२ वर्ष] के निधन की दुःखद स्मृति से हृदय में असीम वेदना भी हो रही है। इस संग्रह के सम्पादन के आरम्भ में वह पूर्ण स्वस्थ थी, किन्तु दो ही दिनों की बीमारी में उसके सर्वथा वियोग ने मुझे महीनों के लिए बेचैन कर दिया और घर के शोकपूर्ण कोलाहल में उतने दिनों तक इस संग्रह का सम्पादन कार्य स्थगित रहा। आज तो उसकी स्मृति मात्र ही शेष है, "त कुतो लब्भा"।

इस अवसर पर मैं अपने उन शुभेषियों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करना नहीं भूल सकता, जिन्होंने अपनी अमूल्य सम्मति से इस संग्रह को इस रूप में सम्पादित करने की प्रेरणा दी। वस्तुत सर्वप्रथम मुझे वीर-काव्य के अध्यन में प्रवृत्त करने का श्रेय पूज्य पं० दयाशंकर जी दुबे एम० ए० को है। उन्हीं की प्रेरणा से सम्मेलन से प्रकाशित होने वाले 'वीर-काव्य-संग्रह' का सम्पादन-कार्य मैंने आरम्भ किया था। सम्मेलन वाले संग्रह को देखकर माननीय राजर्षि पुरुषोत्तम दास जी टंडन तथा पूज्यवर डाक्टर पं० अमरनाथ जी झा ने अनेक सुझाव दिए थे, जिनका पूरा

उपयोग मैंने इस नवीन संग्रह में किया है। आदरणीय पं० श्रीनारायण जी चतुर्वेदी एम० ए० ने तो पुरातन-संग्रह की अनेक त्रुटियों की ओर विशेष रूप से मेरा ध्यान आकृष्ट करके इस संग्रह को अधिकाधिक उपयोगी बनाने में क्रियात्मक सहायता प्रदान की। इतना होने पर भी, यदि प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष, डा० धीरेन्द्र वर्मा जी के बारम्बार स्नेहपूर्ण तकाजे न होते रहते तो इतना शीघ्र, यह संग्रह प्रकाशित न हो पाता। वस्तुत. मैं इन गुरुजनों की सहज कृपा के लिए अत्यन्त कृतज्ञ तथा आभारी हूँ। उदयपुर के साहित्यरत्न श्री पुरुषोत्तम मेनारिया तथा राव मोहनसिंह जी ने 'रेवातटसमयो' के पाठ तथा अर्थ में मेरी जो सहायता की है, उसके लिए इनदोनों सज्जनों का मैं कृतज्ञ हूँ।

इस संग्रह की पाण्डुलिपि तैयार करने तथा प्रूफ आदि सशोधन मे मेरे प्रिय विद्यार्थी श्री पारसनाथ तिवारी एम० ए०, श्री जयचन्दराय एम० ए० तथा श्री कुन्दनलाल वर्मा बी० ए० ने विशेष रूप से मेरी सहायता की है। श्री कृष्णचन्द्र वर्मा बी० ए० ने परिशिष्ट बनाकर इस संग्रह के महत्त्व को और भी बढ़ा दिया है। अपने उन छात्रों को मैं हृदय से धन्यवाद देता हूँ।

अलोपी बाग,
दारागंज, प्रयाग
गांधी-जयन्ती, १९४८

उदयनारायण तिवारी

विषय-सूची

भूमिका

काव्य का स्वरूप

मनुष्य को जन्मजात जो अनेक शक्तियाँ मिली है, उनमे एक अभिव्यञ्जना की भी शक्ति है। जिस समय भाषा की भी उत्पत्ति नही हुई थी और सांस्कृतिक विकास के क्षेत्र मे मनुष्य तथा वन्य-जन्तुओं मे केवल नाम मात्र का ही भेद था, उस समय भी वह अपने सुख दुख की अनुभूति की अभिव्यक्ति भावभंगी तथा इंगित द्वारा करता था। आगे चलकर मनुष्य ने संस्कृति के क्षेत्र मे उन्नति की। इस उन्नति के साथ साथ उसकी अनुभूति की परिधि मे भी अभिवृद्धि हुई और जब मनुष्य उन अनुभूतियों की अभिव्यक्ति मे निरत हुआ तो अनेक कलाओं की उत्पत्ति हुई।

कहीं अपनी कोमल भावनाओं को कठोर पाषाण पर अङ्कित करके उसने 'मूर्तिकला' को अस्तित्व प्रदान किया, तो कहीं अपनी रागात्मिका-वृत्ति का अभिव्यञ्जन भाषा द्वारा 'काव्य-कला' के रूप में करके वह हर्षातिरेक से उत्फुल्ल हो उठा।

भौतिक उपकरणों की अप्रधानता तथा भावव्यञ्जना के आधिक्य के कारण ही, आलोचकों ने 'काव्य-कला' को श्रेष्ठतम स्थान प्रदान किया। अब प्रश्न यह उठता है कि 'काव्य' की परिभाषा तथा परिधि क्या है। जहाँ तक परिभाषा का सम्बन्ध है, आलोचकों मे गहरा मतभेद है। एक पाश्चात्य आलोचक

ने तो 'कला' 'सौन्दर्य' तथा 'काव्य' की परिभाषा देते समय कदाचित् रुष्ट होकर यहाँ तक कह डाला है कि कला, कला है, सौन्दर्य, सौन्दर्य और कविता, कविता। एक दूसरे समीक्षक ने परिभाषा के वाग्जाल से बचने के लिए केवल कतिपय प्रसिद्ध काव्यों की ओर इंगित भर कर दिया है। किन्तु परिभाषा की इस कठिनाई के होते हुए भी यह निर्विवाद है कि 'कविता' साहित्य का एक प्रधान अंग है और साहित्य है जीवन। यही कारण है कि कविता को जीवन की व्याख्या कहा गया है।

भारतीय आचार्यों ने काव्य की परिभाषा मे 'रीति' 'वक्रोक्ति' 'अलङ्कार' तथा रस आदि का उल्लेख किया है। 'रसगंगाधर' के प्रणेता पंडितराज जगन्नाथ ने 'रमणीय अर्थ प्रति पादक शब्द'* को ही काव्य माना है। आप के अनुसार 'लोकोत्तर आह्लाद जनक ज्ञान की गोचरता ही रमणीयता है' और अनुभव से ज्ञेय आह्लादगत चमत्कार ही लोकोत्तरत्व है। साहित्य दर्पणकार की परिभाषा 'रसात्मक वाक्य ही काव्य है' का खंडन करते हुए, पंडितराज ने अपनी उपर्युक्त परिभाषा दी है, किन्तु स्पष्टता की अपेक्षा उसमे जटिलता ही अधिक आ गई है।

वास्तव मे दर्पणकार की काव्य की परिभाषा साहित्य-शास्त्र के विद्यार्थियों के लिए अपेक्षाकृत अधिक सरल तथा सुबोध है। इस परिभाषा को दर्पणकार ने निम्नलिखित रूपक की सहायता से स्पष्ट किया है —

"शब्द और अर्थ काव्य के शरीर हैं। रसादिक आत्मा हैं। ओज, माधुर्य तथा प्रसाद गुण, वीरता तथा कोमलता की भांति है। काव्य में कर्णकटुत्वादि दोष कानेपन और बहरेपन की भांति तथा वैदर्भी, पांचाली, आदि रीतियाँ, अवयवों की गठन के

---

*रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्।

सदृश हैं। उपमादिक अलङ्कार कानों में पहने जाने वाले कुंडल के समान है।*

उपर्युक्त रूपक को सामने रखकर विश्वनाथ ने मम्मट की परिभाषा, "दोषरहित गुणयुक्त तथा अलंकारों से विभूषित शब्द तथा अर्थ को काव्य कहते हैं, यदि अलङ्कार कहीं स्पष्ट न हो तो भी कोई हानि नहीं,"† का खण्डन किया है। आप का तर्क यह है कि—जिस प्रकार मनुष्य-शरीर आत्मा के अभाव मे निर्जीव है उसी प्रकार शब्द तथा अर्थ, अलङ्कारों से युक्त तथा दोष से रहित होने पर भी रस के अभाव मे, काव्य की संज्ञा नहीं प्राप्त कर सकते।

दर्पणकार ने वामन की परिभाषा "रीति ही काव्य की आत्मा है"‡ का भी खण्डन किया है। आप तर्क करते हैं कि जब रीति शरीर के अवयवों के संगठन के समान है तो वह भला काव्य की आत्मा कैसे होगी?

आगे चलकर दर्पणकार ने 'ध्वनिकार' तथा 'वक्रोक्तिकार' की परिभाषाओं का भी क्रमशः खण्डन किया है। ध्वनिकार के अनुसार "काव्य की आत्मा ध्वनि"¶ तथा वक्रोक्तिकार के अनुसार "वक्रोक्ति ही काव्य का जीवन है।"§ विश्वनाथ का तर्क है कि ध्वनि तथा वक्रोक्ति काव्य की आत्मा नहीं हो सकते,

---

*काव्यस्य शब्दार्थौ शरीरम्, रसादिश्चात्मा, गुणाः शौर्यादिवत्, दोषाः काणत्वादिवत्, रीतयोऽवयवसंस्थानविशेषवत् अलंकाराः कटककुण्डलादिवत्।"

†तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि—मम्मट

‡रीतिरात्मा काव्यस्य—वामन

¶काव्यस्यात्माध्वनिः।

§वक्रोक्तिः काव्यजीवितम्।

क्योंकि ये दोनों अलङ्कार कुण्डलादि के सदृश काव्य में गौण हैं।

उपर्युक्त तर्क-वितर्क तथा खण्डन के पश्चात् अन्त मे विश्वनाथ अपनी परिभाषा देते हैं। आपके अनुसार 'रसात्मक-वाक्य ही काव्य है'❀।

अब काव्य मे रस क्या वस्तु है, इसे भी स्पष्टतया जान लेने की आवश्यकता है। हमारे जीवन मे अनेक ऐसे अवसर उपस्थित होते है जब हम किसी विशेप रचना को पढ़कर आनन्द से झूमने लगते हैं। वास्तव मे यह काव्यानन्द ही रस है।

रस का सर्व प्रथम सैद्धान्तिक निरूपण आचार्य भरत ने अपने नाट्य-शास्त्र मे किया है। आपके कथनानुसार "रस की निष्पत्ति विभाव अनुभाव तथा व्यभिचारी भावों के संयोग से होती है"†। काव्यानन्द आस्वाद्य होने के कारण आस्वाद्यत्वात् रस—रस नाम से कहा जाता है। यदि काव्य मे आनन्द अर्थात् रस न हो तो वह काव्य ही न कहा जायगा। अब यहाँ देखना यह है कि रस का स्वरूप क्या है?

ऊपर इस बात का उल्लेख हो चुका है कि काव्यानन्द ही रस है। वास्तव मे आनन्द एक प्रकार की भावना है। मनुष्य के हृदय मे सदैव अनेक प्रकार के भाव विद्यमान रहते हैं। इनमे जो भाव प्रबल होते हैं उन्हीं का नाम स्थायीभाव है। इस प्रकार के स्थायीभाव भी मनुष्य के हृदय मे अनेक होते है। उदाहरण के लिए उत्साह, रति, शोक आदि। इनमें से जब

❀वाक्यं रसात्मकं काव्यम्।

†विभावानुभाव व्यभिचारि संयोगात् रसः निष्पत्तिः

—भरत

कोई भाव अपने प्राबल्य के कारण मनुष्य पर पूर्ण प्रभाव उत्पन्न करता है, तो उसकी संज्ञा रस हो जाती है। उन भावों को उद्बुद्ध करने के लिए विभाव, अनुभाव तथा संचारी भावों की सहायता अपेक्षित होती है। इसी बात को साहित्य-दर्पण-कार ने निम्नलिखित शब्दों मे व्यक्त किया है :—

"सहृदय पुरुषों के हृदय मे स्थित, विभाव, अनुभाव तथा संचारी भावों से व्यक्त हुआ रत्यादि स्थायी भाव ही रस रूप मे परिणत हो जाता है ❀।"

ऊपर कहा जा चुका है कि विभावादिकों से रस की अभिव्यक्ति होती है। इस वाक्य-खण्ड से साहित्य-शास्त्र के प्राय सभी विद्यार्थी भलीभांति परिचित होते है, किन्तु 'अभिव्यक्ति' शब्द को पूर्णतया न समझने के कारण वे कभी कभी उलझन मे भी पड़ जाते है। प्राय. मिथ्या धारणा के कारण लोग समझते है कि जिस प्रकार अन्धकार मे रखा हुआ घट दीपक से अभिव्यक्त (प्रकाशित) होता है, उसी प्रकार विभावादिकों द्वारा रस भी अभिव्यक्त होता है। इस सादृश्य मे कठिनाई यह है कि दीपक तथा घट दोनों की स्वतन्त्र सत्ता है; इसी कारण से दीपक के अभाव मे भी घट स्थित रहता है। किन्तु रस के सम्बन्ध मे यह बात नहीं। वास्तव मे न तो स्थायीभाव ही रस है और न घट और दीपक की भाँति विभावादिकों से पृथक् उसकी कोई स्वतंत्र सत्ता ही है। हाँ, इतना अवश्य है कि विभावादिकों से परिपुष्ट स्थायीभाव ही रस रूप मे परिणत हो जाता है। एक दूसरे उदाहरण द्वारा इस सम्बन्ध मे यह कह सकते है कि जिस प्रकार मट्ठे के संयोग से दूध, दही के रूप मे परिवर्तित हो जाता है, उसी प्रकार सहृदय पुरुषों

❀विभावैश्चानुभावैश्चव्यक्तः संचारिणा तथा
रसतामेति रत्यादिः स्थायीभावः सचेतसाम् ।१। सा. द परि ३

के हृदय मे स्थित स्थायीभाव ही विभावादिको से उद्‌बुद्ध होकर रस रूप मे परिणत हो जाता है।*

रसानुभूति

अब प्रश्न यह उठता है कि मनुष्य को रस की अनुभूति किस प्रकार होती है ? साहित्य-दर्पणकार ने रस का स्वरूप बतलाते हुए उसे, 'अखण्ड, अद्वितीय, स्वयंप्रकाश-स्वरूप, आनन्दमय और चिन्मय (चमत्कारमय) कहा है। वास्तव में रस के साक्षात्कार के समय अन्य विषयो का मनको स्पर्श तक नही होता। इसी कारण इसे 'ब्रह्मास्वादसहोदर' भी कहा गया है।† जिस प्रकार ब्रह्मास्वाद (समाधि) के समय योगियों को ब्रह्मानन्द के अतिरिक्त अन्य किसी विषय का ज्ञान नही रहता उसी प्रकार रसा-स्वाद के समय मनुष्य अन्य सभी भावनाओं से मुक्त रहता है। इतना ही नही, जिन विभावादिकों के कारण उसके हृदय मे स्थित स्थायीभाव रस मे परिणत होता है, उनका भी अनुभव उसे नहीं होता। वह यह नहीं बतला सकता है कि इस रस के अनुभव मे कितना अंश विभाव का है कितना अनुभाव का तथा कितना व्यभिचारी भाव का। हॉ, इतना अवश्य है कि यदि किसी रस मे किन्हीं भावों का अंश अधिक है तो वह कह सकेगा कि इस रस मे इस भाव का अंश अधिक है; किन्तु यह भी रसानुभव के समय नहीं। वास्तव मे जब रसानुभव के पश्चात् वह उस अनुभव की विवेचना करने बैठेगा, तभी इन सब बातो का ज्ञान उसे हो सकेगा।

---

*व्यक्तो दध्यादिन्यायेन रूपान्तरपरिणतो व्यक्तीकृत एव रसः। न तु दीपेन घट इव पूर्वसिद्धो व्यज्यते। सा० द० परि० ३।

†—सत्वोद्रेकादखण्डस्वप्रकाशानन्दचिन्मयः।
वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदरः। सा० द० परि०

यहाँ "रस का अनुभव" इस वाक्यखण्ड का विश्लेषण भी आवश्यक है। अनुभव पूर्वसिद्ध वस्तु का ही होता है। अनुभव शब्द का अर्थ ही है 'पीछे से उत्पन्न'। किन्तु रस के सम्बन्ध मे 'अनुभव' शब्द का अर्थ यह नहीं होगा, क्योंकि वह पूर्वसिद्ध नहीं है। यहाँ अनुभव से आस्वाद मात्र ही अभिप्रेत है।

रसानुभूति के सम्बन्ध मे एक बात और जान लेनी आवश्यक है। बात यह है कि रस के अनुभव के समय मनुष्य का मन राजस और तामस भावो से मुक्त होकर सात्विक भावो मे पूर्णतया लीन हो जाता है। इसी कारण इस अवस्था मे मनुष्य अलौकिक आनन्द का अनुभव करता है। कभी कभी इस सम्बन्ध मे लोगो के मन मे यह आशंका उठती है कि जब रस आनन्दमय है तो करुण, बीभत्स आदि को रस कहना उपयुक्त न होगा, क्योंकि ये तो दुःखमय होते हैं। इस शङ्का का समाधान करते हुए साहित्य-दर्पण-कार ने लिखा है कि करुण आदि रसो मे भी परम आनन्द होता है किन्तु उसमे केवल सहृदयों का अनुभव ही प्रमाण है।* तात्पर्य यह है कि करुण-रस मे भी, सहृदय, आनन्द का ही अनुभव करते है। यदि ऐसा न होता तो मनुष्य कारुणिक काव्यो को कभी भी न पढ़ता और न इस प्रकार के काव्यो तथा नाटको की साहित्य में रचना ही होती।†

---

*करुणादावपि रसे जायते यत्परं सुखम्।
सचेतसामनुभवः प्रमाणं तत्र केवलम्।४। परि० ३

†संस्कृत के प्रसिद्ध नाटककार भवभूति ने "एको रसः करुण एव" लिखकर 'करुण रस' को ही प्रधान माना है। भवभूति के 'उत्तर-रामचरित' में करुण रस ही प्रधान है। इसके अतिरिक्त ग्रीक तथा अंग्रेज़ी में भी अनेक दुखान्त नाटकों की रचना हुई है।

रस के भेद

ऊपर कहा जा चुका है कि काव्यानन्द ही रस है और शृंगार तथा करुण रस से प्रसूत आनन्द में कोई भेद नहीं है। अब प्रश्न यह उठता है कि तब रस के आठ नव या दस* भेद का आधार क्या है? यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो इस विभेद का आधार उपाधि का ही है। जिस प्रकार, कार्य-भेद के कारण, एक ही मनुष्य ब्राह्मण, गुरु, पुरोहित तथा शिष्य आदि अनेक रूपों में देखा जा सकता है, उसी प्रकार आनन्द स्वरूप एक ही रस विभावादिकों के विभिन्न होने के कारण आठ, नव अथवा दस प्रकार का होता है।

इसी विषय पर अग्नि पुराण में भी कुछ विवेचन है। इसमें शृंगारादि रस निरूपण के अन्तर्गत केवल चार रस ही प्रधान माने गये हैं। वे हैं, क्रमशः शृंगार, रौद्र, वीर तथा वीभत्स। अग्निपुराण में रस की परिभाषा इस प्रकार की गई है :—

"अक्षर स्वरूप, परमसनातन, अजायमान, व्यापक ब्रह्म को एक चैतन्य स्वरूप ईश्वर कहते हैं। उसका स्वाभाविक आनन्द जब कभी व्यक्त होता है तब वह चैतन्य-चमत्कार-स्वरूप अभिव्यञ्जना ही रस नाम से कही जाती है। †

---

*रस नव हैं—शृंगार, हास्य, करुण रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त। कतिपय साहित्याचार्यों ने इन नव रसों के अतिरिक्त वात्सल्य तथा भक्ति आदि कुछ और भी रस माने हैं। किन्तु आचार्य मम्मट के अनुसार रसों की संख्या नव ही है और वात्सल्य तथा भक्ति को क्रमशः पुत्रादि विषयक रतिभाव में और-देव विषयक रति भाव के अन्तर्गत मानना चाहिए।

†अक्षरं परमं ब्रह्म सनातनमजं विभुम्।
वेदान्तेषु वदन्त्येकं चैतन्यं ज्योतिरीश्वरम्। १।

इस पुराण मे ब्रह्म के प्रथम विकार को अहंकार संज्ञा दी गई है। इसी अहंकार से अभिमान तथा अभिमान से 'रति' की उत्पत्ति होती है। व्यभिचारी आदि सामान्य भावों से परिपुष्ट होकर यह रति ही शृंगार रस मे परिणत हो जाती है।❀

अग्निपुराण के अनुसार 'राग' से 'शृंगार' तथा 'तैक्ष्ण्य' से 'रौद्र-रस' उत्पन्न होते हैं। 'अवष्टम्भ' (अनम्रता या दर्प) से वीर तथा 'संकोच' से वीभत्स-रस की उत्पत्ति होती है। अग्निपुराण-कार इन्ही प्रधान चार रसो से अन्य चार रसो की उत्पत्ति मानते हैं। आप के अनुसार शृंगार से हास्य, रौद्र से करुण, वीर से अद्भुत तथा वीभत्स से भयानक रस की उत्पत्ति होती है।

अग्निपुराण-कार भरत द्वारा कथित वात्सल्य रस को नही मानते और शान्त रस को मानते हुए भी उसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध मे मौन है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, अग्निपुराण-कार चार रसो को ही प्रधान मानते है। इन चार रसो मे एक वीर-रस भी है। यहाँ वीर-रस के विषय मे विस्तार के साथ लिखा

आनन्दः सहजस्तस्य व्यज्यते स कदाचन।
व्यक्तिः सा तस्य चैतन्यचमत्काररसाह्वया। २।

अ० पु० अ० :६६

❀—आद्यस्तस्य विकार यः सोऽहंकार इति स्मृतः।
ततोऽभिमानस्तत्रेदं समाप्तं भुवनत्रयम्। ३।
अभिमानाद्रतिः साच परिपोषमुपेयुषी।
व्यभिचार्यादिसामान्याच्छृङ्गार इति गीयते। ४।

अ० पु०

जायगा क्योंकि यह संग्रह वीर-रस को दृष्टि में रखते हुए ही तैयार किया गया है।

साहित्य-दर्पणकार ने 'उत्तम प्रकृतिर्वीरः' लक्षण देकर 'वीर-रस' को अन्य रसों से श्रेष्ठ माना है। आप 'वीर-रस' के अनुसार इसका स्थायीभाव उत्साह, देवता महेन्द्र और रंग सुवर्ण के सदृश होता है। इसमे जीतने योग्य रावणादि आलम्बन विभाव होते हैं और उनकी चेष्टा आदि उद्दीपन विभाव होते हैं। युद्ध के सहायक (धनुष, सैन्य, आदि,) का अन्वेषणादि इसका अनुभाव होता है। धैर्य, मति, गर्व, स्मृति, तर्क, रोमाञ्चादि इसके सञ्चारी भाव है। यह दान, धर्म, युद्ध और दया के कारण चार प्रकार का होता है, यथा (१) दानवीर (२) धर्मवीर (३) दयावीर और (४) युद्धवीर।❀

अब इन चारों प्रकार के वीरों का आलम्बन तथा उद्दीपन सहित विवरण नीचे दिया जाता है।

(१) दानवीर

स्थायीभाव— त्याग में उत्साह।

आलम्बन— दान-योग्य-ब्राह्मणादिक।

❀उत्तमप्रकृतिर्वीर उत्साह स्थायिभावकः।
महेन्द्रदैवतो हेमवर्णोऽयं समुदाहृतः। २३२।
आलम्बनविभावास्तु विजेतव्यादयो मताः।
विजेतव्यादिचेष्टाद्यास्तस्योद्दीपनरूपिणः।
अनुभावास्तु तत्र स्युः सहायान्वेषणादयः। २३३।
संचारिणस्तु धृति-मति-गर्वस्मृति-तर्क-र माञ्चाः।
स च दानधर्मयुद्धै र्दयया चा समन्वितश्चतुर्धा स्यात्। २३४।
सा० द० परि० ३

उद्दीपन— ब्राह्मणादिकों की सत्वगुणादि परायणता।
अनुभाव— सर्वस्व-परित्यागादि।
संचारी— हर्ष, गर्व, मति आदि।

(२) धर्मवीर

स्थायीभाव— धर्म मे उत्साह।
आलम्बन— धर्म तथा धार्मिक ग्रन्थ आदि।
उद्दीपन— यज्ञ, अनुष्ठान आदि।
अनुभाव— धर्माचरण, धर्मार्थ कष्ट सहन आदि।
संचारी— धृति मति आदि।

(३) युद्धवीर

स्थायीभाव— युद्ध मे उत्साह।
आलम्बन— शत्रु।
उद्दीपन— शत्रु-पराक्रम।
अनुभाव— गर्वोक्ति।
संचारी— गर्व, तर्क, धृति, स्मृति, रोमांच आदि।

(४) दयावीर

स्थायीभाव— दया मे उत्साह।
आलम्बन— दया के पात्र।
उद्दीपन— दीन दशा।
अनुभाव— सान्त्वना के वाक्यादि।
संचारी— धृति, मति, रोमांचादि।

ऊपर युद्धवीर का आलम्बन शत्रु बतलाया गया है, किन्तु 'रौद्ररस' का भी आलम्बन शत्रु ही होता है। इस कारण दोनों की अभिन्नता में आशंका उठ सकती है। इस शंका के समाधान मे साहित्य-दर्पण-कार कहते हैं कि "नेत्र तथा मुख का लाल

होना, रौद्र-रस मे होता है, वीर रस में नहीं, क्योंकि वहाँ उत्साह ही स्थायी होता है। यही इन दोनो रसों का परस्पर भेद है" ।※

रसों का परस्पर विरोध भी होता है। वीर-रस के शृंगार, शान्त तथा भयानक-रस विरोधी हैं।

वीर-रस के भेदों के सम्बन्ध में आचार्यों का पारस्परिक मतभेद भी है। साहित्य-दर्पण-कार 'दानवीर' 'धर्मवीर' 'युद्ध-वीर' तथा 'दयावीर' इन चारो को ही मानते है, इसका उल्लेख ऊपर हो चुका है। किन्तु अग्निपुराण मे 'वीररस' के केवल तीन ही भेद माने गए हैं। उसमे 'दयावीर' को स्थान नहीं है। रस-गगाधर-कार पण्डितराज जगन्नाथ ने भी वीररस के इन चार भेदों को स्वीकार किया है। आप के अनुसार वीर-रस के चार प्रकार होने का कारण चार प्रकार का उत्साह ही है।† आगे चलकर पण्डितराज ने यह भी कह दिया है "वास्तव मे शृंगार-रस की तरह वीर-रस के भी अनेक भेद हो सकते हैं।‡ यथा. 'सत्यवीर' 'पाण्डित्यवीर', 'बलवीर,' 'क्षमावीर' आदि। इस प्रकार के भेद का कारण भी स्पष्ट है, और वह है उत्साह की अनेकरूपता। सच तो यह है कि उत्साह के जितने भी स्वरूप विद्यमान है अथवा अनुमान किए जा सकते है, उतने ही वीर रस के भी भेद होगे।

इन भेदो का परस्पर अन्तर्भाव नहीं हो सकता। इसी बात का समर्थन करते हुए पण्डितराज कहते हैं कि यदि कोई यह कहे कि सत्य धर्म का ही एक अंग है, अतएव सत्यवीर

※ रक्तास्यनेत्रता चात्र भेदनी युद्धवीरता। २३१। सा० द० परि० ३

†—दानदयायुद्धधर्मैस्तदुपाधेरुत्साहस्य चतुर्विधत्वात्। रसगङ्गाधर

‡—वस्तुतस्तु बहवो वीररसस्य शृङ्गारस्येव प्रकाराः निरूपयितुं शक्यन्ते। र० गं०

का अन्तर्भाव धर्मवीर में हो जायगा तो यह ठीक नहीं है, क्योंकि दान तथा दया भी तो धर्म के ही अंग हैं। जब दान तथा दयावीर का अन्तर्भाव धर्मवीर में नहीं हो सकता तब सत्यवीर का अन्तर्भाव उसमे किस प्रकार होगा ?

यदि इस प्रकार सूक्ष्म विवेचन किया जाय, तो वीर-रस के अनन्त भेद हो जायँगे और वीर-रस की परिधि इतनी विस्तृत हो जायगी कि उस मे सभी रसो का समावेश हो जायेगा। सम्भवतः इसी विचार से श्री वियोगी हरिजी ने अपनी "वीर सतसई" मे अनेक वीरो के उदाहरण उपस्थित किए है। यथा शूरवीर, दयावीर, सत्यवीर, धर्मवीर, विरहवीर, युद्धवीर आदि। इन में 'विरहवीर' ध्यान देने योग्य है। इस सम्बन्ध मे श्री वियोगी हरि जी लिखते हैं,—

"साहित्यिकों ने इस नाम का वीरों मे कोई विभाग नही किया है। पर वीर-रस का स्थायीभाव 'उत्साह' विशुद्ध विरह में, अच्छी मात्रा मे, पाया जाता है। इसीसे हमने अद्वितीय विरहिणी ब्रजांगनाओं को 'विरहवीर' नाम के नए वीर-विभाग मे स्थान देने की धृष्टता की है"।❀

यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो संसार का कोई ऐसा कार्य नहीं है जो विना उत्साह के सम्पन्न हो सके, और यह उत्साह ही है, वीर-रस का स्थायीभाव। इस प्रकार यह 'उत्साह' बीज-स्वरूप प्रायः सभी रसों में विद्यमान रहेगा। किन्तु उससे वीर-रस के इस प्रकार अनेक भेद मानना उपयुक्त न होगा। अन्यथा वीर-रस में अनवस्था उत्पन्न हो जायेगी।

वीर रस के विषय में इस संक्षेप विवेचन के पश्चात्, अब यहाँ वीर काव्य तथा चारण काव्य के सम्बन्ध मे निवेदन

❀वीर सतसई पृ० ८

किया जायेगा। चारणों एवं उनके काव्य का विशेष सम्बन्ध राजस्थान से है। अतएव इस का पूर्ण विवेचन 'चारण-काव्य' शीर्षक के अन्तर्गत इस निबन्ध के अन्त मे किया जायेगा।

प्रत्येक जाति अपने पूर्वजो की वीरता की प्रशंसा मे पद रचना करती है। ऐसे पदों की मौखिक परम्परा शताब्दियों तक चला करती है। आरम्भ मे ये, पद वाद्ययंत्रों की सहायता से गाये जाते है। इन में प्राचीन काल के किसी विशेष योद्धा के शौर्य-पराक्रम तथा विजय का ही वर्णन रहता है। इस प्रकार के पदो तथा गीतो को वीर काव्य का आरम्भिक रूप कह सकते हैं। इसे जातीय काव्य की संज्ञा नही दी जा सकती, क्योंकि सम्पूर्ण जाति के दुख-सुख की अभिव्यक्ति की अपेक्षा, इसमे केवल विशेष वीरो की ही विजय-पराजय का चित्रण रहता है।

समय की प्रगति के साथ साथ आरम्भिक वीर काव्यो के वर्ण्य विषय मे अन्तर आने लगता है। उनमें ऐसी कथाएँ तथा घटनायें समाविष्ट होने लगती हैं जिनका सम्बन्ध सम्पूर्ण जाति से होता है। इस अवस्था मे इन्हे साहित्यिक काव्य अथवा महाकाव्य की संज्ञा दी जा सकती है। होमर द्वारा रचित "इलियड" तथा "ओडेसी" वस्तुत. प्रथम श्रेणी के काव्य है किन्तु वर्जिल की कृति द्वितीय श्रेणी मे आती है। आरम्भ मे "जय काव्य" के रूप मे महाभारत भी प्रथम कोटि का ही काव्य था किन्तु आधुनिक रूप मे तो वह स्पष्टतया महाकाव्य है।

भारतीय साहित्य का मूल संस्कृत साहित्य ही है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से संस्कृत साहित्य के इतिहास को भी वैदिक काल तथा लौकिक संस्कृत काल, इन दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है। इनमें प्रथम काल मे वेद,

संस्कृत मे वीर काव्य

ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् आदि की गणना होगी, तो द्वितीय में महाकाव्य, पुराण तथा नाटकादि का समावेश होगा।

युद्ध सम्बन्धी कविता का ऋग्वेद में अभाव नहीं है। इसके एक सूक्त में तृत्सु वंश के राजा सुदास की विजय का वर्णन है तो दूसरे में दिवोदास द्वारा सम्बर को पराजित करने का चित्रण है। ऋग्वेद के अन्य सूक्तों में भी युद्ध विषयक पद हैं किन्तु वास्तव में वीर काव्य का सर्व प्रथम उल्लेख "शतपथ" ब्राह्मण में ही उपलब्ध होता है। यहाँ अश्वमेध यज्ञ के प्रकरण में एक स्थान पर कहा गया है कि ब्राह्मण तो दिन में स्तवन करता है किन्तु राजन्य रात्रि में। वे वीणा बजाते तथा गाते हैं। ब्राह्मण यज्ञकर्ता के दानादि की प्रशंसा करता है किन्तु राजन्य उसकी वीरतादि का वर्णन करते हुए उसकी विजय का उल्लेख करता है। वीरता सम्बन्धी यह स्तवन ही वस्तुतः भारतीय वीर काव्य का आदि रूप है।

महाभारत में तो वीर काव्य के गायक 'सूत' तथा 'मागधों' द्वारा राजाओं की प्रशंसा का उल्लेख कई स्थलों पर मिलता है। प्राचीन काल के ये गायक अपने राजाओं के शौर्य तथा पराक्रम का ही वर्णन नहीं करते थे, अपितु प्राचीन समय की सरस कथाओं का पद्य-बद्ध वर्णन भी इनका एक कार्य था। आगे चलकर ऐसी अनेक कथाओं को पुराणों में स्थान मिला। सुदीर्घ काल तक ऐसी कथाओं की मौखिक परम्परा चलती रही होगी। बाद में ये लिपिबद्ध की गई होंगी। पुराण शब्द की निरुक्ति से भी यह बात स्पष्ट हो जाती है। स्वामी शंकराचार्य वृहदारण्य के भाष्य में 'पुराण' शब्द की व्याख्या करते हुए लिखते हैं—"वेदों में ऊर्वशी और पुरुरवा के कथोपकथन आदि ब्राह्मण भाग का नाम इतिहास और जो सबसे पहले एक मात्र असत् था आदि सृष्टि के प्रक्रिया चरित वृत्तान्त का नाम

पुराण है।" आचार्य सायण भी शंकराचार्य की इस निरुक्ति से सहमत है। इस मे सन्देह नही कि पुराणो के इन वृत्तान्तो तथा आख्यानों मे वीर काव्य का पर्याप्त अंश है।

लौकिक संस्कृत काल मे, महाकाव्यो के अन्तर्गत, सर्वप्रथम रामायण की गणना की जाती है। कदाचित् इसी को दृष्टि में रखकर आचार्यों ने महाकाव्य का लक्षण निर्धारित किया है। किन्तु यदि वीर-रस की दृष्टि से रामायण का अध्ययन किया जाय तो उसमे युद्धो के इस प्रकार के अतिशयोक्ति-पूर्ण वर्णन मिलते है कि असंख्य राक्षसो का मारा जाना तथा दिग्गजो एवं पृथ्वी का कम्पायमान होना तो एक साधारण वात हो जाती है। वास्तव में वीर-रस के पोपण के लिए आवश्यक हैं ओज-पूर्ण उक्तिया। किन्तु इस प्रकार की उक्तियो का रामायण मे अभाव है। नीचे के उदाहरण से यह वात स्पष्ट हो जायगी'—

तत्र कोपान्महेन्द्रस्य कुम्भकर्णो महाबलः।
विकृष्यैरावताद्दन्तं जघानोरसि वासवम्॥ यु० का० ६१-१७

उधर महावली कुम्भकर्ण ने कुपित होकर और ऐरावत हाथी का दाँत उखाड़कर इन्द्र की छाती मे मारा।

महाकवि कालिदास विश्व साहित्य की विभूति हैं। उनकी उपमाये सर्वश्रेष्ठ हैं, किन्तु वीर-रस की दृष्टि से इन्हें भी सफल कवि नहीं कहा जा सकता। कदाचित् कालिदास ने अपनी त्रुटियो का अनुभव करके ही वीर-रस-सम्बन्धी रचना का प्रयास नहीं किया और जहाँ किया वहाँ पूर्णतया असफल भी हुए। रघुवंश मे राम-ताड़का-युद्ध के वर्णन मे आप लिखते हैं:—

राम-मन्मथ-शरेण-ताडिता, दुःसहेन हृदये निशाचरी।
गन्धवद्रुधिर-चन्दनोक्षिता जीवितेश-वसतिं जगाम सा।

राम रूपी कामदेव के दुःसह बाण से हृदय पर चोट खाई हुई वह राक्षसी, गन्धयुक्त रक्त रूपी चन्दन से विलेपित होकर, अपने प्राणनाथ यम के पास गई।

यद्यपि स्त्री-हत्या के कारण ऊपर का उदाहरण वीर-रस का न होकर रसाभास का उदाहरण होगा किन्तु विरोधी शृंगार-रस की उपस्थिति के कारण यह रसाभास का निकृष्ट ही उदाहरण कहा जायगा।

अर्थ-गौरव के कारण, महाकवि भारवि की रचना का संस्कृत-साहित्य में बहुत ऊँचा स्थान है। 'किरातार्जुनीय' में, द्रौपदी युधिष्ठर के उत्साह तथा क्रोध को जागृत करने के लिए अत्यन्त तीव्र शब्दों मे कहती है:—

अथ क्षमामेव निरस्तविक्रम—
श्चिराय पर्येषि सुखस्य साधनम्।
विहाय लक्ष्मीपति लक्ष्म कार्मुकम्
जटाधरस्सञ्जुहुधीह पावकम्।

यदि पराक्रम से रहित आप क्षमा को ही शाश्वत सुख का साधन समझते हैं, तो विष्णु के चिह्न धनुष को छोड़कर और जटा बढ़ाकर अग्नि मे आहुति दिया करें।

प्रलय के समान भयङ्कर गाण्डीव धारी अर्जुन किरात से युद्ध करने जा रहे हैं। उनके बाणों के कारण दिशायें विक्षिप्त हो जाती है, सूर्य प्रभाहीन हो जाता है, वायु व्याकुल हो उठता है और पर्वतों के साथ पृथ्वी भी कम्पायमान हो जाती है। इस दृश्य का चित्रण भारवि निम्नलिखित श्लोक में करते हैं। इसे पढ़ते ही वीर अर्जुन का रूप आँखों के सामने उपस्थित हो जाता है:—

दिश. समूर्हाव विक्षिपन्निव,
प्रभांरवैराकुलयन्निवानिलम् ।
मुनिश्चचाल क्षय-काल-दारुणः,
क्षितिं सशैलां चलयन्निवेषुभिः ।

संस्कृत नाटकों में भी स्थान-स्थान पर वीर-रस का अत्यन्त सुन्दर चित्रण हुआ है। भवभूति कृत उत्तरराम-चरित में करुण-रस की ही प्रधानता है। किन्तु चतुर्थ अङ्क के अन्त में इस नाटक में एक अत्यन्त ओजपूर्ण श्लोक मिलता है। लव अपने धनुष को आरोपित करके कहता है—

प्रत्यंचा रूपी जिह्वा से वेष्टित, उन्नत कोटिरूप दाँतवाला, घनघोर घर्घर घोष करने वाला, ग्रसने में आसक्त, हँसते हुए यम के मुखयंत्र की जँभाई का अनुकरण करने वाला विकट उदर-वाला यह धनुष हो।

श्लोक निम्नलिखित है —

ज्याजिह्वया वलयितोत्कटकोटिदंष्ट्र-
मुद्गारिघोरघनघर्घरघोषमेतत् ।
ग्रासप्रसक्तहसदन्तकवक्त्रयन्त्र—
जृम्भाविडम्बि विकटोदरमस्तु चापम् ।

ऊपर के श्लोक के पढ़ने से ही यह बात स्पष्ट हो जाती है कि किसी भयङ्कर वस्तु का वर्णन किया जा रहा है। पाठक को एक ओर काल का विकराल मुख तो दूसरी ओर लव का विकट धनुष दिखलाई पड़ता है।

× × ×

वीर-रस में कभी कभी वक्रोक्ति अत्यन्त उपयुक्त जँचती है। व्यंग्यात्मक तर्कयुक्त होने के कारण ऐसी ओजपूर्ण उक्तियाँ

बड़ी प्रभावोत्पादक होती है। उत्तरराम-चरित में चन्द्रकेतु राम की प्रशंसा कर रहा है। इसपर लव निम्नलिखित तर्कपूर्ण उक्तियो द्वारा उसका उत्तर देता है :—

वृद्धास्ते न विचारणीयचरिता स्तिष्ठन्तु हुँ वर्तते,
सुन्दस्त्रीमथनेऽप्यकुण्ठयशसो लोके महान्तो हि ते।
यानि त्रीण्यकुतोमुखान्यपि पदान्यासन्खरायोधने,
यद्वा कौशलमिन्द्रसूनुनिधने तत्राप्यभिज्ञो जनः।

वे वृद्ध है अतएव उनका चरित्र विचारणीय नही (अर्थात् वे टीका-टिप्पणी की सीमा के बाहर है)। ताड़का स्त्री के वध करने पर भी जिनका यश अप्रतिहत है, वे संसार मे (सचमुच) महान् है। खर राक्षस के वध मे जिन्हे तीन पग पीछे हटना पड़ा था और जिन्होंने छलद्वारा बालि का वध किया था, उन्हे संसार के लोग भली-भाँति जानते है।

वीर-रस का जितना सुन्दर परिपाक भट्टनारायण कृत 'वेणी-संहार' नाटक मे हुआ है उतना संस्कृत के अन्य नाटकों मे नही। प्रथम अङ्क का निम्नलिखित श्लोक तो प्रायः संस्कृत के विद्यार्थियो की जीभ पर रहता है। भीम क्रोध से सहदेव की ओर देखकर कहते हैं:—

मथ्नामि कौरवशतं समरे न कोपा-
द्दुशासनस्य रुधिरं न पिबाम्युरस्तः।
संचूर्णयामि गदया न सुयोधनोरू
संधिं करोतु भवतां नृपतिः पणेन* ॥

---

*क्रोध के कौरव नायक के,
सतबन्धुन को रण में न संहारिहौं।

मैं रण में क्रुद्ध होकर सौ कौरवों का विनाश न करूँगा और न दुःशासन के हृदय का रक्त ही पान करूँगा। अपनी गदा से सुयोधन की दोनों जँघाओं को भी चूर्ण न करूँगा। युधिष्ठिर पण से (पाँच गाँव लेकर) सन्धि कर ले। वक्रोक्ति के कारण भीम द्वारा कथित निषेधपरक वाक्यों का अर्थ विधिपरक ही लिया जायगा।

वीर-रस में गर्वोक्तियों का भी एक विशेष स्थान है। जब अश्वत्थामा कर्ण को 'राधागर्भभारभूत' तथा 'सूतापसद' कह कर सम्बोधित करता है तो कर्ण भी क्रोधित होकर कह उठता है—

निर्वीर्यं वा सवीर्यं वा मया नोत्सृष्टमायुधम्।
यथा पाञ्चालभीतेन पित्रा ते बाहुशालिना।
सूतो वा सूत पुत्रो वा यो वा को वा भवाम्यहम्।
दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं तु पौरुषम्। ❀

सोनित पान के कारज लागि,
कहा न दुशासन को हियो फारिहौं।
त्यों अपने प्रण-पालन को,
न कहा दुर्योधन-जङ्घ बिदारिहौं।
संधि करैं कछु गाँवनि लै,
तुअ भाई भले पै न ताहि विचारिहौं।
[वेणी संहार-अनु० हरदयाल सिंह]

❀हौं निर्बल अथवा सबल आयुध दीन न त्यागि।
महाबली तव जनक जिमि धृष्टद्युमन भय लागि।
सूत होंहु वा सूतसुत, अथवा सब बिधि हीन।
बंस जनम है भाग्यबस, पौरुष निज आधीन।
[—वे० सं अनु० हरदयाल सिंह]

उत्साह संवर्द्धन के लिए 'वेणी संहार' में अश्वत्थामा की निम्नलिखित उक्ति भी कम मार्मिक नहीं :—

यदि समरमपास्य नास्ति मृत्यो-
भयमिति युक्तमितोऽन्यतः प्रयातुम् ।
अथ मरणमवश्यमेव जन्तोः
किमिति मुधा मलिनं यशः कुरुध्वे ।*

यदि रणक्षेत्र छोड़कर अन्यत्र चले जाने से मृत्यु का भय नहीं है, तब तो उचित ही है। किन्तु यदि प्राणियों की मृत्यु ध्रुव है तो [अन्यत्र भागकर] यश को मलिन करना ठीक नहीं ।

अब यहाँ हिन्दी-साहित्य में वीर-रस की प्रगति पर विचार किया जायगा। वास्तव में सम्राट हर्षवर्द्धन के राजत्व-काल से ही देशी भाषाओं का महत्त्व प्रारम्भ होता है। अतएव हिन्दी-साहित्य के आरम्भ का युग भी इसी समय को मानना समीचीन होगा। जिस प्रकार आधुनिक हिन्दी-भाषा प्राचीन वैदिक भाषा का ही विकसितरूप है, उसी प्रकार आधुनिक हिन्दी-साहित्य भी उस प्राचीन-साहित्य के ही विकास का फल है। इस प्रकार आधुनिक साहित्य में जो प्रवृत्तियाँ दिखलाई पड़ती है वे परिवर्तित तथा परिवर्द्धित होकर प्राचीन-साहित्य से ही उद्भूत हुई है। परिवर्तन-परिवर्द्धन में अनेक धार्मिक, राजनैतिक तथा सामाजिक घटनाओं का सहयोग है, जिनका अध्ययन

*—छोड़ि समर को खेत, मीचु-भय जो नहिं होई ।
तो ह्वैबो रस-विमुख, उचित भाखै सब कोई ॥
तनु धारिन को मरन अहै, निहचै जग माहीं ।
करिबो याते जसहिं मलिन कैसेहु भल नाहीं ।
[—वे० सं० अनु० हरदयाल सिंह]

साहित्य के इतिहास के विद्यार्थियों के लिए भी परमावश्यक है। नीचे इन्ही घटनाओं का संक्षेप मे वर्णन किया जायगा और हिन्दी-साहित्य के इतिहास के साथ उनका समन्वय दिखलाकर अन्त मे वीर-रस की प्रगति पर विचार किया जायगा।

धार्मिक दृष्टि के विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि सातवीं आठवीं शताब्दी मे बौद्ध तथा जैन धर्म मे अवनति आरम्भ हो गई और उनके स्थान पर वैदिक-धर्म की प्रतिष्ठापना होने लगी थी; किन्तु इस वैदिक-धर्म मे अपेक्षाकृत अनेक परिवर्तन हो गये थे। अब शाक्त-धर्म प्रधानता ग्रहण करने लगा था और सर्वत्र शिव की पूजा आरम्भ हो गई थी। ह्वानच्वॉग के विवरण से विदित होता है कि गान्धार, काश्मीर तथा पंजाब से लेकर मथुरा तक हीनयान के स्थान पर महायान बौद्धधर्म की स्थापना हो चुकी थी।

महायान सूत्रो मे सब से प्रसिद्ध 'सद्धर्मपुण्डरीक' है। इस सूत्र मे बुद्ध मानवता से ऊपर उठकर स्वयम्भू तथा लोकरक्षक बन जाते है। गृद्धकूट पर्वत पर उनके भ्रू सञ्चालन मात्र से ही सहस्रलोक प्रकाशित हो उठते है। यद्यपि इस सूत्र का समय निश्चित् करना कठिन है तथापि श्री विंटर्निट्ज महोदय इसका काल ईस्वी सन् की प्रथम शताब्दि मानते है। सातवीं आठवीं शताब्दि मे तो इसी महायान धर्म से मन्त्रयान, वज्रयान की उत्पत्ति हुई।

पं० जयचन्द विद्यालङ्कार इस समय की वस्तु-स्थिति का वास्तविक चित्र निम्नलिखित शब्दो मे अङ्कित करते है*:—

"किन्तु इसके (वाकाटक-गुप्त-युग) बाद भारतीय मस्तिष्क

*—अखिल-भारतीय-हिन्दी-साहित्य सम्मेलन (२५वां अधिवेशन) के इतिहास परिषद् का अभिभाषण पृ० ८।

मानो थककर अपने को पूर्णता तक पहुँचा अनुभव करने लगता है और आगे बढ़ना छोड़ देता है। वह पुराने का भाष्य, व्याख्या, टीका और टिप्पणी करना ही अपना काम समझ लेता और कोल्हू के बैल की तरह चक्कर काटने लगता है। आठवीं शती का काश्मीरी दार्शनिक जयन्त भट्ट* पुकार कर कहता है—'कुतो वा नूतनवस्तु वयमुत्प्रेक्षितुं क्षमा':—हममें नई वस्तु कल्पना करने की शक्ति कहाँ है? भारतीय-कला इस युग में अपने चरम सौन्दर्य पर पहुँचती है, पर उसमें गुप्त युगवाली जान और ओजस्विता नहीं रहती। वैदिक से गुप्त-युग तक भारत में अनेक संघराज्य या गणराज्य थे; मध्यकाल में किसी गण-राज्य का नाम भी नहीं सुना जाता। जनता अपने राजनैतिक कर्तव्य की उपेक्षा करने लगती है। पहले ग्रामों, श्रेणियों और निगमों की सभायें तथा जनपदों की परिषदें कानून बनाती और स्मृतियां केवल उनकी व्याख्या करती थीं, अब प्राचीन स्मृतियां जीवित मनुष्यों के ठहरावों का स्थान ले लेती है। दूर और नई जगह ब्याह-शादी करने से लोगों को झिझक मालूम होने लगती है और समाज में अब तक दर्जों का जो तरल भेद था, वह अब पथराकर ठोस जाँति-पाँति बन जाता है। शिल्प और व्यापार की समृद्धि से जुटनेवालीपूंजी मन्दिरों की ललितकला पर ढेर की ढेर संचित होने लगती है।.........१३वीं-१४वीं शताब्दि में हेमाद्रि नीलकण्ठ और कमलाकर भट्ट धर्मिष्ठ हिन्दू की बरस भर की चर्या के लिए करीब दो सहस्र व्रतों, पूजाओं आदि का विधान करते हैं। ऐसी मन स्थितिवाली जाति संसार के संघर्ष में कैसे खड़ी रह सकती है?"

ऊपर सातवीं तथा आठवीं शताब्दि के धार्मिक, राजनैतिक

---

*इतिहास प्रवेश भाग १ पृ० २३४

तथा सामाजिक जीवन का दिग्दर्शन संक्षेप में कराया गया है। निश्चित् है कि जिस जाति की मनःस्थिति जैसी होगी उसीके अनुरूप वह साहित्य का सृजन भी करेगी, क्योंकि साहित्य वास्तव मे जातीय-जीवन का सच्चा दर्पण है। हिन्दी मे इस काल की जो कविता उपलब्ध हुई है, वह सिद्धो की है। इन सिद्धो मे 'सरहा' का समय ७५० ई०, महाराज धर्मपाल के समकालीन लूइपा का समय ७६९-८०९ ई० तथा कण्हपा का काल ८०९-८४९ ई० है।❀ सिद्ध लोग सहजिया सम्प्रदाय के अनुयायी थे। मन्त्रयान तथा वज्रयान की भाँति सहजयान भी महायान बौद्ध धर्म की ही एक शाखा थी।

सिद्ध कवि रहस्यवादी थे और इनकी कविता की भाषा सन्ध्या बतलाई गई है। नाथपन्थ के प्रसिद्ध गोरखनाथ भी सिद्धो मे से ही एक थे। आगे चलकर इन सिद्धो की विचारधारा हिन्दी के सन्त कवियो की वाणियों मे विलीन हो गई। इस समय भी सन्तो की वाणियो का अध्ययन करके सिद्धों के विचार का अन्वेषण किया जा सकता है।

सिद्धो की संख्या चौरासी बतलाई जाती है। इसमे से अधिकाश का सम्बन्ध बिहार प्रान्त तथा नालन्दा-विश्वविद्यालय से था। इस कारण इनकी कविता की भाषा का बिहारी तथा बँगला भाषा से घनिष्ठ सम्पर्क है।

इन सिद्धो के अतिरिक्त ८०० ई० से १४०० ई० के बीच कई जैन पंडितो तथा अन्य कवियो की रचनाये देशी-भाषा मे उपलब्ध है। हिन्दी-साहित्य के इतिहास कारो ने सं० १०५० से

❀ओरियंटल कान्फ्रेन्स बड़ौदा (सन् १९३३) की हिंदी शाखा के सभापति श्री राहुल-सांकृत्यायन का भाषण।

१४०० तक के साहित्य के काल को वीर-गाथा काल के नाम से सम्बोधित किया है। किन्तु इस समय की तथाकथित रचनाओं की प्रामाणिकता संदिग्ध है। 'पृथ्वीराजरासो', 'खुमानरासो' आदि अपने मूल रूप मे उपलब्ध नहीं है। अतएव उनकी भाषा भी भाषा के क्रमिक-विकास के अध्ययन की दृष्टि से सर्वथा अनुपयोगी है। हाँ, इस काल के अध्ययन के लिए जैन पंडितो द्वारा उपस्थित की हुई सामग्री अत्यन्त वहुमूल्य है। श्री अगरचन्द नाहटा ने अपने दो लेखो, 'वीरगाथा-काल का जैन भाषा-साहित्य, [नागरी प्रचारिणी प्रत्रिका अंक ३, सं० १९९८] तथा 'वीरगाथा-काल की रचनाओ पर विचार' [नागरी प्रचारिणी पत्रिका अंक ३-४, सं० १९९६] मे इस काल के साहित्य एवं भाषा पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। अपने प्रथम लेख में नाहटा जी ने सोलह कवियो की रचनाओ पर विचार किया है। जिनमे प्रथम धनपाल का समय सं० १०८१ के लगभग तथा पन्द्रहवे सारमूर्ति का समय सं० १३९० के लगभग है। श्री नाहटा जी ने जिन वल्लभ सूरि [सं० ११६७ के लगभग] की रचना का निम्नलिखित उदाहरण दिया है—

कि कप्पतरु रे अयाण चितहि मन भित्तरि।
कि चिन्तामणि कामधेनु आराहहि बहु परि॥
चित्रावेलिहि काजु किसउ, देसंतरु लघइ।
रमणि रासि कारणह किसउ, सायर उल्लंघइ॥
चउदह पूरब सार जगे लद्धु एहु नवकारु।
रुयल काज महियलि सरहि दुत्तरि तरि संसारु॥

ऊपर के पद का हिन्दी रूपान्तर इस प्रकार होगा.—

किं कल्पतरु रे अयान ! चिंतहि मन भीतरि।
किं चिंतामणि कामधेनु, आराधहि बहु परि॥

चित्रावेलिहि काज कौन, देसांतर लांघइ।
रमणि रासकारणे, कौन सागर ऊल्लांघइ॥
चौदह पूरब सार जग, लब्ध एह नवकार।
सकल काज मध्यहिं सरहिं, दुस्तर तरि संसार॥

श्री नाहटा जी ने प्राचीन गुर्जरकाव्य-संग्रह से विजयसेन सूरि (सं० १२८८ के लगभग) का निम्नलिखित पद उद्धृत किया है.—

परमेसर तित्थेसरह, पय पंकय पणमेवि।
भणिसु रासु रेवंतगिरे, अंबिक देवी सुमरेवि॥
गामागर पुर वण गहण, सरिसरवरि सुपएसु।
देवभूमि दिसि पच्छिमह, मणहरु सोरठ देसु॥

अब सं० १३६० के लगभग के सारमूर्त्ति कवि की निम्न-लिखित पंक्तियाँ देखिये.—

सुरतरु रिसह जिणंद पाय अनुसर सुअ देवो।
सुगुरुराय जिणचंद सूरि गुरुचरण नमेवी॥
अमिय सरिसु जिण पद्मसूरि पभवणहरासू।
सवणंजलि तुम्हि पियउ भविय लहु सिद्धिहि तासू॥

ऊपर के पद का हिन्दी-रूपान्तर इस प्रकार होगा :—

सुरतरु ऋषभ जिनेन्द्र पाय अनुसर शुकदेवो।
सुगुरुराय जिनचन्द्र सूरि गुरु-चरण नमामि॥
अमिय सरिस जिन पद्मसूरि प्रमणइ यह रासू।
श्रवणांजलि तुम पियहु, भविय लेहु सिद्धिहि तासू॥

महापंडित राहुलसांकृत्यायन ने भी अपने 'हिन्दी काव्य ·रा' नामक संग्रह मे इस काल के कवियो की रचना प·

अच्छा प्रकाश डाला है। 'काव्य-धारा के अधिकांश कवि जैन धर्मावलंबी हैं। इस पुस्तक की अधिकांश सामग्री श्री राहुल जी ने श्री मुनिजिन विजय जी द्वारा संग्रहीत वम्बई के 'विद्या-भवन' के संग्रहालय में सुरक्षित हस्तलिखित पुस्तकों से ली है। नीचे स्वयंभू (सं० ८०० के लगभग की कविता से वीर-रस के उदाहरण दिये जाते है। उद्धृत-अंश मेघवाहन तथा हनुमान के युद्ध के सम्बन्ध मे है।

भिडिअइ वे' वि सेएणइ आउ जुज्झु घोर !
कुंडल - कडय - मउड - णिवडंत कणय-डोरु।
हण-हण-हणक्कारु महारउद्दु।
छण छण छणंतु गुण-पिंछ-सद्दु।
कर - कर - करंतु कोयंड - पवरु
थर - थर - थरंतु णाराय - णियरु।
खण-खण-खणन्तु तिक्खग्ग खग्गु।
हिल-हिल-हिलन्तु हय-चंच लग्गु।
गुल-गुल-गुलंत गयवर विसालु।
'हणु-हणु-भणंतु णर-बर-विसालु।

ऊपर के पद का रूपान्तर नीचे दिया जाता है:—

भिडिया दोऊ सेन आव युद्ध घोर।
कुंडल-कटक-मुकुट निपततं कणक-डोर।
हन हन - हनंकार महा-रउद्द।
छुन छुन छुनंत गुण-पिच्छ-शब्द।
कर कर करंत कोदंड प्रवर।
थर - थर - थरंत नाराच निकर।
खन-खन-खनंत तीक्ष्णाग्र खड्ग।
हिल-हिल हिलंत हय-चंचलाग्र।

गुल-गुल-गुलंत गजवर-विशाल।
हन हन भनंत नरवर विशाल।

अब स्वयंभूकृत 'सुग्रीव और मेघवाहन' के युद्ध का भी एक दृश्य देखें—

किक्किंध-णराहिउ धरिउ, जाव।
घण-वाहण भा मण्डलइ ताव।
ओभिट्ट परोप्परु जुज्झ घोर।
सरि सोत्त स-उत्तरे पहर थोर।
छिज्जंत महग्गय गरुअ गत्तु।
णिवडंत समुद्धुय-धवल-छत्तु।
लोट्टंत महारह - हय-रहंगु।
घुम्मंत - पडंत - महा तुरंगु।
तुट्टंत कवड तुट्टंत खग्गु।
णच्चंत कबंधउ असि करग्गु।

अब ऊपर के पद का हिन्दी रूपान्तर देखें—

किष्किंध-नराधिप धरेउ याव।
घन वाहण भा मंडलहँ ताव।
आ भिडेउ परस्पर युद्ध घोर।
शर स्रोत स्व-उत्तरे प्रहर थोर।
छिछंत महागज गरुअ - गात्र।
निपतंत समुद्धत - धवल - छत्र।
लोटंत महारथ हय रथांग।
घूमन्त पडंत महा तुरंग।
टूटंत कवच टूटंत खड्ग।
नाचंत कबंधउ असि - कराग्र।

१३ वीं शताब्दि के पूर्वार्ध के एक अज्ञात कवि का युद्ध-वर्णन निम्नलिखित पद में देखे*:—

अहि ललइ महि चलइ, गिरि खसइ हर खलइ,
ससि घुमइ अमिय वमइ, मुअल जिवि उट्ठए।
पुणु धसइ पुणु खसइ, पुणु ललइ पुणु घुमइ,
पुणु वमइ जिविअ विविह, परि समर दिट्ठए॥

गअ-गअहि ढुक्किअ तरणि लुक्किअ, तुरअ तुरअहि जुज्झिआ।
रह रहहि मीलिअ धरणि पीलिय, अप्प-पर णहि बुज्झिआ॥

वल मिलअ 'आइअपत्ति जाइउ' कंप गिरवर सीहरा।
उच्छलइ 'साअर दीण काअर, वइर बडिढय दीहरा॥*

ऊपर के पद का यहाँ हिन्दी रूपान्तर दिया जाता है:—

अहि ललै महि चलै गिरि खसै हर खलै,
शशि घुमै अमिय वमै मुअल जीइ उट्ठए।
पुनि धसै पुनि खसै पुनि ललै पुनि घुमै,
पुनि वमै जीविता विविध परि समर दृष्टए।

गज गजहिं ढुक्किय तरणि लुक्किय तुरग-तुरंगहि जूझिया,
रथ-रथहिं मेलिय धरणि पेलिय, आप पर नहिं बूझिया।
वल मिलै आइय पत्ति जाइय, कंप गिरवर शीखरा,
ऊछलै सागर दीन कातर वैरि बाढ़िय दीघरा॥

ऊपर उद्धृत पद, व्याकरण की दृष्टि से, संस्कृत तथा पालि-प्राकृत की अपेक्षा हिन्दी के ही अधिक निकट के हैं। इनकी भाषा को अपभ्रंश ही कहना उचित होगा, यद्यपि श्री राहुल जी को ऐसा कहने में संकोच है। इस भाषा को देखते ही यह स्पष्ट हो जाता है कि कबीर, तुलसी, जायसी आदि पर इसका

---

*'हिन्दी-काव्य धारा' पृ० ४५६।

कितना अधिक प्रभाव है। युद्ध-वर्णन में प्रयुक्त शब्दावली का प्रभाव तो मध्ययुग की पिंगल तथा डिंगल रचनाओं पर स्पष्ट रूप से पड़ा है। इस युग के चाहे जिस हिन्दी कवि के युद्ध-वर्णन को हम लें, सर्वत्र इसी प्रकार की पदावली मिलेगी।

साहित्य के क्षेत्र में धीरे धीरे ऊपर की भाषा ही हिन्दी के रूप में परिणत हो गई।

ऐतिहासिक दृष्टि से भारतीय इतिहास का यह घोर अशान्ति तथा विप्लव का काल था। इस समय केन्द्रीय-शक्ति के अभाव में सम्पूर्ण भारतवर्ष अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित हो चुका था। इन राज्यों को संघरूप में संगठित करने वाली कोई शक्ति न थी। इसी प्रकार राष्ट्रीय एकता की भावना का भी अभाव ही था। परिणाम स्वरूप सब लोग 'अपनी अपनी डफली और अपना अपना राग' वाली कहावत चरितार्थ कर रहे थे।

इस युग में भारतवर्ष में सर्वत्र राजपूतों का ही राज्य था। उत्तरी-भारत में दिल्ली, कन्नौज, अजमेर, धार तथा कालिंजर के राज्य प्रसिद्ध थे। उनमें क्रमशः तोमर, राठौर, चौहान, चालुक्य और चन्देल राजपूत राज्य करते थे। इन राजपूतों में पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष का प्राबल्य था। नवीन वैदिक-धर्म ने इन्हें उत्साह तो प्रदान किया किन्तु उसमें स्थायित्व न था। समाज में भीतर से घुन लग गया था और जाति निर्बल हो चली थी। ठीक इसी समय तुर्कों ने पश्चिमोत्तर भारत पर आक्रमण किया। राजपूत वीर हँसते-हँसते बलिदान होने लगे किन्तु उत्साह से उत्तेजित नवागत शत्रुओं को रोक रखना किसी एक राजा का कार्य न था।

यहाँ राजपूतों की वीरता के सम्बन्ध में भी दो शब्द कह देना आवश्यक है। राजपूतों में व्यक्तिगत वीरता का अभाव

न था किन्तु वास्तव मे उसका कोई आदर्श न था। विवाह जैसा मंगल-कार्य भी इनके यहाँ विना युद्ध के सम्पन्न नही हो सकता था।

युद्ध मे विजय प्राप्त करने के लिए कौशल भी एक आवश्यक साधन है, किन्तु राजपूतो मे इसका प्रायः अभाव ही था। उधर अन्ध-विश्वास ने भी उनकी पराजय मे सहायता की। "कन्नौज के गुर्जर-प्रतिहार सम्राटो के लिए कई ऐसे मौके आए जब वे मुलतान को आसानी से जीत सकते थे। किन्तु जब ऐसा अवसर आता तभी मुलतान के तुर्क-शासक सूर्य-मन्दिर को तोड़ने की धमकी देते और कन्नौज की सेना लौट जाती।"❀

देश की राजनैतिक, धार्मिक तथा सामाजिक स्थिति का साहित्य पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। यह बात इस युग के हिन्दी-साहित्य के अध्ययन से भी स्पष्ट हो जाती है। इस काल की कविता मे राजपूतो को सुसंगठित कर उन्हे तुर्कों के आक्रमण से देश की रक्षा करने मे दत्तचित्त बनाने की प्रवृत्ति नही मिलती, अपितु इसके विपरीत कविगण अपने आश्रयदाताओ के शौर्य पराक्रम की प्रशंसा मे ही परम सन्तोष मानते हैं। इस प्रकार की कविता के लिए जहाँ वीर-पूजा की भावना तथा देश की आन्तरिक परिस्थिति से उत्तेजना मिली है वहाँ आश्रयदाताओ से धन लाभ की आशा ने भी कम सहायता नहीं की है। इसका एक प्रत्यक्ष परिणाम तो यह हुआ कि देश की अपेक्षा व्यक्तियो को प्रधानता मिली और अन्य देशो की भाँति हिन्दी मे देशभक्ति सम्बन्धी कविता न हुई और दूसरे अतिशयोक्ति तथा अतिरंजन से हिन्दी-कविता आप्लावित हो उठी। उदाहरण स्वरूप कीर्तिसिंह की प्रशंसा मे विद्यापति 'कीर्तिलता' मे लिखते हैं :—

❀इतिहास प्रवेश पृ० २२५

जहिं जहिं संघल सत्तु घल, ताहिं ताहिं पल तरवारि।
शोणित मज्जे मेइनी, कित्तिसिंह कर मारि।

छन्द

पले रुएड मुएडो खरो बाहुदएडो,
सिश्रारू कलङ्काइ कङ्काल खएडो।
धरा धूरि लोटन्त टुटन्त काया,
तरन्ता खलन्ता पखालेन्ति पाश्रा।
श्ररुज्झाल श्रन्तावली जालवद्धा,
वसा वेग वूडन्त उड्डुन्त गिद्धा।
गश्रएडा करन्तो पिवन्तो भरन्तो,
महामासु खएडो परन्तो भरन्तो।
सिश्रासार फेक्कार रोल करन्तो,
बुभुख्खा बहू डाकिनी डक्करन्तो।

मध्ययुग मे तो हिन्दी कविता प्रायः अतिशयोक्ति की पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है। अब्दुर्रहीम खानखाना जैसे शान्तिप्रिय व्यक्ति की तलवार की प्रशंसा मे गंगकवि कहते है कि उसने इतने शत्रुश्रों का वध किया कि खून की नदियाँ वह निकली और उनकी वाढ़ से संपूर्ण भूमण्डल डूबने लगा —

एते मान सोनित की नदियाँ उमड़ चलीं,
रही न निसानी कहूँ महि में गरद की।
गौरी गह्यो गनपति, गनपति गह्यो गौरी,
गौरीपति गह्यो पूँछ लपकि बरध की।

वीर-काव्य की दृष्टि से हिन्दी-साहित्य मे रासो-ग्रन्थो की बड़ी प्रतिष्ठा है। इन ग्रन्थों मे कुछ तो मुक्तकवीर-गीत के रूप मे उपलब्ध हैं तो अन्य प्रबन्ध-काव्य के रूप मे। इनमे पहली श्रेणी मे वीसलदेव रासो तथा आल्हखंड की गणना की जाती

है तो दूसरी श्रेणी मे खुमान रासो तथा पृथ्वी राज रासो की। 'रासो' शब्द की उत्पत्ति 'तासी' ने 'राजसूय' शब्द से मानी है किन्तु आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इसकी उत्पत्ति 'रसायण' शब्द से मानते हैं। वस्तुत. इसकी उत्पत्ति "रास" शब्द से ही हुई है। वीरगाथा-काल के जैन कवियो ने अनेक ऐसे रास-ग्रंथो की रचना की थी। 'वीसलदेव रासो' मे भी कई स्थलों पर "रास" शब्द का उल्लेख मिलता है। ये रासो ग्रन्थ—खुमान रासो' वीसलदेव रासो तथा पृथ्वीराज रासो—आज से कुछ दिन पूर्व भाषा तथा ऐतिहासिक सामग्री की दृष्टि से हिन्दी की विभूति माने जाते थे, किन्तु इधर इनकी प्रामाणिकता मे संदेह उपस्थित किया जाने लगा है। नीचे इस सम्बन्ध मे निवेदन किया जाता है।

'रासो-ग्रन्थों' मे सर्व प्रथम दलपतिविजय कृत 'खुमान रासो' का उल्लेख मिलता है। विद्वानो का मत है कि इसमें चित्तौड़ के दूसरे खुमाण के युद्धो का वर्णन है। आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल* इस खुमाण का समय सं० ८६६ से ८६३ मानते है।

'खुमाण रासो' के सम्बन्ध मे 'खुमाण-रासो का रचना काल और रचयिता' शीर्षक लेख, श्री अगरचन्द जी नाहटा ने नागरी प्रचारिणी पत्रिका [अंक ४, सं० १९९६] मे प्रकाशित किया है। श्री नाहटा जी ने अत्यन्त तर्कपूर्ण ढंग से इसकी हस्तलिखित प्रतियो पर विचार किया है, और अन्त मे आप निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँचे हैं :—

---

*हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ४०–१

१—इस ग्रन्थ में वप्पा से लगाकर राजसिंह तक का वृत्तांत है। पर राणा खुमाण का वृत्तांत विस्तार से होने के कारण ग्रन्थ का नाम 'खुमाणरास' रखा गया है।

२—इसकी भाषा राजस्थानी है।

३—इसके रचयिता तपागच्छीय जैन कवि दौलत विजय हैं जिनका दीक्षा से पूर्व नाम दलपत था।

४—ग्रन्थ-निर्माण-काल सं० १७३० से १७६० के मध्य का है।

इस प्रकार 'खुमान रासो' को हिन्दी—का आदि 'रासो' कहना किसी प्रकार युक्तिसंगत न होगा।

रासो ग्रन्थों मे 'वीसलदेव' तथा 'पृथ्वीराज' रासो की अत्यन्त प्रसिद्धि है। इनमें 'वीसलदेव' का रचयिता नरपति नाल्ह तथा 'पृथ्वीराज रासो' का निर्माणकर्ता चंदवरदाई कहा जाता है। इन दोनों कवियों की कृतियों पर इस संग्रह मे पूर्ण प्रकाश डाला गया है।

वीर कवियों मे 'आल्ह-खंड' के रचयिता जगनिक का नाम बड़े गर्व से लिया जाता है। जगनिक कालिंजर के राजा परमाल (परमर्दिदेव) का दरबारी कवि था। परमाल सं० १२२२ वि० में गद्दी पर बैठे थे। इनके समय के दो शिलालेख उपलब्ध हुए हैं—(१) वटेश्वर मे परमाल के मंत्री सलक्षण के बनवाये हुए विष्णु मंदिर की शिला पर सं० १२४१ वि० में अंकित। (२) महोबा के तालाब के किनारे बने हुए मंदिर की एक शिला पर अंकित। इनसे आल्हखंड का रचनाकाल विक्रम की १३ वी शताब्दि का पूर्वार्ध अनुमान किया जा सकता है।

'आल्ह-खंड' प्रारम्भ से ही एक जनप्रिय काव्य रहा। उत्तर-भारत की ग्रामीण जनता मे रामायण के अनंतर इसीका

स्थान है। इसका लिपि-बद्ध रूप बहुत ही बाद को हुआ। इसका एक परिणाम यह हुआ कि इसका प्रारम्भिक रूप तो नष्ट हो हो गया; बहुत कुछ अंशो मे भाव भी परिवर्तित हो गये। "आल्ह-खंड' को सर्व प्रथम लिपिबद्ध कराने का श्रेय फर्रुखाबाद के कलक्टर स्वर्गीय श्री चार्ल्स इलियट को है। उन्होंने तीन चार प्रसिद्ध आल्हा गायको को बुलवाकर उनकी स्मरण-शक्ति के सहारे सं० १६२२ वि० मे इसे लिपिबद्ध कराया था। इसकी भाषा कन्नौजी है।

आल्हा, अवधी तथा भोजपुरी क्षेत्रों में भी गाया जाता है। आल्हा के विवाहखंड की कथा के भोजपुरी रूप को ग्रियर्सन ने इण्डियन ऐंटीक्वेरी मे प्रकाशित कराया था।* वर्तमान रूप मे आल्ह खण्ड को किसी भी प्रकार 'वीर गाथा काल' की रचना मानना युक्तियुक्त न होगा।

हिन्दी-साहित्य के भक्ति तथा रीतिकाल में वीर-काव्य का अभाव सा है। फिर भी इस युग में केशव का 'वीरसिह देव चरित', मानका 'राजविलास', भूषण का 'शिवराजभूषण', लाल का 'छत्र-प्रकाश', सूदन का 'सुजान-चरित' आदि अनेक ग्रन्थ वीर-काव्य सम्बन्धी मिलते हैं। इन कवियो तथा इनकी रचना के सम्बन्ध मे इस संग्रह मे यथा स्थान प्रकाश डाला गया है।

गो० तुलसीदास जी के 'रामचरित-मानस' मे शान्तरस की ही प्रधानता है। किन्तु 'रामचरित-मानस' मे कई स्थलो पर युद्ध का वर्णन किया गया है।

नीचे राम-रावण युद्ध मे राम के क्रोध का वर्णन इस प्रकार किया गया है:—

---

*इण्डियन ऐंटीक्वेरी, सन् १८८५, अगस्त, पृ० २०६-२२७

भये क्रुद्ध जुद्ध विरुद्ध रघुपति श्रोन सायक कसमसे ।
कोदंडधुनि अति चंडसुनि मनुजाद सब मारुत ग्रसे ॥
मंदोदरी उर कंप कंपति कमठ भू भूधर त्रसे ।
चिक्करहिं दिग्गज दसन गहि महि देखि कौतुक सुर हँसे ॥

एक दूसरे स्थल पर गोस्वामी जी ने राम और खरदूषण के युद्ध का वर्णन 'रामचरित-मानस' मे इस प्रकार किया है—

उर दहेउ कहेउ कि धरहु धावहु बिकट भट रजनीचरा ।
सर-चाप - तोमर सक्ति-सूल - कृपान परिघ परसु-धरा ॥
प्रभु कीन्ह धनुष टकोर प्रथम कठोर घोर भयावहा ।
भये बधिर व्याकुल जातुधान न ज्ञान तेहि अवसर रहा ॥

× × ×

तब चले बान कराल । फुंकरत जनु बहु व्याल ॥
कोपेउ समर श्रीराम । चले विसिख निसित निकाम ॥
अवलोकि खरतर तीर । मुरि चले निसिचर बीर ।
भये क्रुद्ध तीनिउ भाइ । जो भागि रन ते जाइ ॥

मध्ययुग मे वीर-रस सम्बन्धी फुटकर रचनाये भी हुईं जिनके रचयिता प्राय राज्याश्रित कवि ही थे । प्राचीनकाल मे जिस प्रकार वीर-काव्य की रचना राम-रावण युद्ध अथवा महाभारत के युद्ध को लेकर हुई उसी प्रकार मध्ययुग मे तुर्कों के युद्ध को लेकर कवियो ने रचनाये की । यहाँ तुर्क और मुसलमान मे भी स्पष्ट रूप से अंतर समझ लेना चाहिए । वस्तुत मुसलमान वे है जिन्होने इस्लाम धर्म को स्वीकार किया है । जब इस्लाम का प्रवेश भारतवर्ष मे हुआ तो स्वेच्छा तथा परिस्थिति के वश अनेक भारतीयो ने भी इस धर्म को स्वीकार किया, किन्तु इससे वे भारतीय-राष्ट्र से पृथक न हुए । कुतुबन, मंझन, जायसी, रहीम, रसखान आदि ऐसे ही मुसलमान थे,

जिनमें भारतीयता कूट-कूट कर भरी थी, किन्तु इनके विपरीत सदैव से भारत में एक ऐसा विशेष दल वर्त्तमान रहा जो भारतीय-संस्कृति, वेष-भूषा तथा भाषा का शत्रु था। वस्तुतः तुर्क शब्द इसी दल का पर्यायवाची है। इस देश में रहते हुए भी इस दल ने अपने को भारतीय राष्ट्र से पृथक ही रक्खा। औरंगजेब इस दल का प्रमुख प्रतिनिधि था। इसी कारण भूषण ने अपने काव्य मे उसकी निन्दा की।

हिन्दी का आधुनिक-युग भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से प्रारंभ होता है। भारतेन्दु वीर-रस के कवि नहीं थे, किन्तु उनके नाटकों मे वीर-रस की कतिपय कवितायें मिलती हैं। अपनी एक कविता में उन्होंने भारतवासियों को युद्ध के लिए आमंत्रित किया है। पद इस प्रकार है:—

चलहु वीर उठि तुरत सबै जय-ध्वजहि उडाओ।
लेहु म्यान सों खड्ग खींचि रन-रंग जमाओ॥
परिकर कसि कटि उठो धनुष पै धरि सर साधौ।
केसरिया बाना सजि-सजि रनकंकन बाँधौ॥
जो आरजगन एक होइ निज रूप सम्हारैं।
तजि गृहकलहिं आपनी कुल-मरजाद विचारैं॥
तौ ये कितने नीच कहा इनको बल भारी।
सिंह जगे कहुँ स्वान ठहरिहैं समर मंझारी॥

ऊपर की कविता मे हरिश्चन्द्र जी ने भारत की प्राचीन संस्कृति तथा वीरता का स्मरण दिलाकर वीरों को युद्ध के लिए, आमंत्रित किया है, किन्तु राधाकृष्णदास जी ने अपने महाराणा-प्रताप नाटक मे भारतीय-संस्कृति तथा वीरता के प्रतीक महाराणा प्रताप की प्रशस्ति लिखी है:—

चलि शत्रुन के दल भेदि निमान उड़ावैं ।
फिर चित्रकूट पर आर्य ध्वजा फहरावैं ॥
आनन्द सो सब मिलि नाचैं कूदें गावैं ।
स्वाधीन दिवस सब सुख सो सदा बितावें ॥
निर्द्वन्द्व होहु चित चाव बढ़ाइ हुलासा ।
अब भयो भानुकुल भानु प्रताप प्रकासा ॥ १ ॥
अपनी-अपनी करतूति सबै दिखराओ ।
लरि लरि अरि सैनहि उलटैं तुरत भगाओ ॥
जड़ सों भारत तें इनके नाम मिटाओ ।
फिर आर्य सुयस की नदी पवित्र बहाओ ॥
करि कै अब विलय मिटाओ जन परिहासा ।
अब भयो भानुकुल भानु प्रताप प्रकासा ॥ २ ॥

भारत में ब्रिटिश-सत्ता की स्थापना के पश्चात् जनता में राष्ट्रीयता की एक लहर दौड़ गई। यह पहला अवसर था जब कि भारतीय जनता अपनी प्रान्तीयता भूलकर एकता का अनुभव करने लगी। इस नव-जागरण के भी अनेक कारण हैं, जिनमें रूस-जापान का युद्ध, भारतीय-कांग्रेस के कार्य, वंग-भंग आन्दोलन विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। सन् १९२१ में कांग्रेस में गाँधी जी के आगमन ने तो भारतीय-राष्ट्र को जागृत करने में सबसे बड़ा कार्य किया। इसका प्रभाव हिन्दी-कवियों पर भी पूर्ण रूप से पड़ा जिसके परिणामस्वरूप लाला भगवान् दीन, श्री मैथिलीशरण गुप्त, पं० गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', पं० माखनलाल चतुर्वेदी, श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान, पं० अनूप शर्मा, श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' तथा पं० श्याम नारायण पाण्डेय आदि ने अपनी कविताओं तथा काव्य-ग्रन्थों में वीर-काव्य का सजीव चित्र उपस्थित किया।

भारतीय दासता की कड़ियाँ अब टूट चुकीं हैं और स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ साथ युवकों में उत्साह की तरंगे उद्वेलित हो रही है। वस्तुतः किसी देश मे वीर-काव्य की रचना तभी होती है जब देश स्वतंत्र होता है। आशा है भविष्य के कवि ऐसी रचनाओं से युवको मे उत्साह और जोश भरकर भारतीय राष्ट्र को सबल बनाने मे सहायक होंगे।

चारण तथा चारण काव्य

चारण जाति का अस्तित्व भारतवर्ष मे प्रचीन काल से रहा है। अपने पवित्र आदर्श के कारण भी चारणों को समाज मे सदैव सम्मान तथा आदर प्राप्त रहा है। उनका प्रधान ध्येय लोक कल्याणार्थ क्षत्रिय जाति में साहस तथा वीरता का संचार कर उन्हे सद्धर्म एवं सन्मार्ग पर चलाना था। स्वर्गीय ठाकुर किशोर सिह जी, स्टेट हिस्टोरियन' पटियाला राज्य के अनुसार 'चारयन्तीति चारणाः' अर्थात् जो देश का संचालन कार्य, नेतृत्व करे एवं देश-भक्ति को प्रोत्साहन दे वही चारण है।

चारणों की उत्पत्ति तथा उनकी प्रसिद्धि के सम्बन्ध मे विशेष प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध नहीं है, फिर भी विद्वानो ने इस ओर पर्याप्त प्रयास किया है। नीचे इन्ही विद्वानो की खोजो का सारंश दिया जाता है।

पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी बी० ए० संवत् १९६७ की नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १, पृ० २२६-२३१ मे इस सम्बन्ध मे विचार करते हुए लिखते हैं.—

ब्राह्मणों के पीछे राजपूतों की कीर्ति बखानने वाले भाट और चारण हुए, जैसा कि एक छन्द मे कहा है.—

"ब्राह्मण के मुख की कविता कछु भाट लई कछु चारण लीन्हीं"। यह जानना आवश्यक है कि चारणो की प्रधानता कब से हुई? कोई शिलालेख या ताम्रपत्र संस्कृत मे, या पुराना, अब तक, नहीं मिला है जिसमें चारणो या भाटों को भूमिदान का उल्लेख हो।

'सुभाषित हारावली' नामक एक सुभाषित श्लोको का संग्रह हरि कवि का किया हुआ है [पीटर्सन, दूसरी रिपोर्ट, पृ० ५७-६४]। उसमे मुरारी कवि के नाम से यह श्लोक दिया हुआ है—

चर्चाभिश्चारणानां क्षिति रमण! परां प्राप्य संमोदलीलां,
मा कीर्तेः सौ विदल्ला नवगणय कवि प्रात (?) वाणी विलासान्।
गीतं ख्यातं न नाम्ना किमपि रघुपतेरद्य यावत्प्रसादा—
द्वाल्मीकेरेव धात्रीं धवलयति यशो मुद्रया रामभद्रः।

ऊपर के श्लोक के द्वितीय चरण मे "कवि प्रात [?] वाणी विलासन्" पाठ अशुद्ध है। वस्तुत. शुद्ध पाठ होगा "कविप्रोत वाणीविलासान्" या "कवीन् प्राप्त वाणी विलासान्"। इस श्लोक का भाव इस प्रकार है .—

कोई राजा चारणो की कविता से प्रसन्न होकर संस्कृत कवियो का अनादर करने लगा। उसे कवि सम्बोधित करके कहता है कि हे महीपाल! चारणो की चर्चाओ से बड़ा आनन्द पाकर कवियों की रचनाओ का अनादर मत कीजिए, क्योंकि वे कीर्तिरूपी नायिका के रखवारे या लाकर [राजाओ से] उसे मिलाने वाले है। देखिए, रामचन्द्र का एक गीति या ख्यात नाम को भी नहीं है, वाल्मीकि ही की कृपा से आज तक रामभद्र अपने यश की छाप से पृथ्वी को अलंकृत कर रहे हैं। भाव यह है कि चारणो के [देश भाषा के] गीत और ख्यात

अस्थायी हैं, कवियों के [संस्कृत] वाणी-विलास सदा रहते हैं। राम का एक भी गीत या ख्यात नहीं मिलता। संसार में उनका जो यश है, वह वाल्मीकि की कृपा ही का फल है।

इस श्लोक में चारण, गीत और ख्यात विशेष सांकेतिक या पारिभाषिक अर्थ में लिए गए हैं। चारण का अर्थ देवयोनि का [सिद्ध, गंधर्व आदि का सा] यश गायक नहीं हो सकता क्योंकि उनका कवियों से मुकाबिला कैसा ? "गीत" और "ख्यात" साधारण गान या यश के काव्य नहीं हो सकते, पारिभाषिक गीतों और ख्यातों से ही अभिप्राय है। चारणों द्वारा रचित काव्य दो ही तरह के होते हैं—कवितावद्ध "गीत" और और गद्यबद्ध "ख्यात"। राजपूताना में अब तक इसी अर्थ में "गीत" और "ख्यात" पदों का व्यवहार है, जैसे "मोटा राजा उदय सिंह रा गीत", "राठौड़ां री ख्यात"। गीत और ख्यात पदों को गीति और ख्याति [आख्याति] संज्ञा शब्दों का अपभ्रंश मानने की कोई जरूरत नहीं। ये कर्मवाच्य भूतकालिक धातुज विशेषण हैं जिनके आगे विशेष्य लुप्त हैं, जैसे चारणैः गीतं [यश.], चारणैः [ख्यातं] वृत्तम्। मारवाड़ी में इसी अर्थ में "कह्योड़ो" [कहा हुआ] भी आता है, जैसे "वाप जी गणेशपुरी जी रो कह्योड़ो [पद, गीत या दूहो]।

मुरारी कवि प्रसिद्ध अनर्घ राघव नाटक का कर्ता है। उसका पिता भट्ट श्री वर्धमान, माता तंतुमती, गोत्र मौद्गल्य और उपनाम वाल्मीकि था। उसका समय आठवीं या नवीं शताब्दि ईस्वी है। यदि यह श्लोक मुरारी का ही है तो उस समय भी चारणों के गीत और ख्यात प्रचलित थे और उनकी संस्कृत के कवियों से प्रतिद्वंदिता होने लग गई थी। इस श्लोक को मुरारी कृत मानने में सन्देह करने के दो ही कारण हो

सकते है, एक तो इतने प्राचीन काल मे चारणों के गीत और ख्यातो का प्रचलित होना और दूसरे यह कि सुभाषितावलियों मे श्लोको के साथ जो कवियों के नाम दिए होते हैं वे कहीं कहीं प्रामाणिक नहीं होते।

बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी के उपसभापति महा-महोपाध्याय पं० हरप्रसाद शास्त्री ने हस्तलिखित पुस्तकों की खोज के सम्बन्ध मे राजपूताने की तीन यात्रायें की। वे गुजरात भी गये और सन् १६०६ के पश्चात् उन्होंने बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी के समक्ष चार विवरण उपस्थित किये। इसके अतिरिक्त आपने अपने कार्य के सम्बन्ध में एक सामान्य विवरण भी तैयार किया। जो बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी की ओर से ही सन् १६१३ में प्रकाशित हुआ था। इस विवरण के प्रथम परिशिष्ट मे चारणों के सम्बन्ध मे जो सामग्री उपलब्ध है उसका सारांश यहाँ दिया जाता है :—

चारण अपनी उत्पत्ति सिद्धों एवं रामायण और महाभारत के चारणों से बतलाते हैं किंतु इसमे सत्य का अंश कम ही प्रतीत होता है। वस्तुत. १५ वीं शताब्दी के अंतिम भाग मे राजपूतों के सम्बन्ध के कारण ही इनकी प्रसिद्धि हुई। एक दंत-कथा के अनुसार चारणों की उत्पत्ति आज से ६०० वर्ष पूर्व सिंध में देवियों के द्वारा हुई। भाटों के अनुसार 'कुल' या 'कुला' शब्द का अर्थ चारण है। अपने 'कुलकुल मण्डन' नामक ग्रन्थ मे ब्रजलाल कवि ने चारणो का स्थान सोरठ या सौराष्ट्र बतलाया है।

जोधपुर के कविराजा मुरारीदान अपनी पुस्तक 'संक्षिप्त चारण ख्याति' में चारणों की चर्चा करते हुए लिखते हैं :—

प्राचीन काल मे चारण जाति भारतवर्ष के प्राय: सभी प्रान्तों में निवास करती थी। मध्यकाल के कुछ पहले से अब

तक वह अधिकतर राजपूताना, मालवा, गुजरात, काठियावाड़ और कच्छ मे निवास करती आ रही है। चारणो का आदि पुरुष 'जकत' बतलाया जाता है। 'जकत' के वंशज आदि चारण कहलाते है। जकत के चार पुत्र और एक पुत्री थी। पुत्रो के नाम क्रमशः नदू, नरह, चोरर और तुम्वेत तथा पुत्री का नाम गौरी था। गौरी बाद मे देवी रूप मे प्रख्यात हुई। उससे चारणों के २८ कुलो की उत्पत्ति हुई। गौरी तथा चोरर ने एक बार अपनी कला से गिरनार के राजा को प्रसन्न किया। इसके परिणामस्वरूप राजा ने चारणो को समाज मे उच्च-स्थान प्रदान किया। चारणो के अन्य कुलो की उत्पत्ति ब्राह्मणो तथा राजपूतो से हुई। राजपूताने मे एक ब्राह्मण तथा एक राजपूत को चारण बनाने की कथा प्रसिद्ध है। अब तक चारणो के १२० कुलो का पता चला है जिनमे आधे मारवाड़ तथा शेष कच्छ और कठियावाड़ मे रहते है। कच्छ के चारण कछेला कहलाते है। उन्होने राजाओ का यशोगान करना छोड़कर अब व्यापार करना प्रारम्भ कर दिया है।

सौराष्ट्र मे चारणो की उत्पत्ति का ठीक ठीक पता नही चलता। किंतु इतना तो निश्चित् है कि 'अन्हिलपत्तन' के सोलंकी राजा सिद्धराज जयसिंह के राजत्वकाल मे चारण वर्त्तमान थे। जयसिह का समय १२ वी शताब्दी है। उस समय चारण कुम्हारो से उनकी पुत्रियो के विवाह के अवसर पर दान लिया करते थे। उनकी मॉगे इतनी अधिक होती थी कि कुम्हारो ने अपनी पुत्रियो का विवाह ही करना बन्द कर दिया। इसकी सूचना जब राजा को मिली तो उन्होने यह आज्ञा निकाल दी कि चारण केवल राजपूतो से ही दान ले सकते हैं। राजस्थानी साहित्य मे चारणों की चर्चा सर्व प्रथम अचलदास किच्छी की कहानी मे आई है। इस कहानी मे

'जिमां' नामक चारणी मुख्य पात्री है। 'ढोला' और 'मारवणी' की कहानी में भी चारणों की चर्चा है।

मंडोवर राज्य के संस्थापक चुंडा के समय से ही राजस्थान मे चारणों का प्रभाव वढ़ा। चुंडा के वाल्यकाल में उसका सवसे वड़ा सहायक 'अला' चारण था। 'अला' की कविता के कुछ छन्द राजस्थान मे इस समय भी उपलब्ध हैं; किंतु चारणों द्वारा लिखित सर्व प्रथम ग्रन्थ १५ वां शताब्दि का 'जोधायन' है। यह जोधपुर के संस्थापक महाराजा जोधा के सम्वन्ध मे है। १६ वी शताब्दी से लेकर अद्यावधि राजस्थान के धार्मिक, राजनैतिक तथा सामाजिक जीवन में चारणों का एक महत्व पूर्ण स्थान है। तव से अव तक चारणों ने अनेक ग्रन्थो का निर्माण किया है।

चारण शाक्त होते हैं। भगवती उनकी कुल देवी हैं। आपस में वे 'जय माता जी की' कहकर नमस्कार करते है। भगवती ने एक अवतार चारण कुल मे भी लिया था जिसे चारण उन्हे 'बुआ जी' या 'वाई जी' भी कहते है। इनकी कुलदेवी करणी देवी हैं और इनका प्रसिद्ध मंदिर वीकानेर से एक स्टेशन इधर देशणोक [दशनोक] ग्राम मे है। करणी जी की चारण तथा राजपूत दोनों अत्यन्त श्रद्धा से पूजा करते है।

चारणो के अतिरिक्त ढाढ़ी, ढूलि मोतीसर ब्राह्मणों तथा भाटो ने भी राजस्थान की वोलियो में काव्य-रचना की। संक्षेप मे इनका परिचय नीचे दिया जाता है।

ढाढ़ी

चारण प्रायः अलंकारिक भाषा मे काव्य-रचना करते हैं किन्तु ढाढ़ी साधारण वोलचाल की भापा मे काव्य-रचना के लिए प्रसिद्ध हैं। मारवाड़ के प्रसिद्ध राठौर राव

वीरम के पराक्रमों के वर्णन मे बहादर ढाढ़ी ने 'वीरमायण' नामक काव्य-ग्रन्थ की रचना की थी। वीरम चुंडा के पिता थे। 'आल्हखंड' की भॉति 'वीरमायण' भी एक जनप्रिय काव्य है। ढाढ़ी प्रायः रवाब या सारंगी पर लोकगीते गाते हैं।

चारणो के अभ्युत्थान के कारण मारवाड़ के उच्चवर्ण के लोगो मे ढाढ़ियो का प्रभाव कम हो गया किन्तु निम्नश्रेणी की जनता अभी तक इनकी कविता का आदर करती है। ढाढ़ियो की कविता के संग्रह से राजस्थान के इतिहास पर नवीन प्रकाश पड़ सकता है किन्तु दुःख की बात है कि इस प्रकार के संग्रह की ओर लोगों ने बहुत कम अभिरुचि दिखलाई है। दोआब के भाटो तथा डफालियो की भॉति ही उच्चवर्ण से तिरस्कृत अनेक ढाढ़ियो ने इस्लाम धर्म को स्वीकार कर लिया है किन्तु अभी भी इनके घर भैरव तथा योगमाया की पूजा होती है।

ढुलि

ढुलियो द्वारा लिखित साहित्य भी सर्व साधारण जनता की वस्तु है क्योकि उसमें सरलता कूट-कूट कर भरी रहती है। राजस्थान के कई स्थानों मे ढुलियो की उपाधि राणा है। जयपुर अलवर आदि स्थानो मे इनकी संख्या अधिक है। ढुलि अपना सम्बन्ध चारणों से स्थापित करते हैं किन्तु चारण इसे स्वीकार नही करते।

ढुलियो के सब से बड़े सहायक उदावत राजपूत हैं। ये सारंगी तथा ढोलक बजाकर नाचते गाते हैं इस कार्य मे इनकी स्त्रियॉ भी सहायता करती है। ढुलियो द्वारा रचित प्रकाशित तथा अप्रकाशित साहित्य इन्ही के पास सुरक्षित है। "लाखा फुलानी" के दोहो का रचयिता ढुलि जाति का ही था।

'कुल-कुलमंडन' के अनुसार ढुलि प्राचीन मागधों के ही वंशज हैं।

सेवक

ये मगो के वंशज हैं जो समय समय पर भारत में आकर बस गये। ये शाकद्वीपीय ब्राह्मण हैं तथा जैनों और बीकानेर के अधीनस्थ मन्दिरों में पुजारी का काम करते हैं। इनमें शिक्षा का पर्याप्त प्रचार है तथा संस्कृत के पठन-पाठन की परम्परा भी है। ओसवालो से इनका अधिक सम्पर्क है। राजस्थान मे सेवक लोग भी कविता करते हैं किन्तु ढाढ़ियों तथा ढुलियो की भाँति केवल लोक-गीतों तक ही अपने को सीमित नहीं रखते। "रघुनाथ-रूपक" के रचयिता कविवर मनसाराम मंच्छ सेवक जाति के ही थे। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि वृन्द भी सेवक जाति के ही रत्न थे।

मोतीसर

ये चारणों का वंशवृक्ष रखते हैं, उनकी प्रशंसा मे कवितायें लिखते हैं तथा उन्हीं से दान भी लेते हैं। सत्रहवीं शताब्दि के मध्यभाग मे मारवाड़ के महाराजा गजसिंह ने उदयपुर के भीम सिसौदिया को मार डाला। भीम के पक्षपाती चतुरा नामक मोतीसर ने इस सम्बन्ध मे एक कविता लिखी जिसका आशय यह था कि भीम सिसौदिया भैंसे की तरह मारा गया। मध्ययुग मे राजपूतों को भैंसे का शिकार अत्यधिक प्रिय था। मस्त भैंसे को मैदान में छोड़ दिया जाता था और उसे आठ दश घुड़सवार चारों ओर से घेर लेते थे। जब वह उन पर आक्रमण करता था तो वे उसे भाले से मारते थे। मोतीसर का तात्पर्य यह था कि गजसिंह ने अन्याय से भीम सिह का वध किया। गज सिंह चतुरा से इतने अप्रसन्न हुए कि उन्होंने

चतुरा की जागीर जब्त कर ली तथा चारणों को भी उसे दान देने के लिए मना कर दिया। विपत्ति में चतुरा गजसिंह के दरबार मे पहुँचा। महाराज ने जब उसे मारने के लिए तलवार उठाई तब चतुरा ने निम्नलिखित पद कहाः—

तु तोलैं तलवार,
सिर शोहा गजसींह दे,
हुए तुरकाने हार
हिंदुआने उच्छव हुए।

अर्थात् हे गजसिंह! आप ने किसके सिर के लिए तलवार उठाई? क्योंकि उसे देखते ही तुर्क तो भाग गये और हिन्दुओ के घर महोत्सव होने लगा। इस पद को सुनकर गजसिंह ऐसे प्रसन्न हुए कि उन्होंने चतुरा को केवल प्राणदान ही नही दिया बल्कि उसकी सम्पत्ति भी उसे वापस दे दी।

ब्राह्मण

राजपूताने में ब्राह्मण संस्कृत तथा स्थानीय दोनों भाषाओ मे कविता करते थे। संस्कृत पर तो उनका एकच्छत्र अधिकार था किंतु देशी भाषाओ के क्षेत्र मे उनके कई प्रतिद्वन्दी थे। यही कारण है कि राजपूताने में यह बात सर्वसाधारण मे प्रचलित हो गई थी कि वास्तव में कविता तो केवल 'ब्राह्मण के मुख से ही निकली, उसी को कुछ चारणो ने और कुछ भाटो ने प्राप्त किया।' यहाँके ब्राह्मणों ने संस्कृत मे कई वीर-काव्यों की रचना की। 'अजितोदय' तथा 'अभयोदय' काव्यों की रचना जगजीवन ने की थी। इसी प्रकार बूँदी मे 'शत्रुशालय-चरित्र, की रचना भी संस्कृत मे हुई थी। 'नाथ-पुराण' की रचना चिमनीराम जी ब्राह्मण ने की थी। यह राठौरो का इतिहास है। जोधपुर के राजा मानसिंह ने इसके लिए चिमनीराम जी को

जागीर भी दी थी, जो अब-तक उनके वंशजो के अधिकार में है। जयपुर के प्रसिद्ध कवि पद्माकर भट्ट भी ब्राह्मण ही थे।

भाट

अत्यंत प्राचीन काल से राजस्थान मे भाटो का प्रभाव है। चारणो का प्रभाव क्षेत्र वस्तुतः कच्छ है, किंतु इसके बाहर जोधपुर, बीकानेर तथा शखावाटी आदि मे भाटों का पर्याप्त प्रभाव है। मालवा तथा ब्रिटिश-भारत मे चारणों का अभाव सा है, किंतु भाट सर्वत्र पाये जाते है। चारण केवल राजपूतो के ही दान-पात्र हैं किंतु भाट सब जातियो से दान लेते है। इनमे से अधिकांश ने तो इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया है, किंतु इस धर्म परिवर्तन के कारण उनके व्यवसाय मे कुछ भी परिवर्तन नही हुआ है। पूर्व मे भाटो के अतिरिक्त ब्रह्मभट्ट भी हैं जो वस्तुत ब्राह्मण ही है। इनके तथा ब्राह्मणो के संस्कार मे कुछ भेद नही है और संस्कृत के पठन-पाठन की परम्परा भी इनके घरो मे है।

राजस्थान का सबसे प्राचीन भाट कवि चोचू था, जिसका समय १२ वी शताब्दि विक्रमाब्द बतलाया जाता है। उसने 'बगरावत-बन्धुओ' का गुणगान किया था। राजस्थान के गूजरो के गॉवो में भोप लोग 'बगरावत-बन्धुओ के सम्बन्ध में प्रशंसात्मक गीते गाते है।

चोचू के वंश में ही 'पृथ्वीराज रासो' का प्रणेता चंद वरदाई हुआ था। राजपूताने मे हस्तलिखित पुस्तकों की खोज करते समय इसी वंश के नानूराम नामक भाट ने चंद वरदाई की एक विस्तृत वंशावली पं० हरप्रसाद शास्त्री को दी थी।

चारणो और भाटों का पारस्पारिक कलह भी बहुत पुराना है। ऐसे ही एक झगड़े का उल्लेख पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

बी० ए० ने 'नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका', भाग १, सम्वत् १६६७, पृष्ठ १२७-१३४ मे 'बारहट लेक्खा का परवाना' शीर्षक मे किया है। इस परवाने पर माघ शुक्ल ५ संवत् १६४२ की मिति है और पंचोली पन्नालाल के हस्ताक्षर है। इस परवाने से ज्ञात होता है कि चारणों और भाटो का झगड़ा अकबर के दरबार तक भी पहुँचा था। राजपूताने के मौखिक-साहित्य में इस सम्बन्ध मे प्रचुर-सामग्री उपलब्ध है।

चारणों को दान

कवियो को जीविका का स्रोत उनकी रचनाये थी। ढाढ़ी, ढुलि आदि तो गाना गाकर कुछ मॉग लेते थे। राजस्थान के लोग समय समय पर चारणों, वंदीजनों तथा भाटो को दान भी देते थे। प्राचीन-काल में राजपूताने मे याचक लोग बहुत दान मॉगते थे। कहा जाता है कि राजस्थान मे नवजात शिशु को मार डालने का एक यह भी कारण था कि लोग याचको द्वारा बहुत सताये जाते थे। राजपूत सदैव इस बात से डरते थे कि कन्या के विवाह के अवसर पर जब वे याचकों को संतुष्ट न कर सकेंगे तो वे उनकी अप्रशंसा मे पद-रचना कर डालेगे। इसी कारण वे लड़कियो को जन्म लेते ही मार डालते थे। इस प्रथा के निवारण के लिए कर्नल वाल्टर ने राजस्थान मे 'हितकारी सभा' की स्थापना की थी, जिसके द्वारा भिन्न-भिन्न वर्ग के याचको के दान का अनुपात भी निश्चित् कर दिया गया था। इसका परिणाम भी अच्छा ही हुआ।

राजस्थान मे कवियो को सदैव दान मिलता रहा। जोधपुर राज्य मे चारणो को ३८० गॉव दान मे मिले जिसका उपभोग अभी तक उनके वंशज कर रहे हैं। इसकी आय भी लगभग २ लाख रुपये है। राजस्थान के प्रत्येक राज्य की ओर से दान

मे गॉव मिले हैं। मंगल तथा शुभ अवसरों पर धनी लोग चारणों को 'त्याग' देते है। ब्राह्मणों को जो दान दिया जाता है उसे 'दक्षिणा' कहते है किंतु चारणों के दान को 'त्याग' कहते है। 'त्याग' के समय किसी एक चारण को प्रधान बना दिया जाता है। 'त्याग' मे प्राप्त धन को वह कभी-कभी अन्य चारणों मे भी बॉट देता है। बूॅदी के रावराजा दशहरा के अवसर पर एक सहस्र का 'त्याग' बूॅदी के बाहर के चारणों को देते हैं।

कविता की अभिवृद्धि के लिए चारणों को 'लाख-पसाव' देने की पद्धति भी है। 'लाख-पसाव' का अर्थ है एक लक्ष का दान। इस एक लक्ष से केवल नकद रुपयो से ही तात्पर्य नहीं है। इसके अंतर्गत हाथी, घोड़े, ऊँट, गहने, सवारी गॉव, अनाज आदि वस्तुओं का भी समावेश होता है। कुल दान तीन हजार से सत्तर हजार के बीच होता है, किन्तु उसे 'लाख-पसाव' ही कहा जाता है। म० म० कविराजा-मुरारीदान को जोधपुर राज्य की ओर से तीन 'लाख-पसाव' मिले थे। इसी प्रकार मुरारीदान के पितामह बॉकीदान को जोधपुर के महाराजा मानसिह ने दो 'लाख-पसाव' दिया था।

ब्राह्मणों की ही भॉति चारणो के लिए दान लेना कोई लज्जा की बात नही है, किंतु कतिपय समृद्ध चारण व्यक्ति-विशेष का दान ही स्वीकार करते हैं। कभी-कभी महाराजा राजा तथा ठाकुर लोग अपने चारणो को पर्याप्त दान देकर उन्हे अयाचक बना देते हैं। अयाचक हो जाने के पश्चात् चारण किसी से विवाह अथवा श्राद्ध के अवसरो पर किसी प्रकार का दान स्वीकार नही कर सकता। वह न तो 'त्याग' मे ही अपना भाग ले सकता है और न 'लाख-पसाव' को ही स्वीकार कर सकता है। राजा महाराजा तथा सरदार लोग अपने चारणो

को अयाचक बनाने मे अपना गौरव मानते हैं। म० म० मुरारीदान को जोधपुर के महाराजा ने अयाचक बना दिया था। उन्हे जब उदयपुर के राणा की ओर से 'लाख-पसाव' स्वीकार करने का निमंत्रण मिला तो अत्यंत नम्रता के साथ उन्होंने उसे अस्वीकार कर दिया।

प्राचीन-काल मे अयाचक चारण को अपने दाता के दुर्ग के सिहद्वार के ऊपर बैठकर उसका गुणगान करना पड़ता था। द्वार को राजस्थानी मे 'पोल' कहते है। इसी कारण इन चारणो को राजस्थानी मे 'पोलपात' कहते है। इस शब्द की व्युत्पत्ति 'प्रतोली-पात्र' से हुई है। चारणो का एक उच्चवर्ग 'बारट' या 'बारहट' भी है जो वस्तुत. 'द्वारहठ' शब्द से निकला है। राजपूतो के विवाह के अवसर पर ये हठ-पूर्वक दान लेते थे। इसीलिए ये बारहट' कहलाये। 'भॉड़ियावास के आसिया चारण बुधदान ने 'त्याग' कम करने या बन्द करने वालो से असन्तुष्ट होकर एक कविता भी लिखी है जो यहॉ उद्धृत की जाती है :—

जासी त्याग जकरां घर सूँ जातां खाग न लागै जेज।
धाररो तोल न बाँधो धणियाँ त्याग तणी कहि बाँधो तोल ?
जासी त्याग जकां का' घर सूं जाती धरती करै जुहार।
दीजै दोस किसू सिरदारां जमीं जाणरां अंक जरूर।

अर्थात् जिनके घर से 'त्याग' जायेगा उनके यहॉ से तलवार [खाग—खग्ग—खड्ग] जाते देर न लगेगी। स्वामियो! 'त्याग' का हिसाब तो बॉधते हो, जमीन का हिसाब नहीं बॉधते ? जिनके घर से 'त्याग' जायेगा उन्हे आती हुई पृथ्वी भी सलाम करती है। सरदारो! दोष किसे दे ? यह लक्षण तो अवश्य भूमि छिन जाने के है।

'राजस्थान की भाषा'

राजस्थानी, राजस्थान और मालवा-प्रान्त की भाषा है। इसके पूर्व मे बुन्देली और व्रजभाषा, पूर्वोत्तर मे व्रज और बॉगड़, उत्तर मे पञ्जाबी, पश्चिमोत्तर मे लहदा, पश्चिम मे सिंधी, दक्षिण पश्चिम मे गुजराती और दक्षिण मे मराठी भाषा बोली जाती है। राजस्थानी के अंतर्गत मुख्यरूप से निम्नलिखित पॉच बोलियो का समावेश है.—

[१] मारवाड़ी :—इसका क्षेत्र सब से अधिक विस्तृत और इसका साहित्य सर्वाधिक सम्पन्न है। यह पश्चिमी राजस्थान [जोधपुर, मेवार, जेसलमेर, बीकानेर, शेखावाटी आदि] की बोली है।

[२] ढूँढाड़ी—इसका क्षेत्र पूर्वी-राजस्थान [जयपुर, कोटा, कामा, झालावाड़, किशनगढ़ आदि] है। इसमें भी अच्छा साहित्य वर्त्तमान है।

[३] मेवाती:—यह मेव प्रान्त अर्थात् अलवर आदि स्थानो मे बोली जाती है। इसमे साहित्य नहीं के बराबर है।

[४] मालवी —यह मालवा-प्रान्त [इंदौर, भूपाल, नेमाड़ तथा ग्वालियर राज्य के अधिकांश भाग] की बोली है। इसमे साहित्यिक-रचना बहुत कम हुई है।

[५] भीली:—यह राजस्थानी-भाषा का वह रूप है जिसे भील आदि पहाड़ी जातियॉ बोलती हैं। इस पर गुजराती का अत्यधिक प्रभाव है। इसमे साहित्य नहीं के बराबर है।

राजस्थानी की उत्पत्ति एवं विकास

उत्पत्ति की दृष्टि से राजस्थानी का सम्बन्ध गुजराती से है। इसकी आधारभूता-भाषा भारतीय-आर्य-परिवार की वह भाषा है जो मालवा और गुजरात मे प्रचलित थी। इस पर

मध्यदेश की शौरसेनी का भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा और ५०० ई० के पश्चात् गुर्जरों की भाषा से भी यह प्रभावित हुई। गुर्जरों की मातृभाषा कदाचित् दर्द थी। ये पश्चिमोत्तर प्रान्त से आकर राजस्थान तथा गुजरात में बस गये और वहाँ शासन करने लगे। पश्चिमी-राजस्थानी अथवा मारवाड़ी, गुजराती की बहन हैं किन्तु पूर्वी-राजस्थान की बोलियाँ पश्चिमी से बहुत कुछ मिलती जुलती हैं। उत्पत्ति के विचार से पूर्वी-राजस्थानी (मेवाती,जयपुरी, हड़ोती) का पश्चिमी-हिन्दी अथवा पश्चिमी राजस्थानी से कितना सम्बन्ध है, यह निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता। किन्तु इतना तो कहा ही जा सकता है कि पश्चिमी-राजस्थानी और गुजराती की उत्पत्ति एक ही भाषा से हुई है। एल० पी० टेसीटरी ने उस आधारभूत भाषा का नाम 'प्राचीन-पश्चिमी-राजस्थानी' दिया है। इस 'प्राचीन पश्चिमी-राजस्थानी' में जैन-कवियों की रचनाएँ उपलब्ध हैं। डा० सुनीतिकुमार चैटर्जी के अनुसार गुजराती १५ वीं या १६ वीं शताब्दि में 'प्राचीन-पश्चिमी-राजस्थानी' से पृथक होकर अपने अस्तित्व में आई होगी। गुजरात का प्रसिद्ध कवि नरसी मेहता का समय १५ वीं शताब्दि है, लेकिन जनप्रिय होने के कारण उसकी भाषा में परिवर्त्तन भी होता रहा है। प्राकृतयुग में भी शौरसेनी-प्राकृत तथा शौरसेनी-अपभ्रंश का राजस्थान तथा गुजरात की बोलियों पर पर्याप्त प्रभाव रहा। राजस्थान के कवि डिंगल तथा पिंगल पर समान रूप से अधिकार रखते थे। आजकल भी राजस्थान में साहित्यिक-भाषा के रूप में हिन्दी की ही प्रतिष्ठापना हुई है। किन्तु इससे यह तात्पर्य नहीं कि राजस्थानी-बोलियों में साहित्य-रचना होती ही नहीं। मारवाड़ी का साहित्य तो पुराना है किन्तु राजस्थान की अन्य बोलियों में भी चारण-काव्य का अभाव नहीं। आधुनिक युग

में उदयपुर के 'प्राचीन-शोध-संस्थान' तथा बीकानेर के 'श्री सादूल-रिसर्च-इंस्टीटयूट की ओर से प्राचीन-राजस्थानी-साहित्य के संशोधन तथा सम्पादन का कार्य सुचारु रूप से चल रहा है। इस ओर स्वर्गीय श्री सूर्य्यकरण पारीक, श्री नरोत्तम स्वामी, श्री अगरचन्द नाहटा, श्री दशरथ शर्मा, श्री मोतीलाल मेनारिया, श्री रावमोहन सिह आदि का कार्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

राजस्थानी साहित्य

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से समस्त राजस्थानी-साहित्य को हम दो भागो मे विभक्त कर सकते है (१) डिंगल (२) साधारण राजस्थानी। यहाँ पहले डिंगल पर विचार करने के पश्चात् साधारण राजस्थानी के सम्बन्ध में कुछ लिखा जायगा।

डिंगल

राजस्थानी भाषा का डिंगल नाम कैसे पड़ा, इस विषय में भिन्न-भिन्न विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं। इस सम्बन्ध मे अनेक कल्पनायें भी की गई हैं जिनकी आलोचना आवश्यक है।

[१] डा० एल० पी० टेसीटरी का कथन है कि डिंगल शब्द का वास्तविक अर्थ अनियमित अथवा गँवारू है। ब्रजभाषा [पिंगल] परिष्कृत और साहित्य-शास्त्र के नियमों का अनुसरण करती थी, परन्तु डिंगल इस विषय मे अनियमित थी। अतएव उसका यह नाम पड़ा।

आलोचना

डिंगल वस्तुत शिक्षित चारणों की भाषा थी। यह व्याकरण के नियमों से भी मुक्त न थी। छन्द, रस, अलङ्कार, ध्वनि आदि का इसमे उतना ही ध्यान रक्खा जाता

था जितना कि ब्रजभाषा मे। डिंगल राज-दरबार की भापा थी। अतएव उसे गॅवारू तथा अनियमित कहना समीचीन नही प्रतीत होता।

[२] म० म० पं० हरप्रसाद शास्त्री के अनुसार आरम्भ मे इस भाषा का नाम 'डगळ' था, परन्तु बाद मे पिंगल के साथ तुक मिलाने के लिए उसको 'डिंगल' कर दिया गया। अपने मत की पुष्टि के लिए शास्त्री जी ने चौदहवी शताब्दि के एक प्राचीन-पद का अंश भी उद्धृत किया है जो उन्हे कविराजा मुरारीदान से प्राप्त हुआ था। यह पद इस प्रकार है:—

'दीसे जङ्गल डगळ जेथ जल बगल चाटे।
अनहुँता गल दियँ गला हुँतागल काटे॥

आलोचना

इस पद का अर्थ शास्त्री जी ने नही दिया है। केवल इतना ही कहकर छोड़ दिया है कि इससे स्पष्ट है कि 'जंगलदेश' अर्थात् मरुदेश की भापा डिंगल कहलाती थी। इस पद मे भाषा की कही चर्चा भी नही है। बड़े आश्चर्य का विपय है कि शास्त्रीजी ने न जाने किस आधार पर यह निर्णय दे डाला है। रचना-शैली की दृष्टि से यह पद सोलहवी शताब्दि का प्रतीत होता है। किंतु यदि इसे चौदहवी शताब्दि का मान भी ले तो सबसे पहला प्रश्न यह उठता है कि आरम्भ मे डिंगल का नाम 'डगळ' क्यो पड़ा? फिर राजस्थानी मे 'डगळ' मिट्टी के ढ़ेले अथवा अनगढ़ पत्थर को कहते है। अतएव यदि डिंगल अपरिमार्जित भापा थी तो किस परिमार्जित भापा की तुलना मे उसे यह संज्ञा दी गई।' ब्रजभाषा तो यह हो नही सकती, क्योंकि चौदहवीं शताब्दि मे

वह उतनी प्रौढ़ न थी। इस सम्बन्ध मे एक और भी बात विचारणीय है। वस्तुत कोई भी चारण अपने द्वारा प्रयुक्त साहित्यिक-भाषा को 'डगळ' नहीं कह सकता, क्योंकि यह उसकी अनुदारता होगी।

[३] श्रीयुत गजराज ओझा के अनुसार 'ड' अक्षर डिंगल मे बहुत प्रयुक्त होता है। यहाँ तक कि वह डिंगल की एक विशेषता कहा जा सकता है। 'ड' अक्षर की इस प्रधानता को दृष्टि मे रखकर ही पिंगल के साम्य पर इस भाषा का नाम डिंगल रक्खा गया। जैसे बिहारी लकार-प्रधान भाषा है उसी प्रकार डिंगल डकार-प्रधान भाषा है।

आलोचना

यह मत भी निराधार है। डिंगल की दो चार कविताओं मे 'ड' वर्ण की प्रचुरता देखकर उसे इसकी विशेषता बतलाना और उसी के आधार पर इसका डिंगल नाम पड़ने की क्लिष्ट-कल्पना करना हेत्वाभास के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इस सम्बन्ध मे इस बात को भी न भूलना चाहिए कि अभी तक अक्षर की विशेषता पर भाषा का नाम कभी नहीं पड़ा।

[४] श्री पुरुषोत्तमदास स्वामी के अनुसार डिंगल शब्द डिम्+गल से बना है। डिम का अर्थ है डमरू और गल का अर्थ है गला। डमरू की ध्वनि वीरों के लिए उत्साहवर्द्धक होती है और यह वीररस के देवता महादेव का बाजा है। अत. डिमगल या डिंगल का लाक्षणिक अर्थ हुआ डमरू की ध्वनि की भाँति उत्साहवद्‌र्धक गले से निकली हुई कविता। डिंगल भाषा मे ऐसी कविता की प्रधानता है, अतएव वह डिंगल नाम से प्रसिद्ध है।

आलोचना

वास्तव मे यह मत भी निराधार ही है, क्योंकि न तो महादेव वीररस के देवता है और न डमरू की ध्वनि उत्साह-वर्द्धक मानी गई है।

[५] राजस्थान मे प्रसिद्धमत यह भी है कि डिंगल का मूल डिभ् और गल शब्द है। डिभ् का अर्थ है, वालक और गल का अर्थ है, गला। इस प्रकार डिभ्गल का अर्थ हुआ वालक की भाषा। जैसे प्राकृत, बाल-भाषा कहलाती थी उसी प्रकार राजस्थान की यह काव्य-भाषा भी डिभ्गल या डिंगल कहलाई।

आलोचना

यह मत भी निराधार ही है क्योंकि कल्पना के अतिरिक्त उसमे किसी प्रकार का ऐतिहासिक तथ्य नही है।

[६] पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के अनुसार डिंगल शब्द पिंगल के साम्य पर अवश्य बना है किंतु इस शब्द का कोई विशेप अर्थ नही है। 'नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका' भाग ३ अंक १, पृष्ट ६८ मे आप लिखते हैः—

"मेरे मत मे डिंगल केवल अनुकरण शब्द है, काफिया न मिलेगा तो वोझों तो मरेगा' की कहावत से अनुसार पिंगल से भेद दिखलाने के लिए बना लिया गया है। जैसे वासवदत्ता के विषय में [अधिकृत्य] बनायी गई कहानी वासवदत्ता कहलाती है वैसे ही लक्षण-शास्त्र और लक्ष-रचना के अभेदोपचार से हिन्दी-कविता [व्रजभाषा] पिंगल कहलायी। उससे भेद करने के लिए श्रुतिकटु टवर्ग वहुल भाषा की कविता के लिए डिंगल एक यदृच्छा शब्द है, डित्थ [व्यक्तिवाचक नाम

जिसका प्रयोग न्याय आदि शास्त्रों में पाया जाता है] आदि की तरह इसका कोई अर्थ नहीं है। निश्चित अर्थ के वाचक किसी शब्द से, उससे भेद दिखलाने के लिए, उसी की छाया पर दूसरा अनर्थक शब्द बनने और उसके दूसरे अर्थ के वाचक हो जाने के कई उदाहरण मिलते हैं।"

श्री गुलेरी जी ने आगे इस प्रकार के कतिपय उदाहरण भी दिए हैं, जैसे कर्म [प्रधानकर्म] की छाया पर कल्म [अप्रधान कर्म] और कवर [कुमार, जिनका पिता जीवित हो] की छाया पर भँवर [जिसका दादा जीवित हो]।

[७] श्री मोतीलाल जी मेनारिया के अनुसार आरम्भ में डिंगल चारण तथा भाटों की भाषा थी। अपने आश्रयदाताओं के यश का ये लोग बहुत बढ़ा चढ़ाकर वर्णन करते थे। धन के लोभ से कायर को शूर, कुरूप को सुन्दर, मूर्ख को पंडित तथा कृपण को दानी कह देना इनके लिए साधारण बात थी। इनकी कविता अतिशयोक्ति पूर्ण हुआ करती थी। वे डींग हाँका करते थे। अतएव जो भाषा डींग हाँकने के काम में लाई जाती थी, उसका श्रोताओं ने डींगल (डींग से युक्त) नाम रख दिया। राजस्थान के वृद्ध चारण तथा भाट आज भी इसे डिंगल न कहकर 'डींगल' ही बोलते हैं।

श्री मेनारिया जी के तर्क में एक बड़ी त्रुटि यह है कि न तो उन्होंने 'डींग' शब्द की व्युत्पत्ति ही दी है और न यही स्पष्ट किया है कि राजस्थान में कब से इस शब्द का प्रयोग अपने इस आधुनिक अर्थ में होता है।

ऊपर डिंगल के सम्बन्ध में जो कुछ कहा गया है। उसमें एक ही तथ्य स्पष्ट हो पाया है और वह यह है कि पिंगल के सादृश्य पर ही 'डिंगल' शब्द की रचना हुई है। इसका प्रयोग

साहित्य के क्षेत्र मे चारण तथा भाँट ही किया करते थे और इसमें वीर भावनाओ का ही चित्रण होता था। शब्दो के साधारण रूपो की अपेक्षा द्वित्त वर्ण वाले रूपो का ही डिंगल के कविगण विशेष प्रयोग करते थे। आरम्भ में साधारण राजस्थानी और डिंगल मे कोई अंतर न था पर बाद मे साहित्य मे व्यवहृत होने के कारण डिंगल मे एक प्रकार की स्थिरता आ गई। कवि लोग जान बूझ कर द्वित्त वर्ण वाले शब्दो का प्रयोग करने लगे और साधारण शब्दो का भी तोड़ना मोरोड़ना प्रारंभ कर दिया। बोलचाल की राजस्थानी में ऐसे शब्दों का प्रयोग नहीं होता था। यही कारण था कि डिंगल जनता के लिए धीरे धीरे कम बोधगम्य होती गई और अंत मे उसका समझना भी कठिन हो गया।

डिंगल-रचनाओ में गीत महत्त्वपूर्ण हैं। इन गीतो मे राजाओ एवं अन्य वीरो के वीर कार्यों तथा गुणो का उल्लेख हुआ है। इनसे साधारण छोटी-मोटी और महत्वपूर्ण सभी प्रकार की ऐतिहासिक बातो एवं घटनाओ पर बड़ा प्रकाश पड़ सकता है। ये गीत हजारो की संख्या मे उपलब्ध हैं। आवश्यकता है इनको उचित रूप से संग्रहीत, सम्पादित और प्रकाशित करने की। राजाओ के दरबारो मे रहने वाले चारण भाटो ने अपने आश्रयदाताओ की प्रशंसा में या उनके नाम पर बहुत से ग्रन्थो की इस काल मे रचना की। राजा लोग भी कभी-कभी काव्य-रचना करते थे। डिंगल की रचनाओं मे सब से अधिक महत्वपूर्ण बीकानेर के सुप्रसिद्ध राठौर महाराज पृथ्वीराज की 'वेलि क्रिसन रुकमिणी री' और मिश्रण चारण सूर्य्यमल्ल रचित 'वंश-भास्कर' है। 'वेलि' साहित्यिक डिंगल का सर्वोत्तम उदाहरण है। इस काव्य की राजस्थानी मे कई

टीकायें हुई। यही नहीं, राजस्थानी में यह एक ऐसा ग्रन्थ है जिसकी संस्कृत मे भी टीका लिखी गई है। 'वंश-भास्कर' कृत्रिम डिंगल का उत्तम उदाहरण है। अन्य डिंगल रचनाओं में 'वचनिका राठौर रतनसिंहजीरी' विशेष प्रसिद्ध है।

साधारण राजस्थानी

साधारण राजस्थानी के अतर्गत बोलचाल के राजस्थानी की रचनाओं, जैन लेखकों की रचनाओं तथा ब्रजमिश्रित पिंगल की रचनाओं का समावेश है।

प्राचीन और मध्ययुग की राजस्थानी-भाषा की अधिकांश रचनायें जैन लेखकों की कृतियाँ हैं। राजस्थानी-साहित्य-निर्माण का श्रेय अधिकांश मे इन्हीं लेखकों को देना चाहिए। यद्यपि इनकी भाषा पर अपभ्रंश का पूर्ण प्रभाव है, फिर भी तत्कालीन भाषा के अध्ययन के लिए इनकी कृतियों मे प्रचुर मात्रा मे सामग्री उपलब्ध है। पिंगल रचनाओं और लौकिक कविता की भाषा, जनता मे प्रचलित होने के कारण धीरे-धीरे आधुनिक होती गई है; डिंगल-कविता की भाषा, आगे चलकर स्थिर हो गई। परन्तु जैन रचनायें इन दोषों से बहुत कुछ मुक्त हैं। इसमें भाषा का तत्कालीन रूप बहुत कुछ सुरक्षित है। यह साहित्य बहुत विस्तृत है, किंतु अभी तक अप्रकाशित है।

डिंगल का संक्षिप्त व्याकरण

[१] उच्चारण—

(क) डिंगल की वर्णमाला में ङ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ अक्षर नहीं हैं और एक ही अक्षर 'व' का उच्चारण दो तरह से होता है। उच्चारण का अंतर दिखलाने के लिए 'व' और 'व़' कर दिया

जाता है। अर्थात् एक 'व' तो वैसा ही रहने दिया जाता है और दूसरे के नीचे बिंदी लगा दी जाती है। ऐसा न करने से अनेक स्थलों पर अर्थ का अनर्थ हो जाने की सम्भावना रहती है; क्योंकि दोनो के अर्थ मे बहुधा भिन्नता होती है। ऐसे कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं जिनसे स्पष्ट हो जायगा कि 'व के नीचे बिंदी न लगाने से शब्द का क्या अर्थ होता है, और बिंदी लगाने देने से, उच्चारण के अनुसार, उसका अर्थ किस प्रकार बदल जाता है :—

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
वचियो	वच गया	व़चियो	छोटा सा वच्चा
वास	गंध	व़ास	निवास स्थान
वात	हवा	व़ात	कहानी

(ख) डिंगल में 'ल' का उच्चारण कहीं हिन्दी 'ल' की भाँति और कहीं वैदिक 'ळ' की भाँति मूर्द्धन्य होता है। आधुनिक राजस्थानी तथा मराठी मे इस 'ळ' का उच्चारण अभी भी होता है। आजकल बहुत से विद्वानो मे 'ळ' के स्थान पर 'ल' लिखने की प्रवृत्ति देखी जाती है, पर यह ठीक नहीं है। यह 'ळ' जब किसी शब्द के बीच मे आता है तब उसके स्थान पर ल' लिख देने से उसके अर्थ मे कोई विशेष अंतर नहीं पड़ता। पर बहुत से ळकारान्त शब्द ऐसे है जिनको लकारान्त कर देने से उनका अर्थ बदल जाता है। नीचे कतिपय उदाहरण दिये जाते हैं:—

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
चंचळ	घोड़ा	चंचल	चपल
पोळ	दरवाजा	पोल	खोखलापन
कुळ	वंश	कुल	सब, तमाम

काळ	मृत्यु	काल	कल, दूसरा दिन
गोळ	गुड़	गोल	वृत्ताकार

(ग) डिंगल की वर्णमाला में तालव्य 'श' और मूर्द्धन्य 'ष' नहीं है। 'ष' का प्रयोग 'ख' के रूप में होता है। लिखने में तालव्य 'श' के स्थान पर भी दन्त्य 'स' लिखा जाता है; पर बोलते समय जहाँ जिस शकार अथवा सकार की आवश्यकता होती है, वहाँ वही बोला जाता है, जैसे.—

देखे अकबर दूर, घेरौ दै दुसमण घणां ।
सांगाहर रण सूर, पैर न खिसै प्रताप सी ॥

यह दोहा लिखने में उपरोक्त ढंग से लिखा जायगा पर पढ़ते समय इसमें आए हुए सकारों का उच्चारण निम्नलिखित ढंग से होगा.—

देखे अकबर दूर, घेरौ दै दुशमण घाणां ।
सांगाहर रणशूर, पैर न खिसै प्रताप सी ॥

(घ) डिंगल में बहुत से शब्द ऐसे हैं जिनका उच्चारण करते समय किसी अक्षर विशेष पर बल देना पड़ता है। बल देकर न पढ़ने से उस शब्द का अर्थ कुछ और होता है और बल देकर पढ़ने से कुछ और हो जाता है। उदाहरण के लिए 'राड़' शब्द को लीजिए। इनमें 'रा' पर बल देकर न पढ़ने से इसका अर्थ 'लड़ाई' हो जाता है और बल देकर पढ़ने से 'पैतृक प्रभाव' हो जाता है। इस तरह के थोड़े से और शब्द यहाँ दिये जाते हैं

मोड़	(१) घुमाव	(२) आम्र मंजरी; सेहरा
नाथ	(१) स्वामी	(२) नथ-बंधन
नाड़ो	(१) इजारबंद	(२) छोटा जलाशय

नार (१) स्त्री (२) सिंह

[२] कारक, विभक्ति:—

डिंगल मे विभक्तियो की दशा बड़ी विचित्र और गड़बड़ है। कुछ विभक्तियाँ तो ऐसी है जो दो-दो, तीन-तीन कारको मे लगती है और कुछ एक ही कारक मे। इसके अतिरिक्त कुछ विभक्तियाँ ऐसी भी है जो डिंगल के प्राचीन-ग्रन्थो मे देखने में आती है, पर अर्वाचीन-काल मे उनका स्थान दूसरी विभक्तियो ने ले लिया है। डिंगल की मुख्य विभक्तियाँ नीचे दी जाती है:—

कारक	विभक्ति	उदाहरण
कर्त्ता	इ, उ	ढोलइ, करहउ
कर्म	उ	सदेसड़उ, कळेजउ
करण	इ, इइ, ए (वहु०)	मुखि, हाथे
संप्रदान	ए, नूँ, आँ	घरे, राजानूँ, अहाँ,
अपादान	हूँ, हूँत, हुँता हुँतो, हुँती,	गला हुँता, खुसी हूँत
सम्वन्ध	ह, हाँ (वहुवचन)	हलाह, भवाँह, करहाँ
अधिकरण	इ, ए (वहुवचन)	गिरि, मगि, निसाणे

टिप्पणी

'उ' विभक्ति कर्त्ता तथा कर्म दोनो कारको के पुलिग शब्द के एक वचन मे लगतो है। डिंगल मे स्त्रीलिंग-शब्द, कर्त्ता तथा कर्म कारको मे प्राय. इकारान्त तथा आकारान्त होते है। कर्त्ता कारक पुलिग के बहुवचन मे वहुधा 'आ' और कर्म के वहुवचन मे वहुधा दोनो लिंगो मे 'आँ' या 'याँ' होता है। ऊपर की विभक्तियों के अतिरिक्त डिंगल मे निम्नलिखित परसगों का भी प्रयोग होता है:—

कर्म	,,	जेहु
करण	जेणइं, जिणइ, जेणिइं, जिणि	जेहि
सम्प्रदान	जा, जिहि, जउ जू	जेणि, जिणी, जे, जिऑ, जियं
अपादान	जास, जस, जेह, जिह, जे	
सम्बन्ध	,, ,, ,, ,, ,,	
अधिकरण	जहिं, जिहिं, जेणइ, जिणई,	जेणि, जिणि

सो

कारक	एक वचन	बहुवचन
कर्त्ता	सोइ, सोय, सु, सा	ते
कर्म	,, ,, ,, ,,	तेह
करण	तिणइं	तेहिं, तेइं
संप्रदान	ता, तहँ, तउ, तू	तेह, तिह, तेहँ, ते, तिऑ, तियँ
अपादान	तासु, तस, तसु, तह, तेह, ते	,,
संबन्ध	,, ,, ,, ,, ,,	,,
अधिकरण	तहिं, ताहिं, तेणइ, तिणई,	तेणि, तिणि

व्युत्पत्ति—भोजपुरी, मैथिली, मगही, बंगला तथा उड़िया इसका रूप "जे" मिलता है। असमिया में यह "जि" [उच्चारण जि] हो जाता है। इन पूरबी बोलियों के इस सर्वनाम की व्युत्पत्ति निम्नलिखित है :—

यक / मा० प्रा० यके / जए / जइ / जे।

टर्नर ने अपनी 'नेपाली डिक्शनरी' [पृ० ६२२] में 'सो' की व्युत्पत्ति सं० सो [स-उ] से निकाली है। जो = स + एव। इस प्रकार 'जो' कि व्युत्पत्ति होगी 'य—एव'। "सोइ" सर्वनाम

का प्रयोग तुलसी तथा सूर ने किया है। वस्तुतः यह शौरसेनी का रूप है।

[घ] प्रश्नवाचक तथा अनिश्चयवाचक सर्वनाम

कौन, कोई

कारक	एक वचन	बहुवचन
कर्त्ता	कावण, कउॅण, कुण, कुण	केइ, केवि
कर्म	को, कोई, कोइ, कोवि, कोय, कॉइ	केह
करण	कउणइॅ, कुणइॅ, किणइॅ, कणि	कुणि
सम्प्रदान	क, किहॅ	केहि, केइ
अपादान	कह, किण, केह, कहि	केहॅ, केह, कियॅ
सम्बन्ध	कुणह	,, ,,
अधिकरण	कुणइॅ, कहि, काहइॅ, किण	,, ,,

व्युत्पत्ति—इस सर्वनाम का आधार "कः पुन." है। उत्पत्ति का क्रम निम्नलिखित है —

क. पुनः> कउण> कउण> कउॅण। इसो आधार से अन्य रूपों को उत्पति हुई है।

[ङ०] सार्वनामिक विशेषण —

एतउ, एतलउ = इतना। जेतउ, जेतलउ = जितना। तेतउ, तेतलउ = तितना। केतउ, केतलउ = कितना। एवड़उ, इसउ, अइसउ, एहड़उ = ऐसा। जेवड़उ, जिसउ जेहड़उ = जैसा। तेवड़उ तिसउ, तेहडउ = तैसा। केवड़उ, किसउ, केहड़उ = कैसा। अपणउ = अपना। सो = समान। सगळउ = सब। किउॅ कुछ। कै = कई। कॉइ = क्या, कुछ।

व्युत्पत्ति—इन शब्दों की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में डा० चटर्जी ने अपनी पुस्तक बंगलाभाषा की उत्पत्ति तथा विकास [ओरिजिन एण्ड डेवलपमेण्ट आफ बैंगाली लैंग्वेज पृष्ठ ८०१] में पूर्णप्रकाश डाला है—वस्तुत. इन शब्दों के आधार पालि के

"एत्ताक", "कित्ताक" आदि शब्द हैं। इन्हीं से प्राकृत के 'एत्तिअ', "केत्तिअ", "जेत्तिअ" शब्द निकले हैं।

[क्रिया] डिंगल में क्रिया के रूप कहीं अपभ्रंश, कहीं पश्चिमी-हिन्दी और कहीं गुजराती के रूप से मिलते हैं। नीचे ये रूप दिए जाते हैं :—

वर्तमान काल

[क] हिन्दी में वर्तमान-कालिक-क्रिया के साथ जिस अर्थ में 'है' का प्रयोग होता है उसी अर्थ में डिंगल में बहुधा 'छइ' काम आता है। इसके रूप तीनों पुरुषों में इस प्रकार होते हैं:—

पुरुष	एकवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	छूं	छां
मध्यमपुरुष	अछइ,छइ	छउ
अन्यपुरुष	अछइ, छइ	छइ, अछइ

[ख] सामान्य भूत

डिंगल में मूलक्रिया के पीछे 'हउ'; 'यउ' तथा 'इउ' लगा कर सामान्य भूतकाल के रूप बनाये जाते हैं, यथा-कीहउ [कहा] उडिउ (उड़ा) आदि।

कहीं कहीं 'इअउ' तथा 'इउ' प्रत्यय का प्रयोग भी मिलता है; जैसे—पूजियउ, (पूजा), दठिउ (देखा) आदि।

[ग] भविष्यत्काल—

भविष्यत्काल के रूप डिंगल में दो तरह से बनाये जाते हैं—(१) मूलक्रिया के अंत में 'सी' 'स्यूं' तथा 'स्यॉ' लगाकर (२) 'ला' 'ली' तथा 'लो' लगाकर, जैसे—रहसी (रहेगा), रहस्यूं (रहूँगा), मिलस्यॉ (मिलेंगे), बूडेला (डूब जायेगा), बूडेली (डूब जायेगी) इत्यादि।

पूर्वकालिक क्रिया—

डिंगल मे क्रिया के अंत मे 'एवि', 'एविय', 'इ','ई', 'अ', 'य', 'नइ', 'करि' आदि प्रत्यय लगाकर 'पूर्वकालिक क्रिया के रूप बनाये जाते हैं, जैसे—पणमेवि, पणमेविय, लइ, पालिय, वहिय. करनिइ, दौड़करि आदि।

अव्यय :—

पुणि=फिर। तई=तब। जई=जब, यदि। वळे, वळी=फिर। किरि=मानो। अने, ने=और। किम, कैम=कैसे। हॉ=यहॉ। परि=ज्यों, समान। जाणे, जाणि=मानों। तिणि=इसलिए। केड़इ=पोछे। वॉसे=पीछे। कारणि=लिए। तदि=तब। इ=ही। साम्ह=सामने। तिमि=तैसे। नहु=नही। म=मत। कुत्र=कहॉ। किसू=कैसे। केथि=कहॉ। एथि=यहॉ। पिण=भी। तोइ=तोभी। तळे=नीचे।

शब्द-समूह

आधुनिक आर्य-भाषाओ के शब्द-समूह के अध्ययन के लिए उन्हे चार भागों में प्रायः विभक्त किया जाता है। ये विभाग हैं—तत्सम, अर्द्ध-तत्सम, तद्भव और देशी। इनके अतिरिक्त अन्य भाषा से उधार लिए हुए शब्दो का भी अध्ययन आवश्यक होता है। तत्सम में 'तन्' शब्द से संस्कृत से तात्पर्य है। इसप्रकार जो शब्द आधुनिक आर्य-भाषाओं मे संस्कृत से सीधे आते हैं उन्हे तत्सम कहते हैं। ऐसे शब्दो का अनुपात भी आधुनिक भाषाओं मे भिन्न-भिन्न है। आधुनिक बॅगला मे अन्य भारतीय भाषाओ की अपेक्षा ऐसे शब्दो का प्राचुर्य्य है। हिन्दी, राजस्थानी आदि उत्तरी-भारत को भाषाओ एवं बोलियों मे अपेक्षा कृत तत्सम शब्द कम है। फिर भी डिंगल मे अनेक

तत्सम शब्दों का प्रयोग किया गया है। जैसे, मंगल, आरम्भ, चित्र, समुद्र, कवि, सन्धि, ज्ञान, राग, सन्ध्या, प्राची, अम्बर, तथा अरुण आदि।

अर्द्ध-तत्सम शब्दों के अन्तर्गत उन शब्दों की गणना होती है जिनमें किंचित ध्वन्यात्मक-परिवर्तन हो जाता है। जैसे 'कृष्ण' से 'क्रिशन' राजस्थानी में यह 'क्रिसन' हो जाता है। इसप्रकार के बहुत अर्द्ध-तत्सम शब्द भी राजस्थानी में हैं। जैसे—'परमेश्वर', 'कीर्ति', 'सरस्वती' तथा 'शैशव' के लिए 'परमेसर', 'कीरति', 'सरसती' तथा 'सैसव' आदि। तद्भव शब्द वे है जो पालि, प्राकृत, अपभ्रंश से होते हुए आधुनिक भाषाओं में आए हैं। डिंगल के कतिपय ऐसे शब्द नीचे दिये जाते है —

धन्न (प्रा० धण्ण), सिसहर (सं० शशधर), खिण (अप० खण), संदेसड़ा (प्रा० संदेशडउ), नेड़ो (प्रा० णिअड़), निद (प्रा० णिसद), सल्ल (सं० शल्य), अपछर (सं० अप्सरा), ओलंबा (सं० उपालम्भ), मुसाण (अप० मसाण), वयण (अप० वअण), मोरत (सं० मुहूर्त्त), केवाण (स० कृपाण), सीह (सं० सिंह), मयमंत (मदमत्त), सादूलो (सं० शार्दूल), समाथ (समर्थ), रुहर (स० रुधिर), मछर (मत्सर), पारख (सं० परीक्षा), कोयन्नल (सं० कोपानल), पिसण (पिशुन), अखोण (स० अक्षौहिणी), कुण (अप० कउण), किमाड़ (अप० किवाॅड़), काज (अप० कज्ज)।

देशीशब्दों के अन्तर्गत कोषकारों ने उन शब्दों को रक्खा है जिनकी व्युत्पत्ति नहीं दी जा सकती, यद्यपि भाषा-शास्त्र अब इतनी उन्नति कर गया है कि किसी शब्द की व्युत्पत्ति देना कठिन नहीं है। प्रत्येक प्रान्त में ऐसे प्रान्तीय-शब्द

उपलब्ध हैं, जिनकी व्युत्पत्ति असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। नीचे डिंगल में प्रयुक्त कतिपय ऐसे प्रान्तीय-शब्द दिये जाते हैं:—

भाठो=पत्थर। गंडक=कुत्ता। नाड़ो=छोटा जलाशय। ढोलो=पति। डींभू=वर। करद=तलवार। फिट=धिक्कार। रूक=खंग। डाको=चोर। दाटक=हृष्ट-पुष्ट। वेह=मंगल कलश। पाधर=समथल। वुवो=चला। थह=गुफा। ढिगलो=ढेर। माटू=मनुष्य। डाच=मुख। छरा=पञ्जा। थावर=शनिवार। पलीत=मैला, नीच। खाँखळ=आँधी। काँकड़=जंगल। काँकळ=युद्ध। नाणो=रुपया। चाड़=बुराई। वैंडा=पागल। लंकाल=सिंह। सावठो=मजबूत।

डिंगल में अरबी, फारसी, तुर्की आदि के शब्द भी लिए गये हैं किन्तु इनमें कहीं-कहीं अत्यधिक ध्वन्यात्मक परिवर्तन हुआ है, किन्तु कहीं-कहीं साधारण भी। नीचे ऐसे कतिपय शब्दों की सूची दी जाती है:—

ढोल (अ० दुहुल), कमाण (फा० कमान), विड़ाणा (फा० वेगाना), मखमल (अ०), नफो (अ० नफा), लानत (फा०), मुतलब (अ० मतलब), मुसकल (अ० मुश्किल), आद (फा० याद), गरज (फा० गरज), नुक़साण (अ० नुकसान), आखर (फा० आखिर), हुन्नर (फा० हुनर), गुन्हो (फा० गुनाह), जरदो (फा० जर्द), आसक (अ० आशिक), मोजात (अ० मुहताज), पतसाह (फा० पादशाह), काफर (अ० काफ़िर), कोम (अ० कौम) हाजर (अ० हाज़िर), कावू (तु०) वगतर (फा० बख्तर) कागल (अ० कागज़), मुलक (अ० मुल्क), अरज्ज (अ० अर्ज़) महल (अ०), इनाम (अ०), कुसामद (फा० खुशामद), फसाद (अ०)

डिंगल का साहित्य

डिंगल मे लिखित-साहित्य प्रचुर-मात्रा मे उपलब्ध है। इसके रचयिता चारण हैं, अतएव इसे चारण-काव्य भी कह सकते हैं। इसमें वीर, भक्ति, शृंगार, नीति आदि सभी प्रकार के काव्य-ग्रंथ प्राप्य हैं। पौराणिक-कथाओं के आधार पर भी कई छोटे प्रबन्ध-काव्यो की रचना हुई है, जैसे सॉयाभूला कृत "नागदमण", लौंगीदान कृत "ओखाहरण" [ऊपाहरण] तथा वारहठ मुरारिदास कृत "विजैव्याव" जिसमे रुक्मणी-हरण का सरस वर्णन है। कई चारण-कवियों ने तो ऐतिहासिक इतिवृत्तो, या शूरवीर क्षत्रिय राजाओं तथा लोकवीरों की जीवन-गाथाओं पर भी प्रबन्ध-काव्यों की रचना की है, जैसे सूजा वीठू कृत "राव जैत सी रो छंद" कविराजा करनी दान कृत "सूरज प्रकाश", जिसमे जोधपुर के महाराजा अभयसिंह जी की युद्धवीरता का वर्णन है; वीर-भाण रतनू कृत "राज रूपक" महाकवि सूर्यमल कृत "वंश-भास्कर" सोन्याणा निवासी ठाकुर केसरी सिंह वारहठ कृत "प्रताप चरित", "दुर्गादास (राठौड़) चरित्र", "राजसिंह चरित्र" तथा पावूदान आशिया कृत "पावू चरित्र"। इन काव्य-ग्रन्थों मे वीररस की अत्यन्त मार्मिक अभिव्यंजना हुई है।

डिंगल के कवियों मे महाराज "प्रिथीराज" [पृथ्वीराज] आढ़ा दुरसा जी, बाँकी दास तथा कविराजा सूर्यमल की बहुत प्रसिद्धि है। अतएव इनके सम्बन्ध मे नीचे संक्षिप्त विवरण दिया जाता है।

पृथ्वीराज

आप का जन्म वि० सं० १६०६ मे हुआ था। सम्राट अकबर के प्रसिद्ध सेनापति महाराजा रायसिंह इनके बड़े

भाई थे। आप बड़े ही वीर स्वदेशाभिमानी एवं स्पष्टभाषी पुरुष थे। सम्राट अकबर के आप प्रीति-पात्र थे। और इसी कारण आप दिल्ली और आगरे में ही प्रायः रहा करते थे। आपकी सर्वोत्कृष्ट कृति 'वेलिक्रिसन रुकमणी री' है किन्तु आप ने फुटकर कवितायें भी लिखी है। नीचे इनकी वीररस की कविता के उदाहरण दिये जाते हैं।

धर बाँकी दिन पाधरा, मरद न मूकै माण।
घणाँ नरिंदाँ घेरियो, रहे गिरंदाँ राण।

शब्दार्थ—धर=धरा। पाधरा—अनुकूल। माण=मान घणां=अनेक। गिरेदाँ=पहाड़ो मे। वाँकी=विकट।

अर्थ—जिसकी भूमि अत्यन्त विकट है और दिन अनुकूल है; जो वीर अपने को नही छोड़ता, वह महाराणा (प्रताप) अनेक राजाओं से घिरा हुआ पहाड़ों मे निवास करता है।

भाई एहड़ा पूत जण, जेहड़ा राण प्रताप।
अकबर सूतो ओझकै, जाण सिराणै साँप ॥२॥

शब्दार्थ—एहड़ा=ऐसे। जेहड़ा=जैसा। ओझकै=चौंक पड़ता है। जण=जन्म दे।

अर्थ—हे माता! ऐसे पुत्रों को जन्म दे जैसा राणाप्रताप है, जिसको अकबर सिरहाने का साँप समझकर सोता हुआ चौंक पड़ता है।

अकबर समद अथाह, सूरापण भरियो सजल।
मेवाड़ो तिण माँह, पोयण फूल प्रताप-सी ॥ ॥

शब्दार्थ—समद=समुद्र। सूरापण=शौर्य, वीरता। तिण माँह=उसमे। पोयण=कमल।

अर्थ—अकबर अथाह समुद्र है जिसमे वीरता रूपी जल भरा हुआ है। परन्तु मेवाड़ का राणाप्रताप उसमे कमल के

फूल के समान है। अर्थात् जिस तरह कमल पर जल का कोई प्रभाव नही पड़ता उसी तरह प्रताप पर भी अकबर की वीरता का कोई प्रभाव नहीं पड़ा है।

दुरसा जी

आप का जन्म वि० सं० १५६२ में हुआ था। आप आढा गोत्र के चारणथे। युवावस्था मे अकबर से आपकी भेंट हुई। वह आपकी प्रतिभा और वीरता से बहुत प्रसन्न हुआ। तबसे आप बादशाह के साथ ही रहने लगे। अकबर ने कई बार इनसे प्रसन्न होकर इन्हे पुरस्कार भी दिया था। राजस्थान मे इनकी कविता की बड़ी ख्याति है। कोई ऐसा पुरुष न होगा जिन्हे इनके दो चार पद याद न हो। इनकी कविता के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते है —

अकबर गरब न आँण, हींदू सह चाकर हुआ।
दीठो कोई दीवाण, करतो लटका कठहड़ै ॥१॥

शब्दार्थ—गरब न आँण=गर्व मत कर। सह=सब। दीवाण=महाराणा। दीठो=देखा है।

अर्थ—हे अकबर! सब हिन्दू तेरे चाकर हो गये, इस बात का अभिमान मतकर। क्या कभी किसी ने महाराणा (प्रताप) को शाही कठघरे के पास झुक-झुककर सलाम करते देखा है?

अकबर कीना आद, हींदू नृप हाजर हुवा।
मेदपाट मरजाद, पग लागो न प्रताप सी ॥२॥

शब्दार्थ—कीना आद=याद किया। मेदपाट=मेवाड़

अर्थ—अकबर ने याद किया तो सब हिंदू राजा हाजिर हो

गये। लेकिन मेवाड़ की मर्यादा को रखने वाला राणाप्रताप उसके पाँवो में नही पड़ा।

कदे न नामै कंध, अकबर ढिग आवे न ओ।
सूरज बंस संबंध, पालै राण प्रताप सो ॥१॥

शब्दार्थ=कदे=कभी। ओ=यह।

अर्थ.—यह राणा न तो कभी अकबर के पास आता है और न मस्तक ही झुकाता है। प्रतापसिंह सूर्य्यवंश के संबन्ध का पालन करता है। (सूर्य किसी के भी सामने नही झुकता। प्रताप सूर्य्य का वंशज है, इसलिए अपनी वंश-मर्यादा को रखने के लिए वह भी किसी के सामने नतमस्तक नहीं होता।)

बाँकीदास

कविराजा बाँकीदास का जन्म मारवाड़ राज्य मे वि० सं० १८२८ मे हुआ था। आप आशिया शाखा के चारण थे। सं० १८६० मे जोधपुर के महाराजा मानसिंह से आपकी भेट हुई। महाराजा ने इनकी प्रतिभा से प्रसन्न होकर इन्हे अपने राज-कवियो मे स्थान दिया। बाँकीदास संस्कृत, डिंगल, फारसी तथा ब्रजभाषा के प्रकांड पंडित थे और आशुकवि होने के साथ इतिहास के भी अच्छे ज्ञाता थे। आपने अनेक ग्रन्थों की रचना की। आपके स्फुट-काव्य से कतिपय दोहे नीचे उद्धृत किये जाते है.—

सूर न पूछै टीपणो, सुकन न देखै सूर।
मरणां नूँ मंगल गिणै, समर चढै मुख नूर ॥१॥

शब्दार्थ—टीपणो=पंचांग। सुकन=शकुन। नुँ=को। नूर=तेज, कीर्ति।

अर्थ—शूरवीर (ज्योतिषी के पास जाकर) युद्ध के लिक मुहूर्त नहीं पूंछता, शूर शकुन नहीं देखता। वह मरने मे ही मंगल समझता है और युद्ध मे उसके मुंह की क्रन्ति चमक उठती है।

सुरातन सुरां चढ़ै, सत सतियाँ सम दोय।
आड़ी धारां ऊतरै, गणै अनळ नूं तोय ॥२॥

शब्दार्थ—सुरातन=शूरत्व। सत=सतीत्व, पति के साथ चलने का आवेश। आड़ी धारां ऊतरै=तलवार से काटते हैं।

अर्थ—शूरवीरों में वीरत्व चढ़ता है और सतियों मे सतीत्व। ये दोनों समान हैं। (शूरवीर) तलवार से कटते हैं और (सतियाँ) अग्नि को जल समझती हैं।

जाया रजपूताणियाँ, वीरत दीधी वेह।
प्रांण दियै पांणी पुणग, जावा दियै न जेह ॥३॥

शब्दार्थ—जाया=जन्म दिया। वीरत=वीरता। दीधी=दी, प्रदान की। वेह=विधाता ने। पांणी=तेज को। पुणग=तनिक भी।

अर्थ—(वीरों को) राजपूतनियों ने जन्म दिया और विधाता ने वीरता प्रदान की, जो प्राणों को देखकर भी अपनी प्रतिष्ठा को किंचित मात्र भी नहीं जाने देते।

कविराजा सूर्यमल

आपका जन्म चारणों की मिश्रण शाखा में वि० सं० १८७२ मे बूंदी मे हुआ था। आप सहृदय कवि तथा उच्चकोटि के विद्वान् थे तथा संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश-पिंगल, डिंगल

आदि कई भाषायें जानते थे। आपका देहान्त सं० १६२० मे बूंदी मे हुआ था। आपके ग्रन्थो में 'वंश-भास्कर' की सब से अधिक ख्याति है। यह बूंदी राज्य का एक प्रकार से इतिहास है, किन्तु प्रसंग-वश इसमें राजस्थान को अन्य रियासतो का भी थोड़ा-बहुत इतिहास आ गया है। नीचे आपके कतिपय पद दिये जाते है :—

दमँगळ बिण अपचौ दियण, बीर धणी रो धान।
जीवण धण वाल्हा जिकां, छोडौ जहर समान ॥१॥

शब्दार्थ—दमँगळ =युद्ध। बिण=बिना। धान=अन्न। धण=स्त्री। वाल्हा=प्रिय। जिकां=जिनको।

अर्थ—(हे मित्रो!) वीर स्वामी का अन्न बिना युद्ध के नही हजम होता। अतः जिनको जीवन और स्त्री प्रिय हो, वे उस अन्न को जहर समझ कर छोड़ दे।

नहँ डाकी अरि खावणौ, आयां केवळ वार।
बधाबधी निज खावणौ, सो डाकी सरदार ॥२॥

शब्दार्थ - डाकी=जबरदस्त। वार=अवसर। बधाबधी =बदाबदी, होड़ लगाकर।

अर्थ—जबरदस्त सेनापति वह नहीं है जो केवल अवसर आने पर शत्रु-संहार करता है, लेकिन प्रतापी नेता वह है जिसके लिए अपने ही लोग होड़ लगाकर प्राणोत्सर्ग करते हैं।

सबणी सबरी हूँ सखी, दो उर उलटी दाह।
दूध लजाणे पूत सम, वलय लजाणे नाह ॥ ॥

शब्दार्थ—सहणी = सखी। वलय = चूड़ा, चूड़ियाँ। नाह = नाथ, पति।

अर्थ—हे सखी! और सब बातें मुझे सह्य हो सकती हैं, किन्तु यदि प्राणनाथ मेरे वलय को लजा दें और पुत्र मेरे दूध को, तो ये दोनों बातें मेरे लिए समानरूप से दाहकारी एवं हृदय को उलटने वाली हैं।

× × × ×

किसी राजपूत महिला का पति शत्रुओं से लड़ने के लिए रणभूमि में गया हुआ है। वह उसीकी चिंता में मग्न है, पर यह नहीं चाहती कि उसका पति भागकर घर आ जाय जिससे सती होने की उसकी लालसा पर पानी फिर जाय और संसार के सामने उसे लज्जित होना पड़े। इतने में उसे सूचना मिलती है कि उसका पति रणक्षेत्र की तरफ से भागा हुआ घर की ओर आ रहा है। अब इसके दुःख का क्या ठिकाना, इतने में पति भी आ पहुँचता है। कायर पति को अपनी आखों के सामने खड़ा देख एक लंबी साँस खींचकर वह कहती है। कविराज सूर्य्यमल ने नीचे के पद में इसका बहुत ही सुन्दर चित्रण किया है—

की घर आवे थें कियौ, हणियाँ बळती हाय।
धण थारे घण नेहड़े, लीधो वेग बुलाय ॥१॥
पूतां रे बेटा थिया, घर में बधियो जाळ।
अब तो छोड़ो भागणो, कंत लुभायो काळ ॥२॥
धव जीवे भव खोवियो, सो मन मरियो आज।
मॉनूं ओछे कँचुवै, हाथ दिखातॉं लाज ॥३॥
यो गहणों यो वेस अब, कीजै धारण कंत।
हूँ जोगण किण कामरी, चूड़ा खरच मिटंत ॥४॥

अर्थ—हाय, घर आकर तुमने क्या किया ? यदि मारे जाते तो मैं भी तुम्हारे साथ सती होती। इस पर पति उत्तर देता है—प्रिये, तेरा प्रेमाधिक्य ही तो मुझे शीघ्र बुला लाया ॥१॥ पोतों के भी पुत्र होकर अब घर में बहुत जाल बढ़ गया है और काल तुम्हारी अवस्था पर लुभा रहा है। कंत ! अब तो युद्ध से भागना छोड़ दो ॥२॥ हे प्रीतम ! इस प्रकार से जी कर तो तुमने सचमुच जन्म खो दिया। तुम्हारी यह दशा देखकर आज मेरा तो मन ही मर गया। अब तो इस (सौभाग्य चिह्न) ओछी कॅचुकी में हाथ दिखाते हुए भी मुझे लज्जा होती है ॥३॥ कंत ! यह मेरा वंश और ये मेरे आभूषण अब आप ही धारण कीजिये। मैं तो योगिनी हो चली। अब आप के किस काम की। अच्छा ही हुआ आपके भी चूड़ियों का खर्च मिटा ॥४॥

चारण-काव्य का महत्व

चारण-काव्य का क्षेत्र यद्यपि राजस्थान था, किन्तु इसे भारतीय-साहित्य की सर्वोत्तम रचनाओं में स्थान दे सकते है। वस्तुतः राजपूत भारतीय-वीरता के प्रतीक थे और मध्य-युग में राजस्थान वह दुर्ग था जिसमें भारतीय-सभ्यता तथा संस्कृति के रक्षक निवास करते थे। यही कारण है कि मध्ययुग में वीर-राजपूतों ने स्वतंत्रता की बलिवेदी पर मर मिटने में आना कानी न की। ऐसे वीरों की उज्वल-कीर्ति राजस्थान के चारण-काव्य ही में प्राप्य है। कवीन्द्र रवीन्द्र तो चारण-काव्य पर इतने मंत्रमुग्ध थे कि आपने 'राजस्थान रिसर्च सोसाइटी' के समक्ष १८ फरवरी सन् १९३७ में भाषण देते हुए निम्नलिखित उद्गार प्रगट किया था :—

"भक्ति-साहित्य हमें प्रत्येक प्रांत में मिलता है। सभी स्थानों के कवियों ने, अपने ढंग से राधा और कृष्ण के गीतों

का गान किया है। परन्तु अपने रक्त से राजस्थान ने जिस साहित्य का निर्माण किया है, वह अद्वितीय है और उसका कारण भी है। राजपूतो के कवियों ने जीवन की कठोर वास्तविकताओ का स्वयं सामना करते हुए युद्ध के नक्कारो की ध्वनि के साथ स्वाभाविक काव्य-गान किया। उन्होंने अपने सामने साक्षात् शिव के तांडव की तरह प्रकृति का नृत्य देखा था। क्या आज कोई अपनी कल्पना द्वारा उस कोटि के काव्य की रचना कर सकता है? राजस्थानी-भाषा के प्रत्येक दोहे मे जो वीरत्व की भावना और उमंग है, वह राजस्थान की मौलिक निधि है और समस्त भारतवर्ष के गौरव का विषय है। वह स्वाभाविक, सच्ची और प्रकृत है। मेरे मित्र क्षितिमोहन सेन ने हिन्दी-काव्य से मेरा परिचय कराया। आज मुझे एक नई वस्तु की जानकारी हुई है। इन उत्साहवर्द्धक गीतो ने मेरे समक्ष साहित्य के प्रति नवीन दृष्टिकोण उपस्थित किया है। मैंने कई बार सुना था कि चारण अपने काव्य से वीर योद्धाओ को प्रेरणा और प्रोत्साहन दिया करते थे। आज मैंने उस सदियो से पुरानी कविता का स्वयं अनुभव किया। उसमे आज भी बल और ओज हैं। भारतवर्ष चारण-काव्य के सुसंपादित संस्करण की प्रतीक्षा कर रहा है।" ❀

छन्द

डिंगल-काव्य मे सब से अधिक प्रयोग 'दोहा' और 'छप्पय' का हुआ है। चन्दवरदाई के छप्पय तो प्रसिद्ध है। इनके अतिरिक्त 'मंदाक्रान्ता', भुजंगप्रयात', पद्धीर, तोमर

❀ माडर्न रिव्यू दिसंबर १९३८, पृष्ठ ७१०, 'दि चारनस् आव् राजपूताना'।

आदि छन्दों का प्रयोग भी डिंगल मे होता है। फुटकल रचनाओं मे डिंगल के कवियों ने 'गीत' छन्द का प्रयोग भी बहुत किया है, जो डिंगल की एक विशेषता है। यह 'गीत' भी कई प्रकार के होते हैं। 'रघुवर-जस-प्रकास' आदि डिंगल के गीत-ग्रन्थों मे ८५ प्रकार के गीतों का उल्लेख हुआ है। इनमे से जो गीत बहुत प्रचलित हैं उनके नाम ये हैं:—त्रवंकड़ो, पालवणी, भापड़ी, सावझड़ो, चोटीबंध, सुपंखड़ो, मकुटबंध, छोटी सैणोर और वेलियो गीत। छप्पय को डिंगल मे 'कवित्त' और दोहा को दूहो' कहते हैं। हिन्दी मे दोहा छन्द एक ही प्रकार का होता है परन्तु डिंगल मे इसके दूहो, सोरठियो दूहो, बड़ो दूहो, और तुंवेरी दूहो ये चार भेद माने गये हैं। इनके लक्षण नीचे दिये जाते हैं:—

दूहो—यह हिन्दी का दोहा है। इसके पहले और तीसरे चरण मे १३-१३ मात्राएँ और दूसरे और चौथे मे ११-११ मात्राएँ होती हैं। जैसे:—

सरवर करे न फळभखै, नदी न संचै नीर।
परमारथ के कारणे, साधाँ धर्यौ सरीर॥

(२) सोरठियो-दूहो—यह हिन्दी का सोरठा है। यह दोहे का बिलकुल उल्टा होता है। इसके पहले और तीसरे चरण मे ११-११ मात्राएँ और दूसरे और चौथे चरण मे १३-१३ मात्राएँ होती हैं। डिंगल कविता का यह अत्यन्त प्रिय छन्द है और वीर, शृंगार और करुण रस के वर्णन के लिए बहुत उपयुक्त है। डिंगल के कवियों ने इसकी प्रशंसा भी बहुत की है। यथा:—

सोरठियो दूहो भलो, कपड़ो भलो सपेत।
अकरियो दाता भलो, घुड़लो भलो कमेत॥

सोरठिग्रो दूहो भलो, भलि मरवण री बात।
जोबण छाई धण भली, तारां छाई रात ॥

'सोरठियो दूहो, का एक उदाहरण नीचे दिया जाता है :—

"अकबर समँद अथाह, तिहँ डूबा हिंदू तुरक।
मेवाड़ो तिह मोह, पोयण फूल प्रताप सी ॥

(३) चड़ो दूहो—इसके पहले और चौथे चरण में ११-११ मात्राएँ तथा दूसरे और तीसरे में १३-१३ मात्राएँ होती हैं। जैसे.—

रोपी अकबर राह, कोट कई नह कांगरे।
पटके हाथळ सीह पण, बादल हूँ न बिगाड़ ॥

(४) तूंवेरी दूहो—यह चड़े दूहे का उल्टा होता है। इसके पहले और चौथे चरण मे १३-१३ मात्राएँ तथा दूसरे और चौथे चरण मे ११-११ मात्राएँ होती हैं। जैसे:—

कभी सूरिज साँमुही, माथो धोप भेंटि।
ताह उपन्नी पेटि, मोहण वेली मारुई ॥

ऊपर गीतों की चर्चा की गई है। छोटी 'सैणोर' इसी प्रकार का एक छन्द है। यह एक मात्रिक छन्द है। इसके चार भेद हैं। जैसा कि कविवर मनसाराम.....'मंछ'कृत डिंगल कव्य के रीति-ग्रन्थ 'रघुनाथ-दीपक' मे कहा गया है :—

चार भेद तिण रा चवै, कवियण बंध सौकूब।
समभ वेलियो, सोहणो, पुंगद, जाँगड़ो, पूब ॥

इस प्रकार 'छोटी सैणोर' के चार भेद होते हैं वे हैं (१) वेलियो गीत, (२) सोहणो, (३) पुंगद, (४) जाँगड़ो।

वेलियो गीत का लक्षण इस प्रकार है—

सौले कला विषम पद साजै, समपद पनेरे कला समाजै।
धुर अठार मोहरा गुरु लघु धर, कहजै 'मंछ' वेलियो इम कर ॥

अर्थात् विषम चरणों में १६ मात्राएँ होती है और सम चरणो मे १५ मात्राएँ होती है। यह तो एक साधारण लक्षण है। परन्तु पहले चरण की विशेषता कहीं कहीं इस बात मे देखी जाती है कि वह १८ मात्राओं का होता है और अन्त मे गुरु लघु (ऽ।) होता है। पिंगल-शास्त्र के अनुसार इसको अर्द्ध सम-मात्रिक-छन्द कहना चाहिए।

यही लक्षण और स्पष्ट शब्दों मे डिंगल-कोष के रचयिता कविवर मुरारीदान जी ने इस छन्द के सम्बन्ध मे कहा है। यथाः—

अठारह कल आदतुक, दूजी पनरह पेख।
तीजी तुक सोलातणी, पनरह चौथी पेख ॥
दूजो दोहो सु दुरस, सहक्रम जाण सुजाण।
सोलह पनरह कलस कल, एम वेलियो आण ॥
मुहरावाली तुक यही, मुहरा माँहि मुणन्त।
वर्णौ गीत इम वेलियो, आदगुरु लघु अंत ॥

अलंकार

डिंगल-कविता प्रधान रूप से वर्णनात्मक और भाव-प्रधान होती है। अतएव डिंगल के कवियों ने ऐसे अलंकारों का प्रयोग विशेष रूप से किया है जो वर्ण्य-विषय की सजीवता एवं भाव-व्यंजना को बढ़ाने मे सहायक होते हैं। डिंगल की फुटकर रचनाओं मे अलंकारों का प्रदर्शन कम देखा जाता है लेकिन क्रमबद्ध वर्णनो मे उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि

अलंकारों का प्रयोग उपयुक्त स्थानों पर होता है। डिंगल में एक अलंकार अवश्य ऐसा है जिसका प्रयोग इसके कवियों के अत्यधिक मात्रा में किया है। यह अलंकार है वयणसगाई। हिन्दी में हम इसे शब्दानुप्रास कह सकते हैं। अनुप्रास की तरह इसके भी कई भेद-उपभेद हैं। वयणसगाई का साधारण नियम यह है कि किसी छन्द के प्रथम शब्द का आरम्भ भी उसी वर्ण से होना चाहिए। नीचे एक उदाहरण दिया जाता है। वयण सगाई को स्पष्ट करने के लिए ऐसे शब्दों के नीचे लकीर खींच दी गई है।

अकबर गरब न आँण हींदू सह चाकर हुवा।
दीठो कोई दिवाँण, करतो लटका कटहडे ॥
नर जेथ निमाणा निलजी नारी अकबर गाहक वट अवर।
चौहटे तिण जायर चीतड़ो, वेचै किम रजपूत वट ॥

रस

डिंगल-कविता में वीररस का प्रधानरूप से चित्रण हुआ है, किन्तु शृंगार, शान्त, हास्य, रौद्र तथा वीभत्स रसों का चित्रण भी डिंगल के कवियों ने किया है। वीररस के चित्रण के लिए निम्नलिखित पद उदाहरण स्वरूप दिये जाते हैं। पति युद्ध में गया है। पत्नी के हृदय में मनोभावों का जो अंतर्द्वन्द्व हो रहा है वही इन पदों में चित्रित है :—

नायण आज न माँड पग, काल सुणीजै जङ्ग।
धारां लागीजै धणी, तो दीजै मण रंग ॥१॥
ऊभी गोख अवेलियौ, पेलां रो दळ सेर।
पड़ियौ धव सुणियौ नहीं, लीधौ धण नाळेर ॥२॥
बिण मरियाँ बिण जीतियाँ, जो धव आवै धाम।
पग पग चूड़ी पाछ हूँ, तो रावत री जाम ॥३॥

अर्थात् हे नाइन ! तू आज मेरे पैरों को (महावर आदि से) मत रंग। कल युद्ध सुना जाता है। यदि स्वामी मारे जायें तो फिर (सती होने के समय) खूब रंग देना ॥१॥ झरोखे में खड़ी हुई वीर पत्नी ने देखा कि शत्रु-दल अधिक प्रबल है। अतः पति के धराशायी होने के समाचार सुनने के पहले ही उसने सती होने के लिये नारियल अपने हाथ में ले लिया ॥२॥ यदि पति बिना विजयी हुए या बिना मरे घर आये तो मैं पग-पग पर चूड़ियाँ तोड़-फोड़कर बिखेर दूँगी, मैं वीर राजपूत की कन्या हूँ।

अब हास्य रस का भी एक उदाहरण लें। यह पद अपभ्रंश में भी इसी प्रकार आया है।

राजा रावण जनमियो, दस मुख एक सरीर।
जननी ने सांसो भयो, किण मुख घालूँ खीर ॥

अर्थात् राजा रावण ने जन्म लिया। उसके एक शरीर पर दस मुँह थे। माता संशय में पड़ गई कि उसको स्तन-पान किस मुख से कराया जाय।

अब शृंगार रस का भी एक उदाहरण देखें।

बाबहियउ नइ विरहणी, दुहुवाँ एक सहाव।
जबही बरसइ घण घणउ, तब ही कहइ पियाव ॥

अर्थात् पपीहा और विरहिणी दोनों का एक ही स्वभाव है। जब जब मेघ बरसता है तभी ये दोनों "पी आव", "पी आव" पुकारते हैं।

काव्य-दोष

काव्य के मुख्य अर्थ की प्रतीति को हानि पहुँचाने वाली वस्तु को दोष कहते हैं। डिंगल में दोष ग्यारह प्रकार के माने गये

है। नीचे दो छप्पय उद्धृत किये जाते है जिनमे सभी तरह के दोषो के नाम और उदाहरण आ गये हैं—

कहियौ मैं कै कहूँ किसूँ अंधौ तै कहियै।
लित्ता पान धनंख, राम छुबकाळो लहियै॥
अन्न अजेम जगईस, निमौ तै हीण दोष निज।
रतनद तिरद कबंध, सार इम चली निनंग सुज॥
कवि छंदो भंग पङ कह, तुक धर लछण तोर मैं।
जत विरूध जागड़ रो दुहौ, बणौ लबु साणोर मैं॥१॥
विस्नु नाम कुल बिस्नु, बिस्नु सुत मित्र अपस बद।
कच अहि मुख ससिलंक, स्यंघ कुच कोक नाळ छिद॥
मनुष्याँ मत बिलखाय, गाय प्रभु जी पखतूटल।
रांमण हणियौ राम, गुह खाधो तारक पल॥
यण भांत कहै बहरो यला, मह्पन मैं पय राम रै।
तुक एण अमंगल आद अंत, कवियण विधि गुण वह करै॥

(१) अंध—जहाँ उक्त विषय का निर्बाध निर्वाह न हो सके तथा किसी चरण मे उक्त विषय सम्मुख और किसी मे पराङ्मुख हो वहाँ यह दोष माना जाता है। जैसे:—

कहियौ मैं कै कहूँ, किसूं अंधौ तै कहियै।

यहाँ "कहियौ" शब्द के प्रयोग से ऐसा प्रतीत होता है कि मानो कोई बात पहले कही जा चुकी है। लेकिन बाद मे "कहूं" आया है जिससे यह ध्वनि निकलती है कि बात अभी तक कहनी है। इसके सिवा यहाँ इस बात का भी पता नही लगता कि "मैं" से अभिप्राय कवि से है अथवा किसी दूसरे व्यक्ति से। फिर "किसू" आया है जिससे यह स्पष्ट नहीं होता कि कहने वाला अपनी बात किसी के पक्ष मे कह रहा है अथवा

विपक्ष मे। अतः यहाँ पर अंध दोष है। दंडिन् के अनुसार हम इसे 'व्यर्थ' दोष की संज्ञा दे सकते हैं।

(२) छबकाळ—विरुद्ध-भाषाओं अथवा विभिन्न-भाषाओं के मिलान को—यथा ब्रजभाषा, खड़ीबोली, पारसी अथवा अन्य किसी भाषा को डिंगल से मिला देने को—"छबकाळ" दोष कहते है। जैसे:—

"लित्ता पान धनंख"

इसमे 'लित्ता' शब्द पञ्जाबी का, 'पान' हिन्दी का और 'धनंख' डिंगल का है। इसलिए छबकाळ दोष है। इस दोष के पर्याय मे दंडिन का 'देश-काल-न्याय-आगम-विरोध दोष है

(३) हीन—जहाँ कोई निश्चित् अर्थ न हो सके अथवा जहाँ अर्थ का अनर्थ होने की संभावना हो वहाँ यह दोष होता है। जैसे:—

"अज अजेव जगईस"

यहाँ 'अज' से कवि का अभिप्राय शिव से है अथवा ब्रह्मा से अथवा विष्णु से, यह बात स्पष्ट नहीं है। क्योंकि तीनों ही अजन्मा और जगत् के ईश हैं। दंडिन का 'ससंशयम्' दोष इसका पर्यायवाची है।

(४)निनंग—जहाँ क्रम-भंग वर्णन हो अर्थात् जो बात पहले कहने की हो उसे बाद मे कही हो और जो बात बाद मे कहने को हो उसका उल्लेख पहले कर दिया गया हो, वहाँ यह दोष होता है। जैसे:—

"रत नद तिरत कबंध सार इम चली निनंग सुज"

पहले तलवारे चलती हैं, बाद मे रक्त बहता है और फिर कवंध तैरते है। लेकिन उपरोक्त पंक्ति मे उलटा वर्णन किया गया है। रक्त की नंदियों मे कवंध पहले तैरते है और तलवार

वाद मे चलती हैं। अतः निनंग दोष है। दंडिन का अपक्रम दोष इसका पर्यायवाची है।

(५) पांगळो—पिंगल-शास्त्र द्वारा निश्चित् नियमों के विरुद्ध किसी छंद के चरण मे कम अधिक मात्राओं का होना पांगळो दोष कहलाता है।

(६) जातविरुद्ध—यदि किसी छंद के भिन्न-भिन्न चरण भिन्न-भिन्न जाति के छन्दो के हों तो वहाँ यह दोष होता है।

(७) अपस—यदि किसी वात को सीधी तरह से न कह कर घुमा-फिराकर कहा जाय तो वहाँ यह दोष होता है। जैसे :—

"बिस्नु नाम कुज बिस्नु, विस्नु सुत मित्र अपस बद।"

यहाँ सीधा 'रामचन्द्र' न कहकर, बिस्नु नाम (हरि) हरि का नाम (सूर्य) उनका सुत (सुग्रीव) और उनका मित्र (रामचन्द्र) कहा गया है। अत. अपसदोष है। दंडिन का 'अपार्थ' दोष इसका पर्यायवाची है।

(८) नालछेद—काव्य-शास्त्र के नियमों के विरुद्ध किसी विषय का मनमाने ढंग से वर्णन करना नालछेद दोष कहलाता है। जैसे :—

"कच अहिमुख ससि लंक स्यंध कुच कोक नाल छिद"

यहाँ पहले चोटी का, बाद मे मुख का वर्णन किया गया है जो नखशिख-वर्णन की परिपाटी के विरुद्ध है। अतएव नाल-छेद दोष है।

(९) पषतूट—जहाँ छन्द के प्रथम दो चरणों में कच्चोजोड़ और दूसरे दो में पक्कोजोड़ हो, वहाँ पषतूट दोष गिना जाता है। कच्चोजोड़ उसे कहते हैं जिसमे कठ अर्थात् शब्दानुप्रास

नहीं आता है और पक्कीजोड़ मे शब्दानुप्रास रहता है। यथा—

कच्चीजोड़—"तीर शेलां छुरार्मोक तरतारियाँ"

॥शब्दानुप्रासहीन॥

पक्कीजोड़—"तहक नीयाण गिरवाण हरण तन"

॥शब्दानुप्रासयुक्त॥

(१०) बहरो—जहाँ शब्द-योजना ऐसी बेढंगी हो कि शब्दों का दुतरफा अर्थ निकलकर भ्रम पैदा हो जाय, वहाँ यह दोष होता है। जैसे :—

"रामण हणियौ राम"

इससे राम ने रावण को मारा और रावण ने राम को मारा ये दोनो अर्थ निकलते हैं। इसलिए 'वहरो' दोष है।

(११) अमंगल—यदि किसी छंद के किसी चरण के पहले और अंतिम अक्षर के मिलने से कोई अमंगल सूचक शब्द बने तो वहाँ पर यह दोष माना जाता है। जैसे :—

"महापन में पय राम रै";

छप्पय की इस तुक का पहला अक्षर 'म' और अंतिम अक्षर 'रै' है। इनके संयोग से 'मरै' शब्द बनता है, जो अशुभ है। अत. यहाँ पर अमंगल दोष है।

वीरकाव्य

चन्द बरदाई

'पृथ्वीराजरासो' के रचयिता चन्द कवि माने जाते है। उनकी रचना की प्रामाणिकता के सम्बन्ध मे विद्वानो का गहरा मतभेद है। चन्द का समय भी अभी तक निश्चित् नही है। इन सब बातों पर पक्ष-विपक्ष के तर्कों का ध्यान रखते हुए, अपना निर्णय दिया जायगा।

गार्सों द तासी' ने फ्रेंच-भाषा मे लिखित अपने 'हिन्दी-साहित्य के इतिहास' मे 'चन्द' तथा 'पृथ्वीराजरासो' के सम्बन्ध मे जो कुछ लिखा है, उसका अविकल अनुवाद नीचे दिया जाता है।

दिल्ली के अंतिम हिन्दू-सम्राट 'पृथ्वीराज-चरित्र' अथवा इतिहास के रचयिता चन्द हिन्दी के प्रसिद्ध इतिहास-लेखक तथा कवि है। भारत की प्राचीन-पद्धति के अनुसार पद्य मे लिखित चन्द का यह ग्रन्थ राजपूताने का इतिहास है और खासकर ऐसे समय का इतिहास है, जिसमे स्वयं चन्द ने विशेष भाग लिया था। निस्संदेह यह हिन्दी* के प्राचीन ग्रन्थो मे से एक है।

चन्द पिथौरा अथवा पृथ्वीराज के दरबार का कवि था,

---

* डबल्यू प्राइस द्वारा लिखित हिन्दी तथा हिन्दोस्तानी-संग्रह की भूमिका पृ० ८।

जो राजपूत वंश का सिरमौर था। उसका समय १२वीं शताब्दि का अंतिम भाग है। लंदन की 'एशियाटिक सोसाइटी' के पुस्तकालय में मेजर काफिल्ड द्वारा प्रदत्त चन्द के ग्रन्थ की एक हस्त-लिखित प्रति है, और मेकेंजी † की हस्त-लिखित पुस्तकों के संग्रह में भी इसकी एक प्रति मौजूद थी। रावर्ट लिज नामक एक रूसी विद्वान् ने अपनी (भारत ?) यात्रा से लौटकर इसके एक भाग का अनुवाद, सन् १८३६ ई० में सेंट-पिटर्सबर्ग में, प्रकाशित कराया था। किन्तु उसकी असामयिक-मृत्यु ने प्राच्य-विद्या-प्रेमियों को उसका मनोरम यात्रा विवरण जानने से, एक प्रकार से, वंचित रखा।

रायल 'एशियाटिक-सोसाइटी' की हस्त-लिखित-प्रति के मुख-पृष्ठ पर फारसी में इस प्रकार लिखा हुआ है—

चन्दवरदाई द्वारा लिखित पिंगल-भाषा (हिन्दोस्तानी पद्य) में पृथुराज का इतिहास। स्वर्गीय जेम्सटॉड ने अपने राजपूताने के इतिहास में* इस ग्रन्थ के एक बड़े भाग को उद्धृत किया है। उसने स्वयं इसके एक बड़े भाग का अनुवाद किया था, किन्तु मृत्यु के कारण न तो वह अपनी यात्रा समाप्त कर सका और न उसे प्रकाशित करने में ही समर्थ हो सका। उसने चन्द की इस ऐतिहासिक कविता की केवल एक उल्लेखनीय घटना का अनुवाद प्रकाशित कराया था जो 'संगोप्ता (संयोगिता ?) के प्रण' के नाम से विख्यात है। किंन्तु इसकी प्रतियों का वितरण भी उसने केवल अपने कतिपय मित्रों ही तक सीमित रखा। नवीन-संस्करण के एशियाटिक-सोसाइटी

---

† मेकेंजी का संग्रह भाग २, पृ० ४११

* विद्वानों के जर्नल सन् १८३१, पृ० ७ तथा सन् १८३२, पृ० ४२० में म० द सासी के लेख।

के जर्नल के २५ वें भाग मे किसी व्यक्ति ने उस अनुवाद को पुनः प्रकाशित कराया है। अन्त मे चन्द की कविता क सम्बन्ध मे टॉडा की जो सम्मति है, वह नीचे उद्धृत की जाती है:—

चन्द का ग्रन्थ उसके समय का स्वाभाविक इतिहास है। इसमे ६६ भाग [समयो] तथा एक लाख पद हैं, जिनमे पृथ्वीराज के पराक्रम का वर्णन है, किन्तु इसके साथ-ही-साथ इसमे प्रत्येक उच्च राजपूत-वंश के पूर्व-पुरुषो का उल्लेख भी मिलता है। यही कारण है कि राजपूत-नाम-धारी प्रत्येक वंश के संग्रहालय मे यह ग्रन्थ सुरक्षित मिलता है। पृथ्वीराज के युद्धो, विवाहो तथा अधीनस्थ अनेक शक्तिशाली राजाओ एवं उनके भवनो तथा वंश का ज्ञान प्राप्त करने के लिए चन्द का यह ग्रन्थ अत्यन्त महत्वपूर्ण है। राजपूताने के इतिहास तथा भूगोल के साथ-साथ इस ग्रन्थ में दन्तकथाओ आदि का भी वर्णन मिलता है।

मुझे विश्वास है कि कुछ लोगो ने इस लेखक को 'चन्द्र' अथवा 'चन्द्र भाट' और इसके ग्रन्थ को 'पृथुराज-राजसू' के नाम से सम्बोधित किया है। 'राजसू' से राजसूययज्ञ' का तात्पर्य है।❋

वार्ड ने 'हिन्दू-साहित्य तथा दन्तकथाओ के 'इतिहास' भाग २ पृष्ठ ४८२ में इस ग्रन्थ की चर्चा की है, जिसमे उसने इसका हिन्दो की कन्नोजीबोली मे लिखे जाने का उल्लेख किया है।

मेरे विचार मे यह वही ग्रन्थ है जिसका एशियाटिक-सोसाइटी, कलकत्ता के जर्नलो मे 'पृथ्वीराज-भापा तथा उसके कैट-

† मूल अंग्रेजो में टाडराजस्थान, भाग १ पृ० २५४

❋ इस्त्वार द ला लितरेत्योर ए द ला माइथालोजी दे हिन्दोज़।

लॉग मे 'वियाना‡ के प्रथम सम्राट पृथुराजका पराक्रम नाम मिलता है।

चन्द ने 'जयचन्द्रप्रकाश' अर्थात् 'जयचन्द्र' का इतिहास' नामक भी एक ग्रन्थ लिखा है। पहले ग्रन्थ (रासो) की तरह यह भी कन्नौजीबोली में लिखा गया है और वार्ड ने इसका भी उल्लेख किया है।

कवि परिचय

परम्परानुसार तासी चन्द को पृथ्वीराज का समकालीन मानते हैं। प्रसिद्ध है कि ये पृथ्वीराज के साथ ही सम्वत् ११५१ मे पैदा हुए थे। इनका जन्म स्थान लाहौर बतलाया जाता है। ये 'जगातिगोत्र' के भट्ट-ब्राह्मण थे तथा इनके पूर्वज पंजाब के रहने 'वाले थे। चन्द पृथ्वीराज के राजकवि ही नहीं, अपितु सखा और सामन्त भी थे। षड्भाषा, व्याकरण काव्य, साहित्य, छन्द-शास्त्र, ज्योतिष, पुराण नाटक आदि मे ये पूर्णतया दक्ष थे। इनका जीवन पृथ्वीराज से बिल्कुल मिला हुआ था। सभा, युद्ध, आखेट तथा यात्रादि मे ये सदैव महाराजा के साथ रहा करते थे। जब शहाबुद्दीन गोरी, पृथ्वीराज को कैद करके गजनी ले गया तब चन्द भी वहाँ पहुँचे। जाते समय 'रासो' को अपने प्रिय पुत्र जल्हन को पूरा करने के लिए दे गए। जिस प्रकार 'कादम्बरी' को 'बाणभट्ट' के पुत्र ने पूरा किया था, उसी प्रकार जल्हन ने भी हिन्दी के इस महाकाव्य को पूरा किया। रासो मे इसका उल्लेख इस प्रकार है:—

'पुस्तक जल्हन हत्थ दै चलि गज्जन नृप काज।'

† १८८५ पृ० ४४

‡ आगरा प्रान्त का एक नगर।

रघुनाथ चरित हनुमन्त कृत, भूप भोज उद्धरिय जिमि।
पृथिराज-सुजस कवि चन्द कृत, चंद-नंद उद्धरिय तिमि॥

गज़नी की भरी सभा मे, एक दिन, जब कौतुक आदि हो रहे थे, ये बादशाह से मिले और पृथ्वीराज के शब्द-वेधी बाण चलाने की कुशलता की बड़ी प्रशंसा की। बादशाह ने पृथ्वीराज को बाण चलाने की आज्ञा दी। चन्द का इशारा पाते ही उन्होंने ऐसा बाण मारा कि शाह धराशायी हो गया। उसके मरते ही चन्द ने म्यान से कटार निकालकर अपना काम तमाम किया और फिर उसे पृथ्वीराज को दे दी।

परंपरानुसार तासी चंद को पृथ्वीराज का समकालीन मानता है। रासो मे चंद के जीवन आदि के संबंध मे कुछ नहीं लिखा है; किन्तु जनश्रुति है कि चंद और पृथ्वीराज साथ ही पैदा हुए और अंत में साथ ही उनकी मृत्यु भी हुई। पृथ्वीराजरासो के अनुसार महाराज पृथ्वीराज का जन्म सं० ११५१ है जिसकी आनन्द संवत् से गणना करने पर वि० सं० १२०६ निकलता है। इधर ओझा जी ने "कोषोत्सव-स्मारक-संग्रह" में प्रकाशित एक लेख मे, शिलालेखों तथा ऐतिहासिक-उल्लेखों के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि यह तिथि सर्वथा अशुद्ध है।* किन्तु कविराव मोहनसिंह ने अन्य तर्क संगत प्रमाणों पर विचार कर यह सिद्ध किया है कि पृथ्वीराज का जन्म संवत् १२०६ वि० मानना भ्रमपूर्ण नहीं है।† दोनों पक्षों द्वारा प्रस्तुत किए हुए तर्कों का विस्तृत विवेचन आगे

---

* कोषोत्सव-स्मारक-संग्रह, 'पृथ्वीराज रासो का निर्माणकाल पृ० ५३

† राजस्थान-भारती, भाग १, अंक, २—३ पृथ्वीराजरासो पर पुनर्विचार,' पृ० ४३।

किया जायेगा। यहाँ केवल इतना ही संकेत करना आवश्यक है कि यदि जनश्रुति तथा आनन्द संवत् की कल्पना पर विश्वास किया जाय तो चंद का जन्म सं० १२०६ वि० में सिद्ध होता है।

चंद का जन्मस्थान लाहौर बतलाया जाता है। ये जगाति गोत्र के भट्ट-ब्राह्मण थे तथा इनके पूर्वज पंजाब के रहने वाले थे। चंद पृथ्वीराज के राजकवि ही नहीं अपितु सखा और सामंत भी थे। षड्भाषा, व्याकरण, काव्य, साहित्य, छंद-शास्त्र, ज्योतिष, पुराण-नाटक आदि के ये पूर्ण पंडित थे। इनका जीवन महाराज पृथ्वीराज के जीवन में इतना घुला-मिला है कि उसको अलग करना कठिन है। सभा, युद्ध आखेट तथा यात्रादि में ये सदैव महाराज के साथ रहते थे। जब शहाबुद्दीन गोरी पृथ्वीराज को कैद करके गज़नी ले गया, तब चंद भी वहाँ पहुँचे। जाते समय रासो को अपने प्रिय पुत्र जल्हण को पूरा करने के लिए देते गए। अब तक परम्परा से यही विश्वास चला आ रहा है कि जिस प्रकार "कादम्बरी" को बाणभट्ट के पुत्र ने पूरा किया था, उसी प्रकार जल्हन ने भी हिन्दी के इस महाकाव्य को पूर्ण किया। इस अनुमान का आधार रासो की निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं :—

("पुस्तक जलहन हत्थ दै चलि गज्जन नृपकाज।"

\+ \+ \+

"रघुनाथ चरित हनुमंत कृत, भूप भोज उद्धरिय जिमि।
पृथिराज सुजस कवि चंद कृत, चंद-नन्द उद्धरिह तिमि॥")

किन्तु इधर श्री अगरचंद नाहटा को रासो की जो प्राचीन प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं उनमें पहला पद्य तो है ही नहीं और दूसरे पद्य में "चंदनन्द" के स्थान पर "चंद्रसिंह उद्धरिय तिमि"

स्पष्ट मिलता है। अतः नाहटा जी ने जल्हण की अपेक्षा "चंद्र-सिंह" को ही रासो का वास्तविक उद्धारकर्ता माना है।❀

इसप्रकार चंद को जीवनी के संबंध में जितनी सामग्री इस समय उपलब्ध है, सभी संदिग्ध है और इस सम्बन्ध में विशेष अनुसन्धान की आवश्यकता है। जनश्रुति तो गजनी की भरी सभा में चंद के संकेत पर अंधे पृथ्वीराज द्वारा बाण चलाकर गोरी का वध करने और फिर चंद तथा पृथ्वीराज दोनों के आत्महत्या करने का निर्देश करती है।

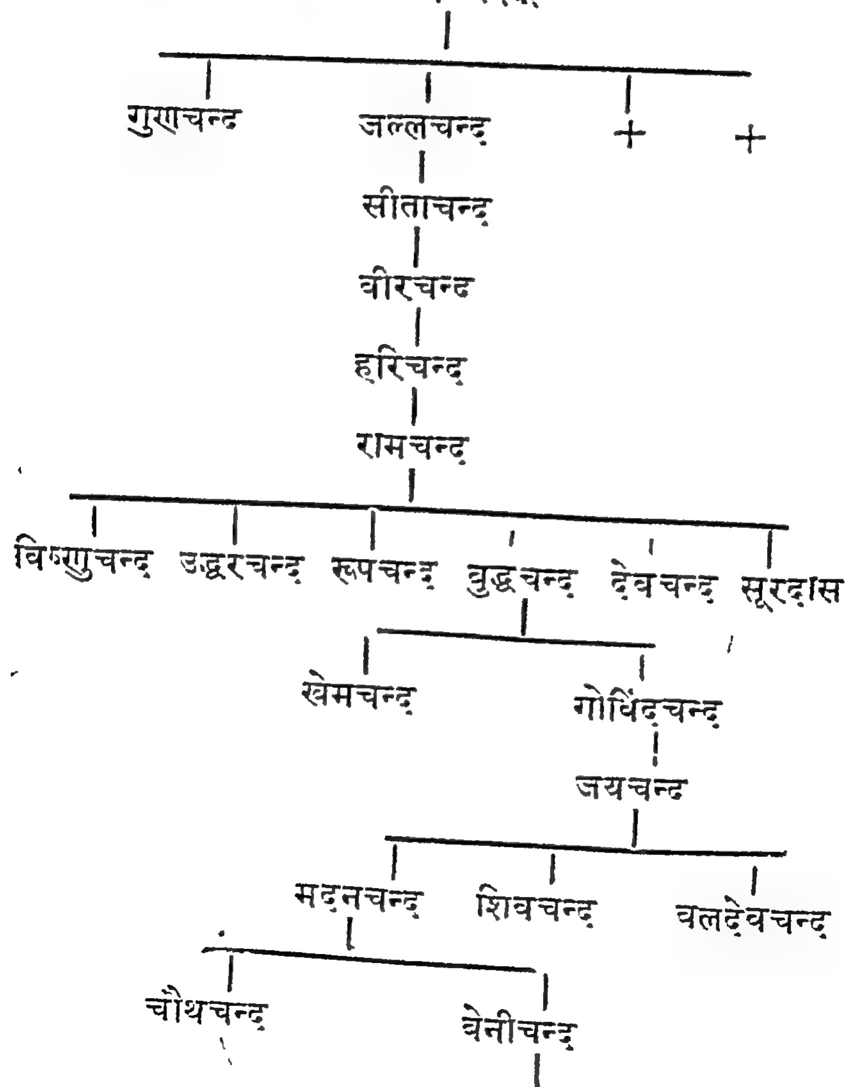
महामहोपाध्याय पं० हरप्रसाद शास्त्री की खोज के आधार पर आचार्य-प्रवर पं० रामचंद्र जी शुक्ल ने चंद के विषय में निम्नलिखित सामग्री अपने 'हिंदी-साहित्य के इतिहास' में उपस्थित की है।❀ आप लिखते हैं—

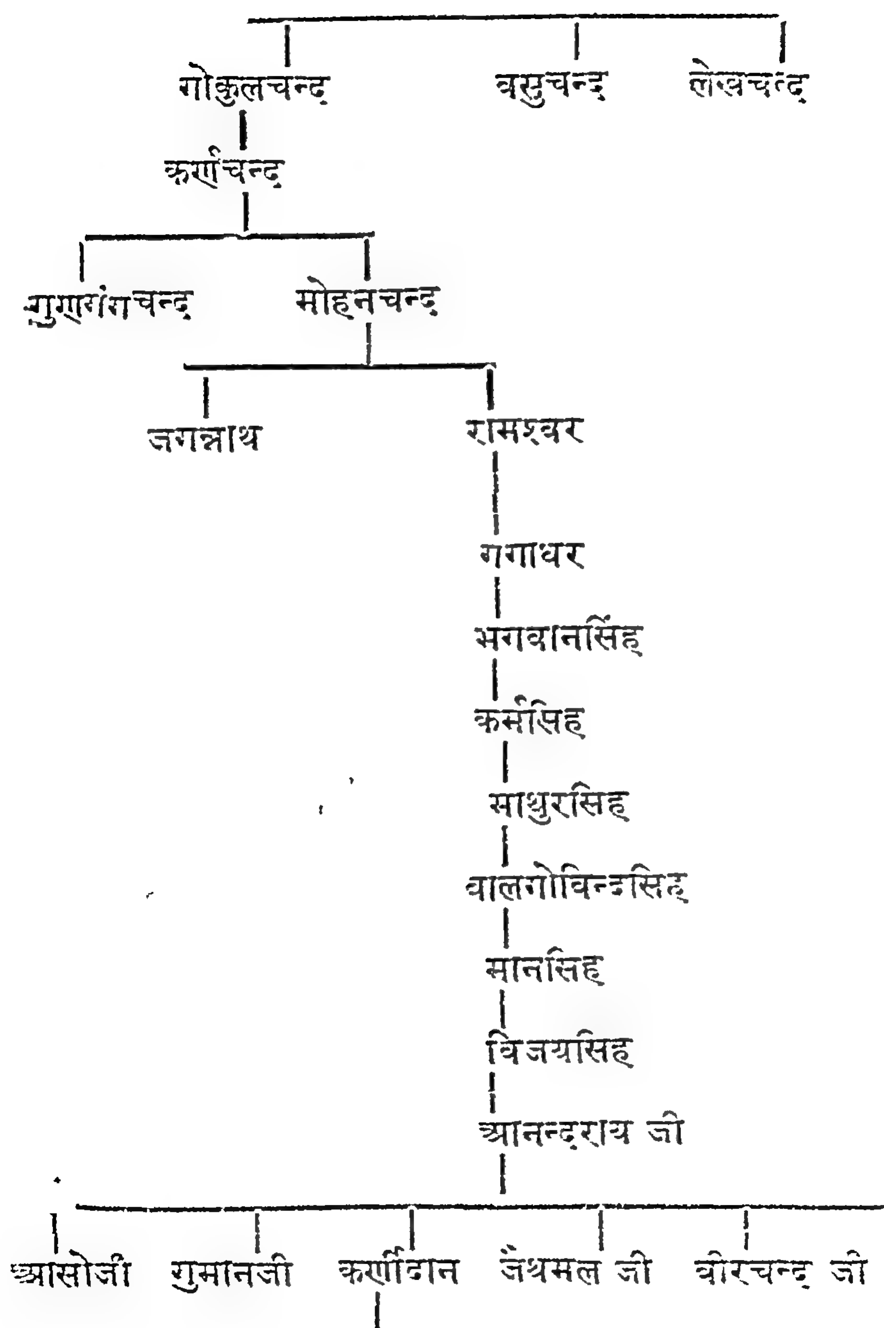
महामहोपाध्याय पंडित हरप्रसाद शास्त्री ने सन् १९०९ से १९१३ तक राजपूताने में प्राचीन-ऐतिहासिक-काव्यों की खोज में तीन यात्राएँ की थीं। उनका विवरण बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी ने छापा है। उस विवरण में पृथ्वीराजरासो के विषय में बहुत कुछ लिखा है और कहा गया है कि कोई-कोई तो चंद के पूर्व-पुरुषों को मगध से आया हुआ बताते हैं, पर 'पृथ्वीराजरासो' में लिखा है कि चंद का जन्म लाहौर में हुआ था। कहते हैं कि चंद, पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर के समय में राजपूताने में आया और पहले सोमेश्वर का दरबारी और पीछे से पृथ्वीराज का मंत्री, सखा और राज-कवि हुआ। पृथ्वीराज ने नागौर बसाया था और वहीं बहुत

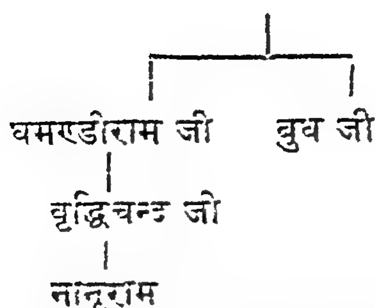
❀ 'राजस्थानी,' पृथ्वीराजरासो और उसकी हस्तलिखित प्रतियां पृ० १४

❀ हिन्दीसाहित्य का इतिहास, [नवीन संस्करण] पृ० ५४-५५

सी भूमि चंद को दी थी। शास्त्री जी का कहना है कि नागौर मे अब तक चंद के वंशज रहते हैं। इसी वंश के प्रतिनिधि नानूराम भाट से शास्त्री जी की भेंट हुई। उनसे उन्हे चंद का वंशवृक्ष प्राप्त हुआ जो इस प्रकार है :—




गोकुलचन्द
वसुचन्द
लेखचन्द
कर्णचन्द
गुणगंसचन्द
मोहनचन्द
जगन्नाथ
रामश्वर
गगाधर
भगवानसिंह
कर्मसिह
माधुरसिह
बालगोविन्दसिंह
मानसिह
विजयसिह
आनन्दराय जी
आसोजी
गुमानजी
कर्णादान
जैथमल जी
वीरचन्द जी



नानूराम का कहना है कि चंद के चार लड़के थे, जिनमें से एक मुसलमान हो गया, दूसरे का कुछ पता नहीं, तीसरे के वंशज अंभोर में जा बसे और चौथे जल्ल का वंश नागौर में चला गया। पृथ्वीराजरासो में चन्द के लड़कों का उल्लेख इस प्रकार है —

दहनि पुत्र कविचन्द के, सुन्दर रूप सुजान।
इक जल्ह गुन बावरो गुन-समुन्द ससमान॥

'पृथ्वीराजरासो' में कविचन्द के दसों पुत्रों के नाम दिये है। सूरदास की 'साहित्यलहरी' की टीका में एक पद ऐसा आया है, जिसमें सूर की वंशावली दी है। वह पद यह है —

प्रथम ही प्रथु यज्ञ तें भे प्रगट अद्भुत रूप।
ब्रह्मराव विचारि ब्रह्मा राखु नाम अनूप॥
पान पय देवी दियो सिव आदि सुर सुख पाय।
कह्यो दुर्गा पुत्र तेरो भयो अति अधिकाय॥
पारि पायन सुरन के सुर सहित अस्तुति कीन।
तासु बंस प्रसंस में भौ चन्द चारु नवीन॥
भूप पृथ्वीराज दीन्हों तिन्हें ज्वाला देस।
तनय ताके चार कीनो प्रथम आप नरेस॥
दूसरे गुनचन्द ता सुत सीलचन्द सरूप।
वीरचन्द प्रताप पूरन भयो अद्भुत रूप॥

रंथभौर हमीर भूपति संगत खेलत जाय।
तासु बंस अनूप भो हरिचन्द अति विख्यात॥
आगरे रहि गोपचल में रह्यो ता सुत वीर।
पुत्र जन्मे सात ताके महाभट गम्भीर॥
कृष्णचन्द उदारचन्द जु रूपचन्द सुभाइ।
बुद्धिचन्द प्रकास चौथे चन्द भे सुखदाइ॥
देवचन्द प्रबोध संसृतचन्द ताको नाम।
भयो सप्तो नाम सूरजचन्द मन्द निकाम॥

इन दोनो वंशावलियो के मिलाने पर मुख्य भेद यह प्रगट होता है कि नानूराम ने जिनको जल्लचन्द की वंश-परम्परा मे बताया है, सूरदास जी उन्हे गुणचन्द की परम्परा मे कहते है। शेष नाम प्रायः मिलते हैं।

चन्द के सम्बन्ध मे जो वृतान्त उपलब्ध है, उसे ऊपर दिया गया है। अब नीचे रासो की संक्षेप-कथा, उसकी प्रामाणिकता तथा भाषा आदि के सम्बन्ध मे विचार किया जायगा। रासो एक प्रबन्ध-काव्य है। यह लगभग २५०० पृष्ठो तथा ६६ समयो मे समाप्त हुआ है। इसका अन्तिम अर्थात् ६६ वां 'महोवा समय' है, जिसमे पृथ्वीराज और महोवा के राजा 'परमाल' के युद्ध का वर्णन है। यह ग्रन्थ सम्वाद-रूप मे है, अर्थात् कवि की धर्मपत्नी प्रश्न करती है और वह उसका उत्तर देता है। इसमे आबू के यज्ञ-कुड से चार क्षत्रिय-कुलो की उत्पत्ति तथा चोहानो की अजमेर में राजस्थापना से लेकर पृथ्वीराज के पकड़े जाने तक का विस्तृत वर्णन है।

पृथ्वीराजरासो के सम्बन्ध मे

रासो मे लिखा है कि जिस समय सोमेश्वर चोहान शाकम्भरी देश मे राज्य करते थे और अपनी राजधानी अजमेर मे रहते थे, उस समय अनंगपाल तोमर दिल्ली के और विजय-

पाल कमध्वज कन्नौज के राजा थे। किसी कारण से विजयपाल ने दिल्ली पर चढाई की। अनंगपाल ने दूत भेजकर सोमेश्वर से सहायता मॉगी। सोमेश्वर सेना सहित दिल्ली की रक्षा करने के लिए गए तथा दोनो राजाओं ने परामर्श कर दिल्ली की रक्षा की। विजयपाल उस समय उत्तर भारत मे चक्रवर्ती अर्थात् सम्राट माने जाते थे। उनके पास अगणित सेना थी, उन्होंने दिग्विजय भी की थी परन्तु वे दिल्ली को जीत न सके।

अनंगपाल सन्तानहीन थे। उनकी दो कन्याये थीं। छोटी का नाम था कमला और बड़ी का सुरसुन्दरी। उन्होंने सोमेश्वर के साथ कमला का विवाह कर दिया। परन्तु विजयपाल भी सेना लिए पडे थे, अतएव उनसे सुरसुरन्दरी का विवाह करके सन्धि कर ली। कमला के गर्भ से पृथ्वीराज का जन्म हुआ।

विजयपाल के पुत्र जयचन्द उनके मरने पर कन्नौज के राजा हुए। परन्तु रासो मे यह नही लिखा है कि जयचन्द सुरसुन्दरी के गर्भ से थे या किसी और रानी के गर्भ से। पृथ्वीराज का जन्म सन ११४८ (वैशाख सम्वत् १२०५) मे हुआ था। रासो मे केवल एक स्थान (४८ समय) पर जयचन्द ने पृथ्वीराज से कहा है, "मातुल हम तुम इक" पर इस सम्बन्ध का और कहीं उल्लेख नहीं है।

जब अनंगपाल वृद्धावस्था मे बदरीनारायण की यात्रा के लिए जाने लगे, तब राज्य, अपने दौहित्र पृथ्वीराज को सौंप गए। आगे चलकर पिता की मृत्यु के पश्चात् पृथ्वीराज अजमेर तथा दिल्ली दोनो के स्वामी बन गए।

पृथ्वीराज की समृद्धि से जयचन्द मन ही मन कुढ़ने लगा। उसने अपना एक-छत्र राज्य स्थापित करने के लिए राजसूय-यज्ञ की रचना की और साथ ही अपनी कन्या संयोगिता का स्वयम्बर भी रचा। इस यज्ञ मे पृथ्वीराज को निम्नकोटि का

कार्य सौंपा गया अतएव वह सम्मिलित नहीं हुआ। उसकी अनुपस्थिति मे एक स्वर्ण-मूर्ति बनाकर द्वारपाल के स्थान पर रख दी गई। संयोगिता पृथ्वीराज को पहले से ही प्रेम करती थी। वह सब ओर से घूम आई और अन्त मे उसने मूर्ति के गले मे ही जयमाल डाल दी।

जयचन्द अपनी पुत्री के इस कृत्य से अत्यन्त रुष्ट हुआ और गंगा किनारे एक महल मे उसे निर्वासन-दण्ड दिया। इधर पृथ्वीराज को जब समाचार मिला तो वे चन्द के साथ एक धनवान विदेशी युवक के वेश मे वहाँ जा पहुँचे। उस महल मे पृथ्वीराज का संयोगिता से विधि पूर्वक विवाह हुआ। रात को ही संयोगिता को साथ लेकर वे चन्द के स्थान पर चले आए। दूसरे दिन सवेरे ही वे दिल्ली चलने को तैयार हुए। चलते समय उन्होंने कवि चन्द से कहा कि जयचन्द को संयोगिता के विवाह और दिल्ली जाने का संवाद दे आओ। कवि ने कहा—अब तुम्हारी आशा पूरी हो गई है, घर चलो, क्यों झगड़ा बढ़ाते हो? परन्तु पृथ्वीराज ने नहीं माना। उसने कहा—मैं चोर नहीं हूँ। मैं बिना सूचना दिये न जाऊँगा; जिसे साहस और बल हो, मुझे रोके।

कविचन्द ने जयचन्द की सभा मे जाकर कहा—दिल्लीश्वरी महाराणी संयोगिता अपने पति के घर जा रही है, वे अपने पिता के आशीर्वाद की अपेक्षा कर रही है। यह समाचार सुनकर जयचन्द अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। उसने अपने सेनापति तथा सामन्तों को पृथ्वीराज और संयोगिता को जीवित पकड़ लाने की आज्ञा दी। मार्ग मे घोर युद्ध हुआ, किन्तु अन्त मे पृथ्वीराज सकुशल दिल्ली पहुँच गए। वहाँ भोग-विलास मे जीवन व्यतीत करने लगे।

उधर शहाबुद्दीन गोरी अपने एक पठान सरदार की प्रेमिका, चित्ररेखा, पर मुग्ध हो गया। यह सरदार भागकर पृथ्वीराज की शरण मे आ पहुँचा। गोरी ने उसे लौटा देने के लिए कहला भेजा किन्तु शरणागत-रक्षा मे तत्पर पृथ्वीराज उसकी बात स्वीकार न कर सके। इसके परिणाम-स्वरूप गोरी तथा पृथ्वीराज मे कई युद्ध हुए जिनमे गोरी बराबर पराजित हुआ। अन्त मे वह छल से पृथ्वीराज को गजनी पकड़ ले गया। वहाँ पृथ्वीराज ने उसे शब्दवेधी-बाण से मारकर आत्म-हत्या कर ली।

ऊपर, संक्षेप मे 'रासो' के कथा-भाग के विषय मे लिखा गया है। इसके समयो के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कुछ घटनाओ का कवि ने बहुत ही विषद वर्णन किया है। विशेषतया पृथ्वीराज की अनेक युद्धों, उसका कई राजकुमारियों से विवाह तथा आखेट आदि का बड़ा ही रोचक वर्णन किया है। 'वीर-रस' के साथ-साथ 'शृंगार-रस' का वर्णन भी 'रासो' मे खूब मिलता है। किन्तु इसमे प्रकृति-वर्णन का सर्वथा अभाव है।

बाबू श्यामसुन्दर दास ने "रासो" को महाकाव्य न मान कर उसे विशालकाय* वीर-काव्य ही कहना उचित समझा है। अब प्रश्न यह उठता है कि "पृथ्वीराजरासो" महाकाव्य है, अथवा नहीं। इस सम्बन्ध मे महाकाव्य के विषय मे भी संक्षेप मे जान लेना आवश्यक है।

क्या पृथ्वीराज रासो महाकाव्य है?

संस्कृत-लक्षणग्रंथों के अनुसार महाकाव्य का सर्गबद्ध होना आवश्यक है। इसका नायक देवता अथवा धीरोदात्त क्षत्रिय होना चाहिए। एक ही उच्चकुल मे उत्पन्न अनेक क्षत्रिय भी नायक हो सकते हैं। शृंगार, वीर अथवा शांत मे कोई एक

* "हिन्दी-भाषा और साहित्य", पृ० २८०

प्रधानरस के रूप मे होना चाहिए और साथ ही सारे रस-रसांगो का भी आयोजन गौणरूप से होना चाहिए। सभी नाटकीय संधियो का नियोजन होना चाहिए। महाकाव्य की कथा इतिहास-प्रसिद्ध होनी चाहिए। काव्य के अंतर्गत संध्या, सूर्य, चन्द्रमा, संभोग—विप्रलंभ, रणप्रयाण, पुत्र-जन्म, नदी-तालाब-समुद्र आदि का वर्णन भी आवश्यक है।

पाश्चात्य आलोचको ने महाकाव्य (एपिक) की चर्चा करते हुए जिन उपकरणो को आवश्यक बतलाया है, उनमें परस्पर बड़ा मतभेद है।

फ्रेंच आलोचक 'ल वस्सु* के अनुसार, महाकाव्य, प्राचीन घटनाओं को चित्रित करने के लिए एक पद्यबद्ध रूपक है। उसके विचार मे होमर इस बात को खूब समझता था कि ग्रीस की रियासतो का पारस्परिक कलह जनता की हित की दृष्टि से अहितकर है। अतएव लोगो को शिक्षा देने के लिए ही उसने "इलियड" मे ट्राय के युद्ध की कल्पना की।

एक अन्य आलोचक 'डेवनांट' का कथन है कि महाकाव्यों की आधार-भूता घटनाएँ प्राचीन ही होनी चाहिए, क्योंकि अर्वाचीन-घटनाओं की अपेक्षा प्राचीन-घटनाओ के चित्रण मे अवश्य ही कवि कल्पना की ऊँची उड़ान ले सकता है। इसके अतिरिक्त उसे इस प्रकार की घटनाओ के चित्रण मे अपेक्षाकृत स्वतन्त्रता भी रहती है।

'लुकन' के विचार मे प्राचीन-घटनाओं की अपेक्षा अर्वाचीन-घटनाओ को ही महाकाव्य की पृष्ठभूमि बनाना युक्तियुक्त होगा। इससे एक लाभ यह होगा कि उसमे वर्णित चरित्रो की सजीव-प्रतिमा जनता के हृत्पटल पर अंकित हो जायगी।

---

*डिक्सन कृत : 'एपिक एण्ड हिरोयिक पोयट्री' पृ० १ ।

'टैसो' ने मध्य-मार्ग का अवलम्बन करते हुए यह विचार उपस्थित किया है कि घटनाएँ न तो अत्यन्त प्राचीन होनी चाहिए और न अत्यन्त नवीन ही।

जिसप्रकार घटना के सम्बन्ध मे पाश्चात्य आलोचक एकमत नही, उसी प्रकार घटना-काल के सम्बन्ध मे भी उनके विचार एक-दूसरे से भिन्न है। घटनाकाल से तात्पर्य यह है कि महाकाव्य मे अंततोगत्वा कितने समय की घटनाओ का चित्रण किया जाय। एक आलोचक का कथन है कि महाकाव्य मे केवल एक वर्ष की घटनाओ का समावेश होना चाहिए, किंतु दूसरे का कथन है कि इसमे नायक के संपूर्ण-जीवन का चित्रण आवश्यक है।

महाकाव्य का नायक युद्ध-प्रिय होना चाहिए। केवल एक व्यक्ति के चरित्रचित्रण मे ही उसे समाप्त नही होना चाहिए, अपितु इसमे सम्पूर्ण जाति के कार्य-कालाप का वर्णन होना चाहिए। 'लुकन' के अनुसार इसमे देवताओ तथा दैवी शक्ति का हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए।

ऊपर पूर्वीय तथा पश्चिमीय दोनो दृष्टियो से महाकाव्य के लक्षण दिये गये हैं। अब देखना है कि इन दृष्टियो से 'पृथ्वीराजरासो' कहाँ तक महाकाव्य है ?

इसमे संदेह नहीं कि लक्षण-ग्रंथो के अनुसार 'रासो' को महाकाव्य ही कहना उपयुक्त होगा। यह ६९ 'समयो' मे विभक्त है। इसमे कवित्त, दूहा, तोमर, त्रोटक, गाहा, आर्या आदि छंदो का प्रयोग किया गया है। इसके नायक, पृथ्वीराज, क्षत्रिय कुल-भूषण वीर-पुरुष है। अन्य वर्णन-विस्तार भी जो महाकाव्य के लिए अनिवार्य है, पृथ्वीराजरासो मे मिल जाते है, किन्तु जहाँ तक महाकाव्य मे जातीय-चित्तवृत्ति तथा कार्य-

कलाप की अभिव्यक्ति का प्रश्न है, 'रासो' को एक विशालकाय वीरकाव्य का ग्रंथ कहना ही उचित है। स्थान-स्थान पर इसके कथानक मे शिथिलता है। कथानक की घटनाओं मे एक-रूपता का भी अभाव है।

रासो के रूपान्तर

इस समय तक की प्राप्त प्रतियो पर विचार करने से रासो के चार रूपान्तर सिद्ध होते है, जिनका संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है :—❀

(१) **वृहत् रूपान्तर**—इसकी कई प्रतियाँ उदयपुर-राज्य के पुस्तकालय मे है। काशी की नागरी-प्रचारिणी-सभा द्वारा जो संस्करण प्रकाशित हुआ है, वह उसी रूपान्तर का है। इस रूपांतर की सभी प्रतियाँ सं० १७५० के बाद की है। नागरी-प्रचारणी-सभा वाली जो प्रति सं० १६४२ की बतलायी जाती है उसकी प्रामाणिकता भी संदिग्ध है। श्री नरोत्तमदास जी स्वामी का अनुमान है कि अठारहवीं शताब्दि के उत्तरार्द्ध से पूर्व की तो किसी भी अवस्था मे वह प्रति नहीं हो सकती। प्रक्षिप्त-अंशो की भरमार से इस संदेह को और भी पुष्टि मिलती है। इसमे कुल ६६ समयो तथा १६३०६ छंद है। इस रूपांतर की कुछ प्रतियो मे अध्यायों को 'समयौ' और कुछ अन्य मे 'प्रस्ताव' कहा गया है। कुछ मे 'समयौ' और 'प्रस्ताव' दोनो नाम साथ पाए जाते है। इसका ६६ वॉ "महोवा समयो" वस्तुतः बहुत बाद में "आल्हखण्ड" से लेकर जोड़ा हुआ प्रतीत होता है।

❀ इस सम्बन्ध में 'राजस्थान भारती' भाग १, अंक १ में प्रकाशित श्री नरोत्तमदास स्वामी का "पृथ्वीराजरासो" शीर्षक लेख देखें।

(२) मध्यमरूपांतर

अब तक इसकी चार प्रतियों का पता लगा है। उनमें से एक ओरियंटल-कालेज लाहौर के पुस्तकालय में, एक अबोहर के साहित्य-सदन में, एक बीकानेर के बड़े उपासरे के जैन-ज्ञान-भंडार में और एक श्रीयुत अगरचंद नाहटा के पास है। पं० मथुराप्रसाद दीक्षित ने लाहौर वाली प्रति को असली रासो माना है और टिप्पणी के साथ उसका एक संस्करण भी प्रकाशित कराया है। इस प्रति को प्रामाणिक मानने का एकमात्र कारण यही बतलाया गया है कि उक्त प्रति के छन्दों का प्रमाण "सत्त सहस्र" या सातहज़ार है और गणना करने पर उसकी श्लोक-संख्या आर्या-छंद के हिसाब से सातहज़ार के लगभग ही ठहरती है।

अगरचंद नाहटा के पास जो प्रति है, वह भी उल्लेखनीय है। इसका लिपिकाल सं० १७६२ है।

इस रूपान्तर की सभी प्रतियाँ सं० १७०० के पश्चात् की ही हैं, उसके पूर्व की कोई नहीं। ज्ञान-भंडार वाली प्रति सं० १७३९-४० की है, अबोहर वाली सं० १७२३ की: नाहटा वाली प्रति का लिपिकाल सं० १७६२, पहले ही बतला दिया गया है। इस रूपांतर में अध्यायों का नाम प्रायः "प्रस्ताव" ही मिलता है।

(३) लघुरूपांतर

इसकी तीन प्रतियाँ बीकानेर-राज्य के "अनूप-संस्कृत-पुस्तकालय" में तथा एक श्रीयुत अगरचंद नाहटा के पास है। यह रूपांतर बहुत छोटा है। उक्त तीनों प्रतियों के

अनुसार समय संख्या १६ और ग्रंथाग्रंथ* ३५०० है। इन तीनो प्रतियो के संबंध मे एक बात और उल्लेखनीय यह है कि उनमे पहले, सातवे और अंत के समय का नाम किसी भी प्रति में नहीं मिलता। इन्हीं मे से दो प्रतियो मे वह छंद मिलता है, जिसकी अंतिम दो पंक्तियाँ ,निम्नलिखित है :—

"रघुनाथ चरित हनुमन्तकृत, भूप भोज उद्धरिय जिमि।
पथ्वीराजसुजसु कविचड कृत चंद्रसिंह उद्धरिय इमि ॥

इनमे से एक प्रति सत्रहवी शताब्दि की है। नाहटा वाली प्रति सं० १७२८ की है। शेप दो मे संवत् का उल्लेख नहीं है, किंतु वे भी अनुमान से सत्रहवीं शताब्दी की ही प्रतीत होती है। अनूप-संस्कृत-पुस्तकालय की तीनो प्रतियाँ परस्पर मिलती जुलती है और एक दूसरे की प्रतिलिपि जान पड़ती है। किंतु नाहटाजी वाली प्रति मे कहीं-कहीं भिन्नता है—पाठ मे भी और रूप मे भी। इस रूपांतर मे अध्यायो का नाम 'खण्ड' दिया गया है।

इन रूपांतरो में मुख्यतया परिमाण का ही अंतर है। बृहत् रूपांतर के अधिकांश खण्ड, मध्यम रूपांतर मे नहीं है; इसी प्रकार मध्यम के बहुतसे खण्ड लघु मे नहीं है। इतिहासविरुद्ध बाते तीनो मे न्यूनाधिक मात्रा मे वर्तमान है। हाँ, छोटे रूपांतरो मे उनकी संख्या न्यून अवश्यहै।

(४) लघुतम रूपांतर

अभी तक इन तीन रूपांतरो का ही वृत्तांत ज्ञात था, किंतु

---

* अनुष्टुपश्लोकों की संख्या के आधार पर श्लोकसंख्या या ग्रंथाग्रंथ का परिमाण निकाला जाता है।

राजस्थानी-साहित्य के परिश्रमी अन्वेषक श्री अगरचंद नाहटा ने एक और रूपांतर भी खोज निकाला है, जो इन सब से छोटा है। परिमाण में वह लघु-रूपांतर के आधे से भी कम है। लिपिकार ने उसकी श्लोक-संख्या १३०० प्रमाण लिखी है। इसमें अध्यायों का विभाजन नहीं है। भाषा अपेक्षाकृत प्राचीन जान पड़ती है। इसका लिपिकाल सं० १६६७ है।

इधर नई खोज के अनुसार रासो की सब से प्राचीन-प्रति चंद के वंशज नानूराम के पास बतलाई जाती है। उसका परिचय प्रो० रमाकांत त्रिपाठी ने चाँद के मारवाड़ी अंक के पृ० १४६ में "महाकवि चंद के वंशधर" शीर्षक लेख में निम्नलिखित शब्दों में दिया है। "नानूराम के पास रासो की दो प्रतियाँ भी हैं। मैंने दोनों को देखा है। एक प्रतिलिपि तो कागज-स्याही तथा अक्षरों को देखते हुए काफी पुरानी ज्ञात होती है। उसे वे चंद के पुत्र जल्ल कृत बतलाते हैं। .. .. .. प्रतिलिपि, जैसा कि नीचे दिये हुए लेख से ज्ञात होता है, सं० १४५५ में की गई थी'.—

'संवत् १४५५ वरसे शरद ऋतौ आश्विनमासे शुक्लपक्षे उदयात घटी १६ चतुरथी दिवसे लिखितं। श्री षरतरगच्छ धिराजे, पंडित श्री रूप जी लिखित। चेल श्री सोभाजी श। कपास्नन मध्ये लिपिकृतं।"

किंतु, जब तक यह प्रति प्रकाश में न आए और विद्वान् उसकी प्राचीनता के संबंध में एकमत न हो जायँ, तबतक उसे संवत् १४५५ में लिपिबद्ध होना कैसे माना जा सकता है? श्रीयुत हरप्रसाद शास्त्री को नानूराम जी ने जो 'महोबा-समय' लिखवाया था, यदि वह सं० १४५५ वाली प्रति का हो तो निस्संदेह वह जाली है, कारण कि उसकी भाषा अपेक्षाकृत

बहुत अर्वाचीन ज्ञात होती है। उदाहरण के लिए उसकी एक पंक्ति श्रीयुत अगरचंद नाहटा ने उद्धृत की है, जो इस प्रकार है—

'एक पहुर में साँवत्सारे।
लोक हजार पाँच तहं मारे॥"*

इसीसे उसकी प्राचीनता का अनुमान लगाया जा सकता है।

नागरी-प्रचारिणी-सभा के सं० १६४२ वाली प्रति के संबंध में भी संदेह किया जाता है। इस प्रकार, अब तक प्राप्त प्रतियों को, जब तक कोई विद्वान् प्रामाणिक न सिद्ध करदे, श्रीयुत अगरचंद नाहटा वाली प्रति ही प्राचीनतम मानी जायगी।

मूल रासो का परिमाण

उक्त चारों रूपांतरों के तुलनात्मक अध्ययन से ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि रासो सम्बन्धी उपलब्ध सामग्री कितनी संदिग्ध है तथा अभी तक उसका सच्चा परिमाण अंधकार के गर्त में पड़ा हुआ है।

प्रस्तुत प्रतियों में भी यह कहना कि अमुक प्रति लघुतम होने से प्रामाणिक है, युक्तियुक्त नहीं प्रतीत होता। संभव है, संकलनकर्ता ने जानबूझकर कुछ अंश छोड़ दिया हो और मुख्य-मुख्य अंशों को एकत्र करके किसी के पठनार्थ एक संग्रह तैयार कर लिया हो। ऐसे संस्करण में स्वाभाविक रूप से ऐतिहासिक अशुद्धियों की संख्या भी कम रहेगी। जितनी ही अधिक घटनाओं का समावेश किया जायगा उतनी ही अशुद्धियों का बढ़ना स्वाभाविक ही है। अतः अशुद्धियों का अभाव देखकर

* नाहटा. "राजस्थानीपत्रिका;" "पृथ्वीराजरासो और उसकी हस्तलिखित प्रतियाँ" पृ० १३।

भी उसे प्रामाणिक सिद्ध करने के लोभ में पड़ना भ्रम है। वास्तव मे जिस आधार पर इन प्रतियों का प्रासाद खड़ा किया गया है, उसकी नीव तक पहुँचने के पूर्व ही रासो का मूल रूप विकृत हो चुका था। ठोस प्रमाण के अभाव में आलोचक गण किस प्रकार पंगु की भाँति इतस्तत..लुढ़क-पुढ़क रहे है यह नीचे उद्धृत मतो से ही ज्ञात हो जायगा।

श्रीयुत गौरीशंकर हीराचंद ओझा पृथ्वीराजरासो के छोटा होने की कल्पना ही निर्मूल सिद्ध करते है। उनके इस कथन का आधार वि० स० १८०० के आस-पास रचे हुए "वृत्तविलास" नामक ग्रंथ का वह अंश है जिसे चंदवरदाई के वंशधर कवि जदुनाथ ने करोली के यादवराजा गोपालसिंह के राज्य-समय मे बनाया था। उसमे उसने अपने वंश का परिचय देते हुए लिखा है कि "चंदने १०५००० श्लोक (अनुष्टुप्) के परिमाण का पृथ्वीराज के चरित्र का रासो बनाया।"❋

नाहटा जी ओझाजी के इस तर्क को भ्रामक मानते है; क्योंकि उन्हे बहुत सी प्रतियाँ ऐसी मिली है जिनमें ग्रंथाग्रंथ ३५०० श्लोक दिया हुआ है, और कुछ अन्य प्रतियो मे केवल दश हजार श्लोक का ही प्रमाण मिलता है। आपके अनुसार ओझा जी का कथन, यहीं तक ग्रहण किया जा सकता है कि सं० १८०० के लगभग रासो का परिमाण एक लाख पांचहजार श्लोक तक का हो चुका था।"†

❋ एक लाख रासौ कियौ सहसपंच परिमान।
पथ्वीराज नृपकौ सुजस जाहर सकल जिहान॥
(कोपोत्सघ-स्मारक-संग्रह पृ० ६४)

† 'राजस्थानी, : पृथ्वीराजरासो और उसकी हस्तलिखित प्रति पृ० १२।

पंडित मथुरा प्रसाद जी दीक्षित लाहौर कालेज वाली प्रति को ही "असली रासो" मानते हैं; क्योंकि रासो में उसका प्रमाण "सप्तसहस" बतलाया गया है और उस प्रति की श्लोक संख्या आर्याछंद के हिसाब से सात हज़ार के लगभग पड़ जाती है। पर ग्रंथाग्रंथ सदैव अनुष्टुभ् छंदों के आधार पर लिया जाता है जिसमें ३२ अक्षर होते हैं। "सत्तह" शब्द का अर्थ श्री दीक्षित जी ने आर्या-छंद लगाया है। इसका आधार अनुमान है, कोष नहीं। अतएव यह प्रमाणिक नहीं माना जा सकता।

नानूराम जी भी रासो का परिमाण तीन-चार हज़ार श्लोक बतलाते हैं; किन्तु उनके पास जो "प्राचीनतम-प्रति" है, वह अभी तक प्रकाश में नहीं आई है। अतएव उसके सम्बन्ध में स्पष्टरूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

आज से कुछ वर्ष पूर्व, श्री मुनि जिनविजय जी को जैन प्रबन्धों में चंद कवि के चार पद्य मिले, जो अपभ्रंश में थे। खोज करने से उनमें से तीन परिवर्त्तित रूप में 'रासो' में मिल गये। इससे मुनि जी ने यह अनुमान किया कि 'रासो' का मूल रूप अपभ्रंश में ही था। डा० सुनीति कुमार चटर्जी ने इस मत का समर्थन किया। इधर बीकानेर के राजकीय-पुस्तकालय मेंरासो का एक और छोटा रूपांतर प्राप्त हुआ है। यह पंजाब वाले रूपांतर के आधे से भी कम है। डा० दशरथ शर्मा ने उसकी ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में विचार किया है। भाषा के सम्बन्ध में श्री शर्मा जी का भी मत है कि वह अपभ्रंश ही थी।

इधर उदयपुर के श्री मोहन सिंह राव कई वर्षों से 'पृथ्वीराजरासो' के गम्भीर अध्ययन में प्रवृत्त हैं। आप रासो के प्रक्षिप्त अंश को पृथक करने में अथक परिश्रम कर रहे हैं। अभी आप का कार्य प्रकाश में नहीं आया, जिससे रासो के परिमाण पर पूर्ण प्रकाश पड़ सके।

यदि मूल रासो अपभ्रंश में था, तो उसका आकार निश्चित रूप से छोटा रहा होगा। राजस्थान के चारणों और भाटों की यह विशेषता रही है कि वे अपनी तथा अन्य कवियों की कवितायें कंठस्थ कर लेते थे। ऐसी कविताओं में भाषा का परिवर्त्तन होना सर्वथा स्वाभाविक है। बहुत संभव है, रासो की भी यही दशा हुई हो, और आरम्भ में चंद द्वारा रचित कुछ छंद रहे हों जो कालान्तर में प्रक्षिप्त अंशों की अधिकता के कारण बृहत रूप धारण कर लिए हों। जो भी हो, आज 'रासो' के प्रक्षिप्त अंश को पृथक करके उसके मूलरूप का पता चलाना अतीव दुष्कर कार्य है।

रासो का उद्धार

"पुस्तक जल्हन हत्थ दै चलि गज्जन नृपकाज" तथा "चंद-नंद उद्धरिय तिमि" को देखकर अब तक यही कहा जाता था कि रासो को "चंद-नंद" 'जल्हन', 'जल्हण' अथवा 'झल्ल' ने पूरा किया था; किन्तु अगरचंद नाहटा का कथन है कि उनके द्वारा प्राप्त प्रतियों में पहला पद्य तो है ही नहीं, दूसरे में भी "चंद-नंद" के स्थान पर "चन्द्रसिंह" पाठ मिलता है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि रासो के उद्धारकर्त्ताओं में चंद्रसिंह भी एक था।

यह चन्द्रसिंह कौन था, इसका पता विद्वानों को बहुत दिन तक नहीं था किंतु इधर संयोगवश "मुहणोत नैणसी री ख्यात" में उसके संबन्ध में कुछ पंक्तियाँ मिली हैं, जिससे यह ज्ञात होता है कि चाँद सिंह अथवा चंद्र सिंह महाराजा मानसिंह के छोटे भाई और अकबर के सेनापति सूरसिंह का पुत्र था। इस प्रकार चंद्रसिंह मानसिंह का भतीजा था।

रासो के लघुरूपांतर का उद्धार इसी कछवाहा वंशीय चन्द्र सिंह ने किया था जैसा कि उक्त रूपातर के अंतिम पद्य में दिया गया है। वह पद्य निम्नलिखित है—

"प्रथम वेद उद्धरिय बंभ मच्छह तनु किन्नौ।
द्वितिय वीर वाराह धरनि उद्धरि जसु लिन्नौ॥
कौमारिक भद्देस धम्म उद्धरि रस सन्चिय।
कूरम सूर नरेस हिन्द हद उद्धरि रच्चिय॥
रघुनाथ चरित हनुमन्त कृत भूपभोज उद्धरिय जिमि।
प्रथिराज सुजस कवि चन्द कृत चंदसिंह उद्धरिय तिमि॥

लघुतम-रूपातर की प्रति बीकानेर नरेश महाराज कल्याण मल्ल के पुत्र और प्रसिद्ध महाराजा रामसिंह के लघुभ्राता, राजा भाण के पुत्र, भगवानदास के लिए लिखी गई थी। राजा भगवानदास गुजरात में रामसिंह के पास रहते थे, जो वहाँ के तत्कालीन सूबेदार थे। यही कारण है कि उक्त प्रति गुजरात से प्राप्त हुई है।

मध्यम-रूपांतर के उद्धारक का पता नहीं चलता। वृहत् रूपांतर के उद्धारक महाराणा अमरसिंह कहे जाते हैं। रासो के उद्धारक अमरसिंह प्रथम थे या द्वितीय इस सम्बन्ध में भी विवाद है। श्री श्यामसुन्दरदास जी प्रथम को ही उद्धारकर्ता मानते हैं, जिसके लिए उन्होंने दो कारण उपस्थित किया है—

(१) अमरसिंह द्वितीय के दादा महाराणा राजसिंह के सं० १७३२ के शिलालेख में खुदे राजप्रशस्ति काव्य में रासो का उल्लेख हुआ है।

(२) सं० १६४२ की लिखी प्रति काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा के संग्रहालय में है।

किंतु ये दोनों ही तर्क निर्बल हैं। राजप्रशस्ति के उल्लेख से यह नहीं सिद्ध किया जा सकता कि अमरसिंह प्रथम ने ही इसका उद्धार कराया था और न यही सिद्ध होता है कि बृहत् रूपांतर भी तबतक संगृहीत हो चुका था। उससे केवल इतना ही परिणाम निकलता है कि तब तक रासो का अस्तित्व ज्ञात हो चुका था और उसके किसी एक रूपांतर का संग्रह भी हो चुका था; यह आवश्यक नहीं कि वह बृहत् रूपांतर ही हो।

दूसरे तर्क के सम्बन्ध मे इतना ही कह देना पर्याप्त है कि उसकी सं० १६४२ की तिथि ही संदिग्ध है। फिर १६४२ तक अमरसिंह चित्रकोट के राणा भी नहीं हुए थे, वे तो सं० १६५३ में राणा हुए।

अतः यह स्पष्ट है कि बृहत् रूपांतर का उद्धार, अमरसिंह द्वितीय ने ही कराया था, जिसका राज्यकाल १७५५ वि० से १८०८ वि० तक है। यह बात सं० १७६० की प्रति की पुष्पिका से भी सिद्ध हो जाती है, जो इस प्रकार है:—

संवत् १७६० वर्षे शाके १६२५ प्रवर्त्तमाने उत्तरायणगते श्री सूर्ये शिशिर ऋतौ सन्मांगल्यपद माघमासे कृष्ण पक्षे ६ तिथौ सोमवासरे श्री उदयपुर मध्ये हिंदूपति पातिसाहि महाराजाधिराज महाराणा श्री अमरसिंह जी विजय राज्ये·· ········

ऊपर के तथ्यों पर विचार करने पर ज्ञात होता है कि रासो का उद्धार सम्राट अकबर के समय से ही प्रारम्भ होता है। क्योंकि उसके पूर्व का कोई रूपांतर प्राप्त नहीं। अकबर बड़ा विद्याप्रेमी था। उसके समय मे कई इतिहासग्रंथ लिखे गए। इसी समय राजपूतों का भी प्राचीन इतिहास एकत्र किया जाने लगा था। ऐसा प्रतीत होता है कि इसी सिलसिले में चन्द के छंद भी यत्र-तत्र से एकत्र किए गए होंगे।

रासो के उद्धार मे कदाचित् स्वयं अकबर ने भी भाग लिया था। यह प्रसिद्ध है कि नरहरि चारण ने अकबर को चन्द का काव्य सुनाया था जिसके लिए सम्राट ने उसे आध सेर सोना दिया था।

ऐतिहासिकता

कुछ समय पहले पृथ्वीराजरासो प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता था और इसका बड़ा सम्मान था। केवल राजपूताने ही मे नही, अन्य प्रान्त के हिन्दुओ के लिए भी इसमे वर्णित घटनाएँ गर्व की वस्तु बन चुकी थी। विशेषरूप से 'संयोगिता-स्वयंवर' तथा 'गोरी के बध की कथा' तो देश के कोने-कोने में प्रचलित हो गई थी। राजपूताने के प्रसिद्ध इतिहास-लेखक, कर्नल टाड ने, इसको प्रामाणिक मानकर तथा इसके सौंदर्य पर मुग्ध होकर रासो के लगभग तीस हजार पद्यो का अंग्रेजी मे अनुवाद भी किया था। हिन्दी-साहित्य के प्रथम इतिहास लेखक तासी ने इसे प्रामाणिक माना, बंगाल की रायल ऐशियाटिक-सोसाइटी ने इसके कुछ अंश को प्रकाशित भी करवाया किन्तु राजपूताने के प्रसिद्ध इतिहासकार पं० गौरीशंकर हीराचंद ओझा जी की विद्वत्तापूर्ण आलोचना का फल यह हुआ कि अब रासो को जाली कह देना एक साधारण सी बात हो गई है। वैसे तो रासो की प्रामाणिकता पर संदेह करने वाले सर्वप्रथम व्यक्ति थे, जोधपुर के कविराजा मुरारीदान तथा उदयपुर के कविराजा श्यामलदान, किंतु दृढ़ प्रमाणों के आधार पर इसकी प्रामाणिकता को गंभीर आघात पहुँचाकर विद्वानो का ध्यान आकृष्ट कराने का श्रेय, प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता डा० बुलर को ही देना चाहिए।

सन् १८७५ ई० में काश्मीर मे संस्कृत-पुस्तकों की खोज के सिलसिले में डा० बुलर को "पृथ्वीराजविजय महाकाव्य"

की एक प्राचीन-प्रति जयानक कवि द्वारा लिखी हुई मिली जिसपर द्वितीय राजतरंगिणी के कर्त्ता जोनराज की टीका भी थी। ग्रंथ का अनुशीलन करने पर आपको ज्ञान हुआ कि उक्त महाकाव्य का रचयिता पृथ्वीराज का समकालीन और उसका राजकवि था। उसमें लिखा हुआ, चौहानों का वृत्तांत, वि० सं० १०६० तथा कि सं० १२२६ के शिलालेखों से मिल जाता था। पृथ्वीराजविजय में दी हुई पृथ्वीराज की वंशावली भी शिलालेखों से मिल जाती थी। किंतु 'पृथ्वीराजरासो' की घटनाएँ तथा उसकी वंशावली, सभी उक्त महाकाव्य के विपरीत पड़ती थीं। यही नहीं, पृथ्वीराजविजय में इस बात की कहीं चर्चा तक न थी कि पृथ्वीराज दिल्ली के राजा अनंगपाल की कन्या से उत्पन्न हुआ था और उसे अनंगपाल ने गोद लिया था। मुसलमान इतिहासकार भी उसे अजमेर का ही राजा बतलाते हैं, दिल्ली का नहीं। इसके विपरीत रासो में उसे सैकड़ों बार दिल्ली का शासक कहा गया है।

इन सब बातों पर विचार करके डा० बुलर ने बंगाल की रॉयल-एशियाटिक-सोसाइटी को इसीप्रकार के विवेचन के साथ एक पत्र लिखा जिसका अंतिम अंश यह था—

"मुझे इस काल के इतिहास के संशोधन की बड़ी आवश्यकता जान पड़ती है और मैं समझता हूँ कि चंद के रासो का प्रकाशन बन्द कर दिया जाय तो अच्छा होगा। वह ग्रंथ जाली है जैसा कि जोधपुर के मुरारीदान और उदयपुर के श्यामलदान ने बहुत पहले प्रकट किया था। "पृथ्वीराजविजय" के अनुसार पृथ्वीराज के वन्दीराज अर्थात् मुख्य भाट का नाम पृथ्वीभट था, न कि चंदवरदाई।"*

*प्रोसीडिंग्स आफ दी रायल एशियाटिक सोसायटी आफ दी बंगाल, नं ४-५ (अप्रैल मई, १८९३) पृ० ९४-९५।

इस सामग्री से पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा जी को प्रेरणा मिली और उन्होंने "पृथ्वीराजरासो का निर्माण-काल" शीर्षक एक बड़ा ही गवेषणापूर्ण निबंध, काशी-नागरी-प्रचारणी-सभा के "कोषोत्सव-स्मारक-संग्रह" में प्रकाशित कराया। उसी निबंध के आधार पर ओझा जी के विचारों का सारांश नीचे दिया जा रहा है।

(१) पृथ्वीराजरासो में 'परिहार', 'चालुक्य' तथा 'परमार' कुल के क्षत्रियों को अग्निवंशी कहा गया है। आगे चलकर चहुवान की उत्पत्ति भी उसमें वशिष्ट द्वारा रचे हुए एक दूसरे यज्ञकुण्ड से बतलायी गई है। यह शिलालेखों के सर्वथा विरुद्ध है। ओझा जी का कथन है कि १६वीं शताब्दि के पूर्व के किसी भी शिलालेख अथवा पुस्तक में कहीं भी इन क्षत्रियों को अग्निवंशी नहीं कहा गया है। वि० सं० ६०० के आस-पास की प्रतिहार राजा भोजदेव की एक प्रशस्ति मिली है जिसमें प्रतिहार, सूर्यवंशीय बतलाये गए हैं। राजशेखर द्वारा लिखित दशवीं शताब्दि के नाटकों में उक्त भोजदेव के पुत्र और पौत्र को क्रमश. "रघुकुल-तिलक" और "रघुवंश-मुक्तामणि" कहा गया है।

चालुक्य [सोलंकी] राजा विक्रमादित्य के राज्यकाल में वि० सं० १०७५ का एक दानपत्र प्राप्त हुआ है, जिसमें सोलंकियों को चन्द्रवंशी लिखा गया है। सुप्रसिद्ध जैनाचार्य हेमचन्द्र ने (वि० सं० ११५०–१२३०) अपने "द्वयाश्रय महाकाव्य" में गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव के दूत और चेदि देश के राजा कर्ण का वार्तालाप विस्तार में दिया है। उसमें कर्ण ने सोलंकी राजा को "सोम (चन्द्र) वंश-विजयी" कहा है। इसके अतिरिक्त और भी कई प्रमाण दिये गए हैं।

चौहानों के भी सूर्य-वंशी होने के अनेक प्रमाण उपलब्ध है। अजमेर के "ढाई दिन के झोपड़ा" नाम की मसजिद से एक शिला मिली है, जिसमे चौहानो को सूर्यवंशी कहा गया है। बात यह है कि पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर का बड़ा भाई विग्रहराज [बीसलदेव, चतुर्थ] बड़ा विद्वान् राजा था। उसने अजमेर मे अपनी बनवाई हुई संस्कृत-पाठशाला [सरस्वती-मन्दिर] मे अपना बनाया हुआ "हरकेलि नाटक" अपने राज कवि सोमेश्वर रचित "ललितविग्रहराज", नामक नाटक तथा चौहानो के इतिहास का एक काव्य शिलाओ पर खुदवाये। मुसलमानो ने उस मन्दिर को तोड़कर वहाँ पर "ढाई दिन का झोपड़ा" नाम की मसजिद बनवाई थी।

'पृथ्वीराज-विजय' मे भी चौहानो को स्थान-स्थान पर सूर्य-वंशी लिखा है। "हम्मीर-महाकाव्य" के रचयिता, ग्वालियर के तोमरवंशी राजा, वीरम के दरबारी जैन कवि नयन चन्द सूरि [सं० १४६० के आसपाप] को चौहानो का अग्निवंशी होना मालूम न था।

इसप्रकार पृथ्वीराज के पूर्व के अनेक शिलालेखो तथा पुस्तको के उल्लेखो से यह निर्विवादरूप से सिद्ध हो जाता है कि पृथ्वीराज के समय तक चौहान सोलंकी तथा परिहार कहीं भी अग्निवंशी नही माने जाते थे। यदि रासो पृथ्वीराज के समय का बना होता तो उसमे चौहानो को अग्निवंशी न लिखा जाता।

(२) श्रीयुत ओझा जी ने अपने लेख मे चौहानों की वंशावली का एक नकशा दिया है जिसमे चौहान राजा विग्रहराज के समय के वि० सं० १०३० को हर्षनाथ के मन्दिर की प्रशस्ति, चौहान राजा सोमेश्वर के समय के वि० सं० १२२६ के बिजोलिया के शिलालेख, "पृथ्वीराज-विजय महाकाव्य", पंद्रहवीं

शताब्दि के आसपास के रचे हुए "प्रबन्ध कोष", वि० सं० १४६० के आसपास के बने हुए "हम्मीर-महाकाव्य", वि० सं० १६३५ के आसपास के "सुर्जनचरित महाकाव्य तथा "पृथ्वी-राज रासो" मे दी हुई वंशावलियो पर विचार किया गया है।

इन वंशावलियो को परस्पर मिलान करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि "पृथ्वीराजरासो" के ४४ नामो मे से केवल ७ नाम ही विजोलियाँ के शिलालेख और "पृथ्वीराजविजय" के नामो से मिलते हैं। अन्य सभी ग्रंथो के अधिकांश नाम शिलालेखादि से मिल जाते है। "पृथ्वीराजविजय" के ३१ नामो मे से २२ नाम तथा "हम्मीर-महाकाव्य" के ३१ नामो मे से २१ नाम शिलालेखादि से मिल जाते हैं। अर्वाचीन होते हुए भी "सुर्जन-चरित" के २७ नामो मे से १३ नाम तक मिल जाते हैं। इससे सिद्ध होता है कि "पृथ्वीराजरासो" "सुर्जनचरित" (वि० सं० १६३५ के आसपास) से भी अर्वाचीन है। "सुर्जनचरित" के निर्माण-काल के समय तक यदि "पृथ्वीराजरासो" प्रसिद्धि मे आगया होता, तो अवश्य उसी के अनुकरण पर "सुर्जनचरित" की वंशावली बनाई जाती, किन्तु ऐसा न होना ही यह सिद्ध करता है कि रासो की रचना उसके बाद सत्रहवीं शताब्दि में किसी समय हुई।

(३) "पृथ्वीराजरासो" मे लिखा है कि "दिल्ली के तँवर राजा अनंगपाल" ने अपनी छोटी कुंवरि कमला का विवाह सोमेश्वर के साथ किया, जिससे पृथ्वीराज का जन्म हुआ। अंत मे अनगपाल देहली का राज्य अपने दौहित्र पृथ्वीराज को देकर वदरिकाश्रम मे तप करने को चला गया।" इससे यह विदित होता है कि पृथ्वीराज की माता का नाम कमला था, किन्तु यह नाम अशुद्ध है। "पृथ्वीराजविजय" तथा "हम्मीरमहाकाव्य" आदि ऐतिहासिक पुस्तको के अनुसार

पृथ्वीराज की माता का नाम कर्पूर देवी सिद्ध होता है और वह अनंगपाल की पुत्री नहीं, प्रत्युत त्रिपुरी के हैहय (कलचुरि) वंशी राजा 'तेजल' (अचलराज) की पुत्री थी।

दिल्ली का राज्य भी पहले ही वि० सं० १२२० मे चौहान राजा विग्रहराज चतुर्थ ने अपने राज्य मे मिला लिया था। अत रासो के दोनो कथन अनैतिहासिक सिद्ध होते हैं।

(४) 'पृथ्वीराजरासो' मे लिखा है कि "पृथ्वीराज की वहिन पृथा का विवाह मेवाड़ के राजा समरसिंह के साथ हुआ था जो पृथ्वीराज के पक्ष मे लड़ता हुआ शहाबुद्दीन गोरी के साथ की लड़ाई मे मारा गया।" समरसिंह के समय के आठ शिलालेख मिले हैं जिनमें से प्रथम वि० सं० १३३० का है और अंतिम वि० सं० १३५८ का है। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि रावल समरसिंह वि० सं० १३५८ अर्थात् पृथ्वीराज की मृत्यु के १०९ वर्ष पीछे तक तो अवश्य जीवित था। ऐसी अवस्था मे पृथाबाई के विवाह की कथा कपोल-कल्पित ही प्रतीत होती है।

(५) रासो में लिखा है कि "गुजरात के राजा भीम के हाथ से पृथ्वीराज का पिता सोमेश्वर मारा गया। अपने पिता का बदला लेने के लिए पृथ्वीराज ने गुजरात पर चढ़ाई कर भीमदेव को मारा और उसके पुत्र कचरा-राय को अपनी ओर से गद्दी पर बिठाकर गुजरात के कुछ परगने अपने राज्य में मिला लिए।" ये दोनों कथाएँ कपोल-कल्पित हैं। भीमदेव वि० सं० १२३५ मे बिल्कुल बाल्यावस्था मे गद्दी पर बैठा था। प्रबन्ध-कोष तथा शिलालेखो के प्रमाण से यह सिद्ध है कि सोमेश्वर की मृत्यु वि० सं० १२३६ मे हुई। इतनी बाल्यावस्था मे भीमदेव, सोमेश्वर का वध नही करसकता था। पृथ्वीराज के बदला लेने की कथा भी असत्य है। भीमदेव का एक शिला-

लेख वि० सं० १२६५ का तथा एक दानपत्र वि० सं० १२६६ का प्राप्त हुआ है । इससे सिद्ध होता है कि वह पृथ्वीराज की मृत्यु से अनुमानतः पचास वर्ष पीछे तक भी वर्तमान था।

(६) रासो के अनुसार पृथ्वीराज का प्रथम विवाह ग्यारह वर्ष की अवस्था मे मंडोवर के पड़िहार नाहरराय की पुत्री से हुआ; बारह वर्ष की अवस्था मे आबू के परमार राजा सलख की पुत्री और जैत की बहन इच्छिनी से हुआ; तेरह वर्ष की अवस्था मे दाहिमा चावंड की बहन से हुआ जिससे रैणसी का जन्म हुआ। इसीप्रकार देवगिरि के राजा भाण की पुत्री शशिव्रता और रणथंभोर के यादव राजा भानराय की पुत्री हंसावती इत्यादि के सब विवाहों को जोड़ने पर रासो के अनुसार ११ वर्ष से ३६ तक की अवस्था मे पृथ्वीराज के चौदह विवाह निकलते है।

ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने से ज्ञात होता है कि पृथ्वीराज ३६ वर्ष की अवस्था तक जीवित ही नहीं रह सके थे। उनकी मृत्यु तीस वर्ष की अवस्था के पहले ही हो गई थी। नाहरराय पड़िहार पृथ्वीराज के कई सौ वर्ष पूर्व हुआ था जैसा कि वि० सं० ८९४ के शिलालेखो से सिद्ध है। आबू पर सलख या जैत नामका परमार राजा हुआ ही नहीं। ताम्रपत्रों और शिलालेखो से सिद्ध होता है कि पृथ्वीराज के राज्यारोहण के पूर्व से लगातार उसकी मृत्यु के बहुत पीछे तक आबू का राजा धारावर्ष था, न कि सलख या जैत। पृथ्वीराज का पुत्र रैणसी नहीं, अपितु गोविंद राज था, जैसा कि फारसी तवारीखो के "गोदा" या "गोला" से स्पष्ट है। देवगिरि मे भाण नामक कोई राजा ही नहीं हुआ और न रणथंभोर पर कभी यादवो का अधिकार हुआ। इस प्रकार ज्ञात होता है कि रासो में दिये हुए पृथ्वीराज के अधिकांश साले श्वशुरों का

या तो अस्तित्व ही नहीं था और अगर था भी तो सैकड़ो वर्ष आगे या पीछे । तब फिर इन विवाहों को कैसे सत्य माना जा सकता है ?

श्री ओझा जी लिखते है कि "यदि "पृथ्वीराजरासो" पृथ्वीराज के समय मे लिखा गया होता तो पृथ्वीराज का वंश-परिचय उसके पूर्व-पुरुपो की नामावली, माता-पिता, बहिन और रानियो आदि का तो शुद्ध परिचय मिलना चाहिए था। ऐसा न होना यही बतलाता है कि उसे पृथ्वीराज के कई सौ वर्ष पीछे चौहानों के इतिहास से अनभिज्ञ चंदवरदाई नामके किसी भाट ने लिखा होगा।

(७) इसके पश्चात् ओझा जी ने रासो में आए हुए भिन्न-भिन्न संवतो की जॉच की है। आपका कथन है कि रासो में आए हुए सभी संवत् अशुद्ध निकलते हैं। टॉड का कहना था कि रासो मे १०० वर्ष पहले के संवत् दिए हुए हैं। पं० मोहन लाल विष्णुलाल पंड्या जी ने "विक्रम साक अनंद" के आधार पर "भटायत" या "अनंद" संवत् की कल्पना की; किन्तु फिर भी संवतो की अशुद्धि दूर न हुई। इससे पृथ्वीराज के जन्मसंवत् १११५ मे ४३ जोड़ देने से उनकी मृत्यु ११५८ भटायत संवत् अर्थात् वि० सं० १२५८ मे माननी पड़ती थी। परन्तु वि० सं० १२४९ मे ही अन्य ऐतिहासिक प्रमाणों से उनकी मृत्यु निश्चित थी; अतः इन नौ वर्षों की कमी पूरी करने के लिए पंड्या जी ने पृथ्वीराज के जन्म संवत्-संबंधी दोहे मे "अनंद" शब्द को देखकर "अनंद संवत्" की कल्पना की और उक्त शब्द का अर्थ "अ–नंद" अर्थात् "नौरहित" किया। फिर इससे "नौरहित सौ" अर्थात् ९१ वर्ष का अंतर बतलाकर आपने उक्त नवीन संवत् की कल्पना की और यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि पृथ्वीराजरासो मे दिए हुए

सब संवतो मे ६१ जोड़ देने से वे शुद्ध विक्रम संवत् हो जाते हैं। "अनंद संवत् की कल्पना" शीर्षक लेख में श्री ओझा जी ने इसे भी निराधार सिद्ध कर दिया।❀ रासो की निम्नलिखित तिथियों की अशुद्धि की ओर आपने संकेत किया है—

(क) वीसलदेव के राज्या-रोहण का संवन् रासो मे ८२१ दिया हुआ है। अजमेर बसने के पश्चात् बीसलदेव नाम का एकही चौहानराजा [सोमेश्वर का बड़ा भाई] हुआ जिसके समय के शिलालेख वि० सं० १२१०, १२११, और १२२० के मिले हैं। इस प्रकार अनन्द संवत् ८२१ अथवा वि० सं० ६११ मे उसका राज्याभिषेक होना किसी प्रकार संभव नहीं।

(ख) रासो के अनुसार पृथ्वीराज का जन्म संवत् १११५ है। अनन्द संवत् के अनुसार यह वि० सं० १२०६ होगा। "पृथ्वीराज-विजय" में लिखा है कि सोमेश्वर के देहांत के समय (वि० सं० १२३६ में) पृथ्वीराज बालक था। वि० सं० १२०६ तक तो पृथ्वीराज का पिता सोमेश्वर ही बहुत छोटा था और उसका विवाह भी नहीं हुआ था। वि० सं० १२१८ के पश्चात् सोमेश्वर ने कर्पूरदेवी से विवाह किया जिससे संभवतः वि० सं० १२२० या उसके कुछ पीछे पृथ्वीराज का जन्म हुआ होगा। इस तरह रासो का संवत् १११५ और पंड्या जी का वि० सं० १२१६ दोनों ही अशुद्ध हैं।

(ग) रासो में लिखा है कि "वि० सं० ११३६ में पृथ्वीराज के सामंत सलख (आबू का परमार) ने शहाबुद्दीन को कैद किया।" आबू पर सलख नाम का कोई परमार राजा हुआ

❀नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका [नवीन संस्करण] भाग १ पृ० ३६६-४५४।

ही नहीं, यदि अनन्द संवत् के अनुसार इसे वि० सं० १२२७ भी माना जाय तो भी उस समय तक न शहाबुद्दीन गोरी भारत मे आया था और न पृथ्वीराज गद्दी पर ही बैठा था। इसीप्रकार एक अन्य स्थल पर भी रासो में लिखा है कि सं० ११३८ अथवा अनन्द संवत् के अनुसार वि०, सं० १२२६ में चामुंडराय द्वारा गोरी पकड़ा गया। यह भी असम्भव है, क्योंकि तब तक गोरी का आगमन ही नहीं हुआ था।

(घ) रासो मे लिखा है कि वि० सं० ११३८ मे पृथ्वीराज दिल्ली की गद्दी पर बैठा और उसी वर्ष उसने खाटू के जंगल से धन निकाला। वि० सं० ११३६ मे उसने समुद्र-शिखर के यादवराजा विजयपाल की पुत्री पद्मावती से विवाह किया और वि० सं० ११४१ मे दक्षिण देशीय राजाओ से उसे कर्नाट देश की एक सुन्दरी वेश्या मिली। ये सारी तिथियाँ तो अशुद्ध हैं ही, अनन्द सम्वत् के अनुसार निकाली हुई सारी तिथियाँ भी अशुद्ध ठहरती हैं क्योंकि तब तक पृथ्वीराज गद्दी पर भी नहीं बैठा था।

(८) उपर्युक्त घटनाओ और सम्वतो के अतिरिक्त भी रासो मे बहुत सी घटनाएँ ऐसी हैं जो इतिहासविरुद्ध ठहरती है।

(क) रासो के अनुसार अनंगपाल ने अपने दौहित्र पृथ्वीराज को गोदलेकर वि० सं० ११३८ मे उसे दिल्ली का राज्य देदिया; किन्तु जैसा पहले बतलाया जा चुका है, दिल्ली का राज्य वीसलदेव ने पृथ्वीराज के पूर्व ही अपने राज्य मे मिला लिया था।

(ख) चंद ने लिखा है कि सोमेश्वर ने मेवात के मुग़ल-राजा मुद्गलराय से अन्य राजाओं के समान कर मांगा और कर देना अस्वीकार करने पर उसने चढ़ाई करदी, जिसमे

पृथ्वीराज द्वारा मुग़ल पराजित हुए। किन्तु तब तक मेवात पर मुगलों का तो क्या, अन्य मुसलमानों तक का भी अधिकार न था।

(ग) रासो में दी हुई संयोगिता स्वयंवर की भी कथा अनैतिहासिक है। रासो में लिखा है कि कन्नौज के राजा जयचंद ने एक राजसूययज्ञ किया और उसके साथ ही संयोगिता के स्वयंवर का भी आयोजन किया। जब स्वयंवर में पृथ्वीराज नहीं आया तब उसने द्वारपाल के स्थान पर पृथ्वीराज की स्वर्ण-प्रतिमा रखी। संयोगिता जब सभा में आई, तब उसने किसी भी राजा के गले में जयमाला न डाल कर स्वर्णप्रतिमा के ही गले में डाल दी। इस पर जयचंद ने उसे कैद कर लिया। पृथ्वीराज को जब यह खबर मिली तो उसने ससैन्य कन्नौज पर आक्रमण कर दिया और युद्धकर संयोगिता के साथ पुनः दिल्ली को प्रस्थान किया। जयचंद ने विवश होकर अपने पुरोहित श्रीकण्ठ को दिल्ली भेजकर दोनों का विधि-पूर्वक विवाह करा दिया। इस कथन में ओझा जी के अनुसार पृथ्वीराज तथा जयचंद की समकालीनता के अतिरिक्त एक बात भी सत्य नहीं। संयोगिता स्वयंवर की यह कथा बिल्कुल ऐतिहासिक नहीं।

(घ) रासो के ६६ वें समय में रावल समरसिंह के पौत्र कुंभा के दक्षिण में बीदर के मुसलमान बादशाह के पास जाकर रहने की कथा है। किन्तु उस समय तक दक्षिण में मुसलमानों का प्रवेश तक भी न हुआ था। मुसलमानों का प्रथम प्रवेश दक्षिण में अलाउद्दीन खिल्जी के समय वि० सं० १३५१ में हुआ और बीदर के राज्य की संस्थापना वि० सं० १४८७ में हुई।

(ङ) रासो में लिखा है कि शहाबुद्दीन गोरी पृथ्वीराज को कैद कर गजनी ले गया और वहाँ उसने उसकी आँखें निकलवा लीं। चन्द भी अपने स्वामी के पास योगी बनकर पहुँचा और बादशाह से पृथ्वीराज के शब्दवेधी बाण चलाने की बड़ी प्रशंसा करने लगा। बादशाह ने पृथ्वीराज का कौशल देखने के लिए सभा बुलाई और उनको बाण चलाने की आज्ञा दी। पृथ्वीराज ने चन्द के संकेतानुसार बाण मारा जो गोरी के हृदय को फाड़ता हुआ निकल गया। इसके बाद चन्द ने अपने म्यान से कटार निकाली और अपना पेट फाड़कर पृथ्वीराज को भी दे दिया। पृथ्वीराज ने भी उसीसे आत्मघात कर लिया। इस प्रकार तीनों की एक साथ मृत्यु हुई। किन्तु यह घटना भी ऐतिहासिक नहीं। गोरी की मृत्यु पृथ्वीराज के हाथ से नहीं, गक्खरों के हाथ से वि० सं० १२६३ में हुई थी।

उपर्युक्त अशुद्धियों पर विचार करते हुए ओझा जी ने इसका निर्माण-काल सं० १६०० के आस-पास निश्चित किया है। इस निर्णय के सम्बन्ध में उनकी कुछ अन्य युक्तियाँ भी ध्यान देने योग्य हैं। आपका कथन है कि महाराजा कुंभकर्ण ने वि० सं० १५१७ में कुंभ स्वामी के मन्दिर में पाँच बड़ी-बड़ी शिलाओं पर कई सौ श्लोकों का एक विस्तृत लेख खुदवाया, जिसमें समरसिंह के साथ पृथाबाई के विवाह की अथवा शहाबुद्दीन के विरुद्ध लड़ते हुए उसके मारे जाने की कोई कथा नहीं है। इधर वि० सं० १७३२ में महाराजा राजसिंह ने अपने बनवाए हुए राजसमुद्रतालाब के नौचौकी नामक बाँध पर पच्चीस बड़ी-बड़ी शिलाओं पर एक महाकाव्य खुदवाया जिस के तीसरे सर्ग में लिखा है कि "समरसिंह ने पृथ्वीराज की बहन पृथा से विवाह किया और शहाबुद्दीन के साथ की लड़ाई

मे वह मारा गया जिसका वृत्तांत भाषा की 'रासो' नामक पुस्तक मे विस्तार से लिखा है।"

अतः यह निश्चित है कि रासो की रचना वि० सं० १५१७ और १७३२ के बीच किसी समय हुई। किन्तु रासो मे एक स्थान पर मेवाती-मुग़ल युद्ध का वर्णन है और मुग़ल-राज्य की स्थापना भारत मे बाबर के द्वारा वि० सं० १५८३ मे हुई। अतएव यह भी निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उसकी रचना वि० सं० १५८३ के पश्चात् ही किसी समय हुई होगी। रासो की सबसे प्राचीन प्रति सं० १६४२ की प्राप्त हुई है; इससे यह दृढ़ अनुमान लगाया जा सकता है कि रासो वि० सं० १५-८३ और १६४२ के बीच अर्थात् वि० सं० १६०० के आस-पास बना।

इसके अतिरिक्त रासो की भाषा भी कुछ ऐसी है कि इस अनुमान को और भी पुष्टि मिल जाती है। रासो मे दस प्रति शत शब्द फ़ारसी के मिलते हैं, जिसका प्रवेश साहित्य मे १६०० के पूर्व कम मिलता है। कहीं-कहीं क्रियाओं के अत्यंत अर्वाचीन रूप मिलते है, वाक्य बिलकुल आधुनिक साँचे में ढले हुए मिलते हैं, जिससे इसकी प्राचीनता मे संदेह और भी दृढ़ होता जाता है।

इन्हीं तर्कों के आधार पर ओझा जी ने रासो को जाली ठहराया और उसे वि० सं० १६०० के आसपास का ग्रंथ बतलाया।

उत्तर-पक्ष मे श्रीयुत अमृतशील एम० ए० का नाम भी उल्लेखनीय है। आपने भी रासो की प्रामाणिकता पर संदेह करते हुए सन् १९२६ की मई, जून तथा जुलाई की सरस्वती मे क्रमश. तीन लेख लिखे हैं। शील जी की कतिपय बातों को नीचे संक्षेप मे दिया जाता है।

(१) रासो में लिखा है कि पृथ्वीराज जब अजमेर-राज्य के युवराज थे, तभी वे दिल्ली के राजा हो गए थे। इधर पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर के बड़े भाई चौथे विग्रहराज [वीसलदेव] का सं० १२२० का एक शिलालेख दिल्ली की फीरोजशाह वाली लाट पर मिला है। इसमें उनकी तीर्थ-यात्रा और देश-विजय का वर्णन है। इससे प्रमाणित होता है कि सं० १२२० के कुछ पहले ही वीसलदेव ने दिल्ली को जय किया था। इससे यह भी सिद्ध होता है कि सोमेश्वर के राज्यकाल में दिल्ली में अजमेर का कोई करदाता राजा राज्य करता था अथवा अजमेर का कोई वेतन भोगी सामंत वहाँ का दुर्गरक्षक था। पृथ्वीराज अजमेर के युवराज थे। उनका अपने पिता के आधीन किसी करदाता राजा अथवा उनके नौकर दुर्गरक्षक के घर गोद जाना असंभव ही नहीं अश्रद्धेय भी प्रतीत होता है।

(२) रासो में पृथ्वीराज का जन्म संवत् १२०५ दिया हुआ है और १२ वर्ष की अवस्था में उन्हें दिल्ली का राज्य मिलना लिखा गया है, अर्थात् १२१७ में उनको दिल्ली का राज्य मिला था। इसके पहले ही वीसलदेव ने दिल्ली जीती होगी। "हम्मीर-महाकाव्य" में लिखा है कि वीसलदेव के देहांत के पश्चात् अमर गांगेय राजा हुए, उनके बाद द्वितीय पृथ्वीराज, और तत्पश्चात् सोमेश्वर राजा हुए। अतएव सोमेश्वर का राज्य-काल वि० सं० १२१७ नहीं हो सकता।

(३) जब पृथ्वीराज का जन्म सं० १२०५ में हुआ था, तब सं० १२०४ में सोमेश्वर अजमेर के सिंहासन पर होंगे और तभी उन्होंने अनंगपाल की सहायता करके कमला को प्राप्त किया होगा। परन्तु सं० १२२६ का एक शिलालेख सोमेश्वर के पहले के राजा, द्वितीय पृथ्वीराज का मिला है और सं० १२२६ के फाल्गुन का लिखा हुआ बिजौलियाँ का प्रसिद्ध

लेख सोमेश्वर का। इससे प्रमाणित होता है कि सं० १२२६ में द्वितीय पृथ्वीराज का देहांत और सोमेश्वर को राज्यलाभ हुआ था। अतएव सं० १२०४ में अर्थात् २२ वर्ष पहले सोमेश्वर अनंगपाल की सहायता कर कमला से विवाह नहीं कर सकते।

(४) मुसलमान इतिहासकारों ने पृथ्वीराज को अजमेर का राजा लिखा है। दिल्ली से उनका कोई संबंध था या नहीं, इसका उल्लेख उन्होंने नहीं किया। 'तबक़ातें नासिरी' में दिल्ली के राजा का नाम 'गोविंदराज' अथवा 'गोविंदराय' लिखा है।

(५) फरिश्ता ने लिखा है कि पिथौरा का भाई चामुण्डराय दिल्ली का राजा था।

(६) 'ताज-उल-मा-आसीर' में लिखा है कि शहाबुद्दीन मुहम्मदगोरी ५८७ हिजरी (सं० १२४८) में गजनी से लाहोर आया और सरदार हमजा को दूत बनाकर अजमेर के राजा के पास भेजा। उसने अजमेर के राजा को शास्ति देकर छोड़ दिया था, परन्तु जब सुना कि वह मुसलमानों से घृणा करता है और कुछ गड़बड़ करने की चेष्टा कर रहा है तब उसके शिरश्छेदन की आज्ञा दी। गोरी राय पिथौरा के पुत्र को अजमेर का राज्य देकर दिल्ली चला गया। दिल्ली के राजा ने आधीनता स्वीकार करली तथा कर देने की प्रतिज्ञा की। तब सुलतान कुछ सेना इंद्रप्रस्थ में छोड़कर आप गजनी चला गया। इस वर्णन से प्रतीत होता है कि अजमेर और दिल्ली के राजा दो भिन्न-भिन्न व्यक्ति थे। इससे यह भी नहीं मालूम होता कि दिल्ली के राजा से अजमेर के राजा का क्या संबंध था।

(७) पृथ्वीराज के ताँबे के कुछ पैसे मिले हैं। उनके एक ओर एक अश्वारोही मूर्ति है और श्री पृथ्वीराजदेव लिखा है, दूसरी ओर एक वृषभमूर्ति है और "आसावरी श्री सामंतदेव"

लिखा है। थोडे से ऐसे पैसे भी मिले हैं जिनके एक ओर पृथ्वीराज का नाम और दूसरी ओर "सुलतान महम्मद साम" लिखा है। इन मुद्राओं से प्रमाणित होता है कि पृथ्वीराज कुछ दिनों के लिए अपनी स्वाधीनता गँवाकर मुहम्मदगोरी के सामंत भी रहे और ये मुद्राएँ उसी सामंत-काल में बनीं। 'ताज-उल-मा- आसीर' से भी इस अवस्था का समर्थन होता है। ऊपर के प्रमाणों के आधार पर श्री शील जी निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँचे है—

"उस समय दिल्ली में तोमर-वंश के राज्य का प्रमाण नहीं मिलता। राज्य भी हो तो पृथ्वीराज के मातामह का वंश राज्य नहीं करता था। पृथ्वीराज दिल्ली गोद नहीं गए और न दिल्ली का राज्य उनको कभी मिला था। अपने "अंतिम" युद्ध के समय वे दिल्ली में नहीं थे और न दिल्ली में अपना परिवार छोड़कर लड़ने ही गए थे। अंतिम युद्ध के समय पृथ्वीराज शहाबुद्दीन के करदाता सामंत थे। परन्तु यह पराधीनता कितने दिनों तक रही, इसका ठीक पता नहीं मिलता।"

आचार्य शुक्ल जी भी ओझा जी के तर्कों से पूर्णतया संतुष्ट होकर रासो को जाली और "भट्टभणंत" ही मानते हैं। आप लिखते हैं—

"बात संवत् ही तक नहीं है। इतिहास-विरुद्ध कल्पित-घटनाएँ जो भरी पड़ी है, उनके लिए क्या कहा जा सकता है? माना कि रासो इतिहास नहीं है, काव्यग्रंथ है। पर काव्य-ग्रन्थों में सत्य घटनाओं में बिना किसी प्रयोजन के उलट-फेर नहीं किया जाता। जयानक का पृथ्वीराज-विजय भी तो काव्यग्रंथ ही है, फिर उसमें क्यों घटनाएँ और नाम ठीक-ठीक है? इस संबंध में इसके अतिरिक्त और कुछ कहने की जगह नहीं कि यह पूरा ग्रंथ वास्तव में जाली है।...रहा

प्रश्न यह कि पृथ्वीराज की सभा में चंद नामका कोई कवि था या नहीं ?······अधिक संभव यह जान पड़ता है कि पृथ्वीराज के पुत्र गोविंदराज या उनके भाई हरिराज अथवा इन दोनों मे से किसी के वंशज के यहाँ चंद नामका कोई भट्टकवि रहा हो जिसने उनके पूर्वज पृथ्वीराज की वीरता आदि के वर्णन मे कुछ रचना की हो। पीछे, जो कल्पित "भट्ट-भणंत" तैयार होता गया उन सबको लेकर और चंद को पृथ्वीराज का समसामयिक मान, उसी के नाम पर "रासो" नाम की यह बड़ी इमारत खड़ी की गई हो।"*

पूर्व-पक्ष के विद्वानों मे सर्वप्रथम श्री मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या का नाम उल्लेखनीय है जिन्होंने "रासो की प्रथम संरक्षा" नामक पुस्तिका में रासो को प्रामाणिक-ग्रन्थ मानने के लिए कुछ तर्क उपस्थित किये। ओझा जी की आलोचना निकलने के बाद इधर एक गवेषणात्मक लेख डा० दशरथ शर्मा का भी निकला है जिसमे आप ने ओझा जी के तर्कों का उत्तर देकर रासो को प्रामाणिक सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।†

आपका कथन है कि रासो को जाली ठहराने वाले महानुभावों की प्रायः सारी युक्तियाँ नागरी-प्रचारिणी के बृहत् संस्करण पर आधारित हैं; किन्तु सौभाग्य से इधर रासो की प्राचीन लघुतम-प्रतियाँ भी उपलब्ध हो गई हैं, जो बीकानेर की "फोर्ट लायब्रेरी" में सुरक्षित हैं। इन प्रतियों के आधार पर अप्रामाणिक मानने वालों की बहुत सी युक्तियाँ निर्मूल सिद्ध

---

*हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृ० ५२-५४

†इंडियन हिस्टारिकल क्वार्टरली; जि १६ नं० ४; दिसंबर १६४० पृ० ७३८-७४६

हो जाती हैं और रासो तथा चन्द को पृथ्वीराज का समकालीन मानना युक्तिसंगत सिद्ध हो जाता है।

ओझा जी के अनुसार रासो में वर्णित आबू के अग्निकुण्ड से चार राजपूत-कुलों की उत्पत्ति की कथा शिलालेखों और इतिहासों से मेल नहीं खाती ? बीकानेर की लघुतम-प्रति में इस संबन्ध में निम्नलिखित पंक्तियाँ मिलती हैं—

"ब्रह्मान जग ऊपन्न भूर।
मानिकराइ चहुआन सूर॥"

अर्थात् ब्रह्मा के यज्ञ से वीर चौहान मानिकराय उत्पन्न हुआ। दशरथ शर्मा के अनुसार चौहानों की कथा अन्य ग्रंथों में भी इसीप्रकार से मिलती है। पुष्करतीर्थ में ब्रह्मा के यज्ञ से चौहान के उत्पन्न होने की कथा "सुर्जन-चरित" तथा "हम्मीर-महाकाव्य" में भी मिलती है, जिनकी प्रामाणिकता उत्तरपक्षियों को भी मान्य है। आपका मत है कि रासो की अग्निकुल-सम्बन्धी कथा जो केवल बृहत् रूपांतर में ही मिलती है, अवश्य जाली है, जिसका आधार रामायण तथा महाभारत की कतिपय प्राचीन कहानियाँ हैं।

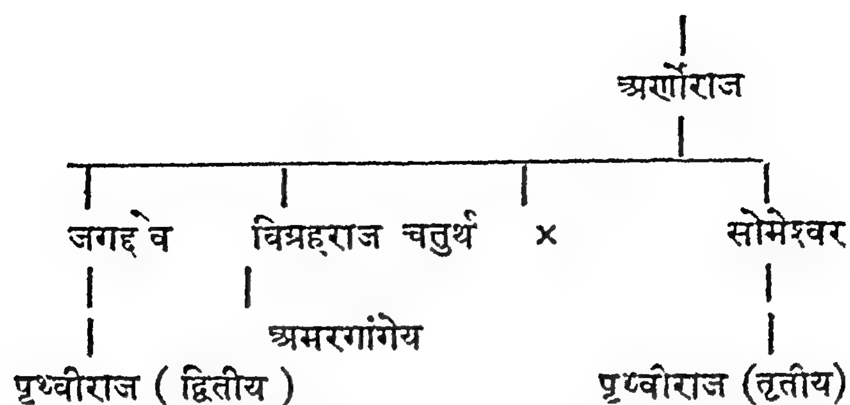
ओझा जी ने रासो की वंशावली अशुद्ध बतलाई है, किन्तु वह वंशावली भी नागरी-प्रचारिणी-सभा के बृहत्-संस्करण की है। बीकानेर की लघुतम-प्रति में वंशावली का इतना विस्तार नहीं मिलता। उसमें केवल निम्नलिखित कतिपय नाम आए हैं—

चाहमान माणिक्यराइ
|
उनके अनेक वंशज
|
धर्माधिराज

|
विसल
|
सारंग
|
अनल्ल
|
जयसिंह
|
आनंद
|
सोम
|
पृथ्वीराज

अपूर्ण होते हुए भी यह वंशावली चौहानों की प्रामाणिक वंशावली से मिलती है। "पृथ्वीराज-विजय-महाकाव्य" में यह वंशावली इस प्रकार है:—

चाहमान
|
उनके कतिपय उत्तराधिकारी
|
चामुण्डराज
|
दुर्लभराज — विग्रहराज (तृतीय)
|
पृथ्वीराज (प्रथम)
|
अजयराज या सल्हण
|



रासो की वंशावली का प्रथम नाम माणिक्यराइ, नादोल के एक अप्रकाशिता ताम्रपत्र में भी ऐसा ही मिलता है। रासो का दूसरा नाम धर्माधिराज 'पृथ्वीराज-विजय' के चामुण्डराज के लिए ही ज्ञात होता है, क्योंकि उक्त महाकाव्य में उसके धार्मिक होने की बड़ी प्रशंसा लिखी हुई है। रासो के "विसल" और पृथ्वीराज-विजय के 'विग्रहराजतृतीय' एक ही व्यक्ति हैं, इसमें कोई संदेह ही नही है। इसके बाद 'सारंग' के लिए शर्मा जी का कथन है कि संभवतः राज्याभिषेक के पूर्व पृथ्वीराज का यही नाम रहा हो। इसके बाद का 'आनल्ल' तो स्पष्ट 'आल्हण' का प्रतिरूप प्रतीत होता है, जिसके लिए कहीं कही अजयराज भी नाम मिलता है। इसके पश्चात् के जयसिह के लिए शर्मा जी ने बड़ी खींचतान की है। आपका कहना है कि वास्तव में आनल्ल और जयसिह दोनों एकही व्यक्ति हैं और लघुतम-प्रति के लेखक ने दोनों को भिन्न मानकर भूल की है। किंतु इसकेलिए आपने कोई प्रमाण नहीं उपस्थित किया है। इस नाम के बाद तो दोनों सूचियों के नाम क्रमशः वही हैं। पृथ्वीराज-विजय के अन्य नाम, रासो मे न मिलने का कारण यही प्रतीत होता है कि कदाचित् अनावश्यक होने के कारण रासोकार ने उन्हे छोड़ दिया हो।

इसप्रकार रासो की सम्पूर्ण वंशावली अशुद्ध नहीं, जैसा कि ओझा जी मानते हैं।

ओझा जी का तीसरा आक्षेप अनंगपाल और पृथ्वीराज के सम्बन्ध के विषय मे है। दुर्भाग्यवश लघुतमप्रति में भी यह अशुद्धि ज्यों की त्यों है। शर्मा जी का कथन है कि संभवतः दिल्ली के अंतिम तोमर राजा ने दिल्ली को सोमेश्वरके सौतेले भाई बीसलदेव को दहेज में दे डाला हो और रासो के अनुलिपि कर्ताओं ने इस कथा में बीसलदेव के बदले सोमेश्वर का नाम लिख डाला हो। "ललितविग्रहराजनाटक" में बीसलदेव, चतुर्थ, और इन्द्रप्रस्थ के राजा की पुत्री के परस्पर प्रेम की कथा आई भी है। किंतु प्रति अधूरी मिलने से आगे की घटना ज्ञात नहीं। यह असंभव नहीं कि मुसलमानो से युद्ध करने के सिलसिले मे उसने दिल्ली प्रस्थान किया हो और उसे दहेज में प्राप्त किया हो।

ओझा जी द्वारा प्रस्तुत की हुई चौथी तथा पाँचवी अशुद्धियों की लघुतम-प्रति में कोई चर्चा ही नही है। उन अशुद्धियो मे पहली तो है पृथा के विवाह तथा शहाबुद्दीन द्वारा समरसिह के मारे जाने के संबंध में और दूसरी है भीम द्वारा सोमेश्वर तथा पृथ्वीराज द्वारा भीम के वध के सम्बन्ध मे।

छठवीं अशुद्धि पृथ्वीराज के विवाहो के संबंध में है। शर्मा जी के अनुसार लघुतम-प्रति मे केवल सलख परमार की पुत्री इन्छिनी के विवाह को छोड़कर अन्य विवाहो का वर्णन नहीं है। इसके संबंध में आपकी धारणा है कि कदाचित् यह किसी कारणवश बाद मे जोड़ा गया हो। अथवा यह भी असम्भव नहीं कि सलख आबू के उन परमारो मे हो जिनमे विक्रमसिह हुआ था तथा जिसे गुजरात के चालुक्यराजा कुमारपाल ने पराजित किया था। उनके वंशधर अथवा पुत्र

होने के नाते वह कदाचित् अपने को आबू का अधिपति समझता होगा। किंतु अंत में आप कहते हैं कि "जब तक यह बात और प्रमाणों से सिद्ध न हो जाय, तबतक इसे ऐतिहासिक मानना युक्तियुक्त न होगा।"

रासो की सातवीं अशुद्धि संवतों के सम्बन्ध में आप का कथन है कि लघुतम-प्रति में तिथियों की कोई कठिनाई अथवा अशुद्धि नहीं। पद्मावती तथा पृथ्वीराज के विवाह की भी कथा उसमें नहीं मिलती। लघुतम-प्रति में निम्नलिखित तिथियाँ दी गई है

(क) पृथ्वीराज का राज्यारोहण—सं० ११३८
(ख) आबू पर भीम चालुक्य का आक्रमण-सं० ११४८
(ग) पृथ्वीराज का कन्नौज की ओर प्रस्थान—सं० ११५१
(घ) शहाबुद्दीन गोरी के विरुद्ध पुण्डीर का युद्ध-सं ११५३

अंत मे ओझा जी ने जो कतिपय अन्य घटनाओं की अनैतिहासिकता की ओर संकेत किया है, उनमे अधिकांश तो लघुतम-प्रति मे मिलती ही नहीं। केवल संयोगिता-स्वयंवर तथा शहाबुद्दीन गोरी के अंतिम युद्ध का वर्णन मिलता है। ओझा जी के अनुसार दोनों घटनाएँ अनैतिहासिक हैं। संयोगिता स्वयंवर के संबंध मे श्रीयुत डा० दशरथ शर्मा का एक अन्य बड़ा सुन्दर लेख "राजस्थान-भारती' (त्रैमासिक पत्रिका) के भाग १ अंक २,३ मे पृष्ठ २१-२७ मे प्रकाशित हुआ है। उसमे आपने ओझा जी के तर्कों का खण्डन किया है। नीचे उसका सारांश दिया जाता है—

श्रीयुत ओझा जी ने मुख्यतः "हम्मीर-महाकाव्य" तथा "रंभामंजरी" (नाटिका) में जयचंद के राजसूय यज्ञ तथा संयोगिता-स्वयंवर की कथा न होने से यह निष्कर्ष निकाला

था कि ये कथाएँ उक्त ग्रन्थो के रचनाकाल (सं० १४६०) तक प्रसिद्धि मे नहीं आई थीं।

किसी ग्रन्थकार के मौन से उन घटनाओं के अस्तित्व को ही उड़ा देना न्याय-संगत नहीं कहा जा सकता। उक्त दोनों ग्रन्थों मे एक के मौन और एक की अप्रामाणिकता के सम्बन्ध मे स्वयं लेखक के शब्द लीजिए:—

"क्या 'हम्मीरमहाकाव्य' पृथ्वीराज के नागार्जुन, भादानक जाति, चंदेलराज परमर्दिन्, चौलुक्यराजभीमदेव (द्वितीय) एवं परमारराज धारावर्षादि के साथ हुए युद्धों के विषय मे उतना ही मौन नहीं हैं? ये तो सर्वथा ऐतिहासिक बाते है। आप सं० १२६० के लगभग का "जयचन्द्र-प्रबन्ध" पढ़ें। आपको ज्ञात होगा कि पृथ्वीराज के मरने पर जयचन्द्र ने घी के दिये जलवाए थे।.....रही विचारी 'रंभामंजरी'। वह तो 'हम्मीरमहाकाव्य' से कहीं अधिक अप्रामाणिक है।......कोरे वाग्जाल के अतिरिक्त 'रंभामंजरी' के विशेषणों से जयचन्द्र के विषय मे केवल ये बातें मिलती है—

(१) वह इक्ष्वाकु-कुल-भूषण था।

(२) उसका बाहुदण्ड मदनवर्मा राजा की लक्ष्मी के लिए आलान-स्तंभ था।

(३) वह मल्लदेव का पुत्र था।

(४) उसकी माँ का नाम चन्द्रलेखा था।

(५) उसका विरुद-दल-पंगुल था।

इतिहास के पन्ने उलटे तो मालूम हुआ, जयचन्द्र के सूर्यवंशी होने के लिए कोई प्रमाण नहीं है। आधुनिक गहड़वाल अपने आपको चन्द्रवंशी मानते है। जयचन्द्र के पिता का नाम विजयचन्द्र था, मल्लदेव नहीं। चंदेलराज मदनवर्मा का देहान्त सन् ११६५ में हो चुका था। जयचन्द सन् ११७० में

गद्दी पर बैठा। फिर वह उसकी राज्यलक्ष्मी का आलान-स्तंभ कैसे हुआ, यह समझना कठिन है। इसके अतिरिक्त जयचन्द्र के जीवन की मुख्य घटनाओं का वर्णन भी तो इसमें नहीं है। ऐसी अवस्था में हम इस ग्रन्थ के आधार पर संयोगिता की कथा को किस तरह अनैतिहासिक एवं कपोल-कल्पित सिद्ध कर सकते हैं?"

"हम्मीरमहाकाव्य" के संबन्ध में एक बात और उल्लेखनीय है कि उसमें केवल संयोगिता के साथ विवाह की ही कथा का नहीं, प्रत्युत किसी भी कथा का उल्लेख नहीं है।

इधर 'पृथ्वीराज-विजय' की जो अपूर्ण प्रति प्राप्त हुई है, उसके अंतिम-सर्ग के अंतिम चार-पाँच श्लोकों में तिलोत्तमा राजकुमारी के संदर्भ में "नाकनदी तटस्थित." पद वर्तमान है। आगे के श्लोकों से यह भी ध्वनित होता है कि जैसे कमलिनी चन्द्रमा को सामने आया देखकर संकुचित होती है और सूर्य का स्मरण करती है, उसी तरह नायिका किसी अनभिमत पुरुष के साथ विवाह के प्रस्ताव से उद्विग्न होकर पृथ्वीराज का स्मरण कर रही है। क्या इससे यह अनुमान नहीं लगाया जा सकता कि तिलोत्तमा का यह अवतार संयोगिता ही थी?

रासो की संयोगिता तथा 'पृथ्वीराज-विजय' की इस नायिका में कई समानताएँ हैं, जो नीचे दी जाती हैं—

(१) संयोगिता रंभा का अवतार थी; 'पृथ्वीराज-विजय', की राजकुमारी तिलोत्तमा का।

(२) पृथ्वीराज इन दोनों में, उन्हें विना देखे ही, अनुरक्त हुआ था।

(३) इस अनुराग के पूर्व 'रासो' और 'पृथ्वीराज-विजय' दोनों. पृथ्वीराज के अन्य कई विवाहों का वर्णन करते हैं।

(४) दोनो काव्यों की नायिकाओं का संभवतः गंगा के तट पर स्थित किसी स्थान से सम्बन्ध था।

(५) दोनों ही का किसी अनभिमत पुरुष से विवाह निश्चित् हुआ था।

प्राचीन-साहित्य कान्यकुब्ज-कुमारी के विषय में मौन ही नहीं रहा है, मुखरित भी हुआ है। सोलहवीं शताब्दि के "सुर्जनचरित" नामक काव्य में इसकी कथा इसप्रकार दी गई है—

पृथ्वीराज आनन्दोद्यान मे टहल रहा था कि कान्यकुब्ज देश से एक नौकरानी आई। उसने महाराज से कहा, 'कान्यकुब्जेश की पुत्री कांतिमती अत्यन्त सुन्दरी है। एक दिन जब वह अपने पिता के पास बैठी हुई थी, उसने वंदीजनों द्वारा आपका यशोगान सुना। तब से आपके अतिरिक्त किसी दूसरे पुरुष को ध्यान ही में नही लाती।.........................

किन्तु उसका पिता उसका किसी अन्य राजा से विवाह करना चाहता है।' पृथ्वीराज ने प्रतिहारी को आश्वासन देकर लौटा दिया और स्वयं रूप बदलकर कान्यकुब्ज पहुँचा। कान्यकुब्जेश के महल के नीचे वह गंगा के किनारे मछलियों को मोती डाल रहा था कि कांतिमती ने उसे पहचान लिया। दूसरी रात को वह कांतिमती के महल में पहुँचा और उसे घोड़े पर बैठाकर शिविर में ले आया। पता लगने पर जयचन्द ने उसके पीछे सेना भेजी किन्तु अपने सामंतों की सहायता से वह सकुशल इंद्रप्रस्थ पहुँचा। विजय और वधू दोनों को प्राप्त कर राजा आनन्द से समय व्यतीत करने लगा।

ऊपर की कहानी में अंतर केवल नाम का है, शेष सारा कथानक रासो से मिलता है। ठीक इसीप्रकार की कथा

"आइने-अकबरी" में भी है जिसका रचनाकाल १६वीं शताब्दि है।

इनके अतिरिक्त एक बात सब से अधिक विचारणीय यह है कि रासो के जिस अंश में यह कथा आई है, उसकी भाषा अपेक्षाकृत अधिक प्राचीन है।

इन सब साक्ष्यों पर विचार करने के पश्चात् डा० दशरथ शर्मा का कथन है कि "जिसकी ऐतिहासिकता के विरुद्ध सब युक्तियाँ हेत्वाभास-मात्र हैं, उस 'कांतिमती-संयोगिता' को हम पृथ्वीराज की परम प्रेयसी रानी माने तो दोष ही क्या है? यह चन्द्रमुखी अब भ्रमराहु द्वारा कितने समय तक और ग्रस्त रहेगी? क्या आपका इतिहासाध्ययन-जाप एवं सद्युक्ति-मनन अब भी इसे भ्रम-राक्षस के चंगुल से मुक्त न कर सकेगा?"*

गोरी को अनेक बार पराजित करने के पश्चात् अंतिम युद्ध में बंदी के रूप में पृथ्वीराज के गजनी जाने और वहाँ चन्द के संकेत पर बाण चला कर गोरी के वध करने की कथा कांतिमती-हरण के पश्चात् 'सुर्जन-चरित' में भी ठीक उसी प्रकार दी हुई है जैसी ओझा जी की आलोचना के प्रकरण में पिछले पृष्ठों में दी गई है। अंतर केवल इतना है कि इसमें गोरी के वध के पश्चात् चन्द के साथ पृथ्वीराज के जीवित लौट कर राज्य करने की भी कथा है। रासो में तीनों के साथ मरने का उल्लेख है।

प्रसंगवश यहाँ पर इस सम्बन्ध में श्रीयुत अगरचंद नाहटा द्वारा प्रस्तुत किए हुए प्रमाणों पर भी दृष्टिपात कर लेना चाहिए। आपने पुरातन-प्रबंधसंग्रह-गत 'पृथ्वीराज-प्रबंध' की एक पंक्ति उद्धृत की है जो निम्नलिखित है:—

---

*राजस्थान-भारती; भाग १; अंक २-३; पृष्ठ ९७।

"एवं वार ७ बद्धा बद्धा मुक्तः नृपति प्राह—मया त्वं सप्त वारान मुक्तस्त्वं मामेकवलमपि न मुञ्चसि ?"

सं० १४०५ में राजशेखर सूरि रचित 'प्रबंध-कोष' मे लिखा है। "विंशतिवार बद्ध रुद्ध सहावदीन सुरत्राण भोक्ता प्रृथिवी राजोऽपि बद्ध।" (वस्तुपाल-प्रबंध पृ० १७ जिनविजय जी संपादित संस्करण मे)❀

इन सब साक्ष्यों से स्पष्ट प्रमाणित होता है कि रासोगत पृथ्वीराज-गोरी-युद्ध तथा पृथ्वीराज के वंदी होने की कथा में सत्य का अंश अवश्य वर्तमान है।

रासो को पूर्ण रूप से प्रामाणिक सिद्ध करते हुए डा० दशरथ शर्मा ने जैनग्रन्थ 'पुरातन-प्रबन्ध'-संग्रह' से भी एक प्रबन्ध का सारांश उद्धृत किया है, जो उसकी वि० सं० १५२८ (१४७१ ई०) की एक हस्तलिखित प्रति मे मिला है। उसमें पृथ्वीराज के सम्बन्ध मे निम्नलिखित बातें मिलती हैं—

(१) पृथ्वीराज सोमेश्वर का पुत्र था। उसके भाई का नाम यशोराज था। वह योगिनीपुर अथवा दिल्ली का शासक था तथा जयचन्द्र का शत्रु था।

(२) उसके दो मंत्री थे जिनमें से एक दाहिमा वंश का कैमास तथा दूसरा प्रतापसिह श्रीमाल था।

(३) पृथ्वीराज ने गज्नी के शासक को सात वार पराजित किया, पकड़ा तथा छोड़ दिया।

(४) प्रतापसिह के इशारे पर पृथ्वीराज ने कैमास का वध कर डाला था। इस घटना का वर्णन दूसरी रात्रि को चन्दवलहिक ने इस प्रकार किया था—

❀राजस्थानी.—पृथ्वीराजरासो और उसकी हस्तलिखित प्रतियाँ पृष्ठ १६।

"इक्कु बाणु पहुवीसु जुपइं कइं बासह मुक्कउ ।
उरभितरि खडहडिउ धीर कक्खंतरि चुक्कउ ॥
बीअं करि संधीउं भंमइ सूमेसर नंदण ।
एहु सु गडि दाहिमउ खणइ खुद्दइ सइं भंखिणु ॥
फुड छंडि न जाइ इहु लुब्भिउ बारइ पलउ खल गुलह ।
न जाणउं चंदबलद्दि किं न वि छुट्टइ इह फलह ॥
अगहु मगहि दाहिमओ रिपु राय खयंकरु ।
कूडु मंत्रु मम ठवओ एहु जंबूय मिलि जग्गरु ॥
सह नामा सिक्खवउं जइ सिक्खिविउं बुज्झइ ।
जंपइ चंदबलद्दिउ मज्झ परमक्खर सुज्झइं ॥
पहु पहु विराय सइं भरि धणी सयंभरि सऊणइ संभरिस ।
कइं आस वियास विसट्टविणु मच्छिवंधि बद्धओ मरिस ॥"

(५) पृथ्वीराज ने प्रतापसिंह के चचेरे भाई को जेल में डाल दिया। अतएव वह उसके विरुद्ध हो गया।

(६) प्रतापसिंह के बताए ढंग से ही पृथ्वीराज अंतिम युद्ध में पकड़ा गया।

(७) चन्द उस समय एक गुफामे बन्द था।

(८) जब पृथ्वीराज पकड़ा गया तो उसका मंत्री उसके पास गया और बोला, "प्रभो क्या किया जाय? यह सब भाग्य का दोष है। राजा ने उससे बादशाह का वध करने के लिए धनुष बाण माँगा। प्रतापसिंह ने 'अच्छा' कहकर सुल्तान से जाकर सारी बातें कहदी। सुल्तान ने एक लौहमूर्ति बनवाकर रखदी। पृथ्वीराज ने बाण से उसके दो टुकड़े कर दिये किन्तु अपना धनुष फेंककर कहा, "मै अपना कार्य न कर सका, कोई दूसरा व्यक्ति मारा गया। इसके पश्चात् सुल्तान ने पृथ्वीराज को एक गड्ढे मे डाल दिया और उसे पत्थर से भर दिया। इस प्रकार उसका अन्त हुआ।"

ऊपर के विवरण से निश्चित है कि सं० १५२८ के पूर्व रासो को कोई प्रति वर्तमान थी जिससे उद्धृत अंश लिया गया है। प्रश्न यह है कि यह अंश भाषा की दृष्टि से कितना प्राचीन है? श्रीमुनिजिनविजय ने 'पृथ्वीराज-प्रबन्ध' की तिथि १२९० निश्चित की है। यह तो सहज ही मे अनुमान किया जा सकता है कि यह उद्धरण "पृथ्वीराज-प्रबन्ध" से भी अधिक प्राचीन होगा। इसप्रकार इस अंश को हम तेरहवीं शताब्दि के मध्य-काल (सं० १२५० के आस-पास) का मान सकते है।

सारांश यह कि अपने मूलरूप मे पृथ्वीराजरासो की ऐतिहासिकता अक्षुण्ण है। इस समय आवश्यकता इस बात की है कि बीकानेर की प्रति से भी रासो की पुरानी प्रति को खोज निकाला जाय। शर्मा जी का विचार है कि यदि रासो की प्राचीनतमप्रति सौभाग्य से मिल जाय तो उसमे निश्चितरूप से 'सुर्जन-चरित' में उद्धृत बाते मिलेंगी, क्योंकि यह संस्कृत मे रासो का सारांश है।

ऊपर संक्षेप मे डा० दशरथ शर्मा के विचार दिए गए है। इधर 'राजस्थान-भारती' के प्रथम भाग मे, उदयपुर के कविराव मोहनसिह ने एक लेख का प्रारंभिक अंश रासो की प्रामाणिकता के पक्ष मे प्रकाशित किया है।*आप रासो के अनुशीलक मर्मज्ञो में से है और विद्वानों की धारणा है कि वर्तमान काल मे रासो का जितना गम्भीर अध्ययन आपका है, उतना अन्य किसी व्यक्ति का नहीं। आपने अपने दीर्घकालीन अध्ययन के फलस्वरूप कुछ ऐसी कुंजियाँ निकाली है जिनसे रासो के ही कथनो

---

*राजस्थान-भारती, भाग १ अंक २-३; जुलाई अक्टूबर १९४६; "पृथ्वीराजरासो की प्रामाणिकता पर पुनर्विचार"; पृ० २९-४४।

के अनुसार चन्द के असली पदों का क्षीर अनावश्यक नीर से विलग किया जा सकता है। ओझा जी के तर्कों का खण्डन आपने अंतर्साक्ष्य के ही आधार पर किया है किन्तु अभी केवल उसका प्रारम्भिक अंश ही प्रकाशित हुआ है, जिसमे केवल तीन शंकाओं का समाधान किया गया है। चौहानों को अग्नि-वंशी बताने के सम्बन्ध की शंका का समाधान आपने प्रायः वैसा ही किया है जैसा शर्मा जी ने। वंशावली-सम्बन्धी द्वितीय अशुद्धि के सम्बन्ध में आपकी धारणा है कि वह पद्धरी छन्द मे होने के कारण चन्द की कृति हो ही नहीं सकती। रासोकार ने अपने ग्रंथ के प्रत्येक विषय को स्पष्ट करने के लिए रासो में प्रयुक्त छन्दों की जाति, भाषा, शैली तथा परिभाषादि का स्वयं उल्लेख कर दिया है। छन्दों की जाति के सम्बन्ध में निम्न-लिखित दोहा रासो मे मिलता है—

"छंद प्रबंध कबित्त जति, साटक गाह दुहत्थ।
लहु गुरु मंडित खंडि यह पिंगल अमर भरत्थ॥"

अर्थात् (मेरे प्रवंध-काव्य रासो में) कवित्त (षट्पदी) साटक (शार्दूलविक्रीडित) गाहा (गाथा) और दोहा नामक वृत्त प्रयुक्त हुए हैं जिनमे मात्रादि नियम पिंगलाचार्य के अनुसार हैं और संस्कृत (अमरवाणी) के छंदों के नियम भरत के मतानुकूल हैं।

ऊपर के कथन से यह निष्कर्ष निकलता है कि चार छंदों के अतिरिक्त अन्य सभीप्रकार के छन्द प्रक्षिप्त और जाली हैं। उन्हीं प्रक्षिप्त छन्दों मे से पद्धरी भी है जिसमे चौहानो की वंशावली दी गई है। जब चन्द के ही कथनानुसार यह छन्द प्रक्षिप्त है तो उसकी अप्रामाणिकता के सम्बन्ध में कोई प्रश्न ही नहीं उठता। यदि वंशावली-संबंधी पद्धरी छन्द चन्द कृत मान भी लिया जाय, तो उसमे केवल तीस नाम ही हैं, शंका कर्त्ताओं के अनुसार ४६ नहीं। अर्थात् उनके द्वारा स्वीकृत

सोलह नाम, नाम नहीं, विशेषण हैं। इस प्रकार उस पर पुनर्विचार की बड़ी आवश्यकता है। श्री राव मोहन सिंह का मत है कि जाँच करने पर रासो की नामावाली भी अन्य ग्रन्थों की नामावलियों की ही भाँति प्रामाणिक है।

ओझा जी की तीसरी शंका अनंगपाल तँवर के दिल्ली के शासक होने तथा पृथ्वीराज के नाना होने के सम्बन्ध में है। आपके अनुसार दिल्ली के सिंहासन पर अनंगपाल नाम का कोई तँवर बैठा ही नहीं और न उसकी पुत्री कमला से पृथ्वीराज का जन्म ही हुआ।

रासो में किसी ज्योतिषी द्वारा भविष्य-कथन का प्रकरण आया है जिससे यह निष्कर्ष निकलता है कि दिल्ली से पृथ्वीराज का शासन वि० सं० १२४६ में नष्ट हुआ। उसके पूर्व संयोगिता का वरण करने पर वह वि० सं० १२४५ के आस पास से ही विलासी हो गया था जिसके कारण उसका सर्वनाश हुआ। उसके विलासी होने के १६ वर्ष पूर्व वि० सं० १२२९ में उसे अनंगपाल द्वारा दिल्ली का राज्य मिला था। उसके १६ वर्ष पूर्व अर्थात् वि० सं० १२१३ के निकट विग्रहराज, चतुर्थ, ने दिल्ली-विजय किया; किन्तु फिर भी तँवर राजा को करद बनाकर ही उसे छोड़ दिया; उसे अपने राज्य में नहीं मिलाया जैसा ओझा जी मानते हैं। करद होने का स्पष्ट उल्लेख निम्निलिखित पंक्तियों में मिलता है जो सं० १२२० वाले शिलालेख से उद्धृत की गई हैं। वे पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

"... ....

श्रीमद्विग्रहराज एष विजयी संतान जानात्मजः ॥

अस्माभिः करदं व्यधापि हिमवद्विन्ध्यान्तराल भुवः।

शेष-स्वीकरणायमस्तु भवतामुद्योग शून्यं मनः ॥"*

---

*पृथ्वीराज-चरित्र [रामनारायण दूगड़] पृ० ४४-४५।

इससे यह सिद्ध होता है कि सं० १२१३ के आसपास दिल्लीराज्य करद बना और वि० सं० १२२६ मे पूर्णरूपेण पृथ्वीराज को मिला।

प्रश्न यह उठता है कि वि० सं० १२१३ से १२२६ तक दिल्ली-सिहासन पर अनंगपाल तॅवर नामका कोई शासक हुआ कि नही ? इधर कुतुबुद्दीन ऐवक को मसजिद के अहाते मे एक लौह-स्तंभ पड़ा हुआ है जिस पर लिखा है—"संवत् दिल्ली ११०६ अनंगपाल अही" जिसका आशय अब तक के विद्वनों ने यह निकाला है कि वि० सं० ११०६ मे अनंपाल ने दिल्ली को बसाया। किन्तु इसमे संवत् के बाद "दिल्ली" शब्द आने से कविराव मोहनसिह का यह अनुमान है कि यह विक्रम संवत् नही, दिल्ली का संवत् है। इसप्रकार आपके अनुसार इसका अर्थ होना चाहिए—"दिल्ली के संवत् ११०६ मे अनंगपाल ने इसका जीर्णोद्धार कराया। आपके अनुसार यह "दिल्ली संवत्" पड्या जी वाला "अनन्द संवत्" ही है। इसप्रकार वि० सं० १२०० मे अनंगपाल का दिल्ली में होना सिद्ध हो जाता है।

खरतरगच्छ पदावली में भी वि० सं० १२२३ के लगभग मदनपाल का उल्लेख दिल्ली के शासक के रूप में मिलता है। मदनपाल अनंगपाल का पर्यायवाची है। इससे भी अनंगपाल सोमेश्वर और पृथ्वीराज का समकालीन ठहरता है।

अब समस्या रहगई अनंगपाल की पुत्री कमला से सोमेश्वर के विवाह होने तथा उससे पृथ्वीराज के जन्म होने के संबंध की। इस सम्बन्ध मे आपके पास जनश्रुति के अतिरिक्त कोई अन्य प्रमाण नही। आपकी धारणा है कि कर्पूरदेवी कदाचित् पृथ्वीराज की विमाता रही होंगी। आप पृथ्वीराज के जन्म के

विषय में रासो के उल्लेखों पर विचार करने के पश्चात् अन्त में इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उनका जन्म वि० सं० १२०५-६ में हुआ होगा। ओझा जी कर्पूरदेवी से सोमेश्वर के विवाह की तिथि सं० १२१८ वि० मानते हैं। अत: श्री मोहनसिंह जी के अनुसार कर्पूरदेवी के गर्भ से पृथ्वीराज का उत्पन्न होना सम्भव नहीं है।

जैसा कि पहले कहा गया है, आपके लेख का केवल प्रारंभिक अंश ही प्रकाशित हुआ है। इसके विषय में आपके विस्तृत विचार सम्भवतः रासो के सम्पादन के साथ निकले। तब इस सम्बन्ध में पूर्ण रीति से विचार हो सकेगा।

रासो की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में इस समय तक हिंदी-विद्वानों के चार दल हो चुके हैं।

(१) प्रथम पक्ष रासो के वर्तमान रूप को प्रामाणिक और पृथ्वीराज की समकालीन रचना मानता है। इस पक्ष के समर्थक पं० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या, श्यामसुन्दर दास, मिश्र बन्धु, रावमोहनसिंह तथा मथुरा प्रसाद दीक्षित आदि हैं। बाबू श्यामसुन्दरदास और राव मोहनसिंह बहुत बड़े अंश को प्रक्षिप्त मानते; हैं दीक्षित जी मध्यम रूपांतर को प्रामाणिक मानते हैं।

(२) द्वितीय पक्ष रासो को सर्वथा अप्रामाणिक रचना मनता है। इसके अनुसार चन्द नाम का कोई कवि पृथ्वीराज के दरबार में था ही नहीं। और न रासो उसकी समकालीन रचना है। इस पक्ष के समर्थकों में कविराजा श्यामलदास, कविराजा मुरारीदान, प्रसिद्ध पुरातत्व वेत्ता डा० बूलर, इतिहास के प्रकाण्ड विद्वान गौरीशंकर हीराचन्द जी ओझा, श्री अमृतलाल शील तथा हिन्दी के धुरंधर विद्वान पं० रामचन्द्र शुक्ल हैं।

(३) तीसरा पक्ष मानता है कि पृथ्वीराज के यहाँ चन्द नाम का कवि था और उसने रासो लिखा था, पर वह अपने मूल-रूप में अब नहीं मिलता। उसका वर्तमान रूप बहुत विकृत है और उसमें बड़ा परिवर्तन-परिवर्धन हुआ है। इस पक्ष के समर्थकों में श्री मुनिजिन विजय, श्रीयुत अगरचन्द नाहटा, डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या तथा डा० दशरथ शर्मा और मीनाराम रंगा हैं। अंतिम तीन विद्वानों के कथनानुसार मूल रासो की रचना अपभ्रंश में हुई थी।

(४) चौथे पक्ष के अनुसार चन्द पृथ्वीराज का समकालीन कवि था किन्तु उसने "पृथ्वीराजरासो" नामक किसी ग्रन्थ की रचना नहीं की थी। जैन-प्रबन्धों में प्राप्त पद्य फुटकर हैं। (किसी ग्रंथ विशेष के नहीं, क्यों कि उसमें उद्धृत सभी पद्य फुटकर ही हैं।) इधर ओझा जी का झुकाव इसी पक्ष की ओर विशेष दीख पड़ता था।

सत्य चाहे जो कुछ हो किन्तु इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि ओझा जी के प्राय. सभी तर्क अकाट्य है। केवल संयोगिता स्वयंवर सम्बन्धी तर्क में अवश्य कुछ त्रुटि है। हाँ, इतना अवश्य है कि उनके सभी तर्क काशीनागरी-प्रचारिणी के वृहत्-संस्करण पर ही आधारित है, बीकानेर की लघुतम प्रति पर नहीं; किन्तु अब तक की खोज में सभा-वाली प्रति ही सबसे प्राचीन (सं० १६४२) मानी गई है। उसको अर्वाचीन सिद्ध करने वाले विद्वानों के पास कोई ठोस प्रमाण भी नहीं, केवल अनुमान का आश्रय है। अतएव इस सम्बन्ध में अभी भी विस्तृत गवेषणा की आवश्यकता है।

रासो की ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में ऊपर जो विवेचन दिया गया है। उससे यह स्पष्ट परिलक्षित हो जाता है कि रासो

को प्रामाणिक सिद्ध करने वाले विद्वानो को कितनी खींच-तान और कष्ट-कल्पना का आश्रय लेना पड़ा है, अटकल और अनुमान शुद्ध साहित्यिक-आलोचना मे भले ही मान्य हो सकें, ऐतिहासिक तथा वैज्ञानिक-क्षेत्र मे उनका मूल्य अत्यल्प है। डा० दशरथ शर्मा का विवेचन अपेक्षाकृत अधिक तर्कपूर्ण होते हुए भी दो घटनाओं के सम्बन्ध मे रासो की लघुतम-प्रति को भी अशुद्ध सिद्ध करता है। वस्तुत. पृथ्वीराज को अनंगपाल तोमर का नाती मानने के लिए शर्मा जी के पास कोई प्रमाण नहीं और न इच्छिनी के साथ पृथ्वीराज के विवाह के सम्बन्ध मे ही कोई तर्क आप के पास है। वंशावली सम्बन्धी अशुद्धि मे लघुतम-प्रति और 'पृथ्वीराज' की नामावलियो को एक सिद्ध करने के लिए शर्मा जी ने कई स्थानो पर खीचतान की है। रासो के "सारंग" को 'पृथ्वीराज-विजय' का 'पृथ्वीराज प्रथम' केवल अनुमान से नहीं माना जा सकता। इसीप्रकार रासो के 'आनल्ल' को विजय का 'अल्हण' या 'सल्हण' भले ही मान लें, किन्तु रासो के 'आनल्ल' और 'जयसिंह' दो विभिन्न नामधारी व्यक्तियो को केवल शर्मा जी के आग्रह से एक नहीं माना जा सकता; रासो के "अनन्द" और विजय के "अर्णोराज" मे तो समता भी नहीं और न एक सिद्ध करने के लिए कोई अन्य प्रमाण ही हैं। वास्तव मे लघुवम-प्रति के भी नौ नामो मे केवल छै नाम पृथ्वीराज-विजय के नामो से मिलते हैं।

पृथ्वीराज के पुत्र रैणसी के उत्तराधिकार की अशुद्धि के सम्बन्ध मे शर्मा जी मौन है। इस मौन का अर्थ प्रमाणो का अभाव तो नहीं है, या यह भी लघुतम-प्रति में नहीं है? न होने पर भी उसका उल्लेख होना चाहिए था।

यदि शर्मा जी की सारी युक्तियाँ छान डाली जायं तो ज्ञात

होगा कि ओझा जी द्वारा प्रस्तुत की हुई सभा के वृहत्-संस्करण पर आधारित लगभग पन्द्रह अशुद्धियों में केवल पाँच अशुद्धियाँ बीकानेर के लघुतम-रूपान्तर पर लागू होती हैं।※ इन पाँचों अशुद्धियों मे केवल दो अशुद्धियों का समाधान शर्मा जी ने ऐसे पुष्ट प्रमाणों के आधार पर किया है जिन्हें स्वीकार किया जा सकता है। इनमे से एक घटना संयोगिता-स्वयंवर के सम्बन्ध की है और दूसरी चौहानों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में। ध्यान देने की बात है कि वृहत्-संस्करण में चौहान, प्रतिहार, परमार तथा चालुक्य अग्निवंशी ही कहे गए हैं। अतः उस संस्करण मे तो वह अशुद्धि ही कही जायगी। ओझा जी को उसके लिए दोषी भी नही ठहराया जा सकता—लघुतम प्रति से उनके निबन्ध का कोई सम्बन्ध ही नहीं था। इसप्रकार केवल एक अशुद्धि बच जाती है जिसका पूर्ण समाधान शर्मा जी ने किया है और जिसको अप्रामाणिक सिद्ध करने के लिए ओझा जी के पास भी पुष्ट प्रमाण नहीं थे। वह घटना है, संयोगिता-स्वयंवर के सम्बन्ध की।

कविराव मोहनसिह के भी केवल तीन शंकाओं के समाधान प्राप्त हुए हैं। उनमे भी यत्र-तत्र बड़ी कष्ट-कल्पना और खींचतान का आश्रय लिया गया है। उदाहरण के लिए पृथ्वीराज को अनंगपाल का नाती सिद्ध करने के सिलसिले मे आपने "दिल्ली संवत्" की कल्पना की। पंडया जी का एक "अनन्द संवत्" तो था ही, दूसरा कविराज जी का "दिल्ली संवत्" भी

※ (१) चौहान वंश की उत्पत्ति के संबंध में (२) वंशावली के संबंध में (३) पृथ्वीराज को अनंगपाल का नाती कहने के संबंध में (४) इच्छिनी से विवाह के संबंध में; और (५) संयोगितास्वयंवर तथा पृथ्वीराज की मृत्यु के संबंध में।

आ पहुँचा। माना कि "अनन्द संवत्" और "दिल्ली संवत्" दोनों की वास्तविक सत्ता किसी समय एक रही होगी, किन्तु यह कैसे निश्चित किया जाय कि विक्रम संवत् से ९०-९१ वर्ष ही घटाने से 'भटायत' अथवा 'अनन्द संवत्' निकलता है ? अथवा यह कैसे मान लिया जाय कि 'लौह-स्तम्भ वाला 'दिल्ली संवत्' पंड्या जी का 'अनन्द संवत्' ही है।

ओझा जी ने पृथ्वीराज का जन्म सं० १२२० के लगभग माना है। आप ने पुष्ट प्रमाणों द्वारा सिद्ध किया है कि उनकी माता का नाम कर्पूरदेवी था। इस सम्बन्ध में भी राव मोहन सिंह के तर्क युक्तियुक्त नहीं। आप के अनुसार पृथ्वीराज की माता का नाम कमला था, किन्तु जनश्रुति के अतिरिक्त इस सम्बन्ध में, आप के पास अन्य प्रमाण नहीं।

रासो की लघुतम-प्रति से इस बात का निर्देश अवश्य मिलता है कि चन्दबरदाई अथवा चन्दबलद्दिक नामक कोई कवि अवश्य था। आज आवश्यकता इस बात की है कि रासो के भिन्न भिन्न रूपांतरों को प्रकाशित करके उसका अध्ययन किया जाय। इसके पश्चात् ही मूलपाठ का उद्धार सम्भव होगा। इस कार्य के विना इसके सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय देना अत्यन्त कठिन है।

पृथ्वीराजरासो की भाषा

रासो की भाषा का प्रथम अध्ययन मि० ग्राउज ने किया था। सन् १८७३ ई० में छपे हुए रॉयल-एशियाटिक-सोसाइटी के जर्नल में प्रकाशित आपके लेख के अनुसार पृथ्वीराज रासो की भाषा १६वीं शताब्दि में साहित्य में प्रयुक्त होने वाली व्रजभाषा है। आपने उक्त लेख में रासो की क्रियाओं, संज्ञाओं तथा विभक्तियों आदि की रूपरेखा के आधार पर यह निर्णय

दिया है। आप के अनुसार रासो की भाषा न प्राचीन राजस्थानी है और न अपभ्रंश। इसके शब्दसमूह में जो अपभ्रंशाभास है उसका कारण यह है कि वीर-रसात्मक स्थलों-पर कृत्रिम-डिंगल के शब्द रखकर कड़कड़ाती हुई भाषा में घटना वर्णन करने की एक परंपरा सी चल पड़ी थी, जिसका पालन बहुधा उत्तरकालीन कवियों और चारणों तक की रचनाओं में पाया जाता है।

वीर-रस-प्रधान ग्रन्थ होने के कारण रासो में ऐसे अनेक स्थल हैं। इसप्रकार के प्रयोगों की भरमार देखकर बहुत से विद्वान भ्रम में पड़ जाते हैं और रासो को प्राचीन राजस्थानी का ग्रन्थ कहने लगते हैं।

तासो के अनुसार रासो की रचना कन्नौजी बोली में हुई थी। भारतीय भाषाओं के प्रकाण्ड विद्वान् डाक्टर ग्रियर्सन और राजस्थानी के विशेषज्ञ डाक्टर टेसीटोरी ने भी रासो को पश्चिमी-हिन्दी की रचना माना है।

तात्पर्य यह है कि पश्चिमी विद्वानों में से प्रायः सभी रासो की भाषा को पश्चिमी-हिन्दी ही मानते हैं।

इधर डा० दशरथ शर्मा तथा मीनाराम रंगा का एक लेख रासो की भाषा के सम्बन्ध में "राजस्थान-भारती" [भाग १ अंक १ पृ० ९३–१०३] में प्रकाशित हुआ है। इस लेख के लेखकद्वय रासो की लघुतमप्रति का अनुशीलन करने के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि मूल रासो अपभ्रंश में लिखा गया था। आप लोगों के अनुसार लघुतम-प्रति की भाषा में पुरानी राजस्थानी का पुट है। इसकी पुष्टि के लिए आप लोगों ने रासो की साठ पंक्तियों का रूपांतर भी अपभ्रंश में किया है। उदाहरण के लिए कुछ पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत की जाती है—

रासो (बीकानेर की लघुतम-प्रति	अपभ्रंश में रूपांतर
छंद पद्धडी	पद्धटिआ
कलि अछ्छ पथ कनउज्जराउ	कलिहि अच्छुपह कणउज्जराउ ।
सतसील रत धर धर्मं चाउ	सतसील रत धरि धम्मि चाउ ॥
बर अछ्छ भूमि हयगय अनग्ग	वरिअच्छ भूमि हयगय अणग्ग ।
पठय्या पंग राजसु जग्ग	पट्ठविअ पंग राजसुअ जग्ग ॥
गाथा	गाहा
के के नगए महि म डु	के के ण गय महि मज्झि,
ढिल्ली ढिल्लाय दीह होहाय	ढिल्ली ढिल्लाविउ दीह होहाहु ।
बिहुरंत जासु कित्ती	बिहरइ जाहं सु कित्ति,
तं गया नहि गयाहुँति ॥	ते गया विणहि गयाहवंति ॥

अर्थात् कलियुग मे एक कन्नौज का अधिपति था, जो बड़ा धार्मिक तथा सन्मार्गगामी था। धर्म की ओर प्रगाढ़ प्रेम होने के कारण ही उसने थोड़ी सी सुन्दर भूमि यज्ञ के लिए रख ली थी और राजसूय के लिए अच्छे-अच्छे हाथी-घोड़े भेजा करता था।

दिल्ली को अपने हो-हल्ला से प्रकम्पायमान कर देने वाला कौन शासक धूलि मे नहीं मिल गया? किन्तु वे ही अमर कहे जाएँगे (यद्यपि वे मर चुके है) जिनकी कीर्ति अब तक इस संसार मे विचरण कर रही है।

शर्मा जी द्वारा उद्धृत अंश मे, जित्तिया मेलिया, बुल्यो, मोकल्ल जैसे कुछ रूप आते है जो आप लोगो के अनुसार राजस्थानी के ही रूप है।

संक्षेप मे आप लोगो के पास रासो को प्राचीन-राजस्थानी की रचना सिद्ध करने के लिए दो प्रमाण है—

(१) जनश्रुति रासो को राजस्थानी की रचना मानती आई है।

(२) अपभ्रंश में इसका रूपांतर सरलता से हो सकता है।

अपने "पृथ्वीराजरासो की भाषा"* शीर्षक एक लेख में श्री नरोत्तमदास स्वामी ने रासो की भाषा के सम्बन्ध में अपना विचार प्रगट किया है। आप ने डा० शर्मा तथा प्रो० मीनाराम रंगा के विचारों का प्रतिवाद किया है। आप लिखते हैं —

"अनुश्रुति रासो को राजस्थानी-डिंगल की रचना नहीं मानती, राजस्थान की परम्परागत अनुश्रुति तो रासो को पिंगल [ब्रजभाषा] की ही रचना मानती आई है। केवल डिंगल से सर्वथा अनभिज्ञ कतिपय आधुनिक कालीन विद्वानों ने कुछ समय से यह भ्रान्त धारणा अवश्य फैला रक्खी है और उनके कुछ अनुयायी भी उत्पन्न हो गए हैं।

इन विद्वानों ने डिंगल और पिंगल के वास्तविक भेद से अपरिचित होने के कारण पिंगल की रचनाओं को डिंगल की समझ लिया। इनने न तो डिंगल की रचनाओं को देखा और न पिंगल की कही जाने वाली रचनाओं का ही अध्ययन किया। फलत डिंगल क्या है, इससे अपरिचित होने के कारण अनेक पिंगल-रचनाओं को डिंगल की कह डाला, केवल इसीलिए कि उनकी रचना राजस्थान मे हुई। पृथ्वीराज-रासो के साथ भी यही बात हुई और आज अनेक लोग, बड़े बड़े विद्वान् तक, रासो को डिंगल या राजस्थानी की रचना समझते हैं। इसीप्रकार कविवर सूर्यमल्ल के वंशभास्कर को भी डिंगल की रचना मानने वाले महानुभावो की कमी नहीं है, यद्यपि उसका नब्बे प्रतिशत अंश ब्रजभाषा की रचना है

*राजस्थान-भारती भाग १, अंक २-३ पृ० ५१-५२।

और कवि ने अपनी भाषा को स्पष्ट प्राकृत मिश्रिता व्रजदेशीया भाषा लिख दिया है। इसका कारण यही है कि ग्रन्थ को देखे विना, उसे राजस्थान के एक चारण की रचना जानकर ही, उसने भ्रान्त धारण वना ली है।

भारतीय भाषाओं के प्रकाण्ड विद्वान् डा० ग्रियर्सन और राजस्थानी के सब से वड़े पश्चिमी विद्वान् डा० टैसीटोरी ने इस भ्रम का निराकरण करने का प्रयत्न किया और रासो को स्पष्ट रूप से पश्चिमी-हिन्दी [व्रजभाषा] की रचना वताया पर खेद है कि यह भ्रान्ति अभी नष्ट नहीं हुई।"

रासो के वृहतसंस्करण की भाषा का जहाँ तक सम्बन्ध है, उसका ढांचा निश्चिय रूप से व्रज का है। इसके कवित्त [छप्पय] प्रायः व्रज भाषा के है किन्तु अन्य छंदों की भाषा अत्यन्त अव्यवस्थित है। उनमें पर्याप्त तोड़-मरोड़ तथा अनावश्यक अनुस्वारों का प्रयोग मिलता है। भाषा के सम्बन्ध मे रासोकार का निम्नलिखित पद प्रसिद्ध है:—

उक्तिधर्म विशालस्य राजनीति· नवं रसाः।
पड्भाषा पुरानं च कुरानं कथितं मया॥

ऊपर के पद मे 'पड्भाषा' से क्या तात्पर्य है, इसे रासोकार ने कहीं भी स्पष्ट नहीं किया है। वंशभास्कर के रचयिता सूर्यमल्ल ने भी अपनी भाषा को पड्भाषा कहा है। आपने अपने ग्रंथ के वारहवें मयूख [प्रथम राशि] में इन भाषाओं को गिनाया है किन्तु उसमे केवल पाँच ही का नाम आया है। ये हैं—(१) संस्कृत (२) प्राकृत (३) व्रजभाषा (४) अपभ्रंश तथा (५) पैशाची। वास्तव मे छठीं भाषा कौन है, यह कहना कठिन है। उदाहरण स्वरूप नीचे रासो से कतिपय पद उद्धृत किये जाते है—

'नमः संभवायं सरुवाय वायं
नमो रुद्रपायं वरद्वाय सायं ।
पसु पत्तए नित्तए मुग्ग पाए
कपर्दी महादेव भीमं भवाए ॥''
मयघ्नाये ईसाय त्रेयंबकाए
नमो धुम्मए धातए अद्दुवकाए ।

[प्रथम समयो]

ऊपर के पद में कवि ने प्राकृत के प्राचीन रूपों का अनुकरण किया है। कतिपय शुद्ध प्राकृत के रूप भी इस पद में उपलब्ध हैं जैसे दिव्य के लिए 'दिव्व' तथा अर्द्ध के लिए 'अद्ध'। अब नीचे एक दूसरा पद दिया जाता है:—

सयनं सब्बानं किय सज्जानं वज्जि नीहानं नीसानं।
बंधे सिलहानं, निज-निज थानं पक्खरि पानं असवानं ॥

ऊपर के छन्द में अनुस्वारान्त शब्दों का आधिक्य है। ये अनुस्वार किसी क्रम अथवा व्याकरण के नियमानुसार नहीं रखे गए हैं वरन् अनुप्रास तथा पढ़ने में लालित्य लाने के लिए ही ऐसा किया गया है। रासो में इस ढंग के अनेक छन्द हैं। डिंगल के अन्य कवियों ने भी इसका अनुकरण किया है। नीचे रासो की भाषा का एक तीसरा उदाहरण दिया जाता है.—

मनहुँ कलाससिमान, कला सोलहसों बन्निय ।
बाल बेस ससि ता समीप, अंम्रित रस पिन्निय ॥
विगसि कमल म्रिग भमर, वैन खंजन म्रिग लुट्टिय ।
हीर कीर अरु बिम्ब मोति, नखसिख अहि घुट्टिय ॥

छत्रपतिगयदं हरिहंस गति, विह बनाय संचै सचिय ।
पदमिनिय रूप पदमावतिय, मनहुँ काम कामिनि रचिय ॥

इस उदाहरण में संस्कृत के कला, कमल, मृग, भ्रमर, खजन आदि शब्द अपने तत्सम रूप मे ही वर्तमान है। बहुत सम्भव है, प्राचीन भापा के रूप बदल कर नए बनाए गए हों अथवा पीछे की रचना होने के कारण ही तत्सम शब्दो का अत्यधिक प्रयोग किया गया हो। अब रासो की भापा का एक चौथा उदाहरण दिया जाता है—

एक पहुर में साँवत प्यारे। लोक हजार पाँच तहँ मारे।
ये सांवत पृथ्वीराज पियारे। के ते ईदल सॅकर बुहारे।

महोबा समयो

ऊपर के उदाहरण में क्रिया तथा सज्ञा के प्राय. सभी रूप आधुनिक है जो व्रजभाषा मे प्रचलित हैं। अब भाषा सम्बन्धी पाँचवाँ उदाहरण नीचे दिया जाता है:—

पां भट्टी महनङ्क पान पुरसानी बब्बर ।
हबस पान हुजाब भ्रब्ब आलम्म जाम बर ।

अथवा

कहियत मालनि महरबान। चहुँवान बंस मैं दिली थान।
मादल महल में बसे जाय। पिजमत्तदार समुसियत धाय।

ऊपर 'खान' बब्बर' 'हबस' 'आलम' 'महरबान पिजमत्त-दार [खिदमतगार] आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। यह रासो की फारसी-संश्लिष्ट-शैली है। इसप्रकार रासो की भापा मे कई स्तर विद्यमान हैं। भिन्न-भिन्न रूपान्तरों तथा पाठ-भेदों के साथ इनका अध्ययन भी अत्यावश्यक है।

अथ रेवातट समयौ लिख्यते

पृथ्वीराज का रेवातट आना सुनकर सुलतान की सेना सजकर चलना।

दूहा

रेवा तट आयौ सुन्यौ। वर गौरी चहुआन।
वर अवाज सब मिट्टि कै। सजे सेन सुरतान ॥ १ ॥

पृथ्वीराज का कहना कि बहुत बड़े शत्रु रूपी मृगों का समूह शिकार करने को मिला।

दूत वचन संभलि अगति। वर आपेटक खिल्ल१।
रेवातट पद्धर धरा। जूह मृगन बर२ मिल्लि ॥ २ ॥

राज्य-मंत्रियों ने यह सम्मति दी कि अपने आप झगड़ा मोल लेना उचित नहीं, किसी नीति द्वारा काम लेना ठीक है।

कवित्त

मिले सब्ब सामन्त। मत्त३ मंड्यौ सुनरेसुर।
दह गुना दल४ साहि। सजि चतुरङ्ग सजी उर५ ॥
भवन६ मन्त चुक्कौ न। सोइ वर मन्त विचारौ।
बल घट्यो अप्पनौ। सोच पच्छिलौ निहारौ ॥
तन सट्टौ७ लीजैन८ सुगति। जुगति बंध९ गोरी दलह।
संग्राम मीर प्रथिराज बल। अप्प१० मरि किज्जै११ कलह ॥३॥

रासो की अन्य प्रतियों में निम्नलिखित दोहा भी मिलता है:—
दूत गये कनवज्ज दिसि, ते आये तिन थान।
कथा मंजि चहुआन की, कहि क्रम धज्ज प्रमान।

१ खिल्लि २ मृगभर ३ मंत ४ बल ५ सउपर ६ भवन
७ सट्टे ८ लिज्जै ९ बंधि १० अप्पु ११ कीजै

यह बात सुनकर सामन्तो का मुसकराकर कहना कि भारथ का वचन है कि रण मे मरन से ही वीर का कल्याण है।

सुनिय बत्त पज्जून। राव परसंग मुसक्यौ।
देवराव बग्गरी। सैन दे पाव कसक्यौ॥
तन सट्टै सहि मुकति। बोल भारथ्थी बोलै।
लोह अंच उक्कुंत। पत्त तरवर जिमि डोलै॥
सुरतान चंपि मुक्यौ लग्यौ। डिल्ली नृप दल बानिवौ॥
भर भीर धीर सामन्त पुन। अवै पटंतर जानिवौ॥४॥

पज्जूनराय का कहना कि मैने सब शत्रुओ को पराजित किया और शहाबुद्दीन को भी पकड़ा। अब भी उससे नहीं डरता।

कहै राव पज्जून। तार कह्यौ तत्तारिय॥
मैं दख्खिन द्वै देस। भीर जद्दव पर पारिय॥
मैं बंध्यौं जंगलू। राव चामंड सुमथ्थे॥
बंभन बास बिरास। बीर बड़ गुज्जर तथ्थे॥
भर बिभंर सेन चहुआन दल। गोरी दल कित्तक गिनौ॥
जानै कि भीम कौरव सुघर। जर समूह तरवर किनौ॥५॥

जैतराव का कहना कि शहाबुद्दीन की सेना से मिलान होना लाहौर के पास अनुमान किया जाता है अतएव अपनी सब तैयारी कर लेनी उचित है, आगे जो आप की इच्छा हो।

कहै जैत पंवार। सुनहु प्रथिराज राज मत॥
जुद्ध साहि गोरी। नरिंद लाहौर कोट गत॥
सबै सैन अप्पनौ। राज एकट्ठ सु किज्जै॥
इष्ट अत्य सगपन सु। हित कागद लिपि दिज्जै॥

सामन्त सामि इहि मन्त है। अरु जु मंत चित्ते नृपति ॥
धन रहै ध्रम्म जसु जोग है। दिपति दीप दिव लोकपति ॥६॥

रघुवंशराम का कहना कि 'हम सामन्त लोग मंत्र क्या जाने? केवल मरना जानते है, पहले शाह को पकड़ा था, अब भी पकड़ेंगे।

वह वइ कहि रघुवंश। राम हक्कारि सु उठ्यौ ॥
सुनौ सब्ब सामन्त। साहि आए बल छुट्यौ ॥
गज रु सिंघ सा पुरिष। जहाँ रूँधे तहाँ भुम्भै ॥
असम समौ जानहि न। लज्ज पंकै आलुम्भै ॥
सामन्त मन्त जानैं नहीं। मत्त गहै इक मरन कौ ॥
सुरतान सेन पहिले बंध्यौ। फिर बंधौ तौ करन कौ ॥७॥

कविचन्द का कहना कि हे गुज्जर गँवारी बातें न कहो, इन्हीं बातों से राज्य का नाश होता है। हम सब के मरने पर राजा क्या करेगा?

रे गुज्जर गौवार। राज लै मन्त न होई ॥
अप्प मर छिज्जै नृपति। कौन कारज अह जोई ॥
सब्ब सेवक चहुआन। देस भग्गै घर पिल्लै ॥
पच्छि काम कइ करै। स्वामि संग्राम इकल्लै ॥
पंडित भट्ट कवि गाइना। नृप सौदागिर वार हुअ ॥
गजराज सीस सोभा वरन ❀कन उढाइ वह सोभ लअ ॥८॥

पृथ्वीराज का कहना कि जो बात आगे आई है, उसके लिए युद्ध का सामान करो।

दूहा

परी पोर तन †दिंग मम। अग्ग जुद्ध सुरतान ॥
अब इह मंत विचारये। तरन मरन परवान ॥९॥

❀भँवर † परीखो रतन

गज्जन संग प्रथिराज कैं। है दिष्षिय परवान ॥
बज्जी पष्षर षंड रे। चाहुआन सुरतान ॥ ०॥
ग्यारह अष्षर पञ्च पट। लहु गुरु होइ समान ॥
कंठ सोभ वर छन्द कौ। नाम कह्यौ परवान ॥११॥

पृथ्वीराज के घोड़ाकी शोभा का वर्णन

छन्द कंठशोभा

फिरे हय वष्षर पष्षर से। मने फिर इंदुअ पंथ कसे ॥
सोई उपमा कविचन्द कथे। सजे मनों पोंम पवंग रथे ॥
उर पुट्ठिय सुट्ठिय दिट्ठयता। वपरो पय लंगत ता धरिता ॥
लग्गे उड्डि छित्तिय चौ नलयं। सुने पुर केहु अवत्तनयं ॥
अग बधि सुहेम हमेल घनं। तत्र चामर जोति पवंन रुनं ॥
अह अट्टस तारक बीत पगे। मनों सुत के उर भान उगे ॥
पय मंडिहि अंसु धरे उलटा। मनौं विटप देषि चले कुलटा ॥
मुष कट्टिन घूंघट अस्सु वली। मनौं घुघंट दै कुलबद्धु चली ॥
तिनं उपमा बरनी न घनं। पुजे मन आग पवंन मनं ॥१२॥

आधी रात को दूत पृथ्वीराज के पास पहुँचा और समाचार दिया कि अट्ठारह हजार हाथी और अट्ठारह लाख सेना के साथ सुलतान लाहौर से चौदह कोस पर आ पहुँचा।

कुंडलिया

नव बज्जो घरियार घर। राज महल्ल उठि जाइ ॥
निसा अद्ध वर उत्तरे। दूत संपते आइ ॥
दूत संपते आइ। धाइ चहुआन सु जग्गिय।
सिघ विहथ्थौं मुक्कि। साहि साही उर तग्गिय।
अट्ठ सहस गजराज। लष्ष अट्ठारह ताजिय ॥
उभै सत्त वर कोस। साहि गौरी नव बाजिय ॥१३॥

पृथ्वीराज ने दूत से पत्र लेकर पढ़ा—हिन्दुओं के दल में शोर मच गया।

दूहा

बचि कागद चहुँआन नें। फिरन चन्द सह थान।
मनो वीर तनु अंकुरे। मुगति भोग बनि प्रान।
मची कूह दल हिन्दु के। कसे सनाह सनाह।
वर चिराक दस सहस भइ। बजि निसान, अरिदाह ॥१५॥

दूत का दरवार में आकर पृथ्वीराज से कहना कि मुसलमान सेना चिनाव के पास आ गई। चन्दपुडीर ने उसका रास्ता बाँधकर मुझे इधर भेजा है।

वा बख्वू नृप सुत्रकते१। दूत आइ तिहि बार।
सजी सेन गोरी सुभर२। उत्तर पु नद पार
पचासज गोरी नृपति। बंध उतरि नहिं पार।
चन्द वीर पुडीर नें। थटि मुक्के दरबार ॥१७॥

सुलतान को अपने सामन्तों के साथ युद्ध के लिए प्रस्तुत होना।

कवित्त

पां मारुफ तत्तार। पान पिलची दर गढढे।
चामर छत्र सुजक। गोल सेना रचि गढढे।
नारि गोरि जम्बूर। सुबर कीना गज्ज सारं।
नूरी पां हुज्जाव। नूर महम्मद सिर भारं।
वज्जीर पान गोरी सुभर। पान पान हजरत्ति पां।
बिय सज्जि सैन हरवल करिय। तहां उभौ३ सजरत्ति पां ॥१८॥

शाहजादे का सरदारों के साथ सेना हरवल रचना और सेना के मुख्य सरदारों के नाम और उनका पराक्रम वर्णन।

---

१ बावसू कोयन भयो २ सुबर ३ औ

रचि हरवल सुरतान । साहिजादा सुरतानं ।
पाँ पैदा महमूद । वीर बंध्यौ सुविहानं ।
पाँ मंगोल लल्लरी । बीस टंकी बर पंचै ।
चौ तेगी सहबाज । बान अरि प्रान सु अंचै ।
जँहगीर पान जह गोर बर । पाँ हिन्दू बर बर बिहर ।
पच्छिमी पान पट्ठान सह । रचि उभ्भै हरवल गहर ॥१९॥
रचि हरवल पठठान । पान हुसमान रु गप्पर ।
केली पाँ कुंजरी । साँह सारी दल पख्खर ।
पाँ भट्टो मह नंग । पान षुरसानी बब्बर ।
हबस पान हुज्जाब । अब्ब आलम्म जास बर ।
तिन अग्ग अट्ठ[1] गजराज बर । मद सरक पट्टे तिना ।
पंच बिन पिंड जो ऊपजे । जुदूध होइ लज्जी बिना ॥२०॥

शहाबुद्दीन का इस पार, तीस दूतों को रखकर, चिनाव पार करना ।

करित माय बहु साहि[2] । तीस तहँ रषि फिरस्ते ।
आलम पान गुमान । पान उजबक निरस्ते ।
लहु मारुफ गुमस्त । पान हुस्तम बजरंगी ।
हिंदु सेन उप्परें । साहिबज्जे रन जंगी ।
सह सेन टारि सोरा रच्यो । साहि चिनाब सु उत्तरयो ।
संभल सूर सामन्त नृप । रोस बीर बीर डुरयो[3] ॥२१॥

यह सुनकर पृथ्वीराज का क्रोध करना और दूत का कहना कि पुंडोर उसे रोके हुए है ।

दूहा

तमसि तमसि सामन्त सब । रोम भरिग प्रथिराज ।
जब लगि रुपि पुंडीर नें । रोक्यौ गौरी साज ॥२२॥

---

१ अट्ठ २ माया चौ साह ३ डुरयौ

सुलतान का चिनाव उतरना और चन्दपुण्डीर का गिरना देखकर दूत ने वढ़कर पृथ्वीराज को समाचार दिया।

कवित्त

उतरि साहि चिन्हाव। भाव पुडीर लुथ्थि पर।
उप्पारयौ१ वर चद। पंच वधन सु पथ्थ धर।
दिष्षि दूत वर चरित। पास आयो चहुआनं।
उप्पर गोरी नरिंद। हाम बढ्ढो सुरतान।
वर मीर धीर मारूफ ढुरि। खच अनी एकठ जुरी।
मुर पच कोस लाहौर तैं। मेच्छ मिलानह सो करी॥२३॥

पृथ्वीराज ने क्रोध के साथ प्रतिज्ञा की कि तब मैं सोमेश्वर का वेटा जो फिर सुलतान को कैद करूँ। पृथ्वीराज ने चन्द्रव्यूह की रचना करके चढ़ाई की।

दूहा

वीर रोस वर वैर वर। झुकि लग्गौ असमान।
तौ नन्दन सोमेस कौ। फिरि बंधौ सुरतान।२४॥
चन्द्रव्यूह नृप बंधि दल। भनि प्रथिराज नरिंद।
साहि२ वंध सुरतान सौं। सेना विन विधि कंद॥२५॥

पंचमी मंगलवार को पृथ्वीराज ने चढ़ाई की। कवि ने उस दिन के ग्रह स्थिति योग आदि का वर्णन किया है।

कवित्त

वर मंगल पञ्चमी। दिन सु दीनौ प्रथिराजं।
राह केत्त जय दीन। दुष्ट टारे सुभ काज।
अष्ट चक्र जोगनी। भोग भरनी सुधि रारी।
गुर पञ्चम रवि पञ्च। अष्ट मङ्गल नृप भारी।
कै इन्द्र बुद्धि मारथ्थ भल। कर त्रिसूल चक्रा वलिय।
सुभ घरिय राज वर लीन वर। चढ्यौ उदै क्रूरह वलिय॥२६॥

---

१ उप्पारयौ २ साह

दूहा

सो रचि उद्ध अवद्ध अध । उगि महव विधि कंद ।
बरनिपेध नृप बचौ । कौन भाय कवि चन्द ॥२७॥

जिस प्रकार चक्रवाक, साधु, रोगी, निर्धन, विरह-वियोगी लोग रात्रि के अवसान और सूर्योदय की इच्छा करते है उसी प्रकार पृथ्वीराज भी सूर्योदय को चाहता था।

कवित्त

प्रात सूर बछ्ई । चक्क चक्किय रबि बंछै ।
प्रात सूर बछ्ई । सुरह बुद्धि बल सो इंछै ।
प्रात सूर बछ्ई । प्रात बर बंछि वियोगी ।
प्रात सूर बछ्ई । ज्यौं सु बंछै बर रोगी ।
बंछ्यौ प्रात ज्यौं त्यौं उनन । बंछै रंक करह्ल बर ।
बंछ्यौ प्रात प्रथिराज ने । सत्ती सत्तबंछैति उर ॥२८॥

पृथ्वीराज की सेना तथा चढ़ाई का वर्णन।

दूहा

क्रमगाह इक सुगत की । क्यों करिजै बापान ।
मन अनप सामन्त नै । कच करबति पापान ॥२९॥
बाई विप धुंधरी परिय* । बद्दर छाए भान ।
कुन घर मगल बज्जही । कै चढ़ि मगज आन ॥३०॥

दोनो ओर की सेनाओ के चमकते हुए अस्त्र-शस्त्र और निशानो का वर्णन।

दिष्ट देपि सुरतान दल । जोद्दा चकत बान ।
पहकि फेरि उड़गन चले । निसि आगम फिर जान ॥३१॥

---

* बाय विषम धंधर परी ।

धजा बाइ बकुर उड़ंत । छबि कबिंद इह आइ ।
उडुगन चंद नरिंद बिय । लगी मनों१ अइ पाइ ॥३२॥
से सनि सकहि-बजतहि । बाजे कुहक सुरंग ।
मेटै सद्द निसान के । सुने न श्रवनति अंग ॥३३॥

जब दोनों सेनाएँ सामने हुई तब मेवारपति, रावल समरसिंह ने आगे बढ़कर युद्ध आरम्भ किया।

अनि दोउं घनघोर ज्यों । धाय मिले करघाट ।
चित्रंगी रावर बिना । करै कोन दहवाट ॥३४॥

कवित्त

पवन रूप परचंड । घालि असुअसि वर झारे ।
मार मार सुर बज्जिय। पत्त तरु अरि सिर पारे ।
फहकि सद्द फेफरा । हड्डु कंकर उप्पारे ।
कटि भसुंड परिमुंड । भिंड कंटक उप्पारे ।
बज्जयौ विषम मेवार पति । रज उडाइ सुरतान दल ।
समरथ्थ समर सम्मर मिलिय । अनी मुष्प पिष्षौ सबल ॥३५॥

रावल, जैत पँवार, चामंडराय और हुसेनषां का क्रमानुसार हरावल मे आक्रमण करना। पीठि सेना का पीछे से बढ़ना।

रावर उप्पर धाई । पर्यौ पोवार जैत पिष्कि ।
तिहि उप्पर चांमड । कर्यौ हुस्सेन पान सजि ।
धक्काई धक्काइ । दोइ हरवल बर मझ्झै ।
पच्छ सेन आहुट्टि । अनी बंधी आलुझ्झै ।
गजराज विय२ सुरतान दल । दह चतुरँग३ वर बीर बर ।
धनि धार धार धारह धनी । वर भट्टी उप्पारि कर ॥३६॥

---

१ लगि मांन २ बीय ३ दहद चरंग

हिन्दू सेना की चन्द्र-व्यूह-रचना

छत्र सुजीक सु अप्पि। जैत दीनौ सिर छत्र।
चन्द्रव्यूह अकुरिय। राज दुष्ष इहां इकत्र।
एक अग्र हूसेन। बीय अग्रह पुंडीरं।
मद्धि भाग रघवस। राम उब्भौ बर बीरं।
सोषलौ सूर सारंग दे। उररि पान गोरीय सुप।
हथनारि गोर जंबूर घन। दुहूँ बांह उब्भंति रुप।।३७।।

दोपहर के समय चंदपुंडीर का तिरछा रुख देखकर शत्रु-सेना को दबाना।

छुट्टि अद्ध बर घटिय। चढ्यौ मध्यान भान सिर।
सूर कंध बर कढ्ढि। मिलै काहर कुरंग बर।
घरी अद्ध बर अद्ध। लोह सो लोह जु रुक्कै।
मन अग्गै अरि मिलै। चित्त मे कंक परक्कै।
पुंडीर भीर भंजन भिरन। बरन तिरच्छौ लग्गयौ।
नव बधू जेन संका सुबर। उदौ जानि जिम भग्गयौ।।३८।।

सुलतान का घबराना। तातारखाँ का धैर्य दिलाना।

दूहा

तेज छुट्टि गोरी सुबर। दिय धीरज तत्तार।
मो उब्भै सुरतान को। भीर परी इन वार।।३९।।

सोलंकी माधवराय से खिलजीखाँ से तलवार का युद्ध होने लगा। माधवराय की तलवार टूट गई तब वह कटार से लड़ने लगा। शत्रुओं ने अधर्म युद्ध से उसे मार गिराया।

कवित्त

सोलंकी माधव। नरिंद पिलषी सुप लग्गा।
सुभर वीर रस बीर। बीर वीरा रस पग्गा।

दुश्रन जुद्ध जुध तेग। दुहु दुप्पन उभमारिय।
वेग तुट्टि चालुक। बथ्थ परि कड्ढि कटारिय।
अग अग्ग रुक्कि ठिल्लै वलन। अधम जुद्ध लग्गे लरन।
सारंग बंध घन घाव परि। गोरी त्रै दिब्बी मरन ॥४०॥

वीर गति से मरने पर मोक्षपद पाने की प्रशंसा।

पग्ग हटक्कि जुटिक्क। जमन सेना समंद गजि।
हय गज्ज बर हिल्लोर। गरुग्र गोइंद दिष्पि सजि।
अनम अठेल अभंग। नीर असि मीर समाहिय।
अति दल बल श्राहुट्टि। पच्छ लज्जी पर वाहिय।
रज लज्ज रज्ज मुक्कि न रह्यौ। रज न लगो रजरज भयो।
उच्छंगन अच्छर सो लयौ। देव विमानन चढ़ि गयो ॥४१॥

जैसिंह की वीरता और उसकी वीर-मृत्यु की प्रशंसा।

परि पतंग जैसिंघ। पतंग अप्पुन तन दझ्झै २।
नव पतंग गति लीन। करे अरि अरिधज धज्जै।
तेल ठाम वात्तीय। अगन्नि एकल विहभाइय।
पंच अप्प अरि नच। पंच अरि पंथ लगाइय।
आरब्भि-कू आरी बर बरयौं। दै दाहन दुज्जन दवन।
जीतेव असुर महि मंडलह। और ताहि पुज्जै कवन ॥४२॥

वीर पुण्डीर के भाई की वीरता और उसके कबन्ध का खड़ा होना।

रुप्यौ बीर पुंडरी। फिरा पारस सुरतानी।
शस्त्र बीर चमकंत। तेज आरुहि सिर ठानी।
टोप श्रोप तुटि किरच। सार सारह जरि भारे।
मिली नछिन्न रोहनी। सीस ससि उडगन चारे।

उठि परत भिरत भंजत अरिन । जै जै जै सुर लोक हुअ ।
उठ्यौ कमंध पल पंच चव । कौन आइ कथ्यौ जु धुअ ॥४३॥

पज्जूनराय के भाई पल्हानराय का खुरसानखाँ के हाथ से मारा जाना ।

दुज्जन सल कूरंभ । बंध पल्हन हकारिय ।
सम्हौ षाँ पुरसान । तेग लंबी उभ्भारिय ।
टोप तुट्टि बरकरी । सीस परि तुट्टि कमंधं ।
मार मार उच्चार । तार तं नंचि कमध ।

तहँ देषि रुद्र रुद्रह हस्यो । हय हय हय नदी कह्यौ ।
कवि चंद शैल पुत्री चकित । पिष्षि बीर भारथ नयौ ॥४४॥

जैसिंह के भाई का मारा जाना

सोलंकी सारंग । पान पिलची मुष लग्गा ।
वह पगानौं भृत्त । इते चहुआन विलग्गा ।
है कधन दिय पाय । कन्ह उत्तरिं थिय बाजिय ।
गज गुंजार हुंकार । धरा गिर कंदर गाजिय ।
जय जयति देव जै नै करहि । पहुपअलि पूजत रिनइ ।
इन पर्यौ षेत साधै सकल । इक रह्यौ बंधै धुनइ ॥४५॥

गोइन्दराय का तत्तारखाँ के हाथी और फीलवान को मार गिराना ।

करी मुष्य आहुट्ट । बीर गोइंद सु आपे ।
कबिल पील जनु कन्ह । दन्त दारुन गहि नप्पे ।
सुंड दंड भये षंड । पीलवानं गज मुक्यौ ।
गिद्धि सिद्धि बेताल । आइ अपिन पल रुक्यौ ।

वर वीर परन्या भारथ वर१ । लोह लहरी लगातर मुरयौ ।
तसार पान मग्हा मु क्रत२ । विघ दधि अंबर दुर्यो ॥४६॥

नरसिंहराय के सिर में घाव लगने से उसके गिर जाने पर चामुंडराय का उसकी रक्षा करना ।

पोलि परग नरसिंघ । विक्रिक पत्र सीसह झारिय ।
तुटि वर धरनि परंत । परत संमरि कट्टारिय ।
चरन थत दरक्कत । धीर कूरम करारौ ।
तेग बाह् सुक्कत । झरी भर लोह संमारौ ।

चलि गयौ क्रमन क्रम्मन४ चलै । तुट्यौ न तुट्ट तन हथ्थ बर ।
तिन परत धीर दाहर तनौ । चामंडा वज्री लहर ॥४७॥

जैतराय के भाई लखमणराय के मरते समय अप्सराओं का उसके पाने की इच्छा करना परन्तु उसका सूर्यलोक भेद कर मोक्ष पाना ।

कवित्त

जैत बन्ध ढहि परयौ । लष्य लष्षन की जायौ ।
तह झगरी मह माय । देवि हुंकारौ पायौ ।
हुंकारं हुंकार । जूह गिद्धनि दछ्छायौ ।
गिद्धिन तें अपछरा । लियौ चाहत नहि पायौ ।
अवतरन सोइ उतपति गयौ । देवयान विभ्रम बियौ ।
जम लोक न शिवपुर ब्रह्मपुर । भान यान भाने बियौ ॥४८॥

तन झंझरि पावार । परयौ धर सुच्छि घटिय बिय ।
वर अछर बिटयौ । सुरङ्ग सुवके सुरङ्ग हिय ।

---

१ भिरि २ लहर, लगात ३ क्रित ४ नक्कमन, क्रमनन ।

तिहित बाल ततकाल। सलप बंधिव ढिंग आइय ।
लिपिय अङ्ग बिय हथ्थ। सोइ बर बंच दिपाइय ।
जनम मरन सुइ हुइ सुगति। नन मिटै भिटइ न तुश्र।
ए वार सुघर बंटहु नहीं। बंधि लेहु सुकी बधुश्र ।

महादेव का, लक्ष्मण का सिर, अपनी माला के लिए लेना।

दूहा

राम बन्ध को सीस बर। ईस गह्यौ कर चाइ।
अथिथ दरिद्री ज्यौ भयौ। देपि देपि ललचाइ ॥५०॥

एक पहर दिन चढ़े जङ्घा योगी ने त्रिशूल लेकर घोर युद्ध मचाया।

जाम एक दिन चढ़त बर। जंघारौ भुकि बीर ।
तीर जेम तत्तौ परयौ। धर अग्गारे मीर ॥५१॥

कवित्त

जंघारौ जोगी। जुगिन्द कढ्यौ कट्टारौ ॥
परस पानि सुझो। त्रिसूल मग्गर अधिकारौ ॥
जटत बांन सिंगी। विभूत हर वर हर सारौ।
सबर सद्द बद्दयौ। विषम मद गंधन भारौ।

आसन सदिट्ठ निज पत्ति में। लिय सिर चन्द अम्रित अमर।
मंडलीक राम रावन भिरत। नभौ वीर इत्तौ समर ॥५२॥

शस्त्र सजकर सुलतान का युद्ध मे लूटना। लंगरीराय का घोर युद्ध मचाना। लंगरीराय की वीरता की प्रशंसा।

सिलह सज्जि सुरतान। भुक्कि बज्जै रन जंगं ।
सुने श्रवन लङ्गरी। बीर लग्गा अनभंगं ।

बीर धीर सत मध्य । बीर हुंकरि रन धायौ ।
सामंता सत मद्धि । मरन दीनं भय सायौ ।
पारंत धक्क हक्कंत रन । पग प्रवाह पग पुल्लयौ ।
बिभ्भूत चंद अंगम तिलक । बहसि बरिहकि बुल्लयौ ॥५३॥

लंगा लोह उचाह । पर्यौ घुंमर घन मझ्झै ।
जुरत तेग सम तेग । कोर बद्दर कछु सुझ्झै ।
यों लग्गौ सुरतान । अनल दावानल दग्गं ।
ज्यों लंगूर लग्गया । अगनि अंनै आलग्गं ।
इक मार उभ्भार अपार मल । एक उभ्भार सुभ्भारयौ ।
इक बार तर्यो दुस्तर रुपे । दूजै तेग उभारयौ ॥५४॥

लोहाने की वीरता का वर्णन । चौसठ खांओं का मारा जाना ।

कवित्त

लोहानौ मद मुंद । बान मुक्के बहु भारी ।
फुट्टि सु ठट्टर ज्वान । पिट्ठ ऊरद्ध निकारी ।
मनों किवारी लागि । फुट्टि पिरकी उग्घारिय ।
बट्टारी बर कट्टि । बीर अवसान संभारिय ।
एक भर मीर उरभारि भर । करि सुमेर परि अरि सु फिरि ।
चवसट्ठि षान गोरी परे । तीन राव इक राज परि ॥५५॥

मानि लोह मारुफ । रोस बिहुर गाहक्के ।
मनु पंचानन बाहि । सद्द सिरहद्द हहक्के ।
दुहूँ मीर बर तेज । सीस इक सिंवह बाही ।
टोप टुट्टि बहक्री । चंद ओपमता पाई ।

मनु सीस बीय शृंग बिज्जुलह । रही हेत गुटि भान इति ।
उतमंग सुहे बिंब टूक ह्वै । मनु उडगन नृप तेज मति ॥५६॥

चौसठ खान मारे गए और तेरह हिन्दू सरदार मारे गए। हिन्दू सरदारो के नाम तथा उनका किससे युद्ध हुआ उसका वर्णन।

दूसरे दिन तत्तारखां का शहाबुद्दीन को विकट-व्यूह के मध्य मे रखकर युद्ध करना और सामन्तो का क्रोध कर शाह की तरफ बढ़ना।

कवित्त

दस हथ्थी सु विहान । साहि गोरी सुप किम्नौ ।
कर अकास बादी । ततार चवकोद स दिन्नौ१ ।
नारि गोरि जंबूर । कुहक वर बान अघानं ।
गज्जि भग्ग प्रथिराज । चित्त करयो अकुलानं ।
सो मोह कोह वर बज्जि कैं । व्रज उन धारय धमसि कैं ।
सामन्त सूर वर बीर वर । उठे बीर बर हमसि कैं ॥५७॥

अद्ध अद्ध जोजनह । मोर उड़ि संगा केरी ।
तब गोरी सुरतान । रोस सामन्तह घेरी ।
चक्र श्रवन चौडोल । अग्ग सेपन पंचासौ ।
सूर कोट ह्वै जोट । सार मारनह हुलासौ ।२
वर अगनि बगी दल्लौ नहीं । पख्खर३ कोट सुजोट४ हुअ ।
वर बीर रास समरह परिय । सार धार वर कोट हुअ ॥५८॥

खुरासानखां का सुलतान के वचन पर तैश आकर घोर युद्ध मचाना।

---

१ बिछिन्नौं २ मरनह उन्हासौ ३ पद्धर ४ सजोर

कवित्त

षां पुरसान ततार। पिष्फ्फि दुज्जन दल भग्गै।
बचन स्वामि उर पटकि। हटकि तत्तवी कर नग्गै।
कज्जल पंति गज बिथुरि। मध्य सैन चहुआनी।
अजै मानि जै रारि। बियसु तेरह चपि प्रानी।
धामन्त फिरस्तन कढ्ढि अमी। ढहति पिंड सामन्त भजि।
वर बीर भीर बाहन कहर*। परे धाइ चतुरंग सजि ॥५६॥

लड़ाई के पीछे स्वर्ग में रम्भा ने मेनका से पूछा कि तू उदास क्यों है? उसने उत्तर दिया कि आज किसी को वरन करने का अवसर नहीं मिला।

कवित्त

पच्छै भौ संग्राम। अग्ग अच्छर विचारिय।
पूछै रंभ मेनिका। अज्ज चित्तं किम भारिय।
तब उत्तर दिय फेरि। अज्ज पहुनाई आइय।
रथ्थ बैठि औथान। सोभतह कन्त न पाइय।
भर सुभरपरे भारथ्थम भिरि। ठाम ठाम जुप जीत रथ।
उयकीय पंथ हल्लै चल्यौ। सुथिर सभौ देपीय तय ॥६०॥

हुसैनखां घोड़े से गिर पड़ा, उमवकखाँ खेत रहा, मारूफखां तातारखाँ सब पस्त होगए, तब दूसरे दिन सबेरे सुलतान स्वयं तलवार निकालकर लड़ने लगा।

कवित्त

षां हुसेन ढरि पर्यौ। अस्व फुनि पर्यौ सारबहि।
झुम्भ्झ फेरि सति सीव१। पान उजबक्क पेत रहि।

---

*करह

षाँ ततार मारूफ । षान षाना घट घुम्मैं ।
तब गोरी सु बिहान । आइ दुज्जन मुष झुम्मैं ।
कर तेग झल्लि मुट्ठिय सुबर । नहिं सुलतानह षन करी ।
अदि हार दीह पलटे सुबर । तबहि साहि फिरि पुक्करी ॥६१॥

सुलतान ने एक बान से रघुवंस गुसाईं को मारा। दूसरे से भीम भट्टी को। तीसरा बान हाथ का हाथ ही में रहा कि पृथ्वीराज ने उसे कमान डालकर पकड़ लिया।

तब साहिब गोरी नरिंद । सतबान समाहिय ।
पहिल बान बर बीर । हने रघुवंश गुसाइय ।
दुजै बान ते कण्ठ । भीम भट्टी बर भंजिय ।
चहूआन तिय बान । पान अद्धं धरि रज्जिय ।

चहुआन कमान सुसंधि करि । तीय बान हथ हथ्थ रहिय ।
तब लगि चंपि प्रथिराज ने । गोरी वे गुज्जर गहिय ॥६२॥

सुलतान को पकड़कर और हुसैनखाँ ततारखाँ आदि को विजय करके पृथ्वीराज दिल्ली गए। चारो ओर जैजैकार हुआ।

गहि गोरी सुरतान । षान हुस्सैन उपारयो ।
षाँ ततार निसुरत्ति । साहि झारि कर डारयौ ।
चामर छत्र रषत्त । बषत लुट्टे सुलतानी ।
जै जै जै चहुआन । बजी रन जुग जुग बानी ।
गज बन्धि बन्धि सुरतान कौं । राय ढिल्ली ढिल्ली-नृपति ।
नर नाग देव अस्तुत करैं । दिपति दीप दिव लोकपति ॥६३॥

एक समय प्रसन्न होकर पृथ्वीराज ने सुलतान को छोड़ दिया।

दूहा

मसै एक बत्ती नृपति। वर छंड्यो सुरतान।
तपै राज चहुम्रान यौं। ज्यों ग्रीषम मध्यान ॥६४॥

एक महीना तीन दिन कैद रखकर नौ हजार घोड़े और बहुत से माणिक्य-मोती आदि लेकर सुलतान को गजनी भेज दिया।

मास एक दिन तीन। साह संकट में रुंद्धौ।
करिय अरज उमराउ। दंढ हय मंगिय सुद्धौ।
हय अमोल नव सहस। सत्त से दिन पेराकी।
उज्जल दंतिय अट्ठ। वीस मुर ढाल सुजक्की।
नग मोतिय मानिक नवल। करि सलाह संमेल करि।
परि राइ राज मनुहार करि। गज्जन वै पठयौ सुघरि ॥६५॥

नरपतिनाल्ह

परिचय

"बीसलदेवरासो" के रचयिता का नाम नरपति नाल्ह अथवा नल्ह है। यह नाम ग्रंथ मे अनेक स्थलो पर आया है :—

'कर जोड़े 'नरपति' कहइ ।
'नाल्ह' कहइ जिण लावइ खोड़ि ॥८॥
'नाल्ह' रसायण आरभइ ।
सारदा तुटि ब्रह्म कुमारि ॥९॥
[बी० रा०; पृ० ४]

कवि की जाति के सम्बन्ध मे विद्वानो मे बड़ा मतभेद है। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास मे उसे 'भाट' लिखा है। बोसलदेव रासो मे उसने अपने लिए यत्र-तत्र "व्यास" शब्द का प्रयोग किया है :—

'नरपति 'व्यास' कहइ कर जोड़ि ।
तो तूठा तैतिसौ कोड़ि ॥
[पृ० ३०]

पहिलइ पंड कहइ छइ 'व्यास' ।
राजमतो राय पुरीय आस ॥
[पृ० ३१]

इसी 'व्यास' शब्द के आधार पर "बोसलदेवरासो" के सम्पादक ने कवि को 'भाट' लिखा है; किन्तु श्री अगरचन्द नाहटा ने उसी शब्द के आधार पर उसको ब्राह्मण स्वीकार किया है। आप लिखते हैं—

"वीसलदे रासो के रचयिता नरपतिनाल्ह को श्री सत्यजीवन वर्मा और श्रीरामचन्द्र शुक्ल भाट लिखते हैं, पर ग्रंथ में स्पष्ट उसे 'व्यास' या 'जोइसो' लिखा है। राजपूताने में ये दोनों जातियाँ ब्राह्मण वर्ण के अंतर्गत हैं। हमें नाल्ह ब्राह्मण ही जान पड़ता है।"❀

'नरपति' कवि का मुख्यनाम तथा 'नाल्ह' कौटुम्बिक नाम प्रतीत होता है। अन्य सामग्रियों के अभाव के कारण कवि की जाति के सम्बन्ध में अंतिम निर्णय देना कठिन है। यदि वास्तव में व्यास तथा जोइसो, वर्तमान काल में भी, राजस्थानी ब्राह्मणों के अंतर्गत मिलते हैं तो उसे भाट बनाने का कोई कारण नहीं ज्ञात होता। "वीसलदेवरासो" के अतिरिक्त कवि की अन्य कोई रचना अभी तक उपलब्ध नहीं हुई है।

वीसलदेवरासो का सारांश†

प्रथम खण्ड में कवि, सर्वप्रथम गणेश तथा सरस्वती की स्तुति करके फिर ग्रंथ के निर्माण की तिथि का निर्देश करता है। तत्पश्चात् धार नगरी के राजा भोज तथा उसकी कन्या राजमती का वर्णन करता है। अपनी स्त्री के परामर्श से भोज एक ब्राह्मण को अपनी कन्या के योग्य वर खोजने के लिए भेजता है, जो जेसलमेर, तोड़ा, अयोध्या, दिल्ली, मथुरा आदि अनेक स्थानों के राजाओं को देखते हुए, अंत में, अजमेर के राजा वीसलराय के यहाँ पहुँचता है। राजमती के योग्य वीसलदेव को ही समझकर ब्राह्मण धार नगरी लौट आता है और

❀राजस्थानी, भाग ३, अंक ३; पृ० २१।

†यह सारांश काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा द्वारा प्रकाशित संस्करण के आधार पर दिया गया है।

भोज को उसकी सूचना देता है। राजाभोज भी लग्न निश्चित करके बीसलदेव को तिलक भेजता है।

निश्चित-तिथि पर बारात अजमेर से प्रस्थान कर चित्तौर-गढ़, बीसलपुर, तथा मालवगिरि होती हुई उज्जैनी पहुँचती है और बड़े समारोह के साथ राजमती का बीसलदेव से विवाह सम्पन्न होता है। माघ पंडित के कहने पर राजमती बीसलदेव के गले में जयमाल डालती है तथा 'माश्रम ज्योतिषी', 'देश्रम व्यास', 'पंडितमाघ' और 'कवि कालिदास' मिलकर वेदोच्चारण करते हैं।

भाँवर के समय, पहली फेरी में भोज, बीसलदेव को अलीसर और कुडाल देता है। दूसरी में बहुत सी सम्पत्ति और घोड़ों के साथ मण्डोवर, गुजरात और सोराष्ट्र देता है। तीसरी फेरी में साँभर, तोड़ा, टोंक, देता है। चौथी फेरी के समय बीसल चित्तौड़ माँगता है। देने की इच्छा न होते हुए भी अपनी पुत्री के कहने पर भोज उसे चित्तौड़ का भी राज्य देता है और बीसल का मान रखता है। राजमती के साथ बारात फिर अजमेर के लिए प्रस्थान करती है और वहाँ पहुँचकर बीसलदेव अपनी नवविवाहित वधू के साथ सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगता है। इसी स्थल पर प्रथम खण्ड की कथा समाप्त होती है।

पुनः गणेश की वन्दना से कवि द्वितीय खण्ड की कथा आरम्भ करता है। एक दिन राज्य तथा धन सम्पत्ति के सम्बन्ध में राजमती तथा उसके पति में परस्पर वाद-विवाद चल पड़ता है। राजा को गर्व था कि उसके समान देश में कोई अन्य अधिपति ही नहीं, किन्तु रानी ने ऐसे गर्व को निराधार सिद्ध करते हुए बतलाया कि उड़ीसा का राजा उससे कई गुना अधिक सम्पत्ति शाली है। राजा के यह पूछने पर कि उसको उड़ीसा

के विषय मे कैसे ज्ञान हुआ, राजमती अपने पूर्व-जन्म की कथा वतलाती है। राजा उड़ीसा की यात्रा करके उसे विजय करने का आग्रह करता है और रानी के अनेक प्रकार के समझाने पर भी नहीं मानता। लग्न निश्चित करते समय ज्योतिपी राजमती की मंत्रणा से एक मास बाद का मुहूर्त बतलाता है जिसके कारण राजा को कार्तिक तक के लिए अपनी यात्रा स्थगित कर देनी पड़ती है।

निश्चित-मुहुर्त पर वह बहुत से सरदारों के साथ उड़ीसा के लिए प्रयाण कर देता है और रानियों के रोकने पर कुछ भी ध्यान नहीं देता। उड़ीसा पहुँचने पर वहाँ का तत्कालीन शासक, देवराज उसका बड़ा स्वागत-सत्कार करता है। यहीं पर द्वितीय खण्ड भी समाप्त होता है।

तृतीय खण्ड के आरम्भ मे, कवि, राजमती के वियोग का विस्तृत-वर्णन करता है। इसप्रकार दस वर्ष वीत जाने पर ग्यारहवे वर्ष रानी की ओर से पॉडे के द्वारा उड़ीसा के राजा के यहॉ पत्र भेजने तथा पत्र पाकर वीसलदेव के अजमेर लौट आने को कथा है।

चतुर्थ खण्ड हनुमान जी की वन्दना से आरम्भ होता है। इसमे पहले वीसलदेव के द्वारा अपने भतीजे को युवराज के पद पर आसीन कराने और भोज को आमंत्रित करके उससे मिलने की कथा है, तत्पश्चात् भोज के राजमती के साथ धार जाने और वीसलदेव द्वारा राजमती को वापस लाने की कथा का वर्णन करके अशीर्वाद के साथ कवि रासो को समाप्त कर देता है।

वीसलदेवरासो की हस्तलिखित प्रतियाँ

इस समय "वीसलदेवरासो" का एक ही प्रकाशित संस्करण उपलब्ध है जो काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा से प्रकाशित हुआ

है । इसका सम्पादन दो प्राचीन-प्रतियों के आधार पर श्री सत्यजीवन वर्मा ने किया है। इसमें से एक प्राचीन-प्रति सं० १६६६ (सन् १६१२) की है। इस प्रति का पता सभा को सन् १६०० ई० में हिन्दी-हस्तलिखित-पुस्तकों की खोज करते समय जयपुर में लगा था। एक सं० १६५६ की दूसरी प्रति सम्पादक को अपने पिता से प्राप्त हुई। इन्हीं दोनों के आधार पर प्रस्तुत संस्करण तैयार किया गया है।

इधर श्रीयुत अगरचन्द नाहटा ने "राजस्थानी" त्रैमासिक पत्रिका में "वीसलदेवरासो और उसकी हस्तलिखित प्रतियाँ" नामक अपने निबंध में इस ग्रंथ की पन्द्रह प्रतियों का परिचय दिया है । आपने रासो की बारह पूर्ण तथा तीन अंशतः पूर्ण अर्थात् कुल पन्द्रह प्रतियों का पता लगाया है। इनके अतिरिक्त कई प्रतियों के एक-एक या दो-दो फुटकर पन्ने भी मिले है। इन पन्द्रह पूर्ण प्रतियों में से, सात प्रतियाँ तो बीकानेर के अभयजैन "भण्डार" नामक पुस्तकालय में सुरक्षित है। शेष आठ प्रतियों में सं० १६८५ की एक प्रति बालोतरा के 'खरतर-गच्छ भण्डार' में, एक बीकानेर के 'जयचन्द्र जी भण्डार' में, एक उसी राज्य के 'कृपाचन्द्र सूरि-ज्ञान-भण्डार' में, एक चतुर्भुज जी के ग्रंथ-संग्रह में, एक 'दानसागर भण्डार' में, एक कोटा के 'खरतरगच्छ भण्डार' में एक जेसलमेर के 'जिनभद्र सूरिज्ञान-भण्डार में, तथा एक जयपुर की 'विद्या-प्रचारिणी जैनसभा' से प्राप्त हुई है। काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा द्वारा मँगवाई हुई यही अंतिम प्रति है, जो फूलखेड़ा नामक स्थान में सं० १६६६, फागुन वदी १ भौमवार को लिखी गई थी।

बीकानेर के बड़े उपासरे के महरचन्द भण्डार में वीसलदेव रासो की एक प्रति का केवल अन्तिम पत्रा [पत्रा नं० १३] विद्यमान है। यह प्रति सत्रहवीं शताब्दि में लिखी हुई प्रतीत

होती है। इसमें छन्द संख्या ३१० है जो अन्य सभी प्रतियों से अधिक है। इस प्रति का संवत् वाला पद्य कोटा वाली प्रति से मिलता है।

प्राचीनता की दृष्टि से सबसे पुरानी प्रति, जयपुर की विद्या-प्रचारिणी जैन-सभा वाली ही है, जिसका लिपिकाल सं० १६६६ बताया गया है। इसके बाद, बालोतरा की प्रति है जिसका लिपिकाल सं० १६८५ है। शेष प्रतियों में कुछ १८ वीं शताब्दि की लिखी हुई हैं और दो उन्नीसवीं शताब्दि की हैं। महरचन्द भण्डार वाला पत्रा तो नाहटा जी के अनुसार सत्रहवीं शताब्दि का है।

इन प्रतियों के मिलान करने से नाहटा जी को सबसे महत्व-पूर्ण बात यह ज्ञात हुई कि ग्रंथ के दो भिन्न-भिन्न रूपान्तर हो गए है और दोनों में अंतर भी पर्याप्त है। किन्तु दोनों में कवि का नाम नरपतिनाल्ह ही मिलता है और भाषा तथा शैली दोनों में, लगभग एक ही प्रकार की है। आप के अनुसार, दोनों रूपान्तरों के मुख्य अंतर निम्नलिखिति हैं :—

(१) पहला रूपांतर चार खण्डों में विभक्त है, परन्तु दूसरे रूपांतर में ऐसा विभाजन नहीं है।

(२) जहाँ पहले रूपांतर का तीसरा खण्ड समाप्त होता है, वहाँ दूसरे रूपांतर की सारी कथा समाप्त हो जाती है। पहले के चौथे खण्ड की कथा दूसरे में नहीं मिलती।

(३) पहले रूपांतर में माघ, कालिदास आदि पंडितों के नाम आए हैं, दूसरे में ये नाम नहीं है।

(४) पहले रूपांतर में रानी ज्योतिषी को एक मास पीछे का मुहूर्त देने को कहती है, दूसरे में चार मास पीछे का।

(५) पहले में पांडे का वर खोजते हुए जेसलमेर जाने का उल्लेख है; दूसरे में नहीं।

(६) पहले रूपांतर मे उड़ीसा-यात्रा मे साथ जाने वाले सरदारो का नाम है; दूसरे में नहीं।

(७) पहले रूपांतर मे जगन्नाथ-पूजा का उल्लेख है; दूसरे मे नहीं

(८) पहले मे वर्णन-विस्तार अधिक है, दूसरे मे वर्णन संक्षेप मे हैं।

(९) पहले रूपांतर की प्रतियों मे रचना-काल का सूचक, पद्य, ग्रन्थ के आदि मे है, परन्तु दूसरे रूपांतर की प्रतियो मे यह ग्रन्थ के अंत मे है।

(१०) पहले रूपांतर के अनुसार रचना-काल "बारह सै बहोतरॉ" है, किन्तु दूसरे रूपांतर के अनुसार "सहस सतिहत्तर" या "सहस तिहत्तर" है।

यहाँ पर यह लिख देना आवश्यक है कि नाहटा जी दूसरे रूपांतर को ही अधिक प्राचीन तथा प्रामाणिक मानते हैं। ऐसा मानने के लिए आपने एक अन्य कारण भी दिया है। वह है रचनातिथि को सूचित करने वाले पद्य के सम्बन्ध मे। आपके अनुसार ग्रन्थ के आदि मे रचनाकाल का निर्देश करना मुसलमान-ग्रन्थकारो की शैली है; प्राचीन-भारतीय-ग्रंथो मे रचनाकाल सदैव गन्थ के अन्त मे दिया जाता था। आरम्भ मे तिथि देने की पद्धति मुसलमानों के अनुकरण पर सोलहवीं शताब्दि के आस-पास से चली। इसप्रकार आप को प्रथम-रूपांतर की अपेक्षा द्वितीय ही अधिक प्राचीन तथा प्रामाणिक जान पड़ता है जिसमे ग्रन्थ के अन्तिम (२९०वे) छन्द मे रचनातिथि इस प्रकार दी गई है—

संवत सहस सत्तिहतरइ जाणि।
नाल्ह कवीसर सरसीय वाणि॥

गुण गृंथ्या चउहाण का ।
सुकल पख पंचमी श्रावण मास ॥

इसमे संदेह नहीं कि द्वितीय-रूपांतर पहले की अपेक्षा संक्षेप मे है और उसमे कई व्यर्थ घटनाओं तथा वर्णनों का उल्लेख भी नहीं है। उदाहरण के लिए दूसरे रूपांतर में न तो माघ, कालिदास आदि कवियों के नाम गिनाये गए हैं और न उड़ीसा-यात्रा मे साथ जाने वाले सरदारों के नाम ही आए है। पांडे का वर खोजते हुए जेसलमेर जाने की कथा भी, जो इतिहास-विरुद्ध है, दूसरे-रूपांतर मे नहीं मिलती। इससे अवश्य यह निष्कर्ष सरलता के साथ निकाला जा सकता है कि दूसरे रूपांतर का संक्षिप्तरूप ही प्राचीनता के अधिक निकट है। उसी संक्षिप्तरूप मे, अन्य विस्तार, बाद के कवियों तथा गायकों द्वारा जोड़ा जाना तत्कालीन प्रवृत्ति को देखते हुए अधिक स्वाभाविक जँचता है।

किन्तु ग्रन्थ के सच्चे स्वरूप के संबंध मे तब तक कोई निर्णय नहीं दिया जा सकता, जब तक कि समस्त प्रतियों का मिलान करके किसी राजस्थानी-भाषा के अच्छे विद्वान् द्वारा एक प्रामाणिक-संस्करण प्रकाशित नहीं होता। रही तिथि के आदि अथवा अन्त में निर्देश करने की बात, उसके सम्बन्ध अभी तक यह कोई निश्चित-नियम नहीं ज्ञात होता कि मुसलमानों के प्रभाव से वंचित सारे भारतीय कवियों ने ग्रंथ के अंत मे ही अनिवार्य रूप से तिथि का निर्देश किया हो। नाहटा जी के इस तर्क का खण्डन पं० गौरीशंकर हीराचन्द जी ओझा ने भी किया है। सच बात तो यह है कि तिथि का निर्देश कवि अपनी रुचि के अनुसार, ग्रन्थ के किसी भी अंश में कर सकता है। रामचरित-मानस में भी गो० तुलसीदास ने ग्रन्थ के आरम्भ

में ही तिथि का निर्देश किया है, किन्तु इससे यह निष्कर्ष निकालना कठिन है कि "नाना-पुराण-निगमागम-सम्मतं" कहने वाले गोस्वामी जी ने मुसलमानी शैली का अनुकरण किया है।

वीसलदेवरासो का निर्माणकाल

वीसलदेव रासो के निर्माण-काल के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। श्री अगरचन्द नाहटा ने रासो की भिन्न-भिन्न प्रतियों के अनुसार रचना संवत् १०७३, १०७७, १२१२, १२७२ और १३७३ (या १३७७) दिया है। प्रथम-रूपान्तर की प्रतियो मे तेरहवी शताब्दि तथा द्वितीय-रूपांतर की प्रतियो मे ग्यारहवी शताब्दि की तिथियाँ मिलती हैं। दूसरे रूपान्तर की केवल एक प्रति मे सं० १३०७ (या १३७७) दिया है। भिन्न-भिन्न तिथियाँ प्रस्तुत करने वाली भिन्न-भिन्न प्रतियो की पंक्तियाँ नीचे उद्धृत की जाती हैं—

(१) मुद्रितप्रति - "बारह सै बहतराँहाँ मंझारि,
जेठ बदी नवमी बुधवारि।

(२) अभय-जैन-ज्ञानभंडार की प्रति—संवत् बार बारोतरा मझारि,
जेठ बदि नवमी बुधवारि।

(३) अभय ज्ञान-भंडार की एक अन्य प्रति—
संवत सहस सहितरइ जाणि,
नाल्ह कवीसर सरसीय वाणि,
गुण गूंथ्या चउहाण का।
सुकल पख पंचम श्रवण मास,
रोहिणी नखत्र सोहामणउ,
सुदिन गिण जोइसी जोडियउ रास।

(४) वालें तरा के खरतरगच्छ भंडार की प्रति—
संवत् सहस तिहुतरइ जाणि।

(५) कृपाचंद-सूरि ज्ञान-भंडार की प्रति –

मंवत् सत्तर तिहोतरे जाणि।

(६) दानसागर भंडार की प्रति – संवत सहस तिहुतरे।

(७) कोटा के खरतरगच्छ भंडार की प्रति—

सवत तेर सतोतरइ जाणि,
सुक्ल पचमी नइ श्रावण मास,
हस्त नक्षत्र रविवार सुं,
सुम दिन जोमी रे जोडियउ रास।

जाँच करने के पश्चात् नाहटा जी को केवल प्रति नं० २ अर्थात् अभय-जैन-ज्ञान-भण्डार की प्रति ही ठीक जान पड़ी; इसके तिथि-वार सब मिल जाते हैं।❀

प्रसिद्ध विद्वान् श्री गौरीशंकर हीरशचन्द जी ओझा ने नाहटा जी के द्वारा प्रस्तुत की हुई सारी तिथियों की जाँच की है। इस सम्बन्ध मे ओझा जी का एक लेख "नागरी-प्रचारिणी पत्रिका" (वर्ष ४५ अंक २, श्रावण, १९९७, पृ० १६३-१७१) में प्रकाशित हुआ है जिसका निष्कर्ष आगे दिया जा रहा है।

नाहटा जी द्वारा दी गई भिन्न-भिन्न प्रतियों के अनुसार रासो की रचना का संवत् १०७३, १०७७, १२१२, १२७२, १२७३ १३०७, १३७७ हो सकता है।

काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा के संस्करण में संवत् इस प्रकार दिया गया है—

"बारह सै बहत्तरांहां मझारि।
जेठ बदी नवमी बुधवारि।"

❀यहाँ पर यह संकेत कर देना आवश्यक है कि "बारह सै बहत-रांहां" का अर्थ श्री नाहटा जी १२७२ ही लेते हैं, १२१२ नहीं।

ओझा जी "वहत्तरां" का अर्थ ७२ ही लेते हैं। आपके अनुसार राजस्थानी-भाषा में उसका यह अर्थ ही समीचीन है। राजपूताने में पहले विक्रम-संवत् कहीं चैत्रादि (चैत्रसुदि १ से प्रारम्भ होने वाला) और कहीं कार्तिकादि (कार्तिक सुदि १ से चलने वाला) चलता था। जाँच करने पर आपको ज्ञात हुआ कि चैत्रादि वि० सं० १२७२ ज्येष्ठ वदि ९ को शुक्रवार था और कार्तिकादि वि० सं० १२७२ को बुधवार ही पड़ा था। अतएव आपने "वारहसै वहत्तराहा" से तात्पर्य कार्तिकादि वि० सं० १२७२ का ही लेना उचित समझा।

यहाँ पर "वारहसै वहत्तरां" के अर्थ के सम्बन्ध में अन्य विद्वानों के विचारों को उद्धृत कर देना अप्रासंगिक न होगा। मिश्रबन्धुओं के अनुसार "वहोत्तराहां" या वहत्तराहां का अर्थ 'बीस' है। आप लोग लिखते हैं—

"नरपति नाल्ह ने इसका" (बीसलदेवरासो का) समय १२२० लिखा है। पर जो तिथि उन्होंने बुधवार को ग्रंथ-निर्माण की लिखी है वह १२२० संवत् में बुधवार को नहीं पड़ती, परन्तु १२२० शाके बुधवार को पड़ती है। इससे सिद्ध होता है कि रासो १२२० शाके में बना जिसका वि० सं० १३५४ पड़ता है।❀

इस तर्क के आधार पर मिश्र महोदयों ने "वारहसै वहत्तरांहां" का अर्थ सं० १३५४ निकाला है। बा० श्यामसुन्दर दास जी ने भी सन् १९०० की हिन्दी-हस्तलिखित पुस्तकों की खोज सम्बन्धी रिपोर्ट में "वारहसै वहत्तरांहा" को १२२० शाक संवत् ही मान लिया था; किन्तु बाद में आपके विचार बदल गए और आप उसका अर्थ १२१२ वि० सं० मानने लगे।

❀मि० ब० वि० भा० १; पृ० २०६।

आचार्य श्री शुक्ल जी उक्त पंक्ति का अर्थ सं० १२१२ लगाते हैं। आप लिखते हैं कि 'वारहसै वहोत्तर'' का स्पष्ट अर्थ १२१२ है । 'वहोत्तर' शब्द वरहोत्तर, 'द्वादशोत्तर' का रूपान्तर है । अतः "वारहसै वहोत्तरहाँ" का अर्थ "द्वादशोत्तर वारहसै" अर्थात् १२१२ होगा। गणना करने पर वि० सं० १२१२ मे ज्येष्ठ वदी नवमी को बुधवार ही पड़ता है।❀ "वारहसै वहोत्तरां" का अर्थ १२१२ मानने से दूसरी सुविधा यह हो जाती है कि नाल्ह तथा ग्रंथ के नायक वीसलदेव को आसानी से समकालीन माना जा सकता है। ग्रन्थ में क्रियायों का सर्वत्र वर्तमानकाल मे ही प्रयोग किया गया है। इससे सिद्ध होता है कि कवि वीसलदेव का समकालीन था। इन विद्वानो ने वीसलदेव को विग्रहराज (चतुर्थ) माना है जिसका सं० ११२० तक वर्तमान रहना अनेक शिलालेखों से प्रमाणित है।

मुद्रित-संस्करण के सम्पादक श्री सत्यजीवन वर्मा ने भी उक्त तर्कों के आधार पर उसका अर्थ १२१२ ही लिया है। किन्तु दूसरे पक्ष वाले विद्वान् इन तर्कों का खण्डन करते हैं। ओझा जी ने अपने लेख मे यह स्पष्ट सिद्ध किया है कि इस ग्रंथ का वीसलदेव विग्रहराज चतुर्थ नहीं है जैसा कि अन्य विद्वान् मानते आए हैं अपितु वह विग्रहराज तृतीय है।❀

जहाँ तक क्रियाओं के प्रयोग का सम्बन्ध है, अनेक ग्रन्थ ऐसे मिलते हैं जिनमे समकालीन न होने पर भी वर्तमान-कालिक क्रियाओं का प्रयोग मिलता है। प्रायः घटनाओं को सत्य का रूप देने के लिए ही कवियो ने ऐसा किया है।

❀हिन्दी-साहित्य का इतिहास पृ० ४१ ।

इसप्रकार 'बारहसै बहोत्तरां" का अर्थ १२७२ मानने के पक्ष मे मुख्यतया श्री गौरीशंकर हीराचन्द जी ओझा, श्री अ ार चन्द नाहटा, तथा लाला सीताराम जी है और १२१२ मानने के पक्ष मे आचार्य शुक्ल जी, बा० श्याम सुन्दरदास, श्री सत्य जीवन वर्मा है। मिश्र-बन्धुओ का एक विशिष्ट वर्ग है जो उसका अर्थ सं० १३५४ वि० लेता है।

यह तो हुआ मुद्रित-प्रति की तिथि के सम्बन्ध मे। उक्त सूची की प्रति नं० २ मे भी वही तिथि है अतः ओझा जी ने उसकी अलग से जॉच नही की। प्रति नं० ३ मे सं० १०७७ श्रावण सुदि ५ रोहिणी नक्षत्र दिया हुआ है। चैत्रादि संवत् के अनुसार उक्त तिथि को बुधवार और हस्तनक्षत्र तथा कार्तिकादि संवत् के अनुसार सोमवार और हस्तनक्षत्र आता है। इसका नक्षत्र प्रति मे आए हुए नक्षत्र से नही मिलता।

प्रति ४ तथा ६ मे केवल १०७३ वि० सम्वत् दिया हुआ है। मास, पक्ष, तिथि वार आदि कुछ न होने से उसकी जॉच ही नही हो सकती।

प्रति ५ मे "सतरातिहोतरे" अर्थात् वि० सं० १७७३ दिया है। इसकी भी जॉच नही हो सकती।

प्रति ७ मे वि० सं० १३७७ श्रावण सुदि पंचमी, हस्त नक्षत्र, रविवार दिया है। पंचमी तिथि पर चैत्रादि के अनुसार हस्त नक्षत्र और शुक्रवार तथा कार्तिकादि के अनुसार उक्त तिथि को चित्रानक्षत्र और गुरुवार पड़ता है। इसप्रकार यह सम्वत् भी अशुद्ध है।

निष्कर्ष यह कि केवल प्रति नं० १ तथा २ के मास, पक्ष तिथि वार आदि मिलान करने पर ठीक उतरते हैं, शेष के नहीं। इसप्रकार ग्रन्थ का रचनाकाल ओझा जी के अनुसार कार्तिकादि वि० सं० १२७२ ही मानना उचित है।

ऐतिहासिकता

अन्य ऐतिहासिक-सामग्रियों से मिलान करने पर "वीसलदेवरासो" में अनेक भूलें मिलती हैं। कवि ने मुख्य रूप में दो घटनाओं का वर्णन किया है। एक तो वीसलदेव के राजा भोज की पुत्री के साथ विवाह होने की और दूसरी उसके उड़ीसा जाने की।

अजमेर और सांभर के चौहानों में विग्रहराज नाम के चार राजा हुए थे, जिनको वीसलदेव भी कहते थे। दिल्ली के फीरोज़ शाह की लाट पर विग्रहराज (चतुर्थ) द्वारा खुदवाए हुए लेख की निम्नलिखित पंक्तियों से इस बात की पुष्टि होती है—

"आर्यांवर्तं यथार्थं पुनरपि कृतवान्
म्लेच्छ विच्छेदनाभिः।
देवः शाकंभरींद्रो जगति विजयते
वीसल क्षोणिपालः ॥१॥
ब्रूते सम्प्रति चाहमान तिलकः
शाकंभरी भूपतिः।
श्रीमद् विग्रहराज एष विजयी
संतान जानात्मनः ॥२॥
[वि० स० १२२० वैशाख सुदि गुरुवार]

विग्रहराज (तृतीय) का सं० ११५० वि० में तथा विग्रहराज (चतुर्थ) का सं० १२१० से १२२० वि० तक वर्तमान रहना शिलालेखों से सिद्ध होता है।❀

विग्रहराज चतुर्थ ने वि० सं० १२१० में "हरकेलि नाटक" समाप्त किया था। इसीप्रकार विग्रहराज (तृतीय) का भी वि०

❀ओझा, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ४५, अं० २, श्रा० १९९७, पृ० १६५।

सं० १०३० में विद्यमान रहना इतिहास से तथा विग्रहराज प्रथम का सं० ८८० के लगभग जीवित रहना अनुमान से सिद्ध हो जाता है।

"बीसलदेवरासो" में कोई वंशावली नहीं दी गई है, अत. यह निर्णय करना बड़ा कठिन हो जाता है कि यह कौन सा विग्रहराज था। सभा-संस्करण के सम्पादक तथा अन्य कई विद्वान् उसे विग्रहराज (चतुर्थ) ही मानते हैं, किन्तु श्री ओझा जीने इस मत को भ्रामक सिद्ध करते हुए "वीसलदेवरासो" के नायक को विग्रहराज (तृतीय) मानना ही अधिक समीचीन समझा है।

यदि वीसलदेव को विग्रहराज (चतुर्थ) माना जाय तो राजमती से उसके विवाह होने की कथा इतिहास के विरुद्ध ठहरती है। राजमती को वीसलदेवरासो में भोज की पुत्री कहा गया है और भोज का समय लगभग सं० ११११ के आस-पास था। बीसलदेव (चतुर्थ) का समय ऊपर सं० १२०७ से १२२० तक होना सिद्ध किया गया है। इसप्रकार सौ वर्ष पूर्व के किसी व्यक्ति की पुत्री से विवाह होने की कथा बड़ी असंगत होगी। श्री सत्यजीवन वर्मा ने इस आपत्ति से बचने के लिए "भोजो भोज इवापरः" के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि वह उसी भोज के वंश का कोई दूसरा शासक था। किन्तु इससे ऐतिहासिक असंगतियाँ और बढ़ ही जाती हैं।

बिजोल्याँ के शिलालेख में, चौहानों की वंशावली में, विग्रह-राज (तृतीय) की रानी का नाम राजदेवी दिया गया है। राज-देवी और बीसलदेवरासो की राजमती में थोड़ा ही अंतर ज्ञात होता है जो वास्तव में नहीं के बराबर है। दोनों नाम एक ही रानी के सूचक ज्ञात होते हैं। परमार राजा भोज ने चौहान राजा वाक्पति राज (द्वितीय) के छोटे भाई वीर्यराज को युद्ध

में मारा था; इससे सम्भव है, दोनों राजवंशों में कुछ अनबन हो गई हो। राजपूतों में ऐसी अनबन पुत्री के विवाह से मिटती थी जिसके अनेक उदाहरण इतिहासों में मिलते हैं। सम्भव है, भोज के भाई उदयादित्य ने, जो शिलालेखों के प्रमाणों से विग्रहराज (तृतीय) का समकालीन सिद्ध होता है, चौहानों के साथ अपना वैर मिटाने के लिए, अपनी भतीजी (भोज की पुत्री) राजदेवी अथवा राजमती का विवाह वीसलदेव (तृतीय) से कर दिया हो।

सम्वत् १२७२ वि० अर्थात् डेढ़ सौ वर्ष पश्चात ग्रंथ को छंदोबद्ध करने वाले कवि नरपतिनाल्ह को केवल इतना ही ज्ञात था कि किसी भोज की पुत्री राजमती के साथ वीसलदेव का विवाह हुआ था। उसी के आधार पर उसने अनेक कल्पनात्मक नामों तथा घटनाओं का मिश्रण करके लोकरंजनार्थ एक काव्य गाने योग्य तैयार कर लिया। यह विवाह कब हुआ था, इसका उसको ठीक-ठीक पता न था; इसलिए राजमती के पिता के नाते, भोज के जीवन-काल में ही विवाह हो जाने का उसने वर्णन कर दिया।

विवाह के उपलक्ष में गुजरात, सांभर, टोडा, टोंक, चित्तौड़ आदि देश भोज द्वारा वीसलदेव को दिए जाने की कथा भी कोरी कल्पना है। ये स्थान न कभी भोज के आधीन थे और न उसके वंशजों के ही। इसीप्रकार कालिदास तथा माघ आदि नामों में भी केवल कल्पना की उड़ान ही ज्ञात होती है।

जेसलमेर का सबसे पहला उल्लेख सं० १२८५ में मिलता है। रावल जेसल का प्रपौत्र सं० १३४० में हुआ था और उसकी एक रानी सं० १३८० तक जीवित थी। अतः जेसल का समय सं० १२५० के पूर्व होना सम्भव नहीं। वीसलदेव रासो में जेसलमेर का नाम अनेक स्थलों पर आया है। इसी

प्रकार अजमेर, आनासागर आदि स्थानों के नामों के सम्बन्ध में भी है। ग्रन्थ-रचना के समय (सं० १२७२) ये सभी स्थान वर्तमान थे। अतः कवि ने जैसे अन्य अनेक नामों की भरमार कर दी थी, वैसे ही इन नामो को भी कथा में जोड़ दिया।

दूसरी मुख्य घटना उड़ीसा जाने के सम्बन्ध की है। किन्तु चारों बीसलदेवो मे से किसी के उड़ीसा-विजय करने का प्रमाण नहीं मिलता। तीर्थ-यात्रा के प्रसंग मे विग्रहराज (चतुर्थ) द्वारा विन्ध्याचल से लेकर हिमालय तक के देशो को विजय करने का उल्लेख केवल एक स्थान पर "भारत के प्राचीन राजवंश" मे मिलता है, किन्तु इस प्रमाण मे कितना सत्य का अंश है, यह कहना कठिन है।

वास्तव में नरपति न तो इतिहासज्ञ था और न कोई बड़ा कवि ही। किसी सुने सुनाए आख्यान के आधार पर लोगो को प्रसन्न करने के लिए उसने कुछ वेतुकी तुकवन्दी करके काव्य का एक ढाँचा येनकेन प्रकारेण खड़ा कर दिया, जिसपर उसके पश्चात् के कवियो ने भी नमक मिर्च लगाया। इसप्रकार एक साधारण कवि के मिथ्या-वहुल-काव्य को लेकर, जिसका असली रूप भी इस समय सुरक्षित नही, इतनी ऐतिहासिक ऊहापोह करनी ही व्यर्थ है।

आलोचना

नरपतिनाल्ह अत्यन्त साधारण श्रेणी का कवि था। वीसलदेवरासो का मूलरूप चाहे जो भी रहा हो, वर्णनशैली तथा प्रवन्ध-रचना की दृष्टि से वह वर्तमान संस्करण सा ही रहा होगा, उससे सुन्दर कदापि नहीं। परिवर्तन केवल भाषा अथवा वर्णन-विस्तार मे ही हुआ होगा, शैली में नही।

रासो के वर्तमान रूप को देखते हुए सहज ही यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि न तो इसमे किसी प्रकार का साहित्यिक-सौष्ठव है और न वर्णनो मे किसी प्रकार की रोचकता है। नितांत साधारण और अक्रमिक शैली मे घटनाओं का वर्णन मिलता है। उदाहरणस्वरूप निम्निलिखित पद्य लिया जा सकता है—

जाइ सिंघासण बइठो छइ राइ।
डोरो छोरी, जुहारी छइ माइ॥
सेज पधारी रावकी।
अतिरंग स्वामी सू मीली राति॥
वेटी राजा भोज की।
राजमती रग बीसल राव॥

[बी० रा०; पृ० ८८]

वर्णन मे कितनी व्यतिक्रमता है! विचारों की कोई शृंखला ही नहीं मिलती। ऐसे ही न जाने कितने स्थलों पर बीच ही में "वेटी राजा भोज की" जोड़ दिया गया है।

इससे अधिक कवि की अयोग्यता उन स्थलों पर परिलक्षित होती है, जहाॅ वर्ण्य-विषय को सुन्दर ढंग से रखने में भी वह असमर्थ हो जाता है। राजमती सखियों से अपनी करतूत कितने भोंड़े ढंग से बताती है जिसके सामने ग्रामीण कलहंतरिका को भी लज्जित होना पड़ेगा। सदंर्भ से सम्बन्धित पंक्तियां नीचे उद्धृत की जाती हैं—

"राई नहीं, सखी! भइस पीडार।
अहिश्रय चरित्र उलिपई ही गंवार॥
लाख चरित्र आगइं मइं कीया।
चोली खोलि दीखाल्या छइ गात॥

तउ पती न उबालहो।
नीहंचइ सषी ! ओलिग जाईणहार ॥"
[बी० रा० पृ० ३८]

ऐसे अनेक नीरस-स्थल रासो में भरे पड़े हैं।

केवल एकाध स्थलों पर कुछ साहित्यिकता दृष्टिगोचर हो जाती है, जैसे तृतीयसर्ग में सखियों के परस्पर वार्तालाप में एक सखी कहती है :—

"त्री जनम कांई दीयौ हो महेस।
अवर जनम थारे घणाहो नरेस ॥
रानइ न सिरजी हरिणली।
सूरइ न सिरजी धीणु गाई ॥
बनपड काली कोइली।
बइसती अंब कइ चप की डालि ॥
बइसती दाख बी जोरड़ी।"

कितनी स्वाभाविक स्त्रियोचित उक्ति है—"ईश्वर ने पशु-पक्षी का जन्म दिया होता तो अबतक अपने प्रिय के साथ किसी वनखण्ड में विचरण करती रहती !" इन पंक्तियों को पढ़ कर सहसा—

"कत विधि सृजी नारि जगमाहीं।
पराधीन सपनेहु सुख नाहीं ॥" (मानस)

तथा

"जौ मैं होतेउँ बन कै कोइलिया।
कुहुकि रहतेउँ राजा तोरे बँगले पे ॥"

(प्रचलित ग्राम्यगीत)

का स्मरण हो उठता है।

इस रासो की एक विशेष प्रवृत्ति और उल्लेखनीय है। वह यह कि इसमें शृंगार-रस की ही प्रधानता है। वीसलदेव तृतीय तथा चतुर्थ दोनों बड़े प्रतापी-शासक थे किन्तु नाल्ह ने कोरे शृंगार के अतिरिक्त अपने चरित्रनायक के शौर्य-पराक्रम का कोई वर्णन नहीं किया है। केवल विवाह के पश्चात् रूठकर पति के विदेश चले जानेपर नायिका (प्रोषितपतिका) के वियोग का ही मनमाना वर्णन है।

केवल एक बात में इस रचना का थोड़ा सा साहित्यिक मूल्य है। वह यह कि यदि सब विद्वान, निश्चितरूप से इस को सं० १२७२ की रचना मान लें तो यह साहित्य की प्राचीनतम उपलब्ध कृति मानी जायगी।

बीसलदेवरासो की भाषा

"वीसलदेवरासो" की भाषा के सम्बन्ध में सन्देह प्रकट करते हुए श्रीयुत अगरचन्द नाहटा ने 'राजस्थानी'-पत्रिका में प्रकाशित अपने लेख में उसे सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दि की राजस्थानी-भाषा माना है। आप लिखते हैं कि "वीसलदे रासो की भाषा सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दि की राजस्थानी-भाषा है। जिन विद्वानों ने ग्यारहवीं से सत्रहवीं शताब्दि तक की राजस्थानी-भाषा का अध्ययन किया है उनका यह मत हुए बिना नहीं रह सकता।❀ किन्तु इसकी पुष्टि में आपने कोई प्रमाण नहीं प्रस्तुत किया है।

आचार्य शुक्ल जी का मत है कि यद्यपि गाने की चीज होने के कारण मूल रासो की भाषा में समयानुसार बहुत कुछ फेर-फार होता रहा है किन्तु लिखितरूप में रक्षित होने के कारण इसका पुरान ढाँचा बहुत कुछ बचा हुआ है। इस कथन की

❀अगरचन्द नाहटा; राजस्थानी, भा० ३, अं० ३, पृ० २१।

पुष्टि में आपने रासो मे प्रयुक्त कुछ शब्दों की ओर संकेत किया है; जैसे—'चितह'=चित्त मे, 'रणि'=रण में, 'ईणी विधि'= इसप्रकार, 'ईसउ'=ऐसा, 'नयर'=नगर, 'पसाउ'=प्रसाद, 'पयोहर'=पयोधर।※

श्रीयुत ओझा जी का भी मत है कि यद्यपि मूल रासो में पीछे से कुछ हेर-फेर हुआ है, किन्तु उसमे प्राचीनता के चिह्न वर्तमान हैं। आपके अनुसार इसकी भाषा बारहवीं तेरहवीं शताब्दि की है। आपने नाहटा जी के खण्डन मे जो लेख नागरी प्रचारिणी-पत्रिका मे प्रकाशित किया है, उसमे प्रसिद्ध विद्वान् हेमचन्द्राचार्य द्वारा रचित अपभ्रंश के व्याकरण में उद्धृत दोहों तथा मेरुतुंगाचार्यकृत "प्रबध-चिन्तामणि" मे दिए हुए दोहों से बीसलदेवरासो की भाषा का मिलान किया है। आप के द्वारा उद्धृत पद नीचे दिए जाते हैं :—

(१) पुत्तें जाएँ कवणु गुणु अवगुणु कवणु मुएण।
जा बप्पी की भुंहडी चंपिज्जइ अवरेण॥"

[अप० व्या०; हेमचंद्राचार्य]

(२) "जेवड्डु अंतरु रावण रामहँ तेवड्डु अंतरु पट्टणगामहँ।

[वही]

(३) "जा मति पच्छइ संपज्जइ सामति पहिली होइ।
मुंज भणइ मुणालवइ विघन न वेढइ कोइ॥"

[प्रबन्ध चिन्तामणि]

(४) "जइ यह रावणु जाइयउ दहमुह इक्कु सरीरु।
जणणि वियंभी चिंतवइ कवणु पियावउँ खीरु॥"

[वही]

※रामचन्द्र शुक्ल; हि० सा० इ० पृ० ४४।

इन उदाहरणों मे प्रयुक्त सर्वनाम, क्रिया, संज्ञा, सभी के रूप "वीसलदेवरासो" मे प्रयुक्त रूपों के समान ही है। हेमचन्द्राचार्य के व्याकरण का रचना-काल वि० सं० १२०० के लगभग तथा प्रबन्ध-चितामणि का सं० १३६१ है। पहले ग्रन्थ मे ऊपर उद्धृत की हुई पंक्तियाँ उदाहरण के रूप मे आई हैं; अत निश्चय ही उक्त पंक्तियाँ तत्तत् ग्रन्थो से प्राचीन हैं।

"वीसलदेवरासो" की भापा के सम्बन्ध मे एक महत्व पूर्ण प्रश्न यह हो सकता है कि क्या इसकी भाषा उस समय की साहित्यिकभापा है या सर्वसाधारण के वोलचाल की भापा। अथवा सम्भव है वह उन दोनों मे से एक भी न हो। इस सम्बन्ध मे इस वात को सदैव स्मरण रखना चाहिए कि जैन लेखक तथा कवि, प्राकृत (अर्द्धमागधी प्राकृत तथा अपभ्रंश) का ही प्रयोग अपनी कविताओं मे करते थे, किन्तु साधारण चारण और कवि प्राकृत से अपरिचित होने के कारण अपनी प्रचलित भापा में ही रचना करते थे। नरपतिनाल्ह न तो भापा का पंडित था और न कोई सुकवि। अतएव उसके लिए अपनी मातृभाषा राजस्थानी मे कविता करना सर्वथा स्वाभाविक था।

"पृथ्वीराजरासो" तथा "वीसलदेवरासो" की भाषा की तुलना से यह वात स्पष्ट हो जाती है कि वीसलदेवरासो की भाषा अपेक्षाकृत प्राचीन है। "बीसलदेवरासो" की भापा कृत्रिम-डिंगल नही है, अपितु इसमें प्राचीनता के चिह्न वर्तमान है। यह कुछ उदाहरणों से स्पष्ट हो जाएगा। इसके कारक संयोग तथा वियोग, दोनो अवस्थाओ के हैं। संयोगावस्था—

प्रथमा—	(बहु व०)	जैसे, वानरॉ, ऊँटा,
तृ०—	"	" इन्द्रनी,
पष्ठी—	"	" घरह, इत्यादि

वियोगावस्था—आधुनिक हिंदी मे ने, को से, की, के, मे, आदि विभक्तियो को मूलशब्द मे जोड़कर विभिन्न कारक वनते हैं। इसीप्रकार के प्रयोग वीसलदेवरासो मे भी मिलते है। भेद इतना ही है कि इन कारको की कुछ विभक्तियाँ प्राचीन है। जैसे, 'ने' की जगह 'नी' 'नइ'; 'मे' की जगह 'मह', 'माहि' 'माहँ', 'मँझारि' इत्यादि; 'का', 'की', 'के', के स्थान पर 'तणा' 'तणी', 'तणौ', 'कई' 'कै' इत्यादि; तथा 'से' की जगह 'सु', 'सो' 'सू' तथा 'ते' इत्यादि।

क्रियाओं के रूप भी दोनों प्रकार से वने हुए मिलते है। एक तो सहायक क्रिया 'हूँ', 'हई', 'छइ', के संयोग से-जैसे, प्रथमपुरुप मे 'करूँ हूँ', लागू हो', 'तिजू हूँ', 'जाणू हूँ', 'उठूँ छूँ', इत्यादि, तथा अन्यपुरुप मे मे 'दूपइ छई', 'वरसइ छइ' इत्यदि। दूसरा रूप संस्कृत की ही भाँति मूल क्रिया मे ही प्रत्यय जोड़कर बना हुआ भी मिलता है। जैसे—

'बोलज्वाँ' 'आणज्यो' 'प्रणमू' इत्यादि।

राजस्थानी-उच्चारण के अनुसार 'न' के स्थान पर प्रायः 'ण' हो जाता है। जैसे-'पाणी' 'वाणियाँ' आदि। "वीसलदेवरासो मे भी 'न' के स्थान पर सर्वत्र 'ण' मिलता है। यथा-'गिणइ', 'मसाण' 'बाहिणी', 'जिण', 'रसायण'। संज्ञा-शब्दो के अंत में 'ड़ा' 'ड़ी' और 'ड़' का प्रयोग भी राजस्थानी की एक विशेपता है। 'दिहाड़उ', 'हियड़उ', 'गोरड़ी', 'मोचड़ी', 'वइहनड़ी', 'आँखड़ी' इत्यादि अनेक प्रयोग 'वीसलदेवरासो' मे मिलते है।

"वीसलदेवरासो" के अधिकांश शब्द तद्भव है, किन्तु कहीं-कहीं तत्सम शब्दो का भी इसमे प्रयोग हुआ है; यथा— 'हंस', 'नन्दन, त्रिभुवन', गुण', 'विनायक' इत्यादि।

इसीप्रकार कहीं-कहीं प्राकृत तथा अपभ्रंश का प्रभाव भी स्पष्टरूप से दृष्टिगोचर होता है। जैसे :—

मृग/मिग; भ्रमर/भमर; प्रसाद/पसाउ, इत्यादि ।

क्रियाएँ—

भ्रमति/भमइ; प्रविशति/पइसइ, प्रपिजइ आदि ।

रासो में कुछ विदेशी शब्द भी आए हैं । जैसे—

'इनाम', 'ताजी', 'खुरासान', 'महल', 'किस्मत' । कुछ अन्य प्रयोग भी ध्यान देने योग्य हैं । जैसे—

"मोती का आपा किया ।" (पृ० १२)

"चदन काठ को माडहो ।" (पृ० २२)

"सोना की चौरी मोती की माल ।" (पृ० २२)

इत्यादि ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि नाल्ह की भाषा उस समय की बोलचाल की राजस्थानी के समीप की भाषा है तथा इसके कारकों, शब्दों तथा क्रियाओं के रूपों को देखकर यह धारणा पुष्ट हो जाती है कि इसकी भाषा १२००- १३०० वि० सं० की है ।

'वीसलदेवरासो'

द्वितय सर्ग

गवरी को नन्दन आव्यो छइ भाव ।
दोय कर जोड़े लागु हो पाय ॥
'नाल्ह' रसायण रस भणइ ।
भूलो अपिर आणजो ठाई ॥
एकदंतो ! करूं वीनवी ।
रास प्रगासुं बीसल - दे - राई ॥१॥

गरब करि ऊभो छई साभंर्‌यो-राव ।
मो सरीखा नही ऊर भुवाल ॥
म्हां घरि सांभर उगहइ ।
चिंहु दिस थाण जेसलमेर ॥
लाख तुरी पापर पडइ ।
राजिकउ थानिक गढ़ अजमेर ॥२॥

गरब न बोलो हो मो भरतार ।
आजा-वाजे राजा असिय हजार ॥
लंकापति रावण धणी ।
सात समंद विच बस्तो फेर ॥
"लंक विधुसी वांनरां ।
थे काई सराहो राजा गढ अजमेर ॥३॥

गरभि न बोलो हो सांभर-या-राव ।
तो सरीखा घणा और भुवाल ॥
एक उड़ीसा को धणी ।
वचन हमारइ तुं मानु जु मानि ॥

ज्युं थारइ सांभर उगहइ ।
राजा उणि घरि उगहइ हीरा-खान ॥४॥
"धणक बोल बस्यो मन मांहि ।
चित चमकियउ बीसलराय ॥
हूँ बीसद्धयो तें वेदिठा ।
म्हा तु बरस बारह की लांव ॥
कइ म्हारइ हीरा ऊगईं ।
नहीं तो गोरी ! तिजुहूँ पराण" ॥५॥
"हूं बगकी धणी ! मोकियउ रोस ।
पांव की पाणही सुं कियउ रोस ॥
मे य हसंती बोलीयो ।
आपणइ मान हती मानस छइ साँस ॥
उभी मेरहे चालीयो ।
जल विण राजा क्युं जीवइ हाँस ?" ॥६॥
"जनमी गोरी तुं जेसलमेर ।
परणी आवी गढ अजमेर ॥
बार[ह] बरस की गोरड़ी ।
कूं समरथो उड़सिय जगनाथ ॥
अन मेरहुं पाणी तिजुं ।
कहित[ो]गोरी थारा जनम की बात ॥७॥
"जइ तुं पूछइहो धरह नरेस ! ।
वन खंढ रहती हरिणि कइ वेस ॥
निरजला करती एकादेसी ।
एक अहेड़ी वनह मंझारी ॥
ले वांणी उरडु हणी ।
जनम दीज्यो जगंनाथ दुवार ॥८॥

हरिणी मणि संभरया जगनाथ।
संख - चक्र - गदा - धरीय ॥
मांगिहे हरणली मनह विचार।
तो तुंठा त्रिभुवन धणी॥
पूरब देस म्हारो जनम निवारि" ॥९॥

'क्यु वीसरायो गोरी पूरब देस?।
पाप तणउ तिहां नहीं प्रवेस॥
अति चतुराई दीसइ घणी।
गङ्गा गया छै तीरथ योग॥
वाणारसी तिहां परसजे।
तिणि दरसण जाई पतिग म्हासि" ॥१०॥

"पूरब देस को पूरब्या लो।
पान फूलां तणउ तुं लहइ भोग॥
कण संचइ कुकस भखइ।
अति चतुराई राजा गढ ग्वालेर॥
गोरड़ी जेसलमेर की।
भोगो लोक दखण को देस ॥११॥

जनम हुयउ थारउ मारू कइ देस।
राज कुंवरि अति रूप असेस॥
रूप नीरोपमी मेदनी।
आछा कापड़ भीणइ लंक॥
सलयांगी घन कूंवली।
अहिरघ बाला, निर्मल दंत ॥१२॥

कूंवर कहई "सुणो! साभरया राव।
कांई स्वामी तुं उलगई जाई?॥

कह्यउ हमारउ जइ सुणउ ।
थारइ छइ साठि अंतेवरी नारि" ॥
कर जोडे धन वीनवइ ।
"राजकुंवरी निति भोगवि राय" ॥१३॥

रावइ कहइ "सुणी ! राजकुमारि ।
तुमनी काई हीयडइ घर नारि ॥
कह्यउ हमारो जउ सुणइ ।
आंणिसु कोडि - टकाउल - हार ॥
देस ठवीसइ गम कहुं ।
जाइं जुहारुं जादवराई" ॥१४॥

मइ धण्यो ! थार मिरहीय आस ।
"महला राजा थारउ कीसउ हो वेसास ।
तो हूँ दासी करि गीणी ।
सगा सुणी नी मोहि ना गमीमा ॥
जीवत ही मुआ वहइ ।
वालूं जोभी हूँ थारा दाम" ॥१५॥

"कदवा बोल न बोलीस नारि ! ।
तुं मो मेल्हसी चित विसारि ॥
जीभ न जीभ विगोयनो ।
दव का दाधा कुपली मेल्ही ॥
जीभ का दाधा नु पांगुरई ।
'नाल्ह' कहइ सुणाजइ सब कोई ॥१६॥

पंच सखी मीली बइठी छई आई ।
"निगुणी ! गुण होई तो प्रीव क्युं जाई ।
फूल पगर जू गाहजइ ।
थारउ आंचल बंध्यो नाह कुंजाई ? ॥१७॥

राव कहइ 'सुणि राजकुंमार ।
दूमनी काई हीयडइ वरनारि ।।
कह्यो हमारउ जै सुणइं ।
येक बार रहस्युं खटमास ।।
देव जुहारे आवस्युं ।
ते छइ त्रिभुवन-मुगति-दातार" ।।१८।।

राई कुंवरि बोलइ ईक चित ।
बीप्र हुंकारे वेग तुरंत ।।
आवीयो प्रोहित राव को ।
'पाड्या ! हु थारे गुणदास ।।
देई सचा वर वइरूणइं ।
मुहूरत देई वीर ! कातिग मास" ।।१९।।

पाड्या ! वीरा ! हूँ थारी गुण दास ।
दिन दस महूरत मौड्उ परगास ।।
मास एक बोलंवावज्यो ।
दूजइ फेरई प्रथि समझाई ।।
देइस हाथ कउ मुंदड्उ ।
सोवन सिंगी नई कपिला गाई" ।।२०।।

पाड्या ! तोहि बोलावइ छइ राय ।
ले पतड़ो जोसी वेगो आई ।।
सुदन कहै रूड़ा जोईसी ।
बाचइ पतड़ो बोलइ छइ साँच ।।
मास एका लागी दिन नहीं ।
तिथि तेरस वार सोमवार ।।
चंद्रई ग्यारमो देव है ।
तीसरो चंद्र छइ खोडीला जोगि ।।

काल जोगण भद्रा नहीं ।
पुष नक्षत्र नई कातिक मास ॥
जीण दिन स्वामी थे गम करउ ।
ज्युं धणी आगइ पूरइ हो आस" ॥२१॥

"पाछ्यों कहु कइ परतिप (इ) भांड ।
भूठ्ठ कहइ छइ नै बोलइ छइ मांड ॥
राज-कुली महूरत कीसउ ? ।
म्हां तो ओलग चालस्यां आज ॥
कह्यो हमारउ जोसी ! जइ सुणई ।
जाइ उडसिई पूजूं जगनाथ ॥२२॥

पाछ्यां हूँ तो ओलग जाऊं ।
जाई उडीसेइ वात कहांउ ॥
कह्यौ हमारौ जइ सुणइं ।
मो हइ घर की गोरड़ी कह्यां कुबोल ॥
मोहि न मन्दिर आलिगइ ।
जाइ उडीसइ तइ राखस्युं बोल ॥२३॥

"आव दमोदर सइसि नु पाट ।
कहिं न वीरा म्हां का पीउ की बात ॥"
"परौ हो अयांणउ उफिरई ।
आठमो ठांव रवि वारमो राहु ॥
ग्रह गणतो अतिहि वीरा" ।
सिर धुणी मूका छइ धाह ॥२४॥

"दासी होई करि निरवहुँ ।
पाय पषारसुं ठोलसुं वाई ॥
पुहर पुहर प्रति जागसुं ।
इण हर सेवस्युं आपणउ नाह" ॥२५॥

"गहिली है त्री तोहइ लागी छई वाय।
अस्त्रीय ले कोई उलगि जाई ?॥
गहिली मुंधउ तुं वावली ।
चंद क्युं कूडइ ढांकाणउ जाई ?॥
रतन छिपार्यो क्यु रहई ?।
आगहं बाचा को हीणो छइ पूरव्यो राइ" ॥२६॥

उलगो जांण सजौ समद्राव।
हंसि कर गोरी पूछइ राव॥
"सात बरस पेहलो रह्यो ।
चोरी लगइ न मोकल्ये कोई॥
लाहो लेता जनम गौ ।
सुय करै तिमी तोथी होई " ॥२७॥

अंचल गह तिय वहखाडी छइ आणी।
हंसि गल लाई भोजी सो फाण॥
आज कलेभंउ भांजवा ।
"था धनवीरा ! थारइ हिये न समाई॥
कै या बोल का आकरी ?।
कौणे दुख देवर ! उलग जाई" ॥२८॥

उभी भावज दइ छइ सीष ।
"रतन कचोलो राय सांपजे भीष॥
ते नाउं पगसूं ठेलीजै।
इसीन रायां तणौ नहीच अवास॥
ईस्त्रीय न देवल पूतली।
नयण सलूंणां वचन सुमीत ॥
ईसीय न स्वाती की घड़इ ।
इसी अस्त्री, नहीं रवि तलै दीठ" ॥२६॥

'रही ! रही ! भावज वचन तूं बोल ।
राज-कुंवर मोहइ कह्यो हो कुबोल ।।
मोहि रयणी दिन [न] बिसरइ ।
राज कुंवर आवे जो साथ ।।
तो विस खाये मरूं ।
बारह बरस पूजूं जगनाथ" ।।३०।।
आज सखी मोहि विहांण ।
पीढ़वा कइ दिन फइइ छइ जाण ।।
"आज नीरालइ सीय पड़्यो ।
च्यारि पहुर मांही नू मीली अंख ।।
ठळइ पांणी ज्युं माछली ।
जिव जागु तिय ठठुळुं झंपि ।।३१।।
बीज अध्यारी नइ सुक्रजोवार ।
महूरत नहीया कहइ घर-नार ।।
महा — तपअइ उपजइ ।
जै नर उलग ईण महूरत जाई ।।
आवण का सांसा पड़ई ।
जाणि हीमालइ राजा गलीया हो जाई ।।३२।।
तीजं घरि घरि मंगलचार ।
चिहुँ दिसी कामनी करई हो सयंगार ।।
रमइ सहेली काजली ।
घरि घरि कामिनी मइइ छइ खेल ।।
चंद्र वदन विलखी फिरई ।
स्नेह- गुठी राजा , औलगी मेलही ।।३३।।
"चउथ अंधारी [दि] नई मगलवार ।
चन्द उजालउ घरि घरि बारि ।।

"वरति करइ घरि आपणइँ ।
चउथ जुहारउ सांभरया—राव ॥
वचन हमारउ मानज्यो ।
हरिप के पूजो ईणी ठाई ॥३४॥

पंचम कउ दिन पहूतो छइ आई ।
अउत होइ घरि छोडो हो राय ॥
तु अजमेरां राजीयो ।
पुत्र कलत्र सहू परिवार ॥
सईभंर थांणउ बइसणइं ।
राई चहुवांण ! औलगि नीवार ॥३५॥

'रही [रही] कांमणी अंचल छोड़ी ।
औलग जाऊँ हूँ अंऊ न बहोडी ॥
देस उड़ीसइ गम करूँ ।"
ये बचन बोल्या तिणि ठाई ॥
छउ सातम दिन आवीयो ।
निहचइ औलगि चालण-हार ॥३६॥

पूरी सभा बइठो सांभरयो-राव ।
चउरास्या सहू कीयो बोलाई ॥
माई तेडावी राव की ।
सबी मिलि मंत्र कियो तिणि ठाई ॥
कहेउ हमारउ जइ सुणो ।
"कोक भतीजी सूंपजए राज" ॥३७॥

राइ कहइ "भली हुई आजि ।"
कोकि भतीजी सौंप्यौउ रान ॥
थाप्या साहण वर जरी ।

थाप्या मदिर घरि कविलास ।।
थाप्या चौरा चउखंडि ।
थाप्या सांभरि का रीयावास ।।
राजा चाल्यो ठलगइं ।
सहू अंतेवरी मेल्ही नीसास ।।३८।।

ओलग चाल्यो धन कउ नाह ।
सहू अंतेवरी झूरई राउँ ।।
झूरई सहोवर राव का ।
कुली छतीसइ झूरइ सोही ।।
धार झूरई राजा भोज सूं ।
सांभर्या राव सो पड़यो विछोह ।।३९।।

झूरइ राइ वइहनंडी अंकन कुवार ।
महाजन झूरई राई सांघार ।।
माता झूरइ राव की ।
झूरइ बभण भाट बीयास ।।
येकइं बोल कइ करियाइ ।
चाल्यो राजा मेल्ही निसास ।।४०।।

राव उडीसइं पहुँतउ जाई ।
देव जुहारे लागु पाय ।।
धन दिहाड़उ आज कउ ।
देव उठि दीयो चउगिणउ मान ।।
मेल्ही चावर बइसणइ ।
राव उडीसा को परधान ।।४१।।

राई प्रधानपणइं रह्यो जाई ।
चउरास्या सहू लागइ पाय ।।

देश देसाँ का राजिया ।
देव कहइ "राजा ! म्हारो तु वीर" ॥
मेल्ही चाँवर वइसणइ ।
मनवंछित भोजन अर चीर ॥४२॥

जे नर सूनइ सवाद संजूत ।
अविचल लिपमी धरे राजा बहूत ॥
'नाल्ह' रसायण नर भणइ ।
जू राणी सूं पड़इ विजोग ॥
बीघन - हरण जो वर दीयो ।
पणिहु वहोड़ करूं संजोग ॥४३॥

दूजौ पंड चउथो परिमाण ।
जे नर सूणइ ते गंगा न्हाण ॥
'नाल्ह' नसायण नर भणइ ।
राजा रह्यो उडीसई जाय ॥
बाग - वाणी मो वर दीयो ।
अस्त्री रसायण करू बखाण ॥४४॥

मान

मान का जीवन-सम्बन्धी कोई वृत्तांत, अभीतक, उपलब्ध नहीं हुआ है। आप द्वारा लिखित केवल एक ग्रंथ "राज-विलास" मिलता है, जिसकी रचना वि० सं० १७३४, आषाढ़ शुक्ल ७ बुधवार को प्रारम्भ हुई थी। इसकी पुष्टि "राज-विलास के ही निम्नलिखित छंद से होती है—

"सुभ संवत् दस सात वरस चौतीस बधाई।
उत्तम मास अषाढ़ दिवस सत्तमि सुखदाई।
विमल पाष बुधवार सिद्धिवर जोग संपत्तौ।
हरपकार रिपि हस्त रासि कन्या ससि रत्तौ।
तिन द्यौस मात त्रिपुरासुकवि, कीनौ ग्रंथ मंडान कवि।
श्री राजसिंह महाराण कौ रचि यह जस जौं चंद रवि॥

(रा० वि० १-३८)

महाराणा राजसिंह का राज्यारोहण वि० सं० १७०६, कार्तिक वदि ४ को हुआ* तथा औरंगजेब का आक्रमण वि० सं० १७३६ मे हुआ था। इसप्रकार महाराज के सिंहासनारूढ़ होने के पच्चीस वर्ष पश्चात् और आक्रमण के दो वर्ष पूर्व, इस ग्रंथ की रचना आरम्भ हुई थी। सम्भव है, इसी तिथि के आस-पास कवि राजदरबार में आया हो।

ऊपर के छंद मे प्रयुक्त "मंडान" कवि का मुख्य नाम था। इसके अनंतर ग्रंथ भर मे प्राय "मान" नाम ही आया है,

---

*"उदयपुरराज्य का इतिहास"—पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा पृष्ठ ५३२; ५५५।

जो उसका उपनाम था। इस छंद के अतिरिक्त आत्मपरिचयात्मक पंक्तियाँ और नहीं हैं।

इसके जीवन के विषय में अन्य अनेक धारणायें प्रचलित हैं किन्तु उनके सम्बन्ध में कोई पुष्टप्रमाण उपलब्ध नहीं। इतना अवश्य माना जा सकता है कि इस ग्रंथ में वर्णन की हुई राजसिंह-सम्बन्धी प्रायः सभी घटनायें समकालीन ही थीं; अतः उनमें सत्य का अंश है।

ग्रंथ की समाप्ति सं० १७३७ वि० में हुई है और इसके अतिरिक्त कवि को कोई अन्य रचना भी प्राप्त नहीं है; अतः उसका कविता-काल स्थूलरूप से सं० १७३४ से १७३७ तक माना जा सकता है।

राजविलास

इस ग्रंथ की रचना कवि ने वीरकेसरी मेवाड़नरेश महाराणा राजसिंह की प्रशंसा में की है—

"श्री राजसिंह राना सबल महिपतियाँ शिर मुकुटमनि।
गावत तास गुण बंद गुरु धणियांणी दिज्जै सुधुनि॥"

(रा वि० १-३२)

इस ग्रंथ में अठारह विलास (सर्ग) हैं। प्रारम्भ में सरस्वती की स्तुति विस्तार से की गई है। तदनंतर वंशोत्पत्ति, राजसिंह का जन्मोत्सव, तथा उनकी ग्यारह वर्ष की अवस्था तक का बाल्यजीवन चित्रित किया गया है। घटनाओं का विस्तृत-विवरण, महाराणा के सिंहासनारूढ़ होने के पश्चात् प्रारम्भ होता है। औरंगजेब तथा महाराणा के युद्धों का विशद और विस्तृत-वर्णन इस ग्रंथ में है। मुख्यरूप से इन युद्धों का वर्णन करना ही कवि का प्रयोजन ज्ञात होता है; ग्रंथ के

अध्ययन से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि महाराणा के आक्रमण तथा युद्ध ही ग्रंथ के केन्द्रीय-वर्ण्य-विषय हैं।

सारांश

प्रथम—प्रारम्भ मे सरस्वती की विस्तृत-वंदना के साथ ग्रंथनिर्माण का समय देते हुए कवि ने अपना संक्षिप्त-परिचय दिया है। इसके अनंतर मौर्यकुल का वर्णन करते हुए चित्रांगद का मेदपाट नाम के नगर बसाकर अठारह प्रांतों पर राज्य करने का भी वर्णन है। सातवीं पीढ़ी में चित्रंग नामक राजा के पश्चात् शिव जी के प्रसाद से वप्पारावल की उत्पत्ति सोरठ के राजा गुह्यादित्य से बतलाई गई है। गुह्यादित्य के मारे जाने पर बप्पारावल जंगल मे इधर उधर भटकने लगे। एक दिन जंगल मे वप्पारावल को हारीत मुनि से भेंट हुई और महाराज उनकी सेवा मे लग गये। हारीत ने स्वर्ग जाते समय इन्हे प्रतापी राजा होने का आशीर्वाद दिया। जंगल मे ही इनका विवाह हुआ था और वहीं पर इन्होने सैन्य-संग्रह भी आरम्भ कर दिया। फिर अपने मामा के यहाँ सेनापति होकर उन्होंने उसी का राज्य दबा लिया। इन्हीं वप्पारावल के वंश मे राजसिंह का जन्म हुआ था। प्रथम विलास में २३८ छंद हैं।

द्वितीय—इसमे वप्पारावल की वंशावली तथा उनसे संबंधित कतिपय मुख्य घटनाओं का उल्लेख है। इसी विलास मे समरसिंह, प्रतापसिंह आदि का भी अत्यंत प्रभावशाली वर्णन है इसके अन्त मे उदयपुर के महल, जगतसिंह की सभा, नगर के बाजार, व्यापार, प्रबन्ध तथा निवासियों का बड़ा सुन्दर वर्णन है। इसके अनंतर राजसिंह का जन्म और उनकी ग्यारहवीं वर्ष की अवस्था तक का संक्षेप में चित्रण है।

महाराणा राजसिंह का जन्म सं० १६८६ वि०, शरदऋतु कार्तिक कृष्ण द्वितीया को, एक पहर रात्रि व्यातीत होने पर, चंद्रोदय के समय, मेषलग्न मे, हुआ था।

यह विलास १६२ छदो मे समाप्त हुआ है

तृतीय—इसमे राजसिंह का बूंदीनरेश हाड़ा छत्रसाल की कन्या से विवाह का वर्णन है। इसीसमय छत्रसाल की दूसरी कन्या का विवाह, जोधपुर नरेश गजसिंह के पुत्र, जसवंत सिंह के साथ, होना निश्चित हुआ था। दोनो वाराते साथ ही साथ पहुँची। शिष्टाचार तथा विवाह, किसका प्रथम हो, इस प्रश्न पर वड़ा वाद-विवाद हुआ किन्तु छत्रसाल के समझाने से विवाद शान्त हो गया और राजसिंह का ही यिवाह पहले हुआ। वाद-विवाद का भी वर्णन इस ग्रंथ मे बड़ी ओज पूर्ण भाषा मे है। इसमे १०७ छद हैं।

चुतुर्थ—इसमे राजसिंह के "ऋतुविलास" नामक उद्यान का सुन्दर वर्णन है। इस विलास मे केवल २३ छंद है।

पंचम.—इसमें २३ वर्ष की अस्वथा मे, सं० १७०८ वि० मे राजसिंह के सिंहासनासीन होने का वर्णन है और साथ ही कवि द्वारा प्रणीत, विस्तृत-विरुदावली भी है। इसमे ६३ छंद है।

षष्ट—इसमें टीकादारी-प्रथा के अनुसार राजसिंह की दिग्विजय का वर्णन है। इसमे मालपुरा की लूट का विस्तृत वर्णन है। इसमें कुल ३९ छंद हैं।

सप्तम—इस विलास के प्रारम्भ मे रूपनगर के राजा मानसिंह राठौर की बहन रूपकुमारी (प्रभावती) का नखशिख वर्णन है। इसके सौंदर्य का वर्णन सुनकर औरंगजेब प्रभावती से व्याह करना चाहता था; किन्तु रूपकुमारी ने स्वयं पत्र लिखकर महाराणा राजसिंह को पाणिग्रहण के लिए

निमंत्रित किया तथा सारी परिस्थितियों मे भी उसको सूचित किया। राजसिंह ने एक विशाल-सेना के साथ रूपनगर में जाकर रूपकुमारी के साथ व्याह किया। इस विलास में १०७ छन्द है।

अष्टम —इस विलास मे "राजसर" या "राजसमुद्रतालाव" तथा विष्णु-मन्दिर वनवाने का उल्लेख है। इसमें तत्कालीन अकाल का भी वडा हृदयद्रावक-वर्णन किया गया है। इस विलास मे कुल १७२ छन्द हैं।

नवमः—इसमे जोधपुर के राजा जसवंतसिंह तथा औरंगजेव के विरोध का वर्णन है। राजसिंह ने जोधपुर का पक्ष लिया और जसवंतसिंह के पुत्र अजीतसिंह को अपने शरण मे लिया। इसमे कुल २०६ छन्द हैं।

दशमः—वादशाह के क्रोधित होकर हिन्दूपति राजसिंह को एक पत्र लिखकर जोधपुर के वालक राजा अजीतसिंह को अपने पास भेजने की आज्ञा दी। आज्ञापालन न करने पर वादशाह ने युद्ध की घोषणा कर दी; मेवाड़ में भी युद्ध का आयोजन होने लगा। इसमे कुल १२३ छंद हैं।

एकादशः—इस विलास मे देवसूरि नामक घाटी मे भीमसिंह तथा मुगलसेना मे भयंकर युद्ध का वर्णन है। भीमसिंह ने मुगलों को पराजित किया। इसमे कुल १४ छंद हैं।

द्वादश—इसमे राजकुमार उदयभान और मुग़लों के युद्ध का वर्णन है। मुग़लो की सेना पच्चीसगुनी थी, फिर भी वे पराजित हुए। इसमे कुल २३ छन्द हैं।

त्रयोदश—इसमे नोनवारा नामक पर्वत पर दोनो सेनाओं के युद्ध का वर्णन है। राजपूत सेना का संचालन रतनसिंह और केशरीसिंह कर रहे थे तथा मुग़लों का शाहजादा, अक-

बर, कर रहा था। इसमे भी मुग़ल पराजित हुए। इसमें कुल ३५ छन्द है।

चतुर्दश:—केशरीसिह के पुत्र सगतावत गंगासिह ने मुग़ल सेना का हस्तीयूथ छीन लिया। इसमे ४१ छन्द हैं।

पंचदश.—इसमे राजसिह के पुत्र भीमसिह द्वारा गुजरात पर किए गए आक्रमण का वर्णन है। नगर को लूटकर अंत मे पिता की आज्ञा से राजकुमार को लौट आना पड़ा। इसमे कुल ३६ छन्द है।

षोडश—मेडतिया के महाराज सॉवलदास ने वधनौर के क़िले से निकलकर रुहिल्लाखॉ के नायकत्व मे आनेवाली मुगलसेना पर आक्रमणकर उसे नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। इस विलास मे २८ छन्द है।

सप्तदश.—मेवाड़ के मंत्री, दयालशाह ने, मालवा-प्रांत पर आक्रमण किया और मांडो, उज्जैन, सिरोज, चंदेरी आदि को लूटकर मालवा पर अधिकार कर लिया। इसमे कुल २८ छन्द है।

अष्टदश—इसमे शाहज़ादा, अकबर, की चित्तौर पर चढ़ाई का वर्णन है। शाहज़ादा अजमेर भाग गया। राजपूतो का उत्साह बढ़ा और चित्तौर पर राजसिह के पुत्र जयसिह का अधिकार हो गया।

इसी युद्ध के साथ ग्रंथ की भी समाप्ति हो जाती है। अंत मे राजसिंह के वंशवर्णन मे कतिपय छन्द है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस ग्रन्थ को अचानक समाप्त करना पड़ा है; सम्भवतः राणा की मृत्यु के कारण ऐसा करना पड़ा हो। यह विलास १०७ छन्दो मे पूर्ण हुआ है।

ऐतिहासिकता

"राजविलास" की रचना सं० १७३४ में आरम्भ हुई थी। इसमें सं० १७३७ वि० तक की घटनाओं का वर्णन है। इससे अनुमान होता है कि उसी संवत् में इसकी समाप्ति हुई। इन तिथियों से यह सिद्ध हो जाता है कि राजविलास की रचना महाराणा राजसिंह के राज्यकाल में उनके उत्कर्ष के ही समय हुई। इसमें वर्णित समस्त घटनायें ग्रन्थ-रचना के समय की ही है; अत. उनमे सत्य का अंश ही अधिक है; किन्तु साथ ही, इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि ऐतिहासिक घटनाओं के वर्णन मे, मान उतने सत्यनिष्ठ नहीं हैं, जितने गोरेलाल जी "छत्रप्रकाश" मे। दरबारी कवियों की अतिशयोक्तिपूर्णशैली का अवलंबन करने से, कवि ने एक ओर तो कतिपय घटनाओ को बहुत बढ़ाचढ़ाकर चित्रित किया है, तो दूसरी ओर, कतिपय साधारण घटनाओं का वर्णन ही नहीं किया है। नीचे प्रामाणिक इतिहासों के आधारपर इस ग्रन्थ में वर्णित घटनाओ की ऐतिहासिकता पर विचार किया गया है।

राजविलास के संवत् प्रायः शुद्ध हैं। उदाहरण के लिए राजसिंह की जन्मतिथि मान ने अपने ग्रन्थ में इसप्रकार दी है—

"सम्वत् सोरह सरस बरस छह असिय वखानह।
अमि अमृत ऋतुसरद धरा निध्वनिय सुधानह।
मंगल कातिक मास पढ़म पप बीय पवित्तह।
बलवतो बुधवार निरखि भरनी सुनपत्तह।
निसिनाथ उदित गय पहर निशि मेप लगन मन्यो सु मन।
जगतेश रान घर सुत जनम राजसिंह राना रतन॥"

[रा० वि० २.१४८]

अर्थात् जगतसिंह के पुत्र महाराणा राजसिंह का जन्म सं० १६८६ वि०, कार्तिक वदि २, बुधवार को, मेपलग्न मे प्रहर-भर रात्रि व्यतीत होनेपर चंद्रोदय के समय मे हुआ था।

ठीक यही तिथि "राजप्रशस्ति-महाकाव्य" मे भी दी गई है। "राजप्रशस्ति" की रचना संस्कृत मे महाराणा राजसिंह की आज्ञा से रणछोड़भट्ट नामक एक पंडित के द्वारा हुई थी, जिसमे उस समय तक उपलब्ध ऐतिहासिक-सामग्री का उपयोग किया गया था। यह सारा महाकाव्य "राजसमुद्र" के बांध पर लगी हुई २५ शिलाओ पर उद्धृत है। यह केवल काल्पनिक-काव्य नहीं है, किन्तु इसमे संवतो के साथ-साथ ऐतिहासिक-घटनाओ का विस्तृत-वर्णन है।* उक्त महाकाव्य मे महाराणा राजसिंह की जन्मतिथि इसप्रकार दी गई है—

"शते षोडशकेऽतीते षडशीत्यभिधेऽब्दके।
ऊर्जे कृष्णद्वितीयायां जगतसिंह महीपतेः ॥२२॥
पुत्रः श्री राजसिंहोऽभूद्दर्शान्तेऽरसी तथा।
मेडता धिय राठोड राजसिंह महीभृतः ॥२३॥

[राजप्रशस्तिमहाकाव्य, सर्ग ५]

मान ने राजसिंह का २३ वर्ष की अवस्था मे सिंहासनारूढ़ होना लिखा है। यथा—

"पालिय प्रवर कुंआर पद बरस तेइस बखान।
पाट बइट्ठे पुहुवीपति, राजसिंह महारान ॥१॥"

[रा० वि०; ५-१]

पं० गौरीशंकर हीराचन्द जी ओझा ने उनके सिंहासनारूढ़ होने की तिथि सं० १७०६ कार्तिक वदि ४ दी है।†

---

*ओझा—राजपूताने का इतिहास, पृ० ८८७।

†ओझा—"उदयपुरराज्य का इतिहास", पृ० ५३९।

इनका जन्मसंवत् १६८६ होनेपर तेईस वर्ष की अवस्था सं० १७०९ मे होनी निश्चित ही है।

टीकादारीप्रथा के अनुसार राणा राजसिंह की दिग्विजय-यात्रा का वर्णन, मान ने बड़े विस्तृत-रूप मे किया है। उसकी तिथि "राजविलास" मे निम्नलिखित है—

"सम्वत प्रसिद्ध दह सत्त भास। वत्सर सुपंच दस जिट्ठमास॥
सजि सेन राण श्री राजसीह। असुरेश धरा सज्जन अबीह॥"

[रा० वि०; ६-२]

इस तिथि का उल्लेख "वीरविनोद" तथा "राजप्रशस्ति" नामक ग्रंथों में भी इसीरूप मे किया गया है।❀

उदयपुर के प्रसिद्ध अकाल की तिथि, मान ने, अपने ग्रन्थ मे, निम्नलिखित रूपमे दी है—

"संवत सतरा से सुपरि, संवच्छर दससात।
उतर्‌यौ मास असाढ़ कौ, विन घन बजत बात॥"

[रा० वि०; ८-११२]

दुर्भिक्ष- पीड़ित जनता की ही सहायता के लिये राजसिंह ने प्रसिद्ध "राजसमुद्रतालाब" का निर्माण कराया। इन दोनों तिथियों की पुष्टि अन्य प्रामाणिक-इतिहासों से हो जाती है।†

इसीप्रकार राजसरोवर के निर्माण की तिथि भी पूर्ण रूप से प्रामाणिक है। राजविलास मे इसका निम्नलिखित उल्लेख मिलता है :—

❀कविराजा श्यामलदास—'वीरविनोद"; भाग २, पृष्ठ ४१४। तथा "राजप्रशस्ति-महाकाव्य" सर्ग ७, श्लोक २५-२६।

†"राजप्रशस्तिमहाकाव्य," सर्ग ६, श्लोक १४ तथा "वीरविनोद" ,, २, पृ० ४४६।

संवत्सर दह सत्त सत्त दह मवत सोहग।
मण्डि महा कमठान जानि दुरभण्प सकल जग॥
पोस अष्टमिय प्रथम वार मंगल वर दाइय।
नायक हस्त नक्षत्र सिद्धि वरयोग सुहाइय॥
तिहि दिवस सकल मङ्गल सहित, परठि नीम पायाल मधि।
राजेस राण रचि राजसर, निसु निसु बहु बिलसन्त निधि।
[रा० वि० ८—१४०]

राजप्रशस्तिमहाकाव्य मे उल्लिखित-तिथि से भी ऊपर की तिथि की पुष्टि हो जाती है।

राजविलास मे राणा के ऊपर औरंगजेब के आक्रमण की तिथि निम्नलिखित है :—

संवत्सर छत्तीस सीम सतरासें संवत।
भद्दव दुतिया धवल चल्यो पतिसाह चंड चित॥
दोय सहस गुरु दंति पंति जनु हस्त्रिय पव्वह।
उभय लक्ष उत्तंग बाजि बर वेग सु सव्वह॥
आराव नारि गोरह अधिक रथ जंत्री दो सहस रजि।
औरंगसाहि आडंबर हि सेन कोटि पायक सु सजि।
[रा० वि० ६-१७०]

डा० ओमा ने भी उदयपुरराज्य के इतिहास मे यही तिथि दी है। यथा—"वादशाह ने हि० स० १०६० ता० ७ शावान (वि० सं० १७३६ भाद्रपद सुदि ८, ई० सं० १६७६ ता० ३ सितम्बर) को महाराणा से लड़ने के लिये वड़ी सेना के साथ प्रस्थान किया है।"※ [ओमा—उ० रा० इ० पृष्ठ ५५५]

※दोनों उल्लेखों में केवल तिथिभेद है। एक में द्वितीया तिथि है और दूसरे में अष्टमी।

इन तिथियों के अतिरिक्त कतिपय अन्य घटनायें भी प्रामाणिक-इतिहास की कसौटीपर खरी खरी उतरती है। उदाहरण स्वरूप राजाविलास में राणा की दिग्विजय-यात्रा में "मालपुरा" की लूटमार का बड़ा विस्तृत वर्णन है;—

"धक धूनिय धाम सुकोट धकाइय गौपर पौरि गिराइ दिये।
ढम ढेर करी हट श्रेणि ढुढारिय कंकर कंकर दूर किये॥
पतिसाह सु दक्खन नैर प्रजारिय अंबर पावक झार भरं।
चित्रकोट धनी चढ़ि राजसो राण सुमार उजारिय मालपुरं॥"

[रा० वि० ६-३३]

"राजप्रशस्ति" मे भी इस लूट का ऐसा ही विस्तृत-वर्णन है।[1] इसप्रकार सिद्ध होता है कि जहाँ तक लूट का सम्बन्ध है, इसमें किसीप्रकार की अतिशयोक्ति नहीं है।

इसके पश्चात् 'राजविलास' के सप्तम सर्ग मे रूपनगर की राजकुमारी के साथ राणाराजसिंह के विवाह की विस्तृत-कथा है। राजकुमारी, प्रभावती, उपनाम रूपकुमारी अत्यंत सुन्दरी थी। उसके सौंदर्य का वर्णन सुनकर बादशाह औरंगजेब उस पर मुग्ध होकर उसके साथ विवाह करना चाहता था। किन्तु रूपकुमारी ने राणा के नाम पत्र लिखकर, उसे विवाह के लिए आमंत्रित किया। इस विवाह का वर्णन "राजप्रशस्ति महाकाव्य" मे भी है, यथा—

"शते सप्तदशे पूर्णे वर्षे सप्तदशे ततः।
गत्वा कृष्णागढ़ेदिव्यो महत्या सेनयायुतः॥२९॥
दिल्लीशार्थं रक्षिताया राजसिंह नरेश्वरः।
राठोड रूपसिंहस्य पुत्र्याः पाणिग्रहं व्यधात॥३०॥

[राजप्रशस्तिमहाकाव्य ८]

[1] सर्ग ७, श्लोक ३१-३४

औरंगज़ेब, कितनी हत्याओं के पश्चात् दिल्ली के सिंहासन पर बैठा, यह सर्वप्रसिद्ध है। पिता को कारागार में डालने तथा भाइयों के साथ छल-कपट करके उनकी हत्या के सम्बन्ध मे इतिहासो के पृष्ठ के पृष्ठ रंगे हुए हैं। मान ने 'राजविलास' मे भी इन कृत्यो का उल्लेख किया है। कुछ पंक्तियाँ नीचे दी जाती हैं :—

"असपति परि ओरंग अति, कूर कपट को कोट।
जिनमारे बंधन जनक, अल्लह दै बिचि ओट ॥९॥
विश्वास देइ तिन हने बंधु। अै अैसु दुष्ट उर रद्य अंधु ॥१०॥
अल्लह सु देइ निज अंतराल। सु मुरादि साहि उर जानि साल ॥
करकरिय छुरिय लहु बंधु कंठि। गुरु भार बंधि जिन पाप गंठि ॥१४॥
एकल्ल भयो पतिसाह आप। पहु प्रगट कलंकी ज्यों प्रताप ॥
न सुहाइ जास पट दरस नाँउ। धीधिट्ट दुट्ठ बहु पाप धाउ ॥१६॥
[रा० वि०; ९]

उसकी यही बातें मंदिर तुड़वाने और जज़िया लगाने के सम्बन्ध में भी हैं। यदुनाथसरकार के अनुसार हिंदुओं के देवालय आदि तुड़वाने का कार्य औरंगज़ेब ने अपने शासन के बारहवे वर्ष से आरम्भ किया था।१ जज़िया नामक कर लगाने का समय ओझा जी के अनुसार सं० १७३६ है।२ हिंदुओं के लिये यह बड़ा अपमानजनक कर था और बड़ी निर्दयता से वसूल किया जाता था। इतिहासो मे जज़िया वसूल करने के अनेक अपमान-जनक विधानों के उल्लेख मिलते हैं।३

१ यदुनाथसरकार 'हिस्ट्री आफ औरंगजेब,' भाग ३ पृ० ३१९-२० ।

२ ओझा, 'उदयपुरराज्य का इतिहास,' पृ० ५४८ ।

३ इलियट,—'हिस्ट्री आफ इण्डिया' भाग १ पृ० ४७६-७७, तथा यदुनाथसरकार, 'हिस्ट्री आफ औरंगजेब' भाग ३, पृ० २७४, ३०५—८ ।

महाराणा राजसिंह ने इस कर का बड़ा भयंकर विरोध किया था। ओझा जी ने अपने "उदयपुरराज्य के इतिहास में राणा द्वारा लिखित एक लम्बा पत्र उद्धृत किया है, जो औरंगजेब के नाम जज़िया के विरोध मे लिखा गया था।* इसमें बड़े साहस के साथ बादशाह की नीति का घोर विरोध किया गया है और इसके एक-एक शब्द से राणा की स्पष्टवादिता प्रकट होती है। कुछ पंक्तियाँ नीचे उद्धृत की जाती हैं—

"वे धार्मिक-ग्रंथ, जिनपर आपका विश्वास है, आपको यही बतलावेंगे कि परमात्मा मनुष्यमात्र का ईश्वर है, न कि केवल मुसलमानों का...... वही सब को पैदा करने वाला है। आपकी मसजिदों में उसीका नाम लेकर नमाज़ पढ़ते हैं और मन्दिरों में जहाँ मूर्तियों के आगे घण्टे बजते हैं, वहाँ भी उसी की प्रार्थना की जाती है। इसलिये किसी धर्म को उठा देना ईश्वर की इच्छा का विरोध करना है। जब हम किसी के चित्र को बिगाड़ते हैं तो हम उसके निर्माता को अप्रसन्न करते हैं।"......मतलब है कि जो कर आपने हिन्दुओं पर लगाया है, वह न्याय और सुनीति के विरुद्ध है।"

[ओझा, उ० रा० इ० पृ० ५५१]

अब इस सम्बन्ध मे मान का उल्लेख देखें :—

"चौरासि अवलिजय रूप चार। चौबीस पीरि क्रामाति धार ॥
थप्पै स अप्प तुरकान थान। काजी कतेब कलमाकुरान ॥२८॥
रसना रटंत महमद रसूल। ईदह निवाज रोजा अभूल।
बाराह छंडि गो सत्थ वैर। सुदि पष बीय बंटै सुपेर ॥२९॥
गरवर वदंत पारसि गुमान। प्रासाद तित्थ पंडे पुरान ॥०३॥

[रा० वि०; ६]

*ओझा—'उदयपुरराज्य का इतिहास' पृष्ठ ५४९-५५१।

यद्यपि राजविलास मे जजिया के विरोध में लिखित-पत्र का उल्लेख नहीं है, फिर भी बादशाह की ओर से हिन्दुओं के असन्तुष्ट होने का स्पष्ट उल्लेख है। इसीसमय से बादशाह और राणा के वैमनस्य का बीज, जो चारुमती (रूपकुमारी) के विवाह मे, बो दिया गया था, अंकुरित हुआ। इसीसमय एक दूसरी घटना भी हुई, जिससे बादशाह के विरुद्ध विद्रोह की आग और भड़क उठी।

महाराज जसवन्तसिह की मृत्यु के पश्चात् राजकुमार अजीतसिह (जसवंत सिह के पुत्र) को बादशाह, अपने दरबार मे रखना चाहता था। किन्तु बालक राजकुमार, राठौड़] दुर्गादास की संरक्षकता मे, महाराणा राजसिंह की शरण में पहुँचा दिया गया। महाराणा ने उसे बारह गाँवों सहित केलवे का पट्टा देकर वहाँ रखा। राजविलास के नवमविलास मे इस घटना का विशद-वर्णन है, जो सर्वथा प्रामाणिक है। इस घटना का उल्लेख अन्य प्रामाणिक-ऐतिहासिक-ग्रंथों मे भी इसी प्रकार से है।※

फलतः औरंगजेब ने राजपूतों पर आक्रमण कर दिया। युद्ध का विस्तृत-वर्णन राजविलास के अंतिम नव विलासों मे (१०-१८) किया गया है। इस युद्ध से सम्बन्धित प्रायः सभी घटनाओं के वर्णन ऐतिहासिक है। राजपूतों ने शिवाजी के विधानों का अनुकरण किया और उदयपुर का त्यागकर पर्वत की उपत्यकाओं मे छिपकर युद्ध करना निश्चित किया। पर्वत पर, उनके प्रबन्ध का वर्णन, मान ने इसप्रकार किया है—

※डा० ईश्वरीप्रसाद,—'भारतवर्ष का इतिहास' [अंग्रेजी-संस्करण] पृ० ६२०, एम० सी० सरकार, 'माडर्न इण्डियन हिस्ट्री' पृ० २१२-२१३; वीरविनोद, भाग २, पृ० ४६३।

प्रनमि हिंदुपति पाइ सब, ठट्टे मइलहि ठट्ट ।
मनो गंग यमुना मिली, सलिल समेल सुघट्ट ॥६३॥
हुक्कुम दयो तिन करन हर, मारहु घाट सभार ।
दस दस सहस रहो सुभर, पिशुन न दे पैसार ॥६४॥
परच सु लेहु पजान तें, ध्रुव पद रोपो धीर ।
रक्षित रुक्कि रिपु रुक्कि के, मारो बढ बढ मीर ॥६५॥
यों कहि सब अभिमानि के, सबनि दये शिर पाव ।
अश्व कनक भूषन अपय, वसुधा ग्रास बढाव ॥६६॥
पंच फौज तिन रचि प्रबल, रहे घाट गिरि रुक्कि ।
आवन जान न लहैं अरि, थान थान मग थक्कि ॥६७॥
पत्तनेन बारा सु पहु, गिरिवर तहँ गुरु गाढ़ ।
भार अठारह तरु भरित, अहनिसि जगत अखाड़ ॥६८॥

[रा० वि०—१०]

युद्ध के उन्हीं विधानो तथा उन्ही स्थानों का नाम "औरंगज़ेबनामा" में भी मिलता है।* आधुनिक इतिहासो में भी इसीप्रकार के उल्लेख मिलते हैं।†

इस समय उदयपुर खाली था और वहाँ केवल थोड़ी सी राजपूत सेना बची हुई थी। औरंगज़ेब ने सारा नगर लूट लिया और कई मंदिर तथा मूर्तियां तुड़वाई। राजविलास से यद्यपि, इस घटना का उल्लेख, उतने विस्तृतरूप में नहीं मिलता, जितना अन्य इतिहास-ग्रंथो मे है, फिर भी उसका संकेत अवश्य मिलता है। यथा—

---

*देवीप्रसाद,—'औरंगजेबनामा,' भाग २ पृ० ८८-८९।

†यदुनाथसरकार,—'औरंगजेब,' भाग ३, पृ० ३८६, ईश्वरीप्रसाद, भारतवर्ष का इतिहास (अंग्रेजी) पृ० ६२०-६२१।

"डरत डरत 'असुरेश दल, करत सुकास सकोस।
आये उदयापुर निकट, दुअन पूरित दोस ॥१०४॥
[रा० वि०; १०]

उदयपुर के मंदिरों को तोड़ने के पश्चात्, बादशाह ने सारा-कार्य-भार शाहज़ादा अकबर के ऊपर छोड़कर अजमेर की ओर प्रस्थान किया। इसका उल्लेख सभी प्रामाणिक इतिहास-ग्रन्थों मे मिलता है। "राजविलास में भी मान ने, इसका निर्देश, निम्नलिखित पंक्तियों में किया है:—

"अंगज साहि ओरंग को, अकबर साहि अमान।
धस्यो पहारनि मध्यधर, रिन जित्तन महरान॥१॥
[रा० वि०; १३]

किंतु इस युद्ध मे राजपूतो ने बड़ी वीरता से युद्ध किया और अकबर को असफल होना पड़ा। राणा ने अचानक अकबर पर आक्रमण कर दिया, जिससे मुग़लों की बड़ी क्षति हुई। राजपूतो का साहस दिन-प्रतिदिन बढ़ता गया। कुँवर भीमसिह ने अकबर पर आक्रमण करके मुग़लों के कई थानो पर अधिकार कर लिया। मुग़लसेना पर राजपूतो का इतना आतंक छाया हुआ था कि सैनिक आगे बढ़ने के लिये प्रस्तुत न होते थे। निदान शाहज़ादा अकबर को असफल होकर पीछे हटना पड़ा। ❀

राजविलास में भीमसिंह के युद्धों तथा उसमे अकबर के भागने का अत्यंत सुन्दर चित्रण है। उदाहरणस्वरूप कुछ पंक्तियां नीचे उद्धृत की जाती हैं—

❀सरकार—'औरंगजेब,' भाग ३, पृ० ४००-४०१।
ओझा—उदयपुरराज्य का इतिहास, पृ० ५६३।

"भई भूमि भयकंप, प्रचलि पर धर पुर पत्तन।
होत कोट संलोट, गिरत गढ़ दुर्ग गाट घन ॥
दिशि दिश उट्ठि दहवक भुक भय गुरु भर भक्खर।
सर सरिता द्रह सुक्कि रुक्कि दर राह धरद्धर ॥
थरहरिय थान थानह सुथिर, विथुरि प्रजा डुल्लत अथिर।
प्रजरंत नर परहर सुपरि, जहँ तहँ मनिय जोर डर ॥९॥

[रा० वि०; १९]

यही नहीं, भीमसिंह ने मुसलमानों से मंदिरों के तोड़ने का बदला भी लिया। उसने एक बड़े सैन्य के साथ गुजरात पर आक्रमण किया। वहाँ उसने ईडर के दुर्ग का विध्वंस करके वहाँ वालों से चालीस हज़ार रुपये दण्ड में लिये। देवमंदिरों को गिराने के बदले में उसने एक बड़ी मस्जिद और अन्य तीन सौ छोटी मस्जिदों को धराशायी किया।❁

राजविलास में ईडर के दुर्ग पर अधिकार करने का अत्यंत लोमोत्कर्षक-चित्रण है। यथा—

सजि भीमसेन सेना विशेश। दहवट्ट करन गुज्जर सुदेश ॥
दल विटि प्रथम ईडर दुरंग। भट बिकट जानि चंदन भुजंग ॥१२॥
गढ़ तोरि तोरि गट्टे कपाट। थरहरिय थान असुरान थाट ॥
नट्ठौ सु सैद हासा नवाब। गढ़ छंडि छंडि भिन्ना सिताब ॥१३॥
रलतलिय प्रजा बहु परिय रोरि। डर मंनि जात बन गहन दौरि ॥
बनिता धपंत लहु नंषि बाल। भूपन पतंत विरि सुत्तिमाल ॥१४॥
तज़ि न्हाण वस्त्र इक तनु लपेट। चित चौकि जात दीने चपेट ॥
व्याकुलिय-इक अधगुंथि वेनि। भरि फाल जात ज्यौं जात एनि ॥१५॥

[रा० वि० १५]

❁ओझा,—'उदयपुरराज्य का इतिहास', पृ० ५६७।

इस घटना का उल्लेख "राजप्रशस्तिमहाकाव्य" तथा "बाम्बेगजेटियर" में भी है।१

इसप्रकार शाहज़ादा अकबर, वहाँ का प्रबंध न संभाल सका और उसको भागना पड़ा। राजविलास के अंतिम-विलास में उसके भागने का स्पष्ट उल्लेख है। यथा—

× × × ×

"बहुरे निसंक जय करि बहुत, मिल्यौ म्लेछ तिन मारयौ।
महाराण सुभट सामंत सजि, बहु असुरान विडारयः ॥६६॥
भगौ साहिजादा गयौ, गढ अजमेर अनिट्ठ।
रहे न आसुर और रन, नृपत्त वाव सब नट्ठ ॥६७॥
[रा० वि०, १८]

डा० ईश्वरीप्रसाद के इतिहास में इसके सम्बन्ध में यह उल्लेख मिलता है कि औरंगज़ेब ने अकबर की असफलता पर क्रोधित होकर उसके स्थान पर आज़म को भेजा।२

इसके पश्चात्, द्वितीय आक्रमण भी असफल हुआ और औरंगज़ेब ने संधि की वातचीत आरंभ की; किंतु इसीसमय महाराणा की आकस्मिक मृत्यु हो गई। 'राजविलास' तथा अन्य इतिहासों में ऊपर की सब समानताओं के रहते हुए भी, बहुत-सी विभिन्नताये भी हैं। ओझा ने "उदयपुरराज्य के इतिहास" में लिखा है कि सिंहासनारूढ़ होने के पश्चात्, महाराणा राजसिंह ने रत्नों का तुलादान किया था।३ संपूर्ण भारत के इतिहास में रत्नों के तुलादान की यह प्रथम घटना

१'राजप्रशस्ति-महाकाव्य,' सर्ग २२, श्लोक २६-२९।
"बाम्बेगजेटियर" जि० १, भाग १ पृ० २८६।
२डा० ईश्वरीप्रसाद, 'भारतवर्ष का इतिहास' [अंग्रेजी] पृ० ६२१।
३ओझा, 'उदयपुरराज्य का इतिहास' पृ० ५२२।

थी। "राजप्रशस्तिमहाकाव्य" मे इस तुलादान के संबंध में निम्नलिखित पंक्तियाँ उपलब्ध हैं—

"सिंहात्मज श्रीराजसिंह नृपतिः प्रीत्यैक लिंगाश्रितो।
रत्नैः पूर्णतुलां कृती व्यधरयत सच्चित्रकूटाधिपः ॥१८॥

[रा० प्र०; सर्ग ६]

पुनः राज्याभिषेकोत्सव के उपलक्ष्य में उन्होंने रजत-तुलादान भी किया। किंतु इन दोनो तुलादानों के संबंध में राजविलास मे कोई उल्लेख नहीं मिलता।

सिंहासनारूढ़ होने के पश्चात, सब से पहला कार्य जो राणा ने आरंभ किया, वह था, चित्तौड़-दुर्ग का पुनर्निर्माण। शाहजहाँ ने जब दुर्ग के निर्माण के संबंध मे सुना तो क्रोधित होकर उसने राणा पर आक्रमण कर दिया। परिस्थितियों पर विचार करके राणा ने युद्ध करना उचित न समझा; अतः उन्होंने क्षमायाचना की।* फिर भी औरंगजेब द्वारा भेजे हुए सादुल्लाखां नामक सेनापति ने दुर्ग के नवीन अंशों को गिरा दिया।† अंत में संधि होगई और युवराज सुल्तानसिंह औरंगजेब के दरबार में रहने के लिये भेज दिया गया। राजविलास में इन घटनाओं के सम्बंध में कोई उल्लेख नहीं। सम्भवत. अपने चरित्र-नायक के आदर्श के विरुद्ध समझकर ही मानने इन घटनाओं का निर्देश करना उचित न समझा हो।

इसीप्रकार जब औरंगजेब सं० १७१५ मे शासक हुआ तो उसने महाराणा के नाम फ़रमान भेजकर, उनके पद में वृद्धि

*ओझा—"उदयपुरराज्य का इतिहास" पृ० ५३१।
†इलियट—"शाहजहाँनामा"; जि० ७ पृ० १०३।

की थी और साथ ही पाँच लाख रुपये तथा हाथी भी दिये।* किन्तु इसका भी कोई उल्लेख "राजविलास" में नहीं मिलता।

मानसिंह की बहन के साथ महाराणा राजसिंह के विवाह की कथा प्रायः प्रत्येक प्रामाणिक इतिहास में मिलती है; किन्तु उसका नाम सर्वत्र चारुमती ही मिलता है। राजविलास मे चारुमती नाम न देकर रूपकुमारी और प्रभावती नाम दिये गये हैं।

इतिहास मे प्रसिद्ध है कि चारुमती से विवाह करने के लिये औरंगज़ेब जब अपनी सेना के साथ रूपनगर (किशनगढ़) आ रहा था, उस समय चूड़ावत सरदार ने उसे तीन दिन तक रोक रखा था और अंत में वह मारा गया। सरदार के मेवाड़ से प्रस्थान करते समय उसकी नवपरिणीतापत्नी ने पति को चिंतित देखकर आत्मघात कर लिया था। राजविलास मे इस घटना का कोई उल्लेख नही। ऐसी घटना को छोड़ देने से कवि की प्रबन्ध-पटुता में त्रुटि परिलक्षित होती है।

इसी विवाह के कारण राणा को औरंगज़ेब के क्रोध का भाजन भी बनना पड़ा और उसपर आक्रमण हुआ, फिर संधि हुई और कुँवर जयसिंह को बादशाह के दरबार में भेज दिया गया। बादशाह ने खिलअत और तलवार आदि की भेंट देकर कुँवर को लौटा दिया।† इसका भी उल्लेख राजविलास मे नहीं है।

अपने शासन-काल में औरंगजेब ने अनेक हिन्दू-देवालयों को धराशायी किया। इन्ही मे एक श्रीनाथदेव का भी मन्दिर

*ओझा—उदयपुरराज्य का इतिहास; पृ० ५.८

† राजप्रशस्तिमहाकाव्य,' सर्ग २२, श्लोक ५–६। ओझा, 'उदयपुरराज्य का इतिहास,' पृ० ५४६।

था। श्रीनाथ की मूर्ति को जब कहीं भी शरण न मिली तो अन्त मे महाराणा राजसिंह जी ने ही अपने राज्य में मूर्ति स्थापन के लिये स्थान दिया।[१] इस प्रसिद्ध घटना का भी कोई उल्लेख राजविलास मे नहीं।

ओझा जी ने अपने "उदयपुरराज्य के इतिहास" में 'जजिया' नामक कर के विरोध मे राणा द्वारा लिखित विस्तृत पत्र उद्धृत किया है। उस पत्र के एक-एक शब्द उच्च-सिद्धान्तों और ओजस्वी विचारो से ओतप्रोत हैं। राजविलास में यद्यपि अन्य पत्रो का उल्लेख हुआ है किन्तु इस पत्र के विषय मे एक शब्द भी नहीं है। इस पत्र का उल्लेख करने से राणा के चरित्र-चित्रण मे सहायता ही अधिक मिलती, किन्तु न जाने क्यो मान ने इसका कोई निर्देश न किया।

औरंगजेब के बड़े आक्रमण के समय राणा ने खुले मैदान मे लड़ने की अपेक्षा पर्वतीय-उपत्यकाओं मे ही युद्ध करना अधिक उचित समझा। पहाड़ो में चले जानेपर उदयपुर अरक्षित ही पड़ा रह गया—केवल जगदीशमन्दिर की रक्षा के लिये एक छोटी सी राजपूत सेना रह गई थी। जब मन्दिर को तोड़ने के लिये मुगल लोग आगे बढ़े तो वहाँ के बीस राजपूतों ने सैकड़ो मुसलमानो को धराशायी करके अंत मे स्वयं वीरगति प्राप्ति की। इसके पश्चात् ही वहाँ का मन्दिर तोड़ा गया और मूर्तियो को विध्वंस किया गया।[२] तदनन्तर वहाँ के २३६ अन्य मन्दिर तोड़े गये।[४] एम० सी० सरकार ने तो

१ ओझा—'उदयपुरराज्य का इतिहास' पृ० ५४७।

२ वही, पृ० ५५४।

३ इलियट—'मासिरेआलमगीरी, जि० ७, पृ० १८७-८८।

४ ओझा—'उदयपुरराज्य का इतिहास' पृ० ५६०-६१।

अपने इतिहास में टूटे हुए मन्दिरों की संख्या ३०२ दी है। राजविलास मे राणा के उदयपुर छोड़ने का वृत्तांत तो मिलता है, किन्तु मन्दिर-मूर्तियो के तोड़ने की कथा नही मिलती। संभवतः राणा के लिये अपमानजनक होने के कारण, इन घटनाओ का उल्लेख, कवि ने न किया हो।

इसका बदला लेने के लिए भीमसिह ने भी गुजरात पर आक्रमण किया था। इसका उल्लेख "राजप्रशस्ति-महाकाव्य" तथा वाम्बेगज़ेटिर मे मिलता है[१]। राजविलास में गुजरात पर आक्रमण का उल्लेख तो मिलता है, किन्तु मस्जिद तोड़ने का उल्लेख नहीं मिलता।

राजविलास में राणा की मृत्यु के सम्बन्ध मे भी कोई उल्लेख नहीं मिलता। ग्रन्थ की समाप्ति से यह अवश्य ज्ञात होता है कि राणा की मृत्यु के ही कारण ऐसा हुआ है। "राजप्रशस्ति" के अनुसार राणा की मृत्यु विष के कारण हुई थी।[२]

आलोचना

मान दरबारी कवि थे और उनकी कविता मे रीतिकालीन दरबारी कवियो की सारी विशेषतायें विद्यमान है। महाराणा राजसिंह का नाम राजपूताने के इतिहास मे सदैव अमर रहेगा किन्तु विरुदावली की झोंक में उन्हे ब्रह्मा, विष्णु, महेश सब कुछ बना देना तथा "पुष्कर गंग प्रयाग" सभी को राणा की कृपा पर अश्रित बता देना अतिशयोक्ति ही कहा जायगा। "राजविलास" के पंचम विलास में ऐसे वर्णनो की भरमार

---

१ 'राजप्रशस्तिमहाकाव्य,' सर्ग २२, श्लोक २६ २६ तथा 'बाम्बे-गजेटियर' जि० १ भाग १ पृ० २८६।

२ 'राजप्रशस्तिमहाकाव्य,' सर्ग २३, श्लोक १-३।

है। वर्णन की अस्वाभाविकता से स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि ये कवि के हार्दिक-उद्‌गार नहीं, केवल परंपरा का पालन करने तथा जीविकोपार्जन के लिये ही लिखे गये हैं। उदाहरण-स्वरूप कुछ पंक्तियाँ उद्‌धृत की जाती है—

"पुष्कर गग प्रयाग तिष्ठ अभिराम त्रिवेनिय।
जगन्नाथ जालिपादेवि सुख संपति देनिय॥
काशी वर केदार द्वारिकानाथ सु देखिय।
गोदावरि गुनगेह वैजनाथह सु विशेषिय॥
इकलिंग ईश अवलोकियाँ दुष दोइ गहरहिं टरै।
राजेश राण निरखत नयन मान मनोवछित फरै॥२१॥
सुही रामरूपं रवीवंश राजा, बसै जास तिहुँ लोक मैं सुयशवाजा॥२३॥

[रा० वि०, ५]

डा० ओझा ने उदयपुर के इतिहास में महाराणा राजसिंह का चरित्र-चित्रण करते हुए लिखा है कि राणा बड़े क्रोधी स्वभाव के थे और कभी-कभी बिना कुछ सोच विचार किये ही महत्व-पूर्ण-कार्यों का आरम्भ कर देते थे। इस उत्कलता से उन्हें हानि भी होती थी किन्तु इन दुर्गुणों का निर्देश ग्रन्थ भर में कहीं भी स्पष्टरूप से नहीं मिलता है और न परोक्षरूप में ही।

सूची-परिगणन की भी प्रथा का अवलम्बन करना रीति-कालीन कवियों की एक विशेषता है। यद्यपि सूदन की कविता में इस प्रथा के पालन की पराकाष्ठा है, किन्तु मान भी उनसे अधिक पीछे नही। राजविलास में कहीं घोड़ों की विभिन्न जातियों की सूची मिलती है तो कहीं लूटी हुई सामग्रियों की। नीचे दो सूचियाँ उद्‌धृत की जाती हैं—

"एराक आरबी अश्व ऐन। सोमन्त अवन सुन्दर सुनैन॥
काश्मीर देश कांबोज कच्छि। पय पंथ पौन पथ रूप लच्छि॥८॥

बंगाल जाति के बाजिराज । काविल मु केक हय भूरकाज ॥
संधार उतन केहि खुरासान । वपु ऊंच तेज वर विचित्र वान ॥९॥
हय हीस करत के जातिहंस । कविले सुकि हाड़े मोर वंस ॥
किरडीये खुरहडे केयु रत्त । पीलड़े केकली लेप वित्त ॥१०॥

[रा० वि०; ६]

× × × ×

"तहाँ श्रीफर पुंगिय लोंग तमारह हिंगुल केसरि जायफलं ।
घनसार मृगमद लीलि अफीम अँबार ऊरंत सु भारफल ॥३४॥

[रा० वि० ६]

राजविलास मे यत्र-तत्र तुकभंग और छन्दोभंग भी मिलते हैं जिससे रचना की गम्भीरता जाती रहती है। उदाहरण स्वरूप दो पंक्तियाँ उद्धृत की जाती है—

"हसंत सु आनन अबुंज अप्प ।
सदा सुप्रसाद विषाद विलेप ॥१७३॥

[रा० वि०, २]

तुही चारु मुखं मनो पूर्ण चन्द । श्रवै अमृत वैन लहरी समुद्द ॥

उक्त छन्द की प्रथम पंक्ति मे "मुख" के स्थान पर "मुक्ख" पढ़ने पर मात्रा ठीक वैठती है। संभव है, यह छापे की त्रुटि हो किन्तु ऐसी त्रुटियाँ अन्य कई स्थलों पर मिलती हैं।

कहीं-कहीं शब्द-नाद के कृत्रिम प्रयोगो तथा अलंकारो के वलात् दिग्दर्शन से भी रचना मे अस्वाभाविकता आ जाती है। शब्दनाद का प्रयोग भी रीतिकाल की एक विशेषता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि ऐसे प्रयोगो से पाठक की अरुचि ही अधिक बढ़ती है। यथा—

ठनकि राज घंटा सु ठननन, भनकि भेरि नफेरि भननन।
पनकि पग्ग उनग्ग वननन, भनकि ज्यों भल्लरी भननन ॥१०६॥
भाट भरमड़ि धज्जिपग्ग भट, घमतु घायल घाव घण वट।
गिद्ध पीवत श्रोन घट घट, जिद हूं हस फिरत शिर जट ॥१११॥
[रा० वि०; १]

अंतिम दो पंक्तियों में "भ" और "घ" का अनुप्रास मिलाने के लिये कितने अनावश्यक शब्दों को खींच-तान कर ले आया गया है।

"राजविलास" का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि कवि को शृंगार तथा शांत-रसात्मक-स्थलों पर वीर-रसात्मक स्थलों से अधिक सफलता मिली है। ऐसे वर्णनों में अलंकारों की स्वाभाविक छटा भी बिना प्रयास के ही निखर उठती है। उदाहरण-स्वरूप नीचे दो पद्य उद्धृत किये जाते हैं—

"भमकति भंभरि नाद रुण भुण पाय पायल पहिरना।
कमनीय, छुद्रावली किंकिनि अवर पय आभूषना॥
कलधौत कूरम समय मनक्रम पाप पीड़ प्रहारनी।
अद्भुत अनूप मराल आसनि·जयति जय जगतारनी॥"
[रा० वि०; १]

"सुचि सुरभि सुकोमल सारी। कज्वरि मनु मांगनि कारी।
सिर मोती मांग सु साजैं। रापरी कनक मय राजैं॥"
[रा० वि०; ७]

इन पद्यों में रचना-सौष्ठव के साथ ही साथ माधुर्य-गुण तथा अनुप्रास की स्वाभाविक छटा के भी दर्शन होते हैं। इस से सिद्ध होता है कि इनकी प्रतिभा वीररस के अनुकूल नहीं थी; केवल जीविकोपार्जन के लिये उन्हें इस भ्रांतदिशा का अवलंबन करना पड़ा था। यही कारण है कि अनेक अरुचि-कर तथा अस्वाभाविक-स्थलों से यह ग्रन्थ भरा पड़ा है। ऐसे

अरुचिकर पद्यों में से उदाहरणस्वरूप एक पद यहाँ उद्धृत किया जाता है—

"कसी किलकिल्ला सक्ति सल्लिल्ला तोप त्रिमुल्ला जाजल्ला।
दल मचि दहचल्ला जोह उभल्ला नहिं विचि पल्ला घर भल्ला॥
घूमत घामल्ला छक छल्ला तजि गृह तल्ला एकल्ला।
त्रुटि तूरत वल्ला हरि गज ढल्ला कापर डुल्ला अकतुल्ला॥

प्रायः ऐसे ही छन्दों से यह सम्पूर्ण विलास भरा पड़ा है। यह सब होते हुए भी, कुछ स्थल, प्रशंसनीय हैं। ऐसे स्थलों पर भावोत्कर्ष उत्कृष्ट-कोटि का रहता है तथा रस का भी सुन्दर परिपाक हो जाता है। यथा—

"पेती हम कुल पग्ग, पग्ग हम अपय पत्तानह।
पग्ग करैं वस पलक, नाम हम पग्ग निदानह॥
पल दल पढंन पग्ग, पेत इच्छत हम पग्गह।
छिति रखन फुनि पग्ग, अछित भग्गो इन अग्गह॥
पग धार तित्थ छत्री धरम, आवागमनहि अपहरन।
सो पग्ग बंध हम सूर सब, धरथ न साहिपजान धन॥८०॥
[रा० वि०; ६]

औरंगजेब द्वारा धन का लोभ दिखाने पर जोधपुराधीश जसवन्तसिंह जी की यह क्षत्रियोचित उक्ति है।

कहीं-कहीं घटनाओं के यथातथ्य-वर्णन में कवि की पर्य्येक्षण-शक्ति का भी परिचय मिलता है। विवाह में बारात के प्रमाण के समय पीलवानों का "धत्त-धत्त" कहना तथा हाथियों का शुण्ड ऊपर करना एक साधारण दृश्य है। कवि ने निम्न-लिखित पंक्तियों में इसका सुन्दर चित्रण किया है—

"मदोनमत्त धत्त धत्त पीलवॉन पट्टयं।
चरखि दार कुक्क ए गयन्द जोर गट्टयं॥६७॥

सु वास दाँन गच्छ सूच्छ गुज्जए मधूपयं।
सुण्डाल माल के बिकाल उद्धतं अनूपयं ॥६८॥"

[रा० वि०, ३]

इसीप्रकार हाथी की सुन्दरता तथा सजावट का वर्णन करते हुए कवि ने सिंदूर तथा तेल लगाने का उल्लेख किया है। साधारणतः हाथी की सजावट मे सिंदूर का ही वर्णन मिलता है, तेल का नहीं। किन्तु हाथी के मस्तक पर तेल पोतने की प्रथा है। इससे प्रतीत होता है कि कवि की निरीक्षण-शक्ति अत्यंत तीव्र थी। इस सम्वन्ध का पद नीचे दिया जाता है—

"शुभे शिर तेल सुरंग सिंदूर। बहै बिरुदावलि बंक बिरूर॥

[रा० वि०; १७; ११]

किन्तु एक स्थान पर कवि ने लिखा है—

"सोभत चौर सिंदूर शीश। रस रग चंग अति भरियरीस॥
सो भाल घटा मनु मेघ श्याम। ठनकन्त घंट तिन कण्ठ ठाम॥२॥

[रा० वि०; ६]

इसमे कवि ने एक व्यवहारिक भूल की है। हाथी के दोनों ओर घण्टे बाँधे जाते हैं; कण्ठ मे नहीं।

हिन्दू-मुस्लिम संस्कृतियों में जो व्यवहारिक अन्तर आधुनिक काल मे है, औरंगजेब के समय में वह और भी अधिक मात्रा में था। कवि ने इस धार्मिक प्रतिक्रिया का वड़ा सुन्दर चित्रण किया है। इससे सम्वन्धित पंक्तियाँ नीचे उद्धृत की जाती हैं—

"इक कहे पुव्व पच्छिम सु एक। पग पगहिं पंथ भापा प्रत्येक॥
धरधरं इक वर छत्रि धर्म। कलिकरें इक घन मेच्छकर्म॥

बाराह इक्क इक सुरहिं बैर । इक हन्त छकि इक करतु गैर ॥
इ६ भांति उभय नृप भो अमेल । सलज्जे सु साहि ढर जामि सेल ॥"
[रा० वि० ६, ५४, ५५]

अष्टम विलास में राजसमुद्रतालाव तथा विष्णुमन्दिर का, षष्ट विलास मे राणा की दिग्विजय-यात्रा का, चतुर्थ विलास मे "ऋतुविलास" नामक बाग का तथा पन्द्रहवे विलास मे भीमसिंह के युद्ध का अत्यंत सुन्दर चित्रण है। ईडरदुर्ग पर भीमसिंह द्वारा आक्रमण किये जाने पर लोगो की क्या दशा होती है, इसका चित्रण कवि ने बहुत सुन्दर किया है।

कवि ने कई स्थानो पर पंचक, सप्तक आदि का प्रयोग भी किया है। इसप्रकार की रचना मे सब छन्दो की अंतिम पंक्तियाँ एक ही होती है जैसे सरस्वती-बन्दना मे अंतिम पंक्ति "अद्भुत अनूप मराल आसनि जयति जय जगतारनी' इसीरूप मे इक्कीस छन्दों तक चली गई है। इसप्रकार की कविता पढ़ने में सुखकर प्रतीत होती है तथा उसमे सरसता भी अधिक आ जाती है।

कवि ने राजसिह का चरित्र-चित्रण सुन्दर किया है। अकाल पड़ने पर 'राजसमुद्र' के बाँध का कार्य आरम्भ करना तथा प्रजा की सहायता करना, उनकी दीन-वत्सलता का परिचायक है।

भाषा

मान कृत 'राजविलास' की भाषा व्रज है, यद्यपि क्रियायों के रूप कहीं कहीं अव्यवस्थित है। यथा.—

एक दिन एक जोगिन्द अवलं कियौ।

× × × ×

पु प फल करिय रिषि राय तव पूजियौ। रा० वि० पृ० २२

× × × ×

पानि ग्रहन कीनौ नृपति। रा० वि० पृ० २५

ऊपर की तीनों क्रियायें "अवलोकियौ", "पूजियौ", तथा 'कोनौ' व्रजभाषा की एक वचन भूत कालिक क्रियायें हैं किन्तु 'राज-विलास' की निम्नलिखित क्रियायों के रूप व्रज के नही। यथा.—

अलावदी आलम चढि आइय।
बरस एक रहि पुल बँधाइय।
बनिता देन असुर बहिकाइय।
मरदाने तब रारि मचाइय। रा० वि० पृ० ३७

ऊपर की क्रियायों का व्रज में रूप होगा—

"आयौ" "बँधायौ" "बहकायो" तथा 'मचायौ"

राजस्थानी सकर्मक-क्रिया "मूकणो" [छोड़ना] का भी कवि ने स्थान-स्थान पर प्रयोग किया है। यथाः—

दुर्ग मुक्किनिय दूत कहीं पयसार मुकय्यइ।

राजविलास में प्रयुक्त कारको के रूप व्रज के ही हैं किन्तु कहीं कहीं ऐसे रूप भी मिलते हैं जो 'वीसलदेवरासो' के "वानरॉ", "ऊँटां" का स्मारण दिलाते हैं। यथाः—

श्री राजसिंह राना सबल,
महिपतियां शिर मुकट मनि। रा० वि० पृ० ७
धर्म देश मेवार धर,
सब देसां सिरताज। रा० वि० पृ० १८

राजविलास मे प्रयुक्त शब्दों के रूप व्रजभाषा के ही हैं किन्तु बीच-बीच में राजस्थानी के रूप भी आ गए हैं। यथा:—

"रुन भुन" के स्थान पर "रुण, झुण"।
"आपन" के स्थान पर "आपण"।

राजस्थानी मे मराठी की भाँति ही अभी भी वैदिक 'ळ' का उच्चारण होता है। 'राजविलास' में भी इसका प्रयोग मिलता है। यथा:—

बिधु सकल कला संजुक्त वदनी;
चिबुक गाळ सु चाहिए।

'राजविलास' मे कवि ने तत्सम-शब्दों का प्रचुरमात्रा मे प्रयोग किया है। यथा—

"वीणा पुस्तक कर प्रवर, बाहन विमल मराल"।

किन्तु स्थान-स्थान पर अपनी रचना को ओजस्वी बनाने के लिए कवि ने कृत्रिम-डिंगल का भी प्रयोग किया है। यथा—

को झट्टुल्ल हरवल्ल को सु कर वह्ल अठित्तह।
कि गज्ज ढल्ल मक्किल्ल भूप छुत्तिल्ल छयल्लह।
दुज्जन को न दुहिल्लह कहा कोतिल्ल रु सिल्लह।
कि सु किध्ध वनि निल्ल नेत किं पित्त सुल्लह।
साढुल्ल मल्ल एकल्ल से टए भल्ल जे पल्ल जिन।
रावत्त मत्त महसिंघ सुप्र रहे न को आसुर सुरित्त।

राजविलास में अरबी-फारसी से उधार लिए हुए शब्दों की संख्या अत्यल्प है। कवि ने पाद पूर्त्यर्थ "सु" का प्रयोग अधिक किया है, यहाँ तक कि नाम के बीच मे भी कहीं कहीं "सु" लगा दिया है। यथा—

माधव सु सिंह घोंडा मरद ।
मन्हा सगताउत सुकर आदि ।

मान की रचना मे लोकोक्तियों का अधिक प्रयोग नहीं मिलता। केवल कहीं-कहीं कतिपय लोकोक्तियाँ मिल जाती है। यथा—

कोटिक किये कलाप ।दूध फट्टो न हवय दधि ।
(र० वि० ६·६२)

अथवा—'सुररंत सुच्छ मयमत्त मनु के इतोव कधे वहव ।

राजविलास

राणा श्रीराजसिंह की दिग्विजय यात्रा

कवित्त

चढे सेन चतुरंग, राण रवि सम राजेसर ।
मनो महोदधि' पूर, बारि चहु ओर सु विस्तर ।
गय बर गुंजत गुहिर, अंग अभिनव एरावत ।
हय वर घन हीसन्त, धरनि खुरतार धसक्कत ।।
सल सलिय सेस दल भार सिर, कमठ पीठि ठठि कल कलिय ।
हल हलिय असुर धर परि हलक, रवनि सहित रिपु रलतलिय ।।

छंद पद्धरिय

सम्वत प्रसिद्ध दह सत्तमास । बत्सर सु पंच दस जिट्ठ मास ।
सजि सेक राण श्री राज सीह । असुरेश धरा सज्जन अबीह ।
निर्घोष घुरिय नीसान नद्द । सहनाई भेरि जंगी सु सद्द ।
अति बदन बदन बट्टी अवाज । सब मिले भूप सजि अप्प साज ।
किय सेन अग्ग करि सेल काय । पिखन्त रूप पर दल पुलाय ।
गुंजंत मधुप मद झरत गच्छ । चरपी चलन्त तिन अग्ग पच्छ ।
सोभन्त चौर सिन्दूर शीश । रस रंग चग अति भरिय रीस ।
सो झाल घटा मनु मेघ श्याम । ठनकन्त घंट तिन कंठ ठाम ।
उनमत्त करत अगगग् अवाज । बहु वेग जान पावै न वाज ।
उलकन्त पुट्ठि उज्जल स ढाल । बर विविध वर्ण नेजा बिसाल ।
बोलन्त चलत बन्दी विरुद्द । दीपन्त धवल रुचि शुचि ।विरद्द ।
गुरु गाढ गेंद गिरिवर गुमान । पढि धत्त धत्त मुख पीलवान ।
एराक आरबी अश्व ऐन । सोभन्त श्रवन सुन्दर सुनैन ।
काश्मीर देश कांबोज कच्छि । पय पन्थ पौन पय रूप लच्छि ।
बंगाल जात से बाजिराज । काबिल सु केक हय भूप काज ।

संधार ठतन केऽह खुरासान । बहु ऊँच तेज वर बिबिध बाज ।
हय हीस करत के जाति हंस । कविले सुकि हाड़े भार बंस ।
किरडोए सुरहले केसु रत्त । पीलटे केकाो जेप बित्त ।
चंचल सुवेग रहवाल चाल । घेर घेर तान नचन्त पाल ।
गुन्थिय सुजान कर केस बाल । मनि कंठ वक्र सोभा बिसाल ।
साकति सुवर्ण साजे समुत्र । लीने सु संग हय पृष्ठ लत्र ।
रवि रथ तुरंग सम ते सरूप । मनि बिपुल पुट्ठि तिन चढ़े भूप ।
पयदल सु सज्जि पारप प्रधान । जंघालु जग जीतन जवान ।
भट बिकट भीम भारत भुजाल । पाथर्मि सूर निज शत्रु साल ।
निलवट सनूर रत्ते सु नैन । गय थाट घाट भय घट गिनैन ।
धमकंति धरनि चल्लत धमक । घर हरत कोट निज सकर धक ।
बंकी सु पाघ पर भृकुटि बंक । निर्भय निरोग नाहर बिसंक ।
शिर टोप सज्जि तनु त्रान संच । प्रगटे सु बंधि हथियार पंच ।
कमनीय कुंत कर तेग पुठि । मारंत शत्रु सुनि सबल मुट्ठि ।
गहहर करत गुजरत गैन । बोलंत बंदि भट्ट बिरुद बैन ।
सुररंत झुंड गुरु भरिय मान । गिनि कौन कहै पायक सु गान ।
बहु भूप थट्ट दल मध्य बीर । सुरपति समान शोभा सरीर ।
श्री राजसिंह राणा सरूप । गजराज ढाल आसन अनूप ।
शोभे सु छत्र बाजंत सार । चामर ढलंत उज्वल स चारु ।
घन सजल सरिस दल सामरट्ट । भाषंत बिरुद बर बन्दि भट्ट ।
कालंकि राय केदार कत्थ । अस कत्ति राय थप्पत समत्थ ।
हिन्दू सु राय राखन सुहद । मुगलाँन राय मोरन मरद ।
कविलान राय कट्टन सुकन्द । द्युतिवंत राय हिन्दू दिनंद ।
अरि बिकट राय जाड़ा उपाड़ । बलवन्त राय बैरी बिभाड़ ।
अन पुट्ठि राय पुट्ठिय पलाँन । भव छलत रूप मध्यान भान ।
रायाधिराय राजेश राण । जगतेश नन्द जय जय सुजान ।
बाजीनि चरन खुरतार बग्ग । मह अनड कट्टि कीजंत मग्ग ।

झज्झलिय उदधि सलसलिय सेस । कलकलिय पिट्टि कच्छप असेस ।
रजथान सजल जलथान रेनु । धुन्धरिग भान रज चढ़ि गगेनु ।
अति देश देश सु बढ़ी अवाज । नट्टे सु यवन करते निवाज ।
हलहलिय असुर घर परि हलक । पलभलिय नैर पर पुर पलक ।
थरहरें दुर्ग मेवास थान । रचि सेन सबल राजेश रान ।
सुलतान मान मच्यो ससङ्क । बलवंत हिन्दुपति बीर बंक ।
आयौ सुलेन अवनो अभंग । आलम सु भयौ मुनि गात भंग ।

कवित्त

ऊचलि गया अग्गरो दंद मच्यौ अति दिल्लिय ।
हाजीपुर परि हक डहकि लाहौर सु हल्लिय ।
थरस लयौ रिनथम्भ भसकि अजमेर सु धुज्जिय ।
सुनी भयौ सिराज भगग मै लखा सु भज्जिय ।
अहमदावाद उज्जैनि जन थाल मूंग ज्यों थरहरिय ।
राजेस राण सु पयान सुनि पिशुन नगर खरभर परिय ।

छन्द मकुन्द डामर

चतुरग चमूं सिंधुर चंचल्ल वक बिरुद्दन दान बहैं ।
अवधूत अजेन तुरंग उतंगह रंगहि जे रिपु कट्टि रहैं ।
अवगाद सु आयुध युद्ध अजीत सु पायक सत्थ लिए प्रचुरं ।
चित्रकोट धनी सजि राजसी राण सु मारि उजारिय मालपुरं ।
अति बट्टि अवाज भगी दिसि उत्तर पंथ पुरंपुर सौरि परी ।
अह फंत सु अंबक नूर अहं त्रह पंग महा पिति बज्जि पुरी ।
उडि अम्बर रेनु बहूदल दम्मदि सोषि नदी दह मग्ग सर ।
चित्रकोट धनी चढ़ि राज सी राण सु मारि उजारिय मालपुरं ।
दल बिंटिय माल पुरा सु चहौ दिसि उपम चंदन जान अही ।

तहँ कीन मुकाम घुरंत सु अंबक सोच पर्यो सुलतान सही ।
नर नाथ रहे तह सत्त अद्द। निसि सोवन मारस धीर धरं ।
चित्रकोट धनी चढ़ि राज सी राण यु मारि उजारिय माल पुरं ।

धक धूनिय धास सु कोट धकाइय गोपर पौरि गिराइ दिए ।
ढम ढेर करी हट श्रेणि ढुहारिय कंकर कंकर दूर किये ।
पतिसाह सु दुक्खन नेर प्रजारिय अंबर पावक झार अरं ।
चित्र कोट धनी चढ़ि राज सी राण यु मारि उजारिय माल पुरं ।

तहाँ श्रीफरु पुंगिय लौंग तमारइ हिंगुल केसरि जायफलं ।
घन सार मृगंमद जोति अफीमि अँवार जरन्त सु झारफलं ।
उढि अग्गि दमग्ग सु दिग्विजय उप्पर जाय परैं सु ढरे असुरं ।
चित्रकोट धनी चढ़ि राजसी राण यु मारि उजारिय मालपुरं ।

घर पूरिय धोम धराधर धुंधरि धाम भरे घन धाम धपैं ।
रबि बिम्बति हौं दिन गोप रह्यो लुटि लच्छि अनन्त सु कोन वपैं ।
सिक्लाव पटम्बर सूफ सु अम्बर ईंधन ज्यों प्रजरैं अगरं ।
चित्र कोट धनी चढ़ि राज सी राण यु मारि उजारिय मालपुरं ।

अति रोसहिं कीन इलातर उप्पर कञ्चन रूप निधान कढ़े ।
भरि ईमप जान सुखच्चर सूभर चित्तहिं मूल्य अनेक बढ़े ।
जस वाद भयौ गिरि मेरु जितौ हरपे सुर आसुर नूर हरं ।
चित्र कोट धनी चढ़ि राज सी राण यु मारि उजारिय मालपुरं ॥

निज जीति करी रिपु गाद नसाइय आए देत निसान खरे ।
पयसार सु कीन सिंगारि उदयपुर आइ अनेक उछाह करे ॥
कवि मान दिए हय हत्थिय कंचन कुट्टिय आन कि बारि घरं ।
चित्र कोट धनी चढ़ि राजसी राणा यु मारि उजारिय मालपुरं ॥

[षष्टमविलास से]

जोधपुर युद्ध वर्णन

दोहा

गज्जि झंड अजमेर गढ़ अप्प साहि औरंग।
सवा लाख हय सेन सों, रह्यो सुरढ़ घन रंग ।। ।।
सत्थ तुरंग सत्तरि सहस सहिजादा सहि सैन।
पठयो सुर धर देश पर लच्छि कमधज्जी लेन ।।२।।
सो सिताब आवत सुन्यौ सज्यौ रट्ठवरं सत्थ।
हय गय पयदल घनह सम सहस बतीस समत्थ ।।३।।
जोधपुरह तें यवन दल पच कोस सु प्रमान।
आइ परयो जानकि उदधि आडबर असमान ।।४।।
अनुग मुकि तिन अक्खि इह सुनहु रट्ठवर सूर।
करो कलह हम सत्थ कै सौंपो धन संपूर ।।५।।
लेहु निमिष विश्राम लटि आए हो तुम अज्ज।
कहिह सही हम तुम कलह कही बहुरि कमधज्ज ।।६।।
बित्यौ बासर बत्तही परी निसा तम पूर।
छल करि के तब रिपु छलन सजे रट्ठवर सूर ।।७।।

कवित्त

अद्ध रयनि तम अधिक छलन रिपु इक कियो छल।
संढ पच सय शृंग जोइ युग युगह लाल झल ।।
हंकिय सो वर हेट उभय चर अरिदल अभिमुप।
अप्प चढे दिशि अवर लिये बर कटक इक्क रूप ।।
पेखिय चिराक प्रद्योत पथ सढं समुप धाए असुर।
उत तें सुवीर अजगैब के परे आइ अरि सेन पर ।।८।।

भुजंगी

परे धाइ अरि सेन पर रोप पूरं।
सजे सेन सायुद्ध रट्ठोर सूरं ।।

क्रिये कंठ लक्काजि कंकालि क्रूरं ।
झनंकी यु पगौ घजी झाक झूरं ॥६॥

मची मार मारं जनं मूख मूखे ।
मिले जानि गो मंडलं सीह भूखे ॥
सरं सोक बज्जी नभ ढंकि सारं ।
भठक्के घन सोर आराब भारं ॥१०॥

घटक्के धरा धुन्धरं पूरि धोमं ।
बढ़े बीर बीरार सल्लभि व्योमं ॥
फुरें याघ हत्थं महा कूह फुट्टी ।
इतें आसुरी सेन पच्छी उलट्टी ॥११॥

धये धींग धींगं धरालं धमक्के ।
चहो कोद तें लोकपालं चमक्के ॥
जपे इट्ठ जप्प जुरे जोध जोधं ।
करो कंक बंके मरे भूरि क्रोधं ॥१२॥

मुरे सार सारं ननं मुष्ष मोरे ।
पटे टट्टर वान सन्नाह फोरे ॥
धरे शीश नच्चैं कमंधं प्रचंडं ।
मही भिन्न भिन्न करे रुंड मुंडं ॥१३॥

लरे दोन के शीश पच्छैं लटक्के ।
कहूं कंठ ज्यों इट्ठ जुट्टे कटंके ॥
घने घाउ लग्गे किते बीर झूमें ॥
झुकंते धुकंते किते फेरि झूमें ॥१४॥

हहक्क तहक्क किते हायहायं । परे घंपि चित्त झरे हत्थ पायं ॥
परे दीप मज्झे किते ज्यों पतंगा । उड़ छेनि छंछे करे होम अगा ॥१५॥

भभक्कंत श्रोनं कठे के भसुंढं । बिना दंत दंती परे है बिहंडं ।।
बहू बान बेधे कुनंनन्ति बाजी । गए चून ह्वै पैदलं मीर गाजी ।।१६।।
शिवे संग है ऊतगंगा सरोजा । चवंसट्ठि खागी टगी चित्त चोजा ।।
पिये श्रोन पान बहे बाह पूरं । बहे बाहु जथा भुजंतं बिरूर ।।१७।।
बिना सत्थ केते परे लत्थ बत्थें । रन रास रत्ते रुपे पाइ हत्थे ।।
मचे मुठ्ठ युद्ध मनो मल्ल मल्लं । अरे मत्त माहिष्य ज्यों द्वै अडुल्लं ।।१८।।
किते कातरा काय ज्यों पून कंपैं । नचे नारदं तुंबरु जैत जंपे ।।
गहक्कै शिवा चित्त गोमायु गिद्धं । लहक्कैं पशु पंखिनो मंस लुद्धं ।।१६।।
किते डूब जमदाढ कट्टैं कटारी । भरं भुंभरा भम ज्यों रोस भारी ।।
तिनं मोह माया तजे गेह तीयं । पुकारे बकारे मनू छाक पीयं ।।२०।।
सराहे रुबाहैं किते सेल सेलं । चुवे रत्त आरत्त ज्यों नीर चैलं ।।
तुटैं चाप चर्मं धजा तेग त्रानं । बरं युद्ध आनुद्ध में भो विहानं ।।२१।।
फिरे पील सूने परे पीलवाने । लुटैं लच्छि लुंटाक पिक्खे सु प्रानं ।।
हय नंषि रुंडं निसं छन्द हिंडे । बली तत्थ बद हत्थ रट्ठोर तंडे ।।२२।।
मनो पाथ पाथोधि छड्डी मृजादा । सबै सेन सत्थे भगे साहिजादा ।।
भगी सेन सुलतान की सप्पिसीतं । बढ़ी जेति कमज्ज सत्थे वदीतं ।।२३।।
निय जेतिमज्झी यु बग्गै निसान । जपै देव जे जे सुरंगे न यानं ।।
पल पंखि पग्गों वर खेत सुज्झयो । बहू लुत्थ आलुत्थि किन जाइ बज्झयो
परे मीर सैयद्दन इक्क पत्तो । गिन्नै कोन है पैंदल और दन्तो ।।
भयो पेम पेम सबै अप्प सत्थे । कहे मान यों छन्द रट्ठोर कत्थे ।।२५।।

कवित्त

फलह जीति कमधज्ज सेन भग्गी सुलतानी ।
झन्ड नेज झकझोरि तोरि डेरा तुरकानी ।।
हय गय लुट्ठ हजार लुट्ठि केउ लख धन लिन्नो ।
स्वामि बिना संग्राम कहर अरि दल सं भिन्नो ।।
पैंतीस कोश पच्छो फुल्यौ सहिजादा सुबिहान को ।
पत्ते सुबीर सब जोधपुर हठ राख्यो हिंदुवान को ।।२६।।

दोहा

परि पुकार अजमेर पुर सुनि औरंग सुविहान ।
कमधज जुरि जीते फवाह सेन भगी सुलतान ॥२७॥
जाने हिंदू जोर वर न तजें टेक निदान ।
कलह किये नावे सुफर सोचे चित सुलतान ॥२८॥
करते तो हम प करी राठोरनि सों रारि ।
इन अमों फुनि आसटै है पतिसाही हारि ॥२९॥
फिरि वसीठ फुरमा लिखि पठ्यो से पतिसाह ।
करन मेल कमधज्ज पें राखन रस दुहु राह ॥३०॥

कवित्त

सुरतय बचन वसीठ मिठ घन इट्ठ सुद्दमन ।
सुनहु रट्ठवर इर धीर तुम युद्ध वियक्खन ॥
कीनो हम रण सग प्रवल तुम प्रान परक्खन ।
पर तुम बड़ रजपूत राह रखन अभग रन ॥
हम तुम सु प्रीति ज्यों आदि है त्यों राखहु रस रीति तुम ।
अखे सु साहि औरग अब भूलि न को रक्खो भरम ॥३१॥
भूलि न राखहु भरम नरम अति औरंग चित्त किय ।
सजि चतुरंगिन सेन प्रबल हय गय पैदल प्रिय ॥
हमपै आवहु हरपि निरपि नृप जसपत्ति नन्दन ।
रीझि करौ राजेन्द्र अप्पि मुरधर आनन्दन ॥
इनमें अलीक जो होइ कछु सुकृत तो हम फोक सब ।
कमधज्ज सतो सुलतान कहि अलिय टेक मंडो न अब ॥३२॥

दोहा

अलिय टेक मंडो न अब कप्पै यों यवनेश ।
रस राजस दुहु राखिये करि सब दूरि कलेश ॥३३॥

मन्नी सब कमधज्ज मिलि शांत लग्यो सुलतान ।
नृप सुत करि आगे नृपति सजि दल बल सधान ॥ ३४॥
आए चढ़ि अजमेर गढ़ पय भेटे पतिसाह ।
नृप सुत पूरा किन्नै नजरि असपति चित्त उमाह ॥३५॥

कवित्त

इक दह हय गय एक सज्ज सोवन सिंगारिय ।
मनि इक मुत्तय माल उभय चामर अधिकारिय ॥
इक करवाल अनूप एक जमदाढ सु अच्छिय ।
पातिसाह प्रति पेस लखह गरु गरु लच्छिय ॥
कमधज्ज करी रस रग करि भयो मेल दुहु दीन मल ।
हरष्यो सु साहि औरंग हिय आण दाण बरती अचल ॥३६॥

दोहा

कहि आलम कहधज्ज सुनहु योगिनि पुर हम जाइ ।
नृप गुरु सुत करिहे नृपति बहु सनमान बढ़ाइ ॥३७॥
तिहि कारन हम सत्थ तुम चलो सकल चित चंग ।
प्रभु सब करिहैं पद्धरी भूलि न जानहु भंग ॥३८॥
बहु बिधि बचन बिसास तैं चूक न चिंतय चित ।
ढिल्लि नेर दिल्लीस सौं संव कमधज्ज सम्पत ॥३९॥
सेव करत नृप सुतन सौं बासर बहुतक बित्त ।
परि न देत महराय पद असपति चित अपवित्त ॥४०॥

कवित्त

दिल्ली पति जसंस छिल कथन कमधज्ज कहावहि ।
पातिशाह परवर दिगार कद गहर लगावहि ॥
हम आए प्रभु हुकुम देश हम हमकूं दिज्जे ।

थप्पि जोधपुर थान नृपति गुरु सुत नृप किज्जे ॥
सत पुरुष बैन डुल्लै न सहि ध्रुव सुरांह उर धारि यहि ।
रस किये रसहि रस राखिये अरज इती अवधारियहि ॥४१॥

सुनि सुबोल सुलतान उलटि उलटी इह आखिय ।
रह हम तुम कहा रह्यो सो व तुमहि चित साखिय ॥
आगे हू तुम ईश वह्यो हमसो गुमान बहु ।
जुरिग उजेनी जंग सेन हय गय भिड्डिय सहु ॥
फुनि लुट्टि हुरम धवलापुरहि सस्लरीति सल्ले सद्दुप ।
सा राज रीति तुम सगही साचि कहो रहि क्यों न सुप ॥४२॥

रयण कनक अरु रूपघनी तुम जे सचिय धन ।
सो हम अप्पहु रुच गिनिब हय गय खच्चर गन ॥
तो सुमेल हम तुमहि पुहवि तबही तुम पावहु ।
अरु हम सों अरदास कहा इह वृथा कहावहु ॥
मन्नै सु कोन महाराय के पुत्त न जाने कब्ब प्रगटि ।
मन मत्त भयो जनु पचमुप पातिशाह बचनहि पलटि ॥४३॥

दोहा

रिपु जन मन राखें न रस, गुन परि को न महत्त ।
पन्नग क. पय प्यावते, समझि करे चित संत ॥४४॥

कवित्त

रिपु जन के रस कहा कहा तिन बचन बिमासह ।
कहा पिशुन सुप्रतीत कहा अरि कोइ कलासह ॥
महुरे का कहा मीठ कहा हिमशैल सीत जग ।
कहा रव प्रगटित अगन कहा पय पोषित पन्नग ॥
पतिशाह सुबोल पलट्टि के रद लगा सुख जान रुप ।
शुभ सीप तान को राखवे लायक नर जो मिलय न्रप ॥४५॥

दोहा

सुनि एसी राठंर सब, भये रोस भर भार ।
सब पतिसाही सेन पर, छुट्टे ज्यों पहवार ॥४६॥

छंद मोती दाम

जगे कमधज्ज महा रनयोध । किये दृग रत्त भये भर क्रोध ।
वजी वर बीरन हक्क बहक्क । छुटे जनु इम्भ महामद छक्क ॥४७॥
धरातलि धावत उट्ठि धमक्क । चहूँ दिशि दानव देव चमक्क ॥
कढी कर नागिन सी करवाल । जितं तित ढाहत है गज ढाल ॥४८॥
जसे मनु लोह कि अग्गि लपट्ट । भनक्कंत नह परी घग भट्ट ॥
पलं दल फीजत बंढ बिहड । जितं तित मीर परे बिन मुंड ॥४६॥
खड़क्कत हहु सजड्ड करारं । करे जनु कट्टिय गैल कवार ॥
भभक्कत श्रोन सु इम्भ भुसुंड । जित तित जोर मच्यो पल पंड॥५०॥
परे जनु पत्थर रूप पठान । हये जम दाढ़नि भट्ट जुवान ॥
भजे नर कायर भारथ भीर । गजें प्रति सद्दनि व्योम गुहीर ॥५१॥
किते बिन शीश नचन्त कमन्व । लड़व्वड़ मत्थ लटक्कत कन्ध ॥
किते घम घाइनि छक्क छुमन्त । जित तत दांरत पीसत दन्त ॥५२॥
उभंटिय आसुरि सेन अलेख । जित तित सत्थर ह्वै रहे सेख ॥
गिते कुन गरबर भक्खर ग्यान । बलोचिय लोदिय बिब्बुध बान ॥५३॥
ररब्बरि पक्खरि रुम्मिय रुंड । भभोरिय भूरिय तत्तर झुंड ॥
रनं घन रोलिय मत्त रुहिल्ल । जित तित मच्चिय रत्त चिहल्ल ॥५४॥
पुरेसिय पग्ग किये पय काल । हबस्सिय होइ रहे यु बिहाल ॥
सुसेवर मुच्छिय केसरि बानि । जित तित जाइ परे पय पानी ॥५५॥
इही विधि आलम के मुंह अग्ग । जित तित भग्ग महा भर जग्ग ॥
मच्यो दरबार भग्यो महराय । भगो यवनेश सु अन्दर जाय ॥५६॥
परब्भरि आसुर पान जिहान । जितं तित रक्खिय आवन जान ।
जरे दरबानन दुर्ग कपाट । घनं परि घेर रुके जलघाट ॥ ५७॥

रलं तजि लोग परीपुर रोरि । दुरे नर भगि दई द्रढ़ पौरि ॥
गृहं गृह कंचन रूप्य गडंत । भगे बहु भामिनि थाल रढंत ॥५८॥
गहै कुन कप्पर सार किरान । घरप्पर ठिप्पर ठिल्लह थान ॥
मची बन लच्छी कूट कराल । चहो दिग होइ रहो ढकचाल ॥५९॥
सुपं सुप जक्खिय मारहि मार । हये नर मेच्छिय केउ हजार ॥
ढंढोरय ढिल्लयकिन्नसुढिल्ल । कियेगढ़कोट उथल्ल पुथल्ल ॥६०॥
बिहंडय खंडिय श्रेय सुहट्ट । जितं तित फोजत गेह कुपट्ट ॥
लबक्कहि लुट्टहिं लुट्टक लच्छि । गए तिन नाहर न बन गच्छि ॥६१॥
बिहस्सिय योगिनि बीर बेताल । महेशसु गुंथहिं मच्छय माल ॥
झरप्फहि पं पिनि गिद्धिनि झुंड । उड़े नभ कंक गहेपल तुंड ॥ ६२॥
जितं तित लंगाय लुच्छित जेट । पशू पच्छ चारिनि पूरय पेट ॥
बढ्यो रस पै रन सेन बिभत्स । सुरासुर मन्नत्र अद्भुत अच्छ ॥ ६३॥
अरे नन आसुर अट्टह आइ । लगी जनु मारुत ग्रीषम लाइ ॥
चकत्तह चूर चमू किय चून । फिरेहय छीसत सिंधूर मून ॥ ॥६४॥
मसक्कहि थक्कहि ओरंग साहि । कलमलि चित्त उठंत कराहि ॥
हहक्कहि तक्कहि मिड्डहि हत्थ । महल्लनि मज्झ डुलावाहि मत्थ ॥६५॥
गए कितहू तजि मीर गँभीर । नहीं सुनवाबनि के मुंह नीर ॥
तुरक्क न कोइ रह्यो इम तीर । भिरे इन सत्थकरे इम भीर ॥ ६६॥
इही बिधि युग्गिनि नैरहि आइ । बली मकधज्जसुपग्ग बजाइ ॥
चले, चतुरंग चमूनिय लेइ । दमामह दुट्ठनि के सिर देइ ॥६७॥

कवित्त

दिल्लि नयर करि ढिल्ल ढाहि आवास ढँढोरिय ।
दुट्ठ महल दलमलिय बघ से असुर बिरोलिय ॥
चूरि चकत्ता चमू चग हय गय चतुरंगह ।
लुट्टि अनंत सुलच्छि रजत अरु कनक सुरंगह ॥
भयभीत साहि ओरंग भय जरि कपाट अन्दर दुरिय ।
कमधज्ज सकल रक्खन सुकुल कजाक केलि इहि बिधि करिय ॥६८॥

दोहा

करियँ दिल्लियपुर फजह, रिन अभंग राठोर।
उद्धसिय असुरान अति, अरयन को मुंह ओर ॥६९॥
पहर तीन युग्गिनिपुरहि, पारी धारि प्रजारि।
कीन कुरूप कुदरसनी, नाहक बिन त्यों नारि ॥७०॥
करि अग्गें महराइ के, पुत्त प्रभाकर रूप।
चले सज्जि चतुरंग चमू, अप्पन इला अनूप ॥७१॥
आड़े जे आए असुर, सकललिए सु सँहारि।
मारवारि पत्ते सुमहि, प्रमुदित सब परिवार ॥७२॥

कवित्त

आए सुरधर इलाजीति योगिनिपुर जंगह।
सूर रट्ठवर सेन सकल हय गय भर संगह॥
घोप निसान घुरंत जोधपत्ते सु जोधपुर।
जिन जिनकी जो अवनि थप्पितिन तिन सथान थिर॥
आलम ओरंग महत अरि अति उद्धत आसुर अकल।
भारत्थ युद्ध तिन सत्थ भिरि बसुमति लीनी अप्प बल ॥७३॥

[नवमविलास से]

भूषण

आज की हिन्दी-कविता, अपने पीछे, प्राचीन कविता का एक गौरव छोड आयी है। काव्य-साहित्य का नवीन पाठक उसकी ओर श्रद्धा के साथ देखता है। दिनानुदिन अस्तंगत प्राचीन कविता का साहित्य भी सुगम होता जा रहा है। परन्तु इस विषय मे सब से अधिक कठिनाई यह है कि हमारे पुरातन कवियों के जीवन, जन्म-स्थान, जन्मकाल तथा काव्य-रचना के समय आदि का यथार्थ पता अभी तक नहीं चल सका है। हिन्दी के वीर-काव्य के सर्वाधिक सफल और जागरूक कवि भूषण के सम्बन्ध में भी यही कमी चली आयी है। किंवदंतियों, प्रामाणिक अन्वेषणों और विचार-पूर्ण आलोचना-प्रत्यालोचनाओं से इस विषय में जो कुछ सामग्री प्राप्त हो सकी है, साररूप मे वह यहाँ दी जाती है।

भूषण का आत्म-परिचय

'शिवराज-भूषण' भूषण कवि का एक काव्यग्रन्थ है। उसके छन्द २५ से २७ तक में स्वयं कवि ने अपना जो आत्म-परिचय दिया है, वह इस प्रकार है—

"देसन देसन तें गुनी, आवत जाचन ताहि।
तिनमें आयो एक कबि, भूषन कहियतु जाहि ॥२५॥
द्विज कनौज कुल कस्यपी, रतनाकर - सुत धीर।
बसत तिविक्रमपुर सदा, तरनि तनूजा तीर ॥२६॥
बीर बीरबर से जहाँ, उपजे कवि अरु भूप।
देव बिहारीस्वर जहाँ, बिस्वेस्वर - तद्रूप ॥२७।

अर्थात् "महाराज शिवाजी के यहाँ देश-देशान्तर से भाँति-भाँति के कलाविद पुरस्कार-प्राप्ति की कामना से आते हैं। उन्हीं में यह कवि (भूषण) भी है, इसे लोग भूषण कहते हैं। वह कान्यकुब्ज-ब्राह्मण है। कश्यप उसका गोत्र है। धैर्य्यशील श्री रत्नाकर जी का वह पुत्र है। यमुना के किनारे त्रिविक्रमपुर गाँव का वह वासी है। यह वही गाँव है, जहाँ वीरवल जैसे वीर राजा और कवि तथा श्री विश्वेश्वर महादेव के समान विहारीश्वर का मन्दिर है।

असली नाम

'भूषण' कवि का असली नाम नहीं है। यह तो उनकी उपाधि है:—यथा—

> 'कुल सुलंक चितकूट पति, साहस सील समुद्र।
> कवि 'भूषण' पदवी दई, हृदय राम सुत रुद्र॥'

अब प्रश्न यह उठता है कि उनका असली नाम क्या था? इस सम्बन्ध में भिन्न भिन्न लोगों के विभिन्न मत हैं। प्रत्येक का सारांश यहाँ दिया जाता है:—

१—श्री कुंवर महेन्द्रपाल सिंह का कथन है कि तिकवाँपुर के एक भाट के कहने से उनको मालूम हुआ है कि उनका असली नाम पतिराम था, क्योंकि कहा जाता है कि मतिराम उनके भाई थे।*

२—श्रीनारायण प्रसाद जी "बेताब" का मत है कि शायद उनका जन्म-नाम कन्नौज था।†

३—पं० भगीरथप्रसाद दीक्षित का मत है कि उनका असली नाम मनिराम था। पंडित बद्रीदत्त जी पांडेय ने अपने कुमायूँ के इतिहास में राजा उदोतचन्द्र के वर्णन में लिखा है—

---

*विशाल-भारत, अगस्त सन् १६३० †मिश्रबन्धु प्रलाप पृ० ६८.

"सितारागढ़-नरेश" साहू महराज के राजकवि मनिराम राणा के पास अलमोड़ा आये थे। उन्होंने राजा की प्रशंसा में यह कवित्त बनाकर सुनाया था। राजा ने दस हज़ार रुपये तथा एक हाथी इनाम में दिया।" वह छन्द यह है—

पुराण पुरुष के परम दृग कोऊ अहैं,
 ·······कहत वेद बानी यों पढ़ गई।
ये दिवस पति वे निसापति जोतकर हैं,
 काहू की बढ़ाई बढ़ाये ते न बढ़ गई।
सूरज के घर में करण महादानी भयो,
 यहै सोचि समुझि चितै चिन्ता मढ़ि गई।
अब तोहि राज बैठत उदोतचन्द* चन्द के,
 कर्ण की किरक करेजे सों कढ़ि गई।

श्री दीक्षित जी का अनुमान है कि ऊपर के पद के रिक्त स्थान मे "भूषण" जोड़ देने से यह पूरा हो जायेगा अतएव भूषण का असली नाम मनिराम था।

भूषण के असली नाम के सम्बन्ध में निश्चयात्मक रूप से कुछ भी नही कहा जा सकता। ऊपर विद्वानो ने इस सम्बन्ध मे जो कुछ कहा है उनका आधार कल्पना के अतिरिक्त और कुछ नही है।

कान्यकुब्जब्राह्मण

भूषण कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे, यह एक प्रकार से निर्विवाद है। रस-चन्द्रिका के लेखक सुकवि विहारीलाल जो चरखारी-नरेश राजा विजयबहादुर बिक्रमाजीत तथा उनके पुत्र महाराज रत्नसिह के दरबारी कवि थे, अपना वंश-परिचय रस-चन्द्रिका मे देते हुए लिखते है—

*कुमायूं का इतिहास पृ० ३०३।

भूषण चिन्तामणि तहाँ कवि भूषण मतिराम।
नृप हमीर सनमान तें कीन्हे निज निज धाम।।
हैं पन्ती मतिराम के सुकवि बिहारीलाल।
जगन्नाथ नाती विदित सीतल सुत सुभ चाल।।
कस्यप-बंस कनौजिया बिदित त्रिपाठी गोत।
कवि राजन के वृन्द में कोविद सुमति उदोत।

ऊपर के छन्द मे कवि को "कनौजिया" बतलाया गया है। श्री शिवसिह सेगर तथा मौलाना गुलामअली 'आज़ाद' भी उन्हें कान्यकुब्ज ही मानते हैं।

जन्मकाल

भूषण के जन्म-काल के निश्चय का विषय सर्वाधिक विवादग्रस्त है। इस विषय मे यद्यपि छान-बीन यथेष्ट हुई, परन्तु विवाद-रहित निश्चय अभी तक नही हो सका है। सबसे अधिक कठिनाई का विषय यह है कि भूषण जी की किसी कृति मे जन्म-संवत् के सम्बन्ध मे कहीं कुछ भी उपलब्ध नहीं हुआ है। हॉ, उनके शिवराज-भूषण ग्रन्थ के अंत मे एक दोहा अवश्य मिलता है—

संवत् तेरह तीस पर, सुचि बदि तेरसि मान।
भूषण शिव भूषण कियो, पढ़ियो सकल सुजान।

इस दोहे मे पाठ-भेद भी बहुत हैं। मिश्रबन्धु इस दोहे को इस प्रकार मानते हैं:—

शुभ सत्रह से तीस पर, बुध सुदि तेरसि मान,
भूषण शिवभूषण कियौ, पढियो सुनो सु ग्यान।❀

इस दोहे से पता चलता है कि भूषण जी ने इस ग्रन्थ को संवत् १७३० या १७२७ (पाठान्तर के हिसाब से) मे समाप्त

❀काशिराज पुस्तकालय की हस्त-लिखित-प्रति, छन्द ३८०।

किया। कदाचित् इसी तिथि को आधार मानकर हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ठ समालोचकों ने उनके जन्म-संवत् का अनुमान किया है। प्रसिद्ध आलोचक पंडित रामचन्द्र शुक्ल उनका जन्म संवत् १६७०† और मिश्रबन्धु संवत् १६७१ मानते हैं और इन दोनों आलोचकों के निष्कर्ष के अनुसार 'शिवराज भूषण' की समाप्ति के समय भूषण जी की अवस्था ६० और ५६ वर्ष की ठहरती है। जान पड़ता है कि इन महानुभावों ने इस निश्चय पर पहुँचते समय इस बात का भी ध्यान रखा है कि भूषण जो शिवाजी के दरबारीकवि तथा उनके समवयस्क थे। कारण, महाराज शिवा जी का जन्म सं० १६८४ (१० अप्रैल सन् १६२७) और निधन संवत् १७३७ (४ अप्रैल सन् १६८०) माना जाता है।❀ भूषण शिवाजी के समकालीन थे, शताब्दियों से लोग यही मानते आ रहे हैं। इधर सन्त तुकाराम का महाराज शिवा जी के नाम लिखा हुआ। एक पत्र मिला है, जिसमें उन्होंने उनके दरबारी कवियों को नमस्कार लिखते हुए भूषण जी का भी उल्लेख किया है :—यथा—

"पेशवे सुरनिस चिटणीस डबीर,
राजाला सुमंत सेनापति।
भूषण पंडितराय विद्या-धन,
वैद्यराजा नमन माझे आसो।❀

उधर श्री शिवसिंह सेंगर भूषणजी को छत्रपतिशिवाजी तथा महाराज छत्रसाल का समकालीन मानते हुए भी उनका

†हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० २६७।

❀डा० ईश्वरीप्रसाद:— "ए शार्ट हिस्ट्री आव मुस्लिम रूल इन इण्डिया" पृ० ५८५ तथा ६००।

❀नवनीत (मराठी) पृ० ८८ अभंग १६६।

जन्म संवत् १७३८ ही मानते हैं। पं० भगीरथ प्रसाद जी दीक्षित का मत है कि सेंगरजी की निवास-भूमि काँथा तिकवॉपुर (त्रिविक्रमपुर) से १५-२० मील के ही अन्तर पर है। इसके अतिरिक्त भूषण तथा उनके वंशजों के सम्बन्ध में इतिहास-ग्रन्थो मे लिखे परिचयो में अशुद्धियाँ देखकर उन्हे जब सहन न हुआ, तब भ्रम-निवारण क भाव को लेकर ही उन्होने 'शिवसिह-सरोज' का रचना की।* इसलिए भूषण जी के जन्म-काल के सम्बन्ध में सेंगरजी का मत अन्य विद्वानो की अपेक्षा अधिक शुद्ध है।† परन्तु सेंगरजी के मतानुसार भूषण जी का जन्मकाल का संवत् १७३८ मान लेने पर वे महाराज शिवाजी के निधन के एक वर्ष पश्चात् जन्म लेते और साहू महाराज के दरबारी कवि ठहरते हैं। दीक्षित जी भी भूषण को शिवाजी का दरबारी नहीं मानते। वे भी उनको साहू महाराज का ही आश्रित मानते हैं।

दीक्षित जी के अनुसार भूषण के जितने भी आश्रयदाता है, वे सभी शिवाजी के जीवन के बाद ही इतिहास के रंग-मंच पर आते हैं। इन आश्रयदाताओं की सूची इस प्रकार है :—

१—चित्रकूट-पति हृदयराम सुलंकी सं० १७५० वि० के लगभग।

२—कुमायूँ-नरेश उदोतचन्द्र सं० १७३१ वि० से १७५५ वि० तक।

३—श्रीनगर-नरेश फतहशाह सं० १७३३ से १७४१ वि० तक।

---

*शिवसिंह सरोज भू० पृ० १

†भूषण विमर्श—पृ० ८

४—रींवा नरेश अवधूतसिंह सं० १७७५ से १८१२ वि० तक।

५—जयपुर-नरेश सवाई जयसिंह १७५६ से १८०० वि० तक।

६—सितारा-नरेश छत्रपति साहू १७६५ से १८०५ वि० तक।

७—दिल्ली-नरेश जहाँदारशाह सं० १७६६ वि०।

८—बूंदी-नरेश रावराजा बुधसिंह सं० १७६४ से १७६८ वि० तक।

६—मैहू-नरेश अनिरुद्ध सिंह पौरच सं० १७७० वि० के लगभग।

१०—असोथर-नरेश भगवन्त राय खीची सं० १७७० से १७६२ वि० तक।

११—बाजीराव पेशवा सं० १७७७ से १७६७ वि० तक।

१२—चिमना जी (चिन्तामणि) सं० १७८० के लगभग।

१३—चित्रकूट-पति वसन्त राय सुलंकी सं० १७८० वि० के लगभग।

१४—पन्ना-नरेश सं० १७२८ से १७६१ वि० तक।

भूषण के जन्मकाल के सम्बन्ध में निश्चितरूप से अभी कुछ नहीं कहा जा सकता। जैसा कि ऊपर कहा गया है, भूषण के सम्बन्ध में यही सदा से प्रसिद्ध है कि वे शिवाजी के समकालीन हैं। ऊपर उनके आश्रयदाताओं के जो संवत् दिये गये हैं, वस्तुत. उनकी जॉच तथा छान-बीन की आवश्यकता है।

जन्मभूमि

साधारण रूप से यही प्रसिद्ध है कि भूषण जी का निवासस्थान तिकवाँपुर है। यह स्थान कानपुर जिले में हमीरपुररोड पर स्थित घाटमपुर तहसील में, मौजा अकबरपुर-बीरबल से दो मील दूर है। भूषण ने इस सम्बन्ध में लिखा है "बसत

त्रिविक्रमपुर सदा।" यही त्रिविक्रमपुर कहा जाता है कि तिकवॉपुर है। किन्तु दीक्षित जी के अनुसार भूषण त्रिविक्रमपुर आकर बस गये थे। असल में वे वनपुर के निवासी थे। मतिराम ने अपने ग्रन्थ छन्दसारपिंगल (वृत्त-कौमुदी) में अपने निवास-स्थान का परिचय देते हुए लिखा है :

'तिरपाठी वनपुर बसैं, वत्स गोत्र मुनि गेह।
विबुध चक्रमणि पुत्र तहं, गिरधर गिरधर देह ॥*'

अब प्रश्न यह उठता है कि वृत्त- कौमुदी की रचना सुकवि मतिराम ने किस समय की? वृत्त-कौमुदी के निर्माण काल के सम्बन्ध में निम्नलिखित दोहा उपलब्ध हैं :—

संवत सत्रह सौ वरस, अट्ठावन शुभ साल।
कार्तिक सुक्ल त्रयोदशी, करि विचार तिहि काल॥

ऊपर के दोहे से स्पष्ट है कि कार्तिक शुक्ल त्रयोदशी सं० १७५८ में यह ग्रन्थ समाप्त हुआ। इन सुकवि मतिराम के पंती कवि बिहारी लाल हुए। उन्होंने विक्रम-सतसई की रस-चन्द्रिका नामक टीका में लिखा है।

'बसत त्रिविक्रमपुर नगर, कालिंदी के तीर।
विरच्यौ भीर हमीर जनु मध्यदेश को हीर।
भूषण चिन्तामनि तहाँ, कवि भूषण मतिराम,
नृप हमीर सम्मान ते, कीन्हो निज निज धाम।

इस टीका का रचनाकाल सं० १८७५ है। इन उद्धरणों से यह प्रमाणित हो जाता है कि वृत्त-कौमुदी की रचना के समय भूषण वनपुर में रहते थे किन्तु शिवराज-भूषण की रचना उन्होंने त्रिविक्रमपुर में की थी।

---

*भूषण-विमर्श पृ० १०।

रचनाएँ

भूषण जी ने शिवराज-भूषण, शिवा-बावनी, छत्रसाल-दशक नामक ग्रन्थ तथा कुछ फुटकर छन्द लिखे हैं। इनमें 'शिवराज-भूषण' एक स्वतंत्र ग्रन्थ है। यह शिवाजी की प्रशंसा में लिखित अलंकार-ग्रन्थ है। इसमें दोहा छन्द मे अलंकारों का लक्षण तथा सवैया और कवित्त-छन्दों में उनके उदाहरण देकर शिवा जी की कीर्ति का वर्णन किया गया है। इसमें शिवाजी के युद्ध-जीवन की सं० १७१३ से १७३० तक की राजनैतिक घटनाओं, दुर्ग-विजयों, उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व की धाक, उदारता और निर्भीकता का सजीव-चित्रांकण किया गया है।

'शिवा-बावनी' भूषण जी की कोई स्वतन्त्र रचना नहीं है। शिवाजी की प्रशस्ति में उनके जो ५२ फुटकर छन्द हैं, उन्हीं का संकलन शिवा-बावनी के नाम से प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थ के सम्बन्ध मे किवदन्ति प्रसिद्ध है कि भूषण को रास्ते में अकस्मात् शिवाजी. मिल गये किन्तु भूषण उन्हें पहचान न सके। तो भी वे शिवाजी की प्रशंसा मे लगातार छन्द सुनाते चले गये। उन्हीं बावन छन्दों को "शिवा-बावनी" के नाम से प्रसिद्ध कर दिया गया है। कदाचित् इसका संकलन भूषण के पश्चात् किसी अन्य व्यक्ति ने किया हो।

छत्रसाल-दशक महाराज छत्रसाल पर लिखे छन्दों का संकलन मात्र है। कहा जाता है कि भूषण जब कभी इन महा-राज के यहाँ आकर ठहरते थे, तब जो छन्द लिख जाते थे, उन्हीं का संकलन इस छोटे से ग्रन्थ मे किया गया है।

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त भूषण के कुछ फुटकर छन्द भी मिलते हैं। इन छन्दो की संख्या ६५ के लगभग है। इनमें ३६ पद्य, शिवाजी से सम्बन्ध रखते है, १० शृंगाररस के हैं, और

अवशिष्ट अन्य राजाओं के सम्बन्ध मे हैं। जो छन्द शिवाजी के सम्बन्ध में हैं, वे शिवाबावनी से मिलते-जुलते है। कुछ ऐसे भी है, जो शिवाजी के जीवन के अंतिमकाल की घटनाओ तथा युद्ध-वर्णन पर आधारित है।

भाषा

भूषण रीति-काल के कवि है और रीति-कालीन-काव्य की भाषा मुख्यतया व्रजभाषा थी। जो कवि व्रजभूमि से थोड़ा-बहुत दूर हटकर रहते थे, उनको भाषा मे यत्किंचित परिवर्तन होना अवश्यम्भावी था। प्रेम-रहस्य के अनुसन्धान मे रत जायसी आदि सूफी कवियो ने अवधी को अपनाया था। गो० तुलसी-दास जी की भाषा मुख्यतया अवधी थी। राजपूताने मे उस समय जो काव्य-भाषा प्रचलित थी, वह डिंगल कहलाती थी। मुसलमानी राज्य-शासन के साथ-साथ उस समय के दरबारी कविगण भी मुस्लिम संस्कृति के सम्पर्क मे आकर फारसी-भाषा के शब्दो का प्रयोग करने लगे थे। भूषण की भाषा मे भी इसी कारण विदेशी शब्द बहुत मिलते है। अपनी कविता मे 'खलक' 'नकीब', 'जशन', 'दराज' तथा 'तसबीह' जैसे क्लिष्ट फारसी शब्दो का प्रयोग उन्होंने स्वच्छन्दता पूर्वक किया है।

परन्तु भूषण विदेशी शब्दों के ग्रहण करने मे उनके तत्सम प्रयोग के पक्षपाती न थे। जहाँ तक सम्भव हुआ, उन्होने फारसी शब्दो को तद्भव रूपों मे ही ग्रहण करने की चेष्टा की है, और इसके लिए जहाँ उन्हे आवश्यकता पड़ी है, वहाँ उन्होने उन शब्दो की खराद भी कर डाली है। यहाँ तक कि कहीं-कहीं तो उन शब्दो के मूल रूप को उन्होंने अपने साँचे मे ढाल दिया है। जैसे 'बेहद' से 'बिहद', 'सरजाह' से 'सरजा'।

अन्य बोलियो से शब्दों को ग्रहण करने में भूषण ने पूर्ण स्वाधीनता से काम लिया है। फारसी-शब्दों के साथ-साथ

उससे सम्बन्ध रखनेवाले कहीं-कहीं खड़ीबोली के प्रयोग भी उन्होंने ज्यों के त्यों रख दिए हैं। जैसे 'देखत में खान रुस्तम जिन खाक किया'। इसके अतिरिक्त अवधी, बुन्देलखण्डी तथा बैसवाड़ी शब्दों का भी अत्यधिक प्रयोग किया है। यथा—

खड़ीबोली	—	'तेरे द्वार आइयतु है'।
बुन्देलखण्डी	—	'बैयर बगारन की'।
बैसवाड़ी	—	'काविह के जोगी'।

इसप्रकार भूषण जी की भाषा, स्वरूप में व्रजभाषा होते हुए भी वास्तव में खिचड़ी है। शब्दों के तोड़ने-मरोड़ने में सच पूछिए तो उन्होंने बड़ी उच्छृङ्खलता प्रदर्शित की है। परन्तु उनकी भाषा में जहाँ दोष है, वहाँ उसमें ओज भी बड़े सजग रूप में विद्यमान है। जान पड़ता है, भाषा को सँवारने की ओर उनकी दृष्टि ही नहीं थी। कवि-कल्पना और भावों के प्रवाह में उन्होंने केवल इस बात का ध्यान रक्खा है कि उनकी कविता के पाठकों के सामने वीरता, आतंक और युद्ध-कालीन विप्लव का एक चित्र आ जाय। और इस दृष्टि से वे अपने प्रयत्न में यथेष्ट सफल हुए हैं।

कविता

भूषण जी राष्ट्रीय-भावों के गायक थे। अपने कार्य-कालीन परम्परागत काव्य-पद्धतियों में मर्यादित रहते हुए भी भावतः वे सर्वथा मौलिक थे। अपने आश्रयदाताओं का कीर्तिगान यद्यपि उन्होंने भी किया है तथापि उनकी प्रशस्तियों में प्राण-रूप से जो भावना निहित थी, वह थी हिन्दू-राष्ट्र के संगठन की। अपनी कविता में सबसे पहले उन्होंने हिन्दू-नरेशों के सहयोग और आपस की फूट के विनाशकारी परिणाम की ओर ध्यान आकर्षित किया था। वे वीरता के पुजारी थे और अपने

आश्रयदाताओ की प्रशंसा वे इसी दृष्टिकोण से करते थे। उनकी प्रशंसा मे प्रमुखरूप से देश की दशा, देश-द्रोहियों का दमन और वीर-पूजन के ही भावो का प्राकृतिक और शक्तिशाली रूप मिलता है। अपने आश्रयदातानरेश की विजय को उनकी व्यक्तिगत विजय न मानकर, वे हिन्दू आदर्श की विजय मानते थे। हिन्दू-संस्कृति और हिन्दू-राष्ट्र को लेकर गौरव और अभिमान की भावना उनके भीतर काम करती थी और इस अर्थ मे भूषण जी का स्वर सच पूछिए तो उस काल के सम्पूर्ण हिन्दू राष्ट्र का स्वर है।

भूषण जी की कविता के मुख्य विषय हैं—युद्ध-वर्णन और वीरो के कीर्ति गान। युद्ध-वर्णन में उन्होंने अपने नायक के अदम्य साहस, उनकी सेना के अनन्त-उत्साह, तथा मारकाट-पूर्ण अत्यन्त लोमहर्षक-दृश्यो का चित्र खीचा है। इन युद्धो के वर्णन मे सर्वाधिक प्रशंसनीय अगर कोई बात है तो यह है कि उन्होने ऐतिहासिक घटनाओ मे सत्य-प्रियता का आदर्श परिचय दिया हैं। जिन घटनाओ को उन्होने ग्रहण किया है, उन्हे काव्योचित रूप देते हुए भी विकृत नहीं होने दिया। यहाँ तक कि प्राण रूप मे ही उनका अधिकाधिक रक्षण किया है। मराठा इतिहास से उनके वर्णन इतने मिलते जुलते है कि दोनो का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध सा प्रतीत होता है। यहाँ तक यदि उनकी वर्णित घटनाओ को क्रमबद्ध कर दिया जाय तो वह शिवाजी महाराज का एक क्रमबद्ध कार्य-परिचय सा झलकने लगेगा।

कीर्तिगान मे भूषण ने अपने पूर्ववर्ती-कवियो की परिपाटी का भी अनुसरण किया। वे लोग अपने आश्रयदाताओं की दान-वीरता तथा उदारता का अतिरंजित-वर्णन करने मे अपनी कवि-कल्पना का उपयोग करते हुए सकुचाते न थे।

भूषण भी इस पद्धति से पृथक नहीं जा सके थे। किन्तु इस विषय में पात्रापात्र का ध्यान उन्होंने अवश्य रखा है। जहाँ तक सम्भव हो सका है, उन्होंने दान-शीलता का वर्णन उसी आश्रयदाता का किया है जो वास्तव में उसका उपयुक्त अधिकारी रहा है। महाराज शिवाजी की दान शीलता तो इतिहास प्रसिद्ध है। सुप्रसिद्ध इतिहासवेत्ता श्री यदुनाथ सरकार तक ने इस विषय में महाराज शिवाजी की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। राज्याभिषेक के समय एक लाख ब्राह्मण, स्त्री-पुरुष तथा बालकों को उन्होंने चार महीने तक बराबर नाना प्रकार के मिष्टान्न खिलाये और लाखों रुपये दान में दिये थे।* मुसलमान इतिहासकार श्री कैफी तक का कथन है कि तीर्थयात्री का वेष धारणकर जब महाराज शिवाजी आगरा से भागकर काशी आये थे, तब उन्होंने घाट पर के पंडों को ९ हीरे, ९ अशरफी तथा ९ हून दिये थे। इसके अतिरिक्त उनका यह भी कथन है कि महाराज शम्भा जी को रायगढ़ पहुँचाने के लिए जो ब्राह्मण लोग उनके साथ आये थे, उन्होंने उनको भीएक लक्ष सोने की मोहरें नकद देकर दस-सहस्र हून वार्षिक देने का वचन दिया था। इसप्रकार शिवा जी जैसे दानवीर की प्रशंसा में यदि भूषण की कविता में कुछ अतिरंजन भी हो, तो इसकेलिए उनकी कवि-जन्य-पद-मर्य्यादा पर किसीप्रकार का आक्षेप नहीं किया जा सकता।

रसपरिपाक

इसको काव्य की आत्मा माना गया है। अतएव काव्य कला की दृष्टि से भूषण की कविता की ओर जब हम देखते हैं तो सब से पहले हमे देखना यह होगा कि उसमे इस परिपाक कैसा हुआ है।

---

*शिवाजी एण्ड हिज़ टायम पृ० १७१, १७२, १७४ तथा२४२।

भूषण जी वीररस के कवि हैं और वीर चार प्रकार के माने गये हैं—युद्धवीर, त्यागवीर, दानवीर और धर्मवीर। भूषण ने महाराज शिवाजी तथा महाराज छत्रसाल में ऊपर लिखित वीरता के तीन लक्षणों का सुन्दर निर्वाह किया है। परन्तु वीररस के काव्य में सच पूछिए तो सर्वाधिक महत्व युद्धवीरता को ही दिया जाता है। भूषण ने महाराज शिवा जी की युद्ध-वीरता के जो चित्र खींचे हैं, वे वास्तव में बहुत ही लोम-हर्षक और उत्तेजना-पूर्ण हैं। यथा—

छूटत कमान अरु गोली तीर बानन के,
मुसकिल होत मुरचान हूँ की ओट मैं।
ताहि समय सिवराज हुकुम के हल्ला कियो,
दावा बाँधि परा हल्ला बीर बर जोट मैं।
भूषन भनत तेरी हिम्मत कहाँ लौं कहौं,
किम्मत यहाँ लगि है जागी भट ओट मैं।
ताव दै दै मूछन कँगूरन पै पाँव दै दै,
अरि मुख घाव दै दै कूदि परैं कोट मैं।

वीररस-वर्णन में कवियों ने प्राचीन-काल से ही ऊहात्मक-पद्धति का अनुसरण किया है। भूषण ने परम्परा को ही पकड़ा है परन्तु चमत्कारवादी कवियों की भाँति अति-रंजित पद्धति को प्रचुरता से नहीं ग्रहण किया। सेना के चलने से शेष की दुर्दशा, समुद्र का हिलना, धूल से सूर्य का ढक जाना परम्परा-युक्त ही है। देखिए—

(१) भूषन भनत नाद बिहद नगारन के,
नदी-नद मद गैबरन के रलत हैं।
ऐल-फैल खैल भैल खलक में गैल गैल,
गजन की ठेल-पेल सैल उसलत हैं।

तारा सो तरनि धूरि धारा में लगत,
जिमि थारा पर पारा पारावार यों हलत हैं।

(२) टूटिगे पहार बिकरार भुव-मंडल के,
सेष के सहस फन कच्छप कचकि गे।

(३) दल के दरारन तें कमठ करारे फूटे,
केरा के से पात बिहराने फन सेष के।

इतना होने पर भी कहीं कहीं ऐसे वर्णन भी मिलते हैं जो परम्परा-युक्त होने पर भी अतिरंजित होने के कारण अव्यवहारिक हैं:—

(१) 'आयो आयो' सुनत ही, सिव सरजा तुव नाँव।
वैरि-नारि दृग जलन सों, बूडि जात अरि गाँव॥

वीर-रस के सहायक रस भयानक और रौद्र माने गये हैं। भूपण की कविता में इन दोनों रसों का पूर्ण-परिपाक मिलता है। महाराज शिवाजी का आक्रमण जहाँ कहीं भी होता है, वहाँ तक वातावरण कितना भयाक्रान्त हो जाता है, भूपण के अनेक छन्दों मे इस स्थिति का अत्यन्त सजीव वर्णन मिलता है।

वाह्यदृश्यचित्रण

वाह्यदृश्य के निरूपण मे कवि लोग दो प्रकार की योजनायें उपस्थित करते हैं—एक स्फुटयोजना और दूसरी संश्लिष्ट योजना। कहना नहीं होगा कि स्फुटयोजना केवल विभाव का चित्रण चलता कर देने के लिए है। केशव आदि ने अधिकांश मे स्फुट योजना से ही काम लिया है। हिन्दी के पिछले खेवे के कवियों ने दृश्य-निरूपण की अनेकरूपता पर अधिक ध्यान नहीं दिया। प्रकृति के नाना रूपों मे उनकी वृत्ति केवल रम कर ही रह गई। उसके भीतर पैठकर उसके अंग प्रत्यंग का

माधुर्य प्रत्यक्ष करने में मग्न नहीं होने पाई। इसीलिए हिन्दी में संस्कृत के कवियों की भाँति वर्ण्य-विषय के सम्बन्ध में संश्लिष्ट-योजना बहुत कम मिलती है। भूषण इसके अपवाद नहीं थे। रायगढ़ का वर्णन करते हुए आप लिखते हैं:—

कहुँ बावरी सर कूप राजत बद्धमनि सोपान हैं।
जहँ हंस सारस चक्रवाक विहार करत समान हैं।
कितहूँ बिसाल प्रवाल जालन जटित अंगन भूमि है।
जहँ ललित बागन द्रुम लतनि मिलि रहे झिलमिल झूमि हैं।
चपा चमेली चारु चंदन चारिहू दिसि देखिए।
लवली लवंग यलानि केरे लाख हो लग देखिए।
कहुँ केतकी कदली करौंदा कुंद अरु करबीर हैं।
कहुँ दाख दाडिम सेव कटहल तूत अरु जंभीर हैं।
कितहूँ कदम्ब कदम्ब कहुँ हिताल ताल तमाल हैं।
पीयूष ते मीठे फले कितहूँ रसाल रसाल हैं।

काव्याभ्यासियों को यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि इस वर्णन में केवल परम्परा की लीक भर पीटी गई है। ऊपर के चित्रण में केवल योजना ही स्फुट नहीं है, वरन् दाख, दाड़िम, सेव आदि के पेड़ भी उत्तर से लाकर दक्षिण में लगाये गये हैं।

भूषण का वर्णन सरासर संश्लिष्ट-योजना से शून्य भी नहीं है। इन्होंने केवल उसमें अपनी रुचि नहीं दिखलाई है। देखिए—

(१) मुकुतान की झालरिन मिलि मनि माल छज्जा छाजहीं।
सन्ध्या-समै मानहु नखत-गन लाल अंबर राजहीं।
जहँ तहाँ ऊरध उठे हीरा-किरन घन समुदाय हैं।
मानो गगन तरु सन्यो ताके सपेत तनाय हैं।

(२) महत उतंग मनि-जोतिन के संग आनि,
कैयौ रंग चकहा गहत रवि रथ के।

इसप्रकार की योजना पुस्तक भर में नहीं है। भूषण का अभिप्रेत-रस वीर था। इसमें भी संश्लिष्ट-योजना हो सकती थी। वीररस की अनेकरूपता को परिपूर्ण करने के लिए इसमे भी संश्लिष्ट-योजना का सहारा लेना चाहिये था। परन्तु सब स्थानों पर स्फुट-योजना ही दिखलाई पड़ती है। हिन्दी में संश्लिष्ट-योजना की ओर कवियों ने कम रुचि दिखलाई है। यह योजना केवल प्रबन्ध-काव्य के भीतर ही नहीं, स्फुट पद्यों मे भी दिखलाई जा सकती है। वीररस की जो परम्परा चली थी उसमे रासो की पद्धति ही पहले मुख्य थी। इन ग्रन्थों मे ऐसी योजना बहुत कम मिलती है, यद्यपि ये ग्रन्थ महाकाव्यों एवं प्रबन्ध-काव्यों के रूप में ही लिखे गये हैं। आगे चलकर कविगण केवल स्फुट वीर-काव्य में ही लगे रहे, इससे उनकी योजना एकदम स्फुट हो गई। भूषण ने भी केवल परम्परा-युक्त-शैली का ही अनुकरण किया, उसमे नवीन-योजना कहीं नही की।

अलंकार

'शिवराज-भूषण', भूषण का रीति-ग्रन्थ माना जाता है। रीति-ग्रन्थ मे काव्य के लक्षण, रस और अलंकारों का जो निरूपण किया जाता है, उसमे निरूपक अपनी रचना के प्रति जितना ही निर्लिप्त रहता है, उतना ही वह सफल होता है। काव्य का उद्‌गम है मनोवेग और मनोवेग अलंकार-निरूपण के लिए नही हुआ करता। वह आत्मीय-प्रेरणा का विषय है। अलंकार तो प्रकरण से आ जाते हैं। उनकी उपयोगिता गौणरूप में मानी जाती है। अतएव रीति-ग्रंथकार वही सफल हो

सकता है, जो उदाहरण देते समय उस विषय की प्राप्यसामग्री का पूर्ण उपयोग करता है। परन्तु जब रीति-ग्रन्थकार, काव्य निरूपण के उदाहरणों में ऐसे उत्तरदायित्व-पूर्ण-कार्य के निर्वाह में भी, अपनी रचना का मोह नहीं त्याग सकता, तब वह दलदल में फँस जाता है। तब उसको अलंकार का उदाहरण देने के लिए ही रचना करनी पड़ती है, और ऐसी दशा में उसकी रचना स्वाभाविकता के अभाव के कारण प्रायः शिथिल हो जाती है। सन्तोष की बात है कि भूषण ने अलंकार-निरूपण-मात्र के लिए छन्द रचना नहीं की। उनके छन्दों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि ये छन्द समय-समय पर लिखे गये हैं और अलंकार-ग्रन्थ-निर्माण के समय यथास्थान जोड़ दिये गये हैं। यह बात और स्पष्ट हो जाती है, जब हम देखते हैं कि भूषण ने सम्पूर्ण अलंकारों का निरूपण नहीं किया; कुछ अलंकार उन्होंने छोड़ भी दिये हैं।

इसके अतिरिक्त एक कारण और भी है और वह यह कि यदि भूषण ने अलंकार-निरुपण के लिए ही रचना की होती तो उदाहरणों में काल-क्रम में कोई बाधा नहीं पड़ती। अलंकार-क्रम के अनुसार घटनाओं का क्रम-भंग होना ही यह सिद्ध करता है कि ये रचनायें घटनाओं को आधार मानकर हुई हैं, न कि क्रम को आधार मानकर।

अलंकार-निरूपण करते हुए भूषण ने अलंकारों के रूप-लक्षण के भेदों का जहाँ उल्लेख किया है वहाँ कहीं तो वे उदाहरण दे भी नहीं सके। बात यह है कि भूषण ने तब तक जो छन्द लिखे होंगे उनमें तद्विषयक अलंकारों का अभाव रहा होगा।

अलंकारों का निरूपण भूषण ने कैसा किया है, इस विषय पर अब तो स्पष्ट शब्दों में यह कहना पड़ता है कि भूषण

कवि थे न कि अलंकार-शास्त्री। कवि होना एक बात है और काव्यशास्त्री होना और बात। भूषण की रचना में जिस व्यक्ति की आत्मा बोलती है, जान पड़ता है, वह वीरतापूर्ण मनोवेगों का कवि है। रीति-ग्रन्थ का निर्वाह तो वह एक परम्परा के निर्वाहार्थ ही कर रहा है। और कविता में अलंकार की उपयोगिता क्या है, भूषण ने इस विषय का अपनी कविता में कहीं स्पर्श नहीं किया। इसके बाद आगे चलकर जब हम उनके अलंकार-निरूपण की ओर देखते है तो विवश होकर हमें यही कहना पड़ता है कि उनके वर्णित लक्षणों में से अनेक अपूर्ण और अशुद्ध है। यथा—

विरोध

द्रव्य क्रिया गुन में जहाँ, उपजत काज विरोध।
ताको कहत विरोध हैं, भूषन सुकवि सुबोध॥

विरोधाभास

जँह विरोध सो जानिये, साँच विरोध न होय।
तहाँ विरोधाभास कहि, बरनत हैं सब कोय॥

विषम

कहाँ बात यह कहँ वहै, यों जँह करत बखान।
तहाँ विषम भूषन कहत, भूषन सुकवि सुजान॥

यहाँ विचारणीय यह है कि द्रव्य क्रिया और गुण में जहाँ कार्य-विरोध हो और वहाँ विरोध अलंकार मान लिया जाय, तो फिर 'विषम-अलंकार' की स्थिति क्या होगी? इसके अतिरिक्त वह विरोध यदि बाह्य है और केवल ऊपर से देख पड़ता है, भीतर उसका कोई अस्तित्व नहीं है, तो वह विरोधाभास अलंकार का रूप धारण कर लेगा। यही कारण है कि कुछ अलंकार-शास्त्री विरोध को एक स्वतंत्र अलंकार के रूप में स्वीकार नहीं करते।

राष्ट्रीय-दृष्टिकोण

'राष्ट्रीय' शब्द आज हम जिस अर्थ में प्रयुक्त करते हैं, भूषण जी के समय में उसका वह अर्थ लगाया ही नहीं जाता था। बात यह थी कि हमारे यहाँ उस समय सांस्कृतिक एकता की ही भावना प्रमुख थी, आज-कल की राजनीतिक एकता का स्वरूप उस समय खड़ा नहीं हुआ था। मौर्य-साम्राज्य के बाद एक-छत्र राज्य हमारे यहाँ किसी सम्राट् का स्थिर नहीं हो सका था। अरब के लोग जब इस देश में आये और उन्होंने राज्याधिकार प्राप्त किया, तब भी सामाजिक व्यवहारों में उनका कोई राजनैतिक विरोध नहीं हुआ। हिन्दू-नरेश अपनी सेना में बराबर मुसलिम सैनिकों को सम्मिलित करते थे और मुसलमान बादशाह अपनी फौज में हिन्दुओं को बराबर जगह देते थे। यहाँ तक कि उनके प्रान्तीय-अधिकारी तक हिन्दू रहा करते थे। अनेक हिन्दू-नरेशों ने अपने राज्य में खुले हृदय से मुसलमानों का स्वागत करते हुए उनका पूर्ण आदर-सत्कार किया था। सुलेमान, मसऊदी, इब्नहौकल और आबूज़ैद ने गुजरात नरेश बल्हार की बड़ी प्रशंसा की है, क्योंकि उसने मुसलमानों के साथ बड़ा सौहार्द्र प्रदर्शित किया था। सुलेमान ने लिखा है कि हिन्दू-नरेशों में ऐसा कोई नहीं है जो बल्हार की अपेक्षा अरबों को अधिक चाहता हो। उसकी प्रजा की भी वही नीति है। मसऊदी ने देखा कि उसके सहधर्मी अपने धर्म का खुले रूप में प्रचार कर रहे हैं। गुजराज के एक नरेश से बातचीत करते हुए वह कहता है—आपके राज्य में इसलाम समाहृत और रक्षित है। चारों ओर अनेक मसजिदें हैं, जिनमें मुसलमान लोग अपनी नमाज पढते हैं। खम्भायत के हिन्दुओं ने जब मुसलमान व्यापारियों पर आक्रमण किया, तो सिद्धराज (१०९४-११४३) ने सारे मामले की जाँच की, आक्र-

मणकारियों को दंड दिया और मुसलमानों को नई-नई मसजिदे बनाने के लिये रुपये दिये।❀

महाराज शिवाजी भी मुसलमानों के सम्बन्ध में इसी प्रकार की उदारनीति के पोषक थे। वे मुसलिम धर्म को सदैव सम्मान की दृष्टि से देखते थे। मुसलमानों के लिए उनके हृदय में किसीप्रकार का द्वेष या घृणा का भाव कतई नहीं था। मुसलमान-इतिहासकारों ने इस विषय में खुले हृदय से उनकी प्रशंसा की है। श्री खफी खॉ ने लिखा है—उन्होंने एक नियम बना दिया था कि जब कभी उनके अनुयायी अधिकारीगण लूट-पाट करें, तब वे मसजिद के धर्मग्रन्थ और स्त्रियों को किसी प्रकार की हानि न पहुँचाये। जब कभी उनको पवित्र कुरान की कोई प्रति मिली, उन्होंने उसे सम्मान पूर्वक रक्खा और अपने मुसलमान अनुयायियों को उसे दे दिया। जब कभी किसी मुसलमान की कोई स्त्री उनके आदमियों द्वारा कैद-कर ली गई और उन्होंने उसकी रक्षा करने वाला कोई मित्र नहीं देखा, तो स्वतः उन्होंने उस पर दृष्टि रक्खी।†

यहॉ पर यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि जब महाराज शिवाजी की नीति मुसलमानों के सम्बन्ध में इतनी उदार थी, तब उनके प्रशस्तिकार भूषण ने औरंगजेब की निन्दा क्यों की? इस विषय में इतना ही लिखना पर्याप्त होगा कि भूषण जी सम्पूर्ण भारतवर्ष को एक सूत्र में आबद्ध देखना चाहते थे। सम्राट बाबर, हुमायूँ और अकबर इस विषय में एक मर्य्यादा स्थिर कर गये थे और उसके फलस्वरूप हिन्दू और मुसलमान

❀डा० ताराचन्द—इन्फ्लुनुएन्स आफ इसलाम आन् इन्डियन कल्चर पृ० ४४-४५।

† शर्मा—मुगल एम्पायर इन इन्डिया पृ० २५८-२५९

प्रजा सदियों से मित्र-भाव से रहती आ रही थी। सम्राट औरंगजेब ने उस मर्य्यादा को नष्ट करने की चेष्टा की थी। उसने हिन्दू-मुसलमानो के धार्मिक विद्वेष के भाव को भड़का दिया था। भूषणजी इसमें देश का अहित स्पष्ट रूप से देख रहे थे। यथा—

"बब्बर अकब्बर हुमाऊं हद्द बाँधि गये,
हिन्दु और तुरक की कुरान वेद ढब की।
और बादशाहन में दूनी चाह हिन्दुन की,
जहाँगीर शाहजहाँ साखपूरैं तन की।

बाद मे औरंगजेब की यही नीति मुगल-साम्राज्य के विनाश का कारण हुई। भूषणजी के कुछ छन्दो मे म्लेच्छ-वंश के प्रति एक आध स्थल पर कुछ असम्मान-पूर्ण भाव प्रकट हुए है। पर ध्यान से देखा जाय तो वहाँ म्लेच्छ शब्द से भूषण जी का अभिप्राय समस्त मुसलमान जाति से न होकर उस विशिष्ट-वर्ग से था, जिनका औरंगजेब और उसकी तानाशाही से सम्बन्ध था। उसके राजकीय-अधिकारी-वर्ग मे केवल मुसलमान ही लोग थे, यह बात भी नहीं है। क्योंकि इसी सिलसिले मे भूषण ने राजा जसवंतसिंह तथा उदयभान की भी निन्दा की है। यदि जातिगत विद्वेष भावना से प्रेरित होकर उन्होंने औरंगजेब की निन्दा की होती तो कोई कारण न था कि वे उपर्युक्त हिन्दू-नरेशों की भी निन्दा करते।

भूषण और हिन्दीसाहित्य

भूषण जी रीतिकालीन धारा के कवि होते हुए भी वीररस के कवियो मे एक प्रकार से अग्रणी हैं। अपने आश्रय-दाताओं से अतुल धन उन्होंने प्राप्त किया। इसप्रकार आर्थिक

दृष्टि से वे अपने जीवन में पूर्ण सफल थे। अपने काव्य में वीरभावों की सृष्टि में उन्हें बड़ी सफलता मिली। छत्रपति महाराज शिवाजी के नाम का स्मरण आते ही भूषण का स्मरण अनिवार्य सा हो जाता है। हिन्दू-राष्ट्र के निर्माण के लिए महाराज शिवाजी का नाम भारतीय-इतिहास में जिस प्रकार अमर रहेगा, उसीप्रकार उनके कीर्तिगायक सुकवि भूषण की कविता हिन्दी-काव्य के पाठकों के लिए सदा वीर भावों की प्रेरणा और स्फूर्ति की उपकरण भी बनी रहेगी।

शिवराज-भूषण

कवित्त मनहरण

तेरो तेज सरजा समत्थ! दिनकर सोहै,
दिनकर सोहै तेरे तेज के निकर सो।
भौंसिलाभुआल! तेरो जस हिमकर सोहै,
हिमकर सोहै तेरे जस के अकर सो।
भूषन भनत तेरो हियो रतनाकर सो,
रतनाकरो है तेरो हियो सुख कर सो।
साहि के सपूत सिव साहि दानि तेरो कर,
सुरतरु सोहै, सुरतरु तेरो कर सो॥ १॥

सिह थरि जाने विन जावली-जंगल-भठी,
हठी गज एदिल पठाय करि भटक्यो।
भूषन भनत, देखि भभरि भगाने सब,
हिम्मति हिये मैं धरि काहुवै न हटक्यो।
साहि के सिवाजी गाजी सरजा समत्थ महा,
मदगल अफजले पजावल पटक्यो।
ता बिगिरि ह्वै करि निकाम निज धाम कहँ,
आकुत महाउत सुअंकुस लै सटक्यो॥ २॥

कवि कहे करन, करनजीत कमनैत,
अरिन के उर माहिं कीन्ह्यों इमि छेव है।
कहत धरेस सब धराधर सेस ऐसो
और धरा धरन को मेट्यो अहमेव है।
भूषन भनत महाराज सिवराज तेरो,
राज काज देखि कोई पावत न भेव है।
कहरी यदिल, मौज लहरी कुतुब कहै,
बहरी निजाम के जितैया कहै देव है॥ ३॥

कवित्त मनहरण

लूट्यो खानदौरा जोरावर सफजंग अरु,
लूट्यो मारि तलबखाँ मानहुं अमाल है।
भूषण भनत लूट्यो पूना में सहस्तखान,
गढ़न मैं लूट्यौ त्यों गढ़ोइन को जाल है।
हेरि हेरि कूटि सलहेरि बीच सरदार,
घेरि घेरि लूट्यो सब कटक कराल है।
मानो हय हाथी उमराव करि साथी,
अवरंग डरि सिवाजी पै भेजत रिसाल है॥ ४॥

अटल रहे हैं दिगअंतन के भूप धरि,
रैयति को रूप निज देस पेस करि कै।
राना रह्यौ अटल बहाना करि चाकरी को,
बाना तजि, भूषन भनत, गुन भरि कै।
हाडा, रायठौर, कछवाहे, गौर और रहे,
अटल चकत्ता को चमाऊ धरि डरि कै।
अटल सिवाजी रह्यौ दिल्ली को निदरि धीर,
धरि, ऐंड धरि, तेग धरि, गढ़ धरि कै॥ ५॥

मदजल धरन द्विरद बल राजत है,
बहुजल-धरन जलद छबि साजे है।
भूमि के धरन फन-पति अति लसत है,
तेज ताप धरन ग्रीषम रबि छाजे है।
खग्ग के धरन सोहे भट भारे रन ही मे
भूषन लसत गुन-धरन समाजे है।
दिल्ली के दलन देश दच्छिन के थंभन ही,
ऐंड के धरन सिव सरजा बिराजे है॥ ६॥

छूट्यो है हुलास आम खास एक संग छूट्यो,
हरम सरम एक, संग बिनु ढंग ही।

नैनन तें नीर धीर छूट्यौ एक संग छूट्यो,
सुख रुचि मुख रुचि त्योंही बिन रंग ही।
भूषन बखाने, सिवराज, मरदाने तेरी,
धाक बिललाने, न गहत बल अंग ही।
दक्खिन के सूबा पाय दिल्ली के अमीर तजैं,
उत्तर की आस जीव आस एक संग ही॥ ७॥
उत्तर पहार बिधनौल खण्डहर झार,
खण्डहु प्रचार चारु केली है बिरद की।
गौर गुजरात अरु पूरब पछाँह ठौर,
जंतु जंगलीन की बसति मार रद की।
भूषन जो करत न जाने बिनु घोर सोर,
भूलि गयो अपनी उँचाई लखे कद की।
खोइयो प्रबल मदगल गजराज एक,
सरजा सों बैर कै बढ़ाई निज मद की॥ ८॥
बचैगा न समुहाने, बहलोल खाँ अयाने,
भूषण बखाने, दिल आन, मेरा बरजा।
तुझ तें सवाई तेरा भाइ सलहेरि पास,
कैद किया, साथ का न कोई वीर गरजा।
साहिन के साहि उसी औरंग के लीन्हे गढ़,
जिसका तू चाकर और जिसकी है परजा।
साहि का ललन दिल्ली दल का दलन,
अफजल का मलन सिवराज आया सरजा॥ ९॥

मालती सवैया

श्री सरजा सिव तो जस सेत सों होत हैं बैरिन के मुँह कारे।
भूषन तेरे अरुन्न प्रताप सपेत लखे कुनबा नृप सारे।
साहि तनै तव कोप कृसानु ते बैरि गरे सब पानिपवारे।
एक अचम्भव होत बड़ो तिन ओंठ गहे अरि जात न जारे॥ १०॥

कवित्त मनहरण

महाराज सिवराज चढ़त तुरंग पर,
ग्रीवा जात नै करि गनीम अतिबल की।
भूषन चलत सरजा की सैन भूमि पर,
छाती दरकत है खरी अखिल खल की।
कियो दौरि घाव उमरावन अमीरन पै,
गई कट नाक सिगरेई दिल्ली-दल की।
सूरत जराई कियो दाह पातसाह उर,
स्याही जाय सब पातसाही मुख झलकी ॥११॥
सहज सलील सील जलद से नील डील,
पब्बय से पील देत नाहि अकुलात है।
भूषन भनत, महाराज सिवराज देत,
कंचन को ढेरु जो सुमेरु सो लखात है।
सरजा सवाई कासों करि कविताई तब,
हाथ की बड़ाई को बखान करि जात है।
जाको जस-टंक सातो दीप नव खण्ड महि,
मंडल की कहा ब्रह्मंड न समात है॥ १२॥
बिना चतुरंग संग बानरन लै कै बाँधि,
बारिध को लंक रघुनन्दन जराई है।
पारथ अकेले-द्रोन भीषम से लाख भट,
जीति लीन्ही नगरी बिराट में बड़ाई है।
भूषन भनत, है गुसलखाने में खुमान,
अवरंग साहिबी हथ्याय हरि लाई है।
तौ कहा अचम्भो महराज सिवराज सदा,
बीरन के हिम्मतै हथ्यार होत आई है॥ १३॥
साहि तनै सिवराज भूषन सुजस तव,
बिगरि कलंक चंद उर आनियतु है।

पंचानन एक ही बदन गनि तोहि,
गजानन गज-बदन बिना बख.नियतु है ॥
एक सीस ही सहससीस कला करिबे कों,
दुहूँ दृग सों सहसदृग मानियतु है।
दुहूं कर सों सहसकर मानियतु तोहि,
दुहूँ बाहु सों सहसबाहु जानियतु है ॥ १४ ॥
इन्द्र जिमि जंभ पर बाड़व सुअंभ पर,
रावन सदंभ पर रघुकुल-राज है।
पौन बारिबाह पर संभु रतिनाह पर,
ज्यों सहसबाहु पर राम द्विजराज है ॥
दावा द्रुम-दंड पर चीता मृग झुंड पर,
भूषन बितुंड पर जैसे मृगराज है।
तेज तम-अंस पर कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों मलेच्छ-बंस पर सेर सिवराज है ॥ १५ ॥

शिवा-बावनी

कवित्त मनहरण

साजि चतुरंग बीर रंग में तुरंग चढ़ि,
सरजा सिवाजी जंग जीतन चलत है।
भूषन भनत नाद बिहद नगारन के,
नदी नद मद गैबरन के रलत है।
ऐल फैल खैल भैल खलक में गैल गैल,
गजन की ठैल पैल सैल उसलत है।
तारा सो तरनि धूरि धारा में लगत जिमि,
थारा पर पारा पारावार यों हलत है ॥ १६ ॥
बाने फहराने घहराने घंटा गजन के,
नाहीं ठहराने राव राने देस देस के।

नग भहराने ग्राम-नगर पराने सुनि,
बाजत निसाने सिवराज जू नरेस के।
हाथिन के हौदा उकसाने कुंभ कुंजर के,
भौन को भजाने अलि छूटे लट केस के।
दल के दरारन ते कमठ करारे फूटे,
केरा के से पात बिहराने फन सेस के ॥१७॥
प्रेतिनी पिसाचऽरु निसाचर निसाचरिहू,
मिलि मिलि आपुस में गावत बधाई हैं।
भैरो भूत प्रेत भूरि भूधर भयंकर से,
जुत्थ जुत्थ जोगिनी जमाति जुरि आई हैं।
किलकि किलकि कै कुतूहल करति काली,
डिम डिम डमरू दिगंबर बजाई है।
सिवा पूछैं सिव सों समाजु आजु कहाँ चली,
काहू पै सिवा-नरेस भृकुटी चढ़ाई है ॥१८॥
सबन के ऊपर ही ठाढ़ो रहिबे के जोग,
ताहि खरो कियो छै हजारिन के नियरे।
जानि गैर मिसिल गुसैल गुसा धारि उर,
कीन्हों न सलाम न बचन बोले सियरे।
भूषन भनत महाबीर बलकन लागो,
सारी पातसाही के उड़ाय गये जियरे।
तमक ते लाल मुख सिवा को निरखि भये,
स्याह मुख नौरंग सिपाह मुख पियरे ॥१९॥
केतकी भो राना और बेला सब राजा भये,
ठौर ठौर लेत रस नित यह काज है।
सिगरे अमीर भये कुन्द मकरंद भरे,
भृङ्ग से भ्रमत लखि फूल के समाज है।
भूषन भनत सिवराज बीर तेहीं देस,

देसन मैं राखी सब दच्छिन की लाज है।
त्यागे सदा षटपद पद अनुमान यह,
अलि अवरंगजेब चंपा सिवराज है ॥२०॥
कूरम कमल कमधुज है कदम फूल,
गौर है गुलाब राना केतकी बिराज है।
पाँडर पंवार जूही सोहत है चंडावत,
सरस बुंदेला सो चमेली साजबाज है।
भूषन भनत मुचुकुंद बडगूजर है,
बघेले बसन्त सब कुसुम-समाज है।
लेइ रस एतेन को बैठ न सकत अहै,
अलि अवरंगजेब चंपा सिवराज है ॥२१॥
छूटत कमान अरु गोली तीर बानन के,
मुसकिल होत मुरचान हू की ओट मैं।
ताहि समै सिवराज हुकुम कै हल्ला कियो,
दावा बाँधि परा हल्ला बीरवर जोट मैं।
भूषन भनत तेरी हिम्मति कहाँ लौं कहौं,
किम्मति इहाँ लगि है जाकी भट झोट मैं।
ताव दै मूछन कंगूरन पै पाँव दै दै,
अरि मुख घाव दै दै कूदि परे कोट मैं ॥२२॥

मालती सवैया

केतिक देस दल्यो दल के बल, दच्छिन चंगुल चापि कै चाख्यो।
रूप गुमान हर्यो गुजरात को, सूरत को रस चूसि कै नाख्यो।
पंजन पेलि मलिच्छ मले सब, सोइ बच्यो जेहि दीन ह्वै भाख्यो।
सो रंग है सिवराज बली, जिन नौरंग में रंग एक न राख्यो ॥२३॥

कवित्त मनहरण

गरुड़ को दावा सदा नाग के समूह पर,
दावा नाग जूह पर सिंह सिरताज को।

दावा पुरहूत को पहारन के कुल पर,
पच्छिन के गोल पर दावा सदा बाज को।
भूषन अखंड नवखंड महि मंडल में,
तम पर दावा रवि किरन समाज को।
पूरब पछांह देस दच्छिन ते उत्तर लौं,
जहाँ पातसाही तहाँ दावा सिवराज को ॥२४॥
वारिधि के कुंभभव घन बन दावानल,
तरुन तिमिर हूँ के किरन-समाज हौ।
कंस के कन्हैया, कामधेन हूं के कंठकाल,
कैटभ के कालिका विहंगम के बाज हौ।
भूषन भनत जग जालिम के सचीपति,
पन्नग के कुल के प्रबल पच्छिराज हौ।
रावन के राम कातवीज के परसुराम,
दिल्लीपति-दिग्गज के सेर सिवराज हौ ॥२५॥
दुग्ग पर दुग्ग जीते सरजा सिवाजी गाजी,
उग्ग पर उग्ग नीचे रुंड मुंड फरके।
भूषन भनत बाजे जीत के नगारे भारे,
सारे करनाटी भूप सिंहल को सरके।
मारे सुनि सुभट पनारे वारे उदभट,
तारे लगे फिरन सितारे गढ़ धर के।
बीजापुर बीरन के गोलकुंडा धीरन के,
दिल्ली उर मीरन के दाड़िम से दरके ॥२६॥
मालवा उजैन भनि भूषन भेलास ऐन,
सहर सिरोज लौं परावने परत हैं।
गोंडवानो तिलंगानो फिरंगानो करनाट,
रुहिलानो रुहिलन हिये हहरत हैं।
साहि के सपूत सिवराज, तेरी धाक सुनि,

गढ़पति बीर तेऊ धीर न धरत हैं।
बीजापुर गोलकुंडा आगरा दिल्ली के कोट,
बाजे बाजे रोज दरवाजे उघरत हैं ॥२७॥

मारि करि पातसाही खाकसानी कीन्हीं जिन,
जेर कीन्हों जोर सों लै हद्द सब मारे की।
खिसि गइ सेखी फिसि गई सूरताई सब,
हिसि गई हिम्मत हजारों लोग सारे की।
बाजत दमामे लाखौं धौंसा आगे घहरात,
गरजत मेघ ज्यों बरात चढ़े भारे की।
दूलहो सिवाजी भयो दच्छिनी दमामे वारे,
दिल्ली दुलहिन भइ सहर सितारे की ॥२८॥

जिन फन फुतकार उड़त पहार, भार,
कूरम कठिन जनु कमल बिदलिगो।
बिष ज्वाल ज्वालामुखी लवलीन होत जिन,
झारन चिकारि मद दिग्गज उगलिगो।
कीन्हो जिन पान पयपान सो जहान सब,
कोलहू उछलि जलसिंधु खलभलिगो।
खग्ग खगराज महराज सिवराज जू को,
अखिल भुजंग दल मुगल निगलिगो ॥२९॥

बेद राखे बिदित पुरान परसिद्ध राखे,
राम-नाम राख्यो अति रसना सुघर मैं।
हिंदुन की चोटी रोटी राखी है सिपाहिन की,
काँधे मैं जनेऊ राख्यो माला राखी गर मैं।
मीड़ि राखे मुगल मरोड़ि राखे पातसाह,
बैरी पीसि राखे बरदान राख्यो कर मैं।
राजन की हद्द राखी तेग बल सिवराज,
देव राखे देवल स्वधर्म राख्यो घर मैं ॥३०॥

राखी हिंदुवानी हिंदुवान को तिलक राख्यो,
अस्मृति पुरान राखे-वेद विधि सुनी मैं।
राखी रजपूती राजधानी राखी राजन की,
धरा मैं धरम राख्यो राख्यो गुन गुनी मैं।
भूषन सुकवि जीति हद मरहट्टन की,
देस देस कीरति बखानी तव सुनी मैं।
साहि के सपूत सिवराज समसेर तेरी,
दिल्ली दल दाबि कै दिवाल राखी दुनी मैं ॥३१॥
बद्दल न होहिं दल दच्छिन उमंडि आयो,
घटा ये न होय इभ सिवाजी हँकारी के।
दामिनी-दमक नाहिं खुले खग्ग वीरन के,
इन्द्रधनु नाहिं ये निसान हैं सवारी के।
देखि-देखि मुगलों की हरमैं भवन त्यागैं,
उझकि-उझकि उठै बहत बयारी के।
दिल्लीपति भूल मति गाजत न घोर यान,
बाजत नगारे ये सितारे-गढ़धारी के ॥३२॥
सक्र जिमि सैल पर अर्क तम-फैल पर,
बिघन की रैल पर लंबोदर देखिए।
राम दसकन्ध पर भीम जरासंध पर,
भूषन ज्यों सिंधु पर कुंभज बिसेखिए।
हर ज्यों अनंग पर गरुड़ भुजंग पर,
कौरव के अंग पर पारथ ज्यों पेखिए।
बाज ज्यों बिहंग पर सिंह ज्यों मतंग पर,
म्लेच्छ चतुरंग पर सिवराज देखिए ॥३३॥

छत्रसाल-दशक

रैया राव चंपति को चढ़ो छत्रसाल सिंह,
भूषन भनत गजराज जोम जमकैं।

भादों की घटा सी उदि गरद गगन घिरे,
सेलैं समसेरैं फिरैं दामिनी सी दमकैं ।
खान उमरावन के आन राजा-रावन के,
सुनि सुनि उर लागैं घन कैसी घमकैं ।
बैहर बगारन की, अरि के अगारन की,
लाँघती पगारन नगारन की घमकैं ॥३४॥
चाकचक्र-चमू कै अचाकचक चहूँ ओर,
चाक सी फिरत धाक चंपति के लाल की ।
भूषन भनत पातसाही मारि जेर कीन्हीं,
काहू उमराव ना करेरी करवाल की ।
सुनि सुनि रीति बिरुदैत के बड़प्पन की,
थप्पन उथप्पन की बानि छत्रसाल की ।
जंग जीति लेवा तेऊ ह्वै कै दाम देवा भूप,
सेवा लागे करन महेवा-महिपाल की ॥३५॥
साँगन सो पेलि पेलि खग्गन सो खेलि खेलि,
समद सा जीता जो समद लौं बखाना है ।
भूषन बुंदेला-मनि चंपति-सपूत धन्य,
जाकी धाक बचा एक मरद मियाँना है ।
जंगल के बल से उदंगल प्रबल लूटा,
महमद अमीखाँ का कटक खजाना है ।
बीर-रस मत्ता जाते काँपत चकत्ता यारो,
कत्ता ऐसा बाँधिये जो छत्ता बाँधि जाना है ॥३६॥
देस दहपट्टि आयो आगरे दिली के मेंड़े,
बरगी बहुरि मानों दल जिमि देवा को ।
भूषन भनत छत्रसाल छितिपाल मनि,
ताके ते कियो बिहाल जंग जीति लेवा को ।
खंड खंड सोर यों अखंड महि-मंडल मैं,

मंदित बुंदेलखण्ड मंडल महेवा को।
दच्छिन के नाह को कटक रोक्यो महाबाहु,
ज्यों सहसबाहु ने प्रवाह रोक्यो रेवा को ॥३७॥
अत्रगहि छत्रसाल खिझ्यो खेत बेतवे के,
उत ते पठानन हू कीन्ही झुकि झपटें।
हिम्मति बडी कै कवड़ी के खिलवारन लौं,
देत से हजारन हजार बार चपटें।
भूषन भनत काली हुलसी असीसन कौं,
सीसन को ईस की जमाति जोर जपटें।
समद लौं समद की सेना त्यों बुंदेलन की,
सेलैं समसेरें भई बाड़व की लपटें ॥३८॥
भुज भुजगेस की वैसंगिनी भुजंगिनी सी,
खेदि खेदि खाती दीह दारुन दलन के।
बखतर पाखरिन बीच धँसि जाति मीन,
पैरि पार जात परवाह ज्यों जलन के।
रैया राव चंपति को छत्रसाल महाराज,
भूषण सकत करि बखान यों बलन के।
पच्छी-पर छीने ऐसे परे पर छीने बीर,
तेरी बरछी ने बर छीने हैं खलन के ॥३९॥
राजत अखण्ड तेज छाजत सुजस बड़ो,
गाजत गयन्द दिग्गजन हिय साल को।
जाहि के प्रताप सों मलीन आफताब होत,
ताप तजि दुज्जन करत बहु ख्याल को।
साज सजि गज तुरी पैदर कतार दीन्हें,
भूषण भनत ऐसा दीन प्रतिपाल को।
और राव राजा एक मन मैं न ल्याऊं अब,
साहू को सराहौं के सराहौं छत्रसाल को ॥४०॥

गोरेलाल

गोरेलाल उपनाम लाल कवि के जीवनवृत्त के विषय में अधिक नहीं ज्ञात है। अंतर्साक्ष्य से केवल इतना ही ज्ञात होता है कि कवि का उपनाम लाल था और वह महाराज छत्रसाल का समकालीन था तथा उन्हीं की आज्ञा से उसने "छत्र-प्रकाश" नामक ग्रंथ की रचना भी की। इस कथन की पुष्टि "छत्र प्रकाश" के निम्नलिखित दोहे से ही हो जाती है—

"धनि चंपत के औतरौ, पंचम श्री छत्रसाल।
जिनकी आज्ञा सीस धरि, करी कहानी लाल॥"

[छ० प्र० पृ० ६६]

इनके जीवन के सम्बन्ध में कुछ बातें उनके प्रपौत्र के प्रपौत्र बीकानेर-निवासी श्री उत्तमलाल गोस्वामी से ज्ञात हुई है जिसका उल्लेख मिश्र-बन्धुओं ने अपने इतिहास में किया है। इस सामग्री के अनुसार लाल का जन्म सं० १७१५ के लगभग हुआ था* तथा उनके पूर्वजों का निवासस्थान आंध्र देश में राजमहेंद्री जिले के नृसिंहक्षेत्र धर्मपुरी में था। इनके एक पूर्वज काशीनाथ की कन्या का विवाह महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य से हुआ था। काशीनाथ के पुत्र जगन्नाथ के छः पुत्र थे जिनके नाम क्रमशः ये हैं—(१) गिट्टा (२) लम्बुक (३) जोगिया (४) तिधरा (५) गिरधन तथा (६) भरस। इनमें से

---

*शिवसिंहसेंगर इनका जन्म १७३८ वि० मानते हैं। प० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में इनके जन्म की कोई तिथि नहीं दी है।

गिट्टा के पुत्र नागनाथ हुए जिनकी दसवीं पीढ़ी में गोरेलाल जी हुए।

प्रसिद्ध दाक्षिणात्यविद्वान पं० गंगाधर शास्त्री तैलंग के पुत्र कृष्णशास्त्री ने "वल्लभ-दिग्विजय" नामक ग्रंथ में अपना परिचय देते हुए निम्नलिखित श्लोक दिया है, जिससे उक्त कथन की पुष्टि हो जाती है—

"बह्वृक् मौद्गलस्य गोत्रे प्रथिततरयशा नागनाथान्वये भूत्।
बुंदेलाधीशपूज्यः कविकुल तिलको गोरिलालाख्य भट्टः ॥
शास्त्री गंगाधरस्तत्कुल जनिरभवत् तत्कुले शास्त्रि कृष्णः।
तेनेदं लिख्यते श्री गुरुवरचरितं सुधराणां मतेन ॥"

सरांश यह है कि मुद्गलगोत्रीय नागनाथ के वंश में कवि-कुल-तिलक गोरेलाल हुए जिन्हें बुंदेलखण्ड के अधीश्वर बड़ी पूज्य-दृष्टि से देखते थे।'

कविवर गोरेलाल की मृत्यु के सम्बन्ध मे भी कुछ निश्चय नहीं है*। "छत्रप्रकाश" में सं० १७६४ वि० तक की घटनाओं का वर्णन है, इसके पश्चात् अचानक ग्रंथ की समाप्ति हो गई है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि या तो यह ग्रन्थ अपूर्ण ही प्राप्त हुआ है अथवा लाल कवि का परलोकवास संभवत. छत्रसाल के पूर्व ही सं० १७६४ के ही आसपास हो गया था। अथवा संभवतः किसी विशेष कारणवश ग्रन्थ-रचना का कार्य समाप्त कर देना पड़ा।

इनके एक मात्र आश्रयदाता छत्रसाल ही थे तथा इनके द्वारा रचित ग्रंथ प्राय' छत्रसाल की ही आज्ञा से उनके मनोरंजन के लिए लिखे गयेथे और अधिकांश उन्हीं से संबधित हैं। छत्रसाल

---

*शिवसिंहसेंगर सं० १७६० वि० तक इनका जीवित रहना मानते हैं।

ने इन्हें बटईपठारा, अमानगंज, मगेरा, तथा दुधा नामक पाँच गाँव दान में दिए थे। इनके वंशज अब भी दुग्धा में वर्तमान हैं।

इनके निम्नलिखित ग्रन्थ कहे जाते हैं—

(१) छत्र-प्रशस्ति (२) छत्रछाया (३) छत्रकीर्ति (४) छत्र-छन्द (५) छत्रसालशतक (६) छत्रहजार (७) छत्रदण्ड (८) छत्रप्रकाश (९) राजविनोद तथा (१०) विष्णुविलास। इनमें "छत्रप्रकाश", "राजविनोद" तथा "विष्णुविलास" ही प्रका-शित हुए हैं जिनमें "छत्रप्रकाश" ही मुख्यतः लाल की कीर्ति का स्तंभ है।

"छत्रप्रकाश" का सर्वप्रथम प्रकाशन मेजर प्राइस द्वारा कलकत्ते के फोर्टविलियम कालेज में हुआ था किन्तु वह प्रति अब अप्राप्य है। वर्तमान संस्करण काशी नागरी-प्रचा-रिणी सभा की ओर से प्रकाशित हुआ है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

गोरेलाल कृत "छत्रप्रकाश" के नायक महाराज छत्रसाल बुन्देला हैं, जो बुन्देलखण्ड में राज्य करते थे।

भारतवर्ष के मध्यवर्ती-भाग में यमुना के दक्षिण, नर्मदा के उत्तर, टौंस के पश्चिम और कालीसिंध नदी के पूर्व का प्रदेश बुन्देलखण्ड कहा जाता है। प्राचीनकाल में इसके दशार्ण, वत्स, जेजाकभुक्ति, जुझौती, जुझारखण्ड, आदि अनेक नाम मिलते हैं। 'बुन्देलखण्ड' इसका नाम क्यों पड़ा, इस सम्बन्ध में अनेक अनुमान किये गये हैं। कुछ विद्वानों के अनु-सार विन्ध्य-पर्वत की शाखाओं से समाच्छादित होने के कारण इसका नाम विन्ध्येलखण्ड पड़ा, जिसका अपभ्रंश रूप बुन्देलखण्ड

हो गया। किन्तु वास्तव में बुन्देलों का निवासस्थान होने के कारण ही इस प्रदेश का नाम बुन्देलखण्ड पड़ा।

बुंदेलों की उत्पत्ति के विषय मे भी कई किवदंतियाँ प्रचलित हैं जिनमें से एक जगदास उपनाम 'पंचम'❀ के सम्बन्ध की अधिक प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि उसके पिता की मृत्यु के पश्चात् उसके अन्य चार भाइयों ने पंचम का राज्य छीनकर परस्पर बाँट लिया। निस्सहाय पंचम निराश होकर वन मे चला गया और वहाँ उसने तपस्या करके विंध्यवासिनी देवी को प्रसन्न कर लिया। देवी ने उसे राजा होने का वरदान दिया। इस पर पंचम ने उससे दर्शन देने की प्रार्थना की, किन्तु जब कोई रूप प्रकट न हुआ तो वह स्वयं खड्ग लेकर शिरच्छेदन करने को प्रस्तुत हुआ। इस पर देवी ने उसे तत्काल दर्शन दिया और उसे विजयी होने का वरदान भी दिया। किन्तु खड्ग थोड़ा लग चुका था अतः रक्त की एक बूंद पृथ्वी पर गिर पड़ी। इस पर देवी ने उसे बुंदेला नाम से अभिहित किया। इसप्रकार बुंदेलो की उत्पत्ति हुई। पंचम ने वहाँ से आकर सैन्य-संगठन किया और अपने भाइयों से अपना खोया हुआ राज्य प्राप्त कर लिया।

गोरेलाल ने "छत्रप्रकाश" मे इस घटना का निम्नलिखित रूप मे उल्लेख किया है—

"पंचम बाल बहिक्रम जान्यौ। लोभ चहूँ बंधुन उर आन्यौ॥
पचम की पुहुमी उनछीनी। बाँटि चारि हींसा करि लीनी॥

× × × ×

यह ससार कठिन रे भाई। सबल उमंडि निर्बल को खाई॥
[छ० प० पृ० ५]

× × × ×

❀कहीं-कहीं उसका नाम हेमकरन भी मिलता है।

मृदु मूरति जगमाइ की रही ध्यान ठहराइ।
एक पाइ पचम खड़े, भूख-प्यास बिसराइ॥
[छ० प्र० पृ० ६]

× × × ×

तब पंचम नृप करवर काढ्यौ। निजसिर देत भगतिरस बाढ्यौ।
तातैं रुधिर बुंद एक छूट्यौ। मनहुं गगन तें तारा टूट्यौ॥
[छ० प्र० पृ० ७]

इस जनश्रुति में ऐतिहासिक तथ्य जो भी हो इससे इतनी ध्वनि तो अवश्य ही निकलती है कि बुंदेला-राज्य का संस्थापक कोई हेमकरन उपनाम पंचम नामक व्यक्ति था, जो प्रतापी क्षत्रिय था। इसका उल्लेख "ओरछास्टेट गजेटियर" में भी मिलता है।

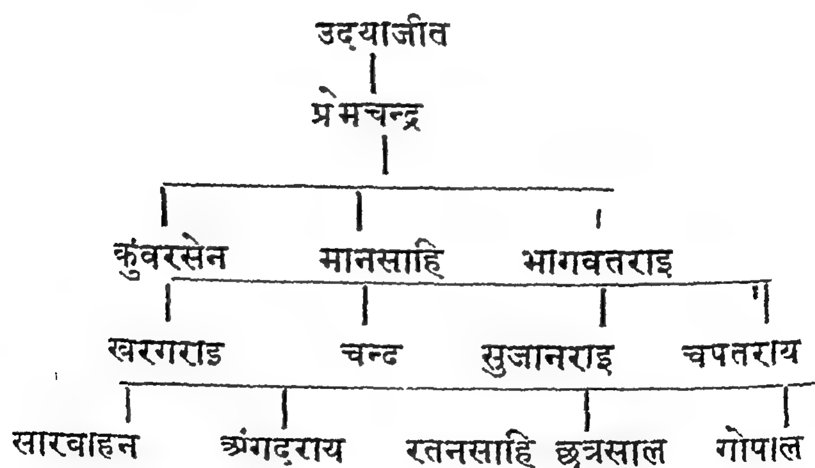
बुंदेले गहरवार क्षत्रिय हैं।* गोरेलाल ने "छत्रप्रकाश" में इनकी वंशावली इस प्रकार से दी है.—

मनु के अनेक वंशजों में क्षत्रिय हुए जिन में श्री रामचन्द्र जी सब से प्रतापी राजा हुए। उन्हीं से क्रमश. कुश, हरिब्रहन, महिपाल, भुवपाल, कमलचन्द, चित्रपाल, बुद्धिपाल, विहंराज. काशिराज, गहिरदेव, विमलचन्द, नहुचन्द, गोपचन्द, गोविन्दचन्द, टिहनपाल, विन्ध्यराज, सोनिकदेव, वीभलदेव.

---

*गहरवारों की राजधानी कन्नौज थी। मध्ययुग में पूरब में बनारस को संस्कृत के अध्ययन-अध्यापन के केन्द्र बनाने का बहुत कुछ श्रेय गहरवार राजाओं को ही है। इसके लिए उन्होंने काशी के आस पास के सरयूपारीण-ब्राह्मणों को अनेक गाँव दान में दिये। गहरवार राजा गोविन्दचन्द्र की बौद्धपत्नी कुमारदेवी ने सारनाथ के विहार का अन्तिम बार जीर्णोद्धार कराया था।

अर्जुनदेव, तथा वीरभद्र हुए। इन्हीं वीरभद्र के पुत्र पंचम हुए जो बुंदेलों के आदि पुरुष थे, जिनके सम्बन्ध में ऊपर उल्लेख हो चुका है। पंचम के पश्चात् क्रमशः वीर बुंदेला, करनपाल या करनतीर्थ, अर्जुनपाल, सोहनपाल, सहजेन्द्र, नानकदेव, पृथ्वीराज, रामसिंह, मेदिनीमल्ल, अर्जुनदेव, मल्लखान, प्रतापरूद्र, भारतीचन्द्र तथा मधुरकरसाहि हुए। मधुरकरसाहि के भाई उदयाजीत को महेवे में जागीर मिली। इसप्रकार एक वंश ओड़छा तथा दूसरा महेवे में राज्य करने लगा। वीर छत्रसाल इस महेवे वाली शाखा में ही हुए। 'छत्रप्रकाश' के अनुसार महेवा-शाखा का वंश वृक्ष इस प्रकार है —



ओड़छावाली शाखामें क्रमश मधुरकरसाहि, वीरसिंहदेव तथा जुझारसिंह हुए। जुझारसिंह ने अपने कनिष्ट भ्राता हरदेव सिंह को विष दिलवाकर मार डाला। इसके पश्चात् अराजकता फैल गयी जिससे लाभ उठाकर शाहजहाँ ने बुंदेलखण्ड पर आक्रमण कर दिया। इस अवसर पर चंपतराय ने जुझारसिंह की सहायता करके बुंदेलखण्ड की रक्षा की। चंपत-

राय की वीरता का वर्णन लाल ने अत्यन्त ओजपूर्ण भाषा में किया है। यथाः—

चंपति के परताप तें, पानिप गयो ससाइ।
पौसेरी भरि रहि गयौ, नौसेरी उमराय।
[छ० प्र० पृ० ३२]

× × × ×

चौंकि चौंकि चौकी उठौ, दौकि दौकि उम राइ।
फाके लसकर में परे, थाके सबै उपाइ।
[छ० प्र० पृ० ३३]

इन्हीं महाराज चंपतराय के पुत्र बुंदेलखण्ड केसरी महाराज छत्रसाल हुए जो इस काव्य के चरित्र नायक हैं।

लाल ने महाराज छत्रसाल को चंपतराय का अवतार माना है, यथा—

"चितचीते साँचे भये, सुपन माइके चारु।
प्रगट्यौ चम्पतराय के, छत्रसाल अवतारु॥
[छ० प्र० पृ० २२]

इनके शरीर में चक्रवर्ती के लक्षण वर्तमान थे। इनके आरंभिक जीवन के चार वर्ष माता के साथ ननिहाल ही में व्यतीत हुए, तत्पश्चात् वे अपने पिता के पास महेवा चले आये। सात वर्ष की अवस्था में विद्याध्ययन प्रारम्भ किया और ग्यारह वर्ष की अवस्था में ही शस्त्रास्त्र चलाने की कला में वे पूर्णतया निपुण हो गए। इनकी तेजस्वी मुद्रा तथा असाधारण क्षत्रियोचित गुणों के ही कारण इनका नाम "छत्रसाल" पड़ा।

पिता की मृत्यु के पश्चात् वे अपने भाई अंगदराय के यहाँ चले आए और उन्हीं के परामर्श से उन्होंने अब औरंगजेब की सेना में सेवा भी स्वीकार करली। एक वार उन्हें शिवाजी के विरुद्ध भी युद्ध में जाना पड़ा। बहादुरखाँ का सेनापतित्व था, किन्तु छत्रसाल की ही युद्ध सञ्चालनकला का यह परिणाम

था कि देवगढ़ ऐसे सुरक्षित-दुर्ग मे मराठों को पराजित होना पड़ा। विजय का समाचार पाने पर औरंगजेब ने प्रसन्न होकर बहादुरखाँ के मनसब में वृद्धि कर दी, छत्रसाल को किसी ने पूछा तक भी नहीं। इस कृतघ्नता से वीर-क्षत्रिय के आत्मसम्मान की ज्वाला भड़क उठी। अब उन्होंने स्वतंत्र होने का दृढ़ निश्चय कर लिया। "छत्रप्रकाश" में इसी भावना का निम्नलिखित रूप मे चित्रण है—

"हितू जानि सेयो अविवेकी। तातैं कहाँ होइ क्यों नेकी॥
ताकौ हम ऐसौ फल पायौ। याके संग कमायौ खायौ॥
हमतौ छत्रधर्म प्रतिपारयौ। रीझ न याको माथौ हार्यौ॥
मूरख के आगे गुनगायौ। भैसा बीन बजाइ रिझायौ॥"

[छ० प्र० पृ० ७७]

इसप्रकार छत्रसाल भी वीर शिवाजी के सिद्धान्तों के अनुयायी हो गये और मुगलराज्य के विध्वंस मे प्रवृत्त हो गए। आपने हिन्दू-शक्ति का संगठन प्रारम्भ किया तथा 'सिरोज' नामक स्थान पर मालवा के सूबेदार मुहम्मदहासिम को पराजित किया। इसके पश्चात् औड़ेरा, धौरी, सागर, पिथरहट, हनूटूक तथा धमौनी इत्यादि स्थानों पर भी क्रमश अधिकार प्राप्त किया।

'छत्रप्रकाश' मे मुगलो के पक्षपाती केशवराय दुरंगी से भी छत्रसाल से युद्ध का वर्णन है। इस युद्ध मे दुरंगी पराजित हुआ और मार डाला गया। इसीप्रकार धूमघाट नामक स्थान पर सैदबहादुर तथा रणदूलह को तथा तहवर मे अनवर खां और सदरुद्दीन को एवं बेतवा के तट पर हमीद ख़ॉ तथा सैयद लतीफ को महाराज ने पराजित किया। भेलसा सूबेदार बहलोल खां को भी छत्रसाल की अधीनता स्वी-

कार करनी पड़ी और अब्दुल समद को हराकर महाराज ने उससे चौथ वसूल की। इसप्रकार शत्रुओं को पूर्ण रूप से पराजित करके वीर-छत्रसाल ने पन्ना को अपनी राज-धानी बनायी।

महाराज छत्रसाल बड़े गुणग्राही थे। कवियों और गुणियों की आपके दरबार में बड़ी प्रतिष्ठा थी। कविवर गोरेलाल ने उनकी आज्ञा से ही "छत्रप्रकाश" की रचना और भूषण ने भी उनकी प्रशंसा में "छत्रसालदशक" की रचना की। वह स्वयं भी कवि थे। उनकी रचनाओं के तीन संग्रह प्राप्त हुए हैं। वे हैं.—

(१) "छत्र-विलास" (२) 'नीति-मञ्जरी" और (३) "महाराज छत्रसालजू का काव्य"

उनके स्फुट छंदों में से दो उदाहरण यहाँ उद्धृत किये जाते हैं।

(१)

"ध्यानिन में ध्यानी और ज्ञानिन में ज्ञानी महौं,
पंडित पुरानी प्रेमबानी अरथाने का।
साहब सो सच्चा, क्रूर कर्मनि में कच्चा, छता,
चंपत का बच्चा, सेर सूरबीर बाने का॥
मित्रन को छत्ता, द्रोह सत्रुन को कत्ता,
सदा, अक्षरसरत्ता एक कायम ठिकाने का।
नाहि परवाही, न्यारा नौंकिया सिपाही,
मैं तो नेही चाहचाही एक स्यामास्याम पाने का।

ऊपर के छंदों में छत्रसाल ने अपना परिचय दिया है।

(२)

" चाहनैं न बुद्धि बड़ी, सुद्धि अंग-अगनि की,
जोग-जाग रगनि में रगनै न राई, रे।

कहै छत्रसाल, कहू सीखने न सीख कही,
दीखने न दीख तुरु-अच्छ-दिखाई !रे ।
महत मुनीस सुरईस ईस ईस न नैं,
जाकी कलकीरति कमी न नै गाई रे ।
सूधो सो सुनाम, बसुयाम है अराम धाम,
राम जप, राम जप, राम जप भाई, रे ॥

गोरेलाल ने जिन ऐतिहासिक-घटनाओ का उल्लेख किया है उनकी पुष्टि प्रामाणिक-इतिहासो से भी हो जाती है। उदाहरण स्वरूप "छत्रप्रकाश" मे जुझारसिह पर शाहजहाँ के आक्रमण का वर्णन इसप्रकार आया है—

"एक समय दिल्ली पति कोप्यौ । पग न जुझारसिंह ने रोप्यौ ॥
अरब खरब लों हुते खजाने । सो न जानिये कहाँ बिलाने ॥

× × +

साहि जहान देस सब लीनौ । कियौ बुंदेलखण्ड बलहीनौ ॥
[छ० प्र०, पृ० २८]

प्रायः इसीप्रकार का वर्णन डा० ईश्वरी प्रसाद के "भारतवर्ष का इतिहास" नामक ग्रन्थ मे है। उन्होने अब्दुल लाहोरी द्वारा लिखित उद्धरण भी इस घटना की पुष्टि मे दिया है। अब्दुल लाहौरी लिखता है—

"जो संपत्ति वीरसिह बुंदेला ने बिना परिश्रम और कष्ट के अर्जित की उसके फलस्वरूप उसके अयोग्य उत्तराधिकारी जुझारसिह का मस्तिष्क पलट गया और शाहजहाँ के राज्यारोहण के अवसर पर बिना उसकी आज्ञा लिए ही वह आगरे से ओरछा चला आया और बादशाह के विरुद्ध सैन्य-संगठन मे लग गया। इसका परिणाम यह हुआ है कि शाहजहाँ ने

उस पर आक्रमण कर दिया और जुझारसिंह पराजित हुआ।※

"छत्रप्रकाश" मे अब औरंगजेब के विरुद्ध चम्पतराय के विद्रोह का भी वर्णन है। चम्पतराय को चारो ओर से यावनी-सेना ने घेर लिया था और अन्त मे उन्हे आत्महत्या करनी पड़ी। इस घटना का वर्णन "छत्रप्रकाश" मे निम्नलिखित रूप मे है—

मारे सुभट दुइक उन संगी। चपति पै उमड़े जुर जगी॥
रोगन चपतराय दबाये। कछु उपाय चले न चलाये॥

× × × ×

दै दै घाउ मरी ठकुरानी। चंपतिराइ दगा तब जानी॥
यह संसार तुच्छ निरधारयौ। मारि कटारिन उदर विदारयौ॥

[छ० प्र० पृ० ६४-६५]

जुझारसिंह की मृत्यु के पश्चात् शाहजहाँ ने अपनी ओर से देवीसिह नामक एक क्षत्रिय को ओड़छा के सिहासन पर बैठाया, किन्तु चम्पतराय ने उसके विरुद्ध आंदोलन किया।※ गोरेलाल ने 'छत्रप्रकाश" मे इन सूक्ष्म-घटनाओ तक का भी उल्लेख किया है। इस घटना का उल्लेख उनके ग्रन्थ मे इसप्रकार है—

"राजा देवीसिंह कौ, दैरौ दीनो देस।
उमड्यौ चपतिरायपै, श्री सुभकरन नरेस॥

[छ० प्र०, पृ० ७२]

※डा० ईश्वरी प्रसाद — भारतवर्ष का इतिहास, (अंग्रेजी संस्करण) (पृ० ५३३-३४)

※ डा० ईश्वरी प्रसाद—"भारतवर्ष का इतिहास" (अंग्रेजी संस्करण) पृ० ५४२।

छत्रसाल की राष्ट्रीय-भावना का "छत्रप्रकाश" में अत्यन्त सुन्दर-वर्णन है। यह अत्युक्ति नहीं, प्रामाणिक इतिहास भी इसकी पुष्टि करते हैं। सरकार के इतिहास में इस सम्बन्ध मे निम्नलिखित उल्लेख हैं—

"छत्रसाल मुगल सेना मे भरती हुए किन्तु उनके परिश्रम की मुगलों ने लेशमात्र भी प्रशंसा न की। इस तिरस्कार से उनके विचारो में प्रतिक्रिया हुई और वह भी शिवाजी के समान साहसमय-जीवन व्यतीत करने का स्वप्न देखने लगे। तथा मुगल शक्ति के विद्रोह मे अग्रसर हो गए...... ..वह सन्* १७३१ ई० मे बुंदेलखण्ड को मुगलों के अधिकार से पूर्णतया मुक्त करके मरे।†

ऊपर "छत्रप्रकाश" मे उल्लिखित ऐतिहासिक घटनाओं की प्रामाणिकता पर विचार किया गया है; किन्तु इस संबंध मे इस बातपर भी ध्यान देने की आवश्यकता है कि "छत्र-प्रकाश" कोई ऐतिहासिक-ग्रंथ नहीं है। यही कारण है कि कतिपय ऐतिहासिक घटनायें "छत्रप्रकाश" में नहीं दी गई हैं और कुछ प्रामाणिक इतिहासों की घटनाओं के प्रतिकूल भी पड़ती हैं।

उदाहरणस्वरूप "ओड़छा - स्टेट - गजेटियर" और छत्र-प्रकाश" की वंशावली में थोड़ा अन्तर मिलता है। गजेटियर में हेमकरण उपनाम पंचम को पिता और वीरभद्र को पुत्र लिखा गया है। लाल ने वीरभद्र को पिता तथा हेमकरन उपनाम पंचम को को पुत्र लिखा है। "छत्रप्रकाश" मे पंचम के पुत्र का नाम वीरभद्र नहीं प्रत्युत वीर बुंदेला दिया गया है। ❋प्रतापरुद्र बुंदेला पर काफूर का आक्रमण हुआ था।

❋एम० सी० सरकार, माडर्न इंडियन हिस्ट्री। पृ० २०४।

†डा० ईश्वरीप्रसाद, भारतवर्ष का इतिहास (ग्रं० स०) पृष्ठ २६१।

पहले तो बुंदेलों ने उसे दुर्ग में बन्दकर बड़ा कष्ट दिया किन्तु अंत में मुगलों की विशाल-शक्ति के आगे बुंदेलों के पाँव उखड़ने लगे और प्रतापरुद्र को आत्मसमर्पण करना पड़ा। उसको अपना सारा कोप और अन्यप्रकार की संपत्ति भी देनी पड़ी। डा० ईश्वरी प्रसाद ने अपने इतिहास में लिखा है कि काफूर के सहस्रों ऊंट विशाल-सम्पत्ति के भार से दबे हुए दिल्ली पहुँचे।

इस घटना का उल्लेख "छत्रप्रकाश" में नहीं है। संभव है, वर्ण्य-विपय का सीधा सम्बन्ध महाराज छत्रसाल से न होने के कारण इस घटना का उल्लेख गोरेलाल ने जानबूझ कर न किया हो।

छत्रप्रकाश में जुझारसिंह के द्वारा अपने कनिष्ठ-भ्राता हरदेवसिंह को विप देने की कथा नहीं है, यद्यपि इस कथा का निर्देश केवल "बुंदेलखण्ड के संक्षिप्त-इतिहास"* को छोड़कर अन्य किसी प्रामाणिक-इतिहास में नहीं, तथापि जनश्रुति इतनी प्रबल है कि इस घटना के ऐतिहासिक होने में कोई संदेह नहीं। अब भी हरदेवललाला के नाम से कई चबूतरे 'बुंदेलखण्ड' में मिलते हैं जो जनता द्वारा बड़े सम्मान से पूजे जाते हैं। इस घटना का महत्व इस बात से और भी है कि इसी समय शाहजहाँ का आक्रमण हुआ और हिन्दुओं ने मुगलों के विरुद्ध चम्पतराय के नेतृत्व में पूर्ण संगठन किया।

प्रामाणिक-इतिहासों के अनुसार जुझारसिंह ने दो बार विद्रोह किया था और दोनों बार वह पराजित हुआ। दूसरी पराजय में उसका वध भी गक्खरों के द्वारा हुआ।† छत्रप्रकाश

*गोरेलाल तिवारी, 'बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास' पृ० १४९।
†ईश्वरी प्रसाद, भारतवर्ष का इतिहास [अंग्रेजी] पृ० ५४२।

में इसका तो कोई उल्लेख नहीं है किन्तु चम्पतराय द्वारा मुगलों को पराजित किये जाने का विस्तृत वर्णन है।१

प्रामाणिक-इतिहासों में कहीं भी इस अवसर पर मुगलों की पराजय का वर्णन नहीं।

"बुंदेलखण्ड के संक्षिप्त-इतिहास"२ मे छत्रसाल का जन्म मोर पहाड़ी के जंगल में दिया गया है, जहाँ चम्पतराय अपनी पत्नी के साथ बड़े कौशल से युद्ध-क्षेत्र से सुरक्षित भाग आए थे। किन्तु "छत्रप्रकाश" में उनका जन्म राजमहल मे दिखलाया गया है।३

"छत्रप्रकाश" मे अपने चाचा शुभकरन के यहाँ छत्रसाल का एक मास तक रहने का उल्लेख है। 'बुंदेलखण्ड के संक्षिप्त-इतिहास' मे लिखा है कि शुभकरन ने छत्रसाल को राज-विद्रोही समझकर तुरन्त ही अपने घर से निकाल दिया।४ किस साक्ष्य के आधार पर इतिहास लेखक ने ऐसा उल्लेख किया, यह ज्ञात नहीं।

सभी प्रामाणिक-इतिहासों से ज्ञात होता है कि छत्रसाल को अपनी वृद्धावस्था मे एक बड़े भयंकर आक्रमण का सामना करना पड़ा था। अब औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् मुगल राज्य के अनुशासन के बंधन ढीले पड़ने लगे और सूबेदार लोग यत्रतत्र स्वतत्र होंने लगे थे। इसी बीच में मुहम्मद खाँ

---

१ फौज फारि चपति रन जीत्यौ। अरि पर मलै काल सम बीत्यौ।
[छ० प्र० पृ० ३०]

२ गोरेलाल तिवारी, पृ० १६३।

३ उमग भरे नर नारी गावैं। पिता तुरग नग कोष लुटावैं।
[छ० प्र० पृ० २४]।

४ गोरेलाल तिवारी, पृ० १७८।

बंगश ने एक बड़ी-विशाल-सेना के साथ बुंदेलखण्ड पर आक्रमण कर दिया। छत्रसाल ने अपनी शक्ति को अपर्याप्त समझ कर बाजीराव पेशवा के पास यह दोहा लिखा—

"जो गति ग्राह गजेंद्र की सो गति पहुंची आय।
बाजी जात बुंदेल की राखौ बाजीराय ॥"

अंत में छत्रसाल की विजय हुई। इस प्रसिद्ध घटना का उल्लेख "छत्रप्रकाश" में नहीं। इस सम्बन्ध में एक विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि "छत्रप्रकाश" की समाप्ति अचानक अप्रत्याशित ढंग से हो गई है। कारण अज्ञात है। सम्भव है इस घटना के पूर्व ही ग्रन्थ की समाप्ति हो चुकी हो।

छत्रसाल की रानियों अथवा उनके पुत्र के सम्बन्ध में "छत्रप्रकाश" में कोई उल्लेख नहीं है। "बुंदेलखण्ड के संक्षिप्त इतिहास" में उनकी १७ रानियों और ६६ पुत्रों तथा वियोगी-हरि द्वारा सम्पादित "छत्रसाल-ग्रन्थावली" नामक ग्रन्थ में उनकी १३ रानियों और ५२ पुत्रों का उल्लेख है। इन कथनों का ऐतिहासिक आधार ज्ञात नहीं फिर भी एक प्रबन्ध-काव्य में नायक के पुत्रों आदि का किंचिन्मात्र भी उल्लेख न होना खटकता अवश्य है। ग्रंथ की अचानक समाप्ति इसका कारण हो सकती है।

सारांश

छत्रप्रकाश की रचना महाराज छत्रसाल की आज्ञा से हुई थी। इस ग्रन्थ में छब्बीस अध्याय हैं और सारी रचना दोहे चौपाइयों में ही है। आरम्भ में गणेश तथा सरस्वती की वन्दना के अनन्तर बुंदेलों की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है। इसमें श्री रामचन्द्र जी से लेकर हेमकरन उपनाम पंचम

तक तथा इसके पश्चात छत्रसाल तक समस्त बुंदेला राजाओं का वर्णन किया गया है। तृतीय अध्याय में छत्रसाल के पूर्व-जन्म की कथा और चतुर्थ में उनके बाल्य-जीवन का चरित्र चित्रित किया गया है।

इसके पश्चात् चम्पतिराय तथा मुगलसेना से अनेक युद्धों का वर्णन है। एक समय शाह की कुटिलता से चम्पतिराय को विष भोजन कराया जा रहा था, किन्तु उसके एक सरदार ने स्वयं उस अन्न को खाकर उसकी रक्षा की। शाहजहाँ की मृत्यु के अनन्तर चम्पतिराय ने अब औरंगजेब से संधि कर ली, किन्तु उसकी धार्मिक कट्टरता से दुखी होकर इन्होंने उससे सम्बन्ध तोड़ दिया। फलतः औरंगजेब का आक्रमण हुआ। चपतिराय के ऊपर विपत्ति के बादल घहराने लगे, उनकी सेना ने युद्धस्थल में उनके साथ विश्वासघात किया और अन्त में इन कठिन परिस्थितियों में पड़कर चम्पतिराय ने अपनी पत्नी के साथ आत्मघात कर लिया।

इसके पश्चात् छत्रसाल ने अपने भाई अंगदराय के कहने पर औरंगजेब की सेना में नौकरी कर ली। वीरता के अनेक कार्य करने पर भी बादशाह को प्रसन्न होते न देखकर छत्रसाल असंतुष्ट हो गये और नौकरी छोड़कर शिवाजी से जा मिले। शिवाजी ने इन्हें बुंदेलखण्ड में स्वाराज्य-स्थापन करने की राय दी। दोनों वीर केसरियों के सम्मिलन का अत्यंत सुन्दर वर्णन छत्रप्रकाश में है।

छत्रसाल ने बुंदेलखण्ड आकर सैन्य-संग्रह प्रारंभ किया और सर्वप्रथम धंधेरगढ़ पर विजय की। फिर तो विजय पर विजय प्राप्त कर उन्होंने मुगलों का नाकों दम कर दिया। उन्होंने केशवराय के ऊपर आक्रमणकर उसका वध किया, कारण कि वह यवनों का पक्षपाती था। इसके पश्चात् सैद-

बहादुर, रनदूलह, तहव्वर खाँ सदरुद्दीन, हमीद खाँ, सैद लतीफ, अब्दुल समद, बहलोल खाँ आदि मुसलमान सरदारों को क्रमशः पराजित करके इन्होंने अपने राज्य का बड़ा विस्तार कर लिया।

केवल एक सरदार—शेरअफगान—के सामने उन्हें पीछे हटना पड़ा। पुन शक्ति अर्जित करके उसको भी उन्होंने पराजित किया।

अंतिम चार अध्यायों मे क्रमश. प्राणनाथ द्वारा दिये गये ज्ञानो-पदेश, कृष्ण-जन्म, प्राणनाथ-वरदान, तथा छत्रसाल के दिल्ली मे मऊ आगमन का वर्णन है। इसी अवसर पर अचानक ग्रंन्थ की समाप्ति हो जाती है।

आलोचना—

कविवर गोरेलाल की सभी रचनाओं मे "छत्रप्रकाश" की रचना सर्वाधिक प्रौढ़ तथा काव्यगुणोपेत है। लाल ने इसकी रचना छत्रसाल की ही आज्ञा से की थी, जैसा कि पहले लिखा जा चुका है।

ऐतिहासिक तथा साहित्यिक दोनों दृष्टियों मे 'छत्र-प्रकाश' एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इसमे सं० १७६४ वि० तक की बुन्देल-खण्ड-सम्बन्धी सूक्ष्मातिसूक्ष्म घटनाओं का वर्णन है। इनमें से कुछ घटनाओं को छोड़कर शेष सबकी पुष्टि प्रामाणिक-इतिहासों से हो जाती है। जिन घटनाओं का इसमे उल्लेख नही है, वे कदाचित् प्रसंग के प्रतिकूल होने से छोड़ दी गई हैं। यह भी संभव है कि ग्रन्थ की समाप्ति के पश्चात् वे घटित हुई हैं। गोरेलाल जी ऐतिहासिक घटनाओं को यथातथ्य रूप में वर्णन करने मे इतने सत्यनिष्ठ हैं कि शेरअफगन के विरुद्ध, जिस

युद्ध मे महाराज छत्रसाल को भागना पड़ा था, उसका भी उल्लेख आपने 'छत्र-प्रकाश' मे किया है। यथा:—

"कह्यौ सबनि समुझाइयौ, जिन भजिबे पछिताउ।
भजे कृष्ण अवतार जे, पूरन प्रगट प्रभाउ॥"

[छ० प्र० पृ०, १४७]

इससे कवि की सत्य-प्रियता तो स्पष्ट रूप से प्रमाणित ही होती है साथ ही यह भी ज्ञात होता है कि उनको इस बात की चिन्ता न थी कि चरित्रनायक के विरुद्ध लिखने से उनकी जीविका मे बाधा पडेगी।

साहित्यिक-पक्ष मे इनकी सब से बड़ी विशेषतायें है वर्णन की विशदता तथा प्रसाद-गुण की प्रधानता। छब्बीस अध्यायों के एकसौ तिरसठ पृष्ठों मे वीर-रस के उद्रेक के लिए कहीं भी बलात् टकार-डकारादि लोमहर्षक वर्णों को अस्वाभाविक रूप में प्रयुक्त करने का प्रयत्न नहीं दिखाई पड़ता, सरल से सरल और स्वाभाविक से स्वाभाविक रचना द्वारा भी भावों का समुचित उत्कर्ष दिखाने मे गोरेलाल जी पूर्णरूप से सफल हुए है। निम्नलिखित पंक्तियाँ जितनी ही सरल हैं, उतनी ही प्रभावोत्पाद भी है.—

"ऐंड एक सिवराज निवाही। करै आपने चित की चाही॥
आठ पातसाही झकझोरै। सूबनि बाँध डाँड लै छोरै॥"

इस सम्बन्ध मे एक बात और ध्यान देने योग्य है। इस प्रकार की सफलता कवि को चौपाइयो की अपेक्षा दोहों में अधिक मिली है। दोहो मे भाषा और भाव दोनो की प्रौढ़ता अधिक निखर उठी है। उदाहरण के लिए चम्पतिराय के प्रताप-वर्णन सम्बन्धी निम्मलिखित दोहे कितने प्रौढ़ और भावोत्कर्षक हैं :—

"चम्पति के परताप ते पानिप गयो ससाइ।
पौसेरी भर रहिगयौ नौसेरी उमराइ ॥"

× × × ×

' चौंकि-चौंक चौकी उठ, दौक दौकि उमराइ।
फाके लसकर में परे, थाके सबै उपाय ॥"

[छ० प्र० पृ० ३३]

"नौसेरी" के स्थान पर "पौसेरी" भर रह जाना, यह उक्ति कितनी सरल, किन्तु साथ ही कितनी प्रभावोत्पादक है। भयभीत उमराव कंकाल रूप मे उपस्थित हो जाता है।

केवल वीर-रसात्मक-स्थलों मे ही नहीं, अन्य स्थलो पर भी सरल भावाभिव्यञ्जन मे लाल समान रूप से सफल हुए हैं। छत्रसाल की बालक्रीड़ा के निम्नलिखित वर्णन मे भक्त सूरदास के सूक्ष्म निरीक्षण का दर्शन होता है—

"घुटुनुन चलत घूँघुरू बाजै। सिंजित सुनत हंस हिय लाजै ॥
गहि पलका की पाटी डोलै। किलकि किलकि दसननि दुति खोलै ॥

[छ० प्र० पृष्ठ २४]

वस्तुओं की सूची गिनाने की प्रथा का प्रयोग प्राय. सभी रीति-कालीन कवियों ने किया है। कहीं कवियो की लम्बी सूची के दर्शन होते हैं तो कहीं घोड़े हाथियो की विभिन्न जातियो के। इस सूची-परिगणन के अनावश्यक वर्णन-विस्तार से पाठकों की अरुचि को ही प्रोत्साहन मिलता है। गोरेलाल जी इस अंधानुकरण से बचे हुए हैं। जहाँ कहीं ऐसी सूची मिलती भी है वह ऐसी लम्बी नहीं होती, जिससे किसीप्रकार की कुरुचि उत्पन्न हो। यथा—

नारि बिलछुरा रमपुरा, इसैदी परजार।
चेहद डौंगद स्यासपुर, शानाबाद उजार ॥

[छ० प्र० पृ० ११६,]

हाँ, कहीं-कहीं युद्धक्षेत्र में कई व्यक्तियों के नाम थोड़े-थोड़े अन्तर पर ही आने लगते हैं उससे अवश्य कुछ अरुचि उत्पन्न होती है।

तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों को भी इन्होंने उसी सरल शैली में स्पष्टरूप से रख दिया है। यदि कहा जाय कि रीति-कालीन-कवियों में इसप्रकार की सरल, सुस्पष्ट और प्रौढ़-शैली के उन्नायक केवल गोरेलाल ही थे तो कोई अत्युक्ति न होगी? "नतो कहीं कल्पना की ऊँची उड़ान दिखाई देती है और न ऊहा की जटिलता।"* निम्नलिखित पदों में औरंगजेब के समय की धार्मिक परिस्थिति का कितना सरल चित्रण है—

"हिन्दू तुरक दीन द्वै गाये। तिनसों बैर सदा चलि आये॥
लेख्यों सुर असुरन को जैसो। केहरि करन बखान्यो तैसो॥
जब तें साह तखत पर बैठे। तबतें हिंदुन सौं उर ऐंठे॥
महँगे कर तीरथन लगाये। वेद देवाले निदरि ढहाये॥"
घर घर बाँधि जजिया लीने। अपने मन भाये सब कीने॥"

[छ० प्र० पृ० ७८]

शिवाजी का जो स्वराज्य का सिद्धांत था, उसी का अनुकरण महाराज छत्रसाल ने भी किया। इसके पूर्व वे शाही सेना में एक साधारण पद पर थे। असाधारण उत्साह के साथ बादशाह की सेवा करने पर भी जब कृतघ्नी शासकने इन पर किंचिन्मात्र भी ध्यान न दिया तो वीर क्षत्रिय को यह अपमान असह्य हो गया। उनके तत्कालीन मनोभावों का लाल ने कितना सुन्दर चित्रण किया है—

---

*पं० रामचन्द्र शुक्ल:— 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (परिवर्द्धित संस्करण) पृ० ३६६।

"हमतौ छत्रधर्म प्रतिपाल्यौ । रीझ न याको मायौ हास्यौ ॥
मूरख के आगे गुनगायौ । भैंसा बीन बजाइ रिझायौ ॥

× × × ×

खर के अंग सुगंध चढ़ायौ । बायस को घनसार सुनायौ ॥
बधिर कान में मन्त्र सुनायौ । सूरदास को चित्र दिखायौ ॥

× × × ×

अविवेकी को सेइ के, को न हिये पछिताइ ।
बीजा बवै बबूर के, कहा दाख फल खाइ ॥२॥"

[छ० प्र० पृ० ७७]

रीतिकालीन-कवियों ने युद्ध-वर्णन में शब्दनाद का भी अत्यधिक परिमाण मे प्रयोग किया है। "धड़धद्धरं' धड़धद्धरं' भड़भब्भरं भड़भब्भरं" ऐसी पंक्तियों से पृष्ठ के पृष्ठ रँग दिये जाते थे। शब्दनाद के ऐसे प्रयोगों से केवल कौतूहल के अतिरिक्त और कुछ नहीं प्राप्त होता। लाल ने ऐसे निम्न-कोटि के शब्द-नाद का प्रयोग केवल वैचित्र्य लाने के लिए नहीं किया है। ग्रन्थ भर में केवल दो एक पंक्तियों मे शब्दनाद के ऐसे प्रयोग मिलते हैं किन्तु साथ ही यह भी स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि उनसे किसीप्रकार की कृत्रिमता नहीं प्रकट होती यथा—

"छुटे बान कुहु कुहु कुहू बोला । नभ गजनाइ उठे गुलोला"

[छ० प्र० पृ० १ १]

अथवा— 'झिलझिल फौज ठिलाठिल धावै।"

[छ० प्र० पृ० ५६]

यत्र-तत्र प्रसिद्ध संस्कृत-कवियो के भावो की छाया इनके ग्रन्थो मे मिलती है। इससे इनकी बहुज्ञता भी प्रकट होती है। उदाहरण के लिए "छत्रप्रकाश" की निम्नलिखित पंक्तियाँ ले सकते हैं—

चाहत है एते पर तैसी। मत कवि मति की पदवी जैसी।
"अगम पंथ कौ बुधि बिलसाई। ह्वै है जग इहि भाँति हँसाई॥'
ज्यों वामन ऊँचे फल चाहैं। चरननि उचकि उठावे बाहैं॥

दोहा

उचकै हू पहुँचे नहीं बाहैं उच्च उठाइ।
लोग हँसी के रस भरे, देखत कौतुक आइ॥

[छ० प्र० पृ० १८]

यह कालिदास के निम्न-लिखित-श्लोक का हिन्दी अनुवाद है—

"मन्दःकवियशःप्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम्।
प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामनः॥"

[रघुवंशमहाकाव्यम्, प्रथमसर्ग श्लोक ३]

इन सब गुणों के होते हुए भी उनकी रचना में कुछ दोष भी हैं। सब से बड़ा दोष तो यह है कि वर्णन-विस्तार के लोभ में पड़कर उन्हें कभी-कभी रोचकता और सरसता का त्याग करना पड़ा है। अनेक व्यक्तियों के नामों और कोरी इतिवृत्तात्मक-पंक्तियों के भार से इनकी रचना ऐसे स्थलों पर शिथिल हो गई है। उदाहरण स्वरूप निम्नलिखित वर्णन में कहीं रोचकता के दर्शन नहीं होते—

"यौं कहि ताकैं तुरत ही, सुतरदीन की ओर।
जे ईरानी निसवती, काबिल काम अमोर॥
सुतरदीन त्यों करनिस कीनी। तिन्हे साह धामौनी दीनी।
देसनि देसनि लिखे पठाये। क्यों फिसाद ऐसे फैलाये॥
× × × × × ×
त्यौं मिरजा धामौनी सामै। बँदोबस्त कीनै मनभाये॥"

[छ० प्र० पृ० १२१]

इनकी शिथिलता का दूसरा कारण उनके छन्दों का चुनाव भी है। सारा ग्रन्थ केवल दोहे चौपाइयों में लिखा गया है, अन्य किसी छन्द का प्रयोग कवि ने नहीं किया है। छन्दों की विविधता से इसप्रकार की शिथिलता बहुत कुछ कम हो सकती थी।

यह सब होते हुए भी लाल की प्रबन्ध-पटुता निस्संदेह उच्च कोटि की है। उसमें सम्बन्ध का भी निर्वाह उचित मात्रा में है और साथ ही वर्णन-विस्तार के लिए मार्मिक-स्थलों का चुनाव भी। इस कवि को प्रसिद्धि उतनी नहीं हुई जितनी आवश्यक थी।

भाषा

दोहा-चौपाई,पद्धति पर रचना करने वाले सब कवियों ने अवधी-भाषा को ही अपनाया है परन्तु लाल ने उसमें ब्रज-भाषा तथा बुन्देली का भी पर्याप्त मिश्रण कर दिया है। कदाचित् भाषा को सरल करने के लिए ही उन्होंने ऐसा किया है, परन्तु उनकी रचनाओं का गाम्भीर्य इस सरलता के कारण कहीं भी घटने नहीं पाया। अपनी मिश्रित-भाषा की सरलता में भी गोरेलाल ने गम्भीर विचारों को मनोहर ढंग से उपस्थित किया है। निम्निलिखित पंक्ति से जहाँ एक ओर कवि की सूक्ष्म पर्यवेक्षण-शक्ति का परिचय मिलता है वहाँ दूसरी ओर यह कथन भी प्रमाणीत हो जाता है कि कवि सरल-पदावली के माध्यम से किसी भी तथ्य को अत्यंत मनोहर ढंग से उपस्थित करने में सिद्ध-हस्त है।

महांवे के पुराने पान में किसी नुकीली वस्तु का खोंचा लगने से उस के रेशे छितरा जाते हैं। वज्र के समान तीक्ष्ण बाणों के आघात से कवच, पान के रेशे की तरह टूट कर छितरा गये :—

तीछन तीर बज्र से छूटे।
बखतर पोस पान से फूटे ॥

मुहावरों के प्रयोग में गोरेलाल को पूर्ण सफलता मिली है। थोड़ी थोड़ी दूर पर प्रचलित लोकोक्तियों के आ जाने के कारण इस कवि की भाषा में आकर्षण आ गया है —

(क) तिहिकुल छत्रसाल तुम आये।
दई दिखाई नैन सिराये ॥

(ख) अभै देहु निज बंस कों, फते लेहु फरमाइ।
छत्रसाल तुम पै सदा, करे विसंभर छाँह॥

(ग) यों असीस नरपति जब दीन्ही।
माथे मानि छतारे लीन्ही ॥

(घ) छत्रसाल पंचम त्यों बोले।
मंत्र विचार हिये के खोले ॥

(ङ) त्यों हम तुम मिलि दोनों भाई।
तुरकन पै करजे घनघाई ॥

गोरेलाल की भाषा के संबंध में खटकने वाली बात केवल एक है। अनेक स्थलों पर उन्होंने शब्दों को अत्यन्त विकृत रूप में रख दिया है। 'गढ़ कुण्डार' का 'कुठार' कर देना शब्दों के साथ खिलवाड़ करना ही है। 'मौलाना' का 'मुलना' और 'ममजिदें' का 'मसीदें' साधारणत कर दिया गया है। मुसलमानीनामों के साथ भी कवि का व्यवहार इसीप्रकार का है।

छत्रप्रकाश

छत्रसाल को शिवा जी का उपदेश

दोहा

सिवा किसा सुनि कै कहीं, तुम छत्री सिर ताज।
जीत आपनी भूम कौं, करौ देश कौ राज।

छन्द

करौ देश कौ राज छतारे। हम तुमतैं कबहूँ नहि न्यारे॥
दौरि देस मुगलन के मारौ। दबटि दिल्ली के दल संहारौ॥
तुरकन की परतीत न मानौ। तुम केहरि तुरकन गज जानौ॥
तुरकन में न विवेक विलोक्यौ। मिलन गये उनकौ उन रोक्यौ॥
हमकौ भई सहाय भवानी। भय नहि मुगलन की मनमानी॥
छलबल निकसि देश में आये। अब हम पै उमराइ पठाये॥
हम तुरकनि पर कसी कृपानी। मारि करैंगे कीचन घानी॥
तुमहू जाइ देस दल जोरौ। तुरक मारि तरवारनि तोरौ॥

दोहा

राखि हिये ब्रजनाथ कौं, हाथ लेउ करवार।
ये रछा करिहैं सदा, यह जानौ निरधार।

छन्द

छत्रनि की यह वृत्त बनाई। सदा तेग की खाइ कमाई॥
गाइ वेद विप्रन प्रतिपाले। घाउ ऐड़धारिन पै घाले॥
तेगधार में जौ तन छूटै। तै रवि भेद मुकत सुख लूटै॥
जैतपत्र जौ रन में पावै। तौ पुहुमी के नाथ कहावै॥
तुम हौ महाबीर मरदानै। करिहौ भूमि भोग हम जाने॥
जौ इतहीं तुमकौ हमराखें। तौ सब सुजस हमारे भाखें॥
तातै जाइ मुगल दल मारौ। सुनिये श्रवननि सुजस तिहारौ॥
यह कहि तेग मंगाइ बंधाई। बीर बदन दूनी दुति आई॥

दोहा

आदर सो कीन्हें बिदा, सिवा भूप सुख पाइ।
मिल्यो मनौ उर उमग में, भूमि भावती आइ।

छत्रसाल-शैदबहादुर-युद्ध

छन्द

मधु दिन तहाँ मुकाम बजायौ। सुरह्यौ चाउ चाउ चित आयौ।
छरी भर छत्रसाल बुंदेला। सुभट छ सातक आपु अकेला।
सहज सिकार खेल रस पागे। बन बराह मृग मारन लागे।
सैदबहादुर हिम्मत कीनी। खबर जसूसनि सौं सब लीनी।
दल सजि उचकि आनि हंकार्यौ। खलभल सहज खेल में डार्यौ।
ज्यों हरिनन को होत हँकाई। उचका उठै बाव बिरफाई।
त्योंही सैदबहादुर धायौ। डंका निकट नगीच बजायौ।
सुनि डंका छत्रसाल रिसानै। छत्र-धरम को बाँधे बानै।

दोहा

फौज बहादुर सैद की, परी फन्द में आइ।
वाके थल बीरन दई, गोलनि गोल गिराइ।

छन्द

गिरी गरज गाजै सो गोली। डग डग चमू अरिन की डोली।
मुगल पठान खेत में जूझे। बैरिन त्यौंत चाल के सूझे।
चमकि चाल तुरकनि त्यौं दीनौ। जीत-पत्र छत्ता तहँ लीनौ।
ह्वाँतैं उमड़ि बरावा मार्यौ। धूमघाट पर डेरा पार्यौ।
गोपाचल में खलभल माच्यौ। सैदमनौवर त्यौं रिस राच्यौ।
जोरी फौज निसान बजाये। धूमघाट पर उमड़त आये।
त्यौं छत्रसाल बीररस बाढ़े। सनमुख गये जूझ कौ ठाढ़े।
माची मार रुद्र अनुराग्यौ। बाजन सार सार सौं लाग्यौ।

दोहा

सेल्ह डकेलने ठेल दल, पिले बुंदेला बीर।
महा भयानक भाँति बल, पगनि डगमगे मीर।

छन्द

डगे मीर तजि खेत पराने। पिले बुंदेला रन सरसाने।
मुगल पठान हने जे जूटे। सैद सहर मीतर लौं लूटे।
सहर लूट कीनी मन भाई। गढ़ के गेरत रह्यो लाई।
लूटि ग्वालियर मुलक उजारयो। ह्वाँ ते दौरि कजियौ मारयौ।
गिरिवर मारि करे अरि हीनै। फटिया केनव डेरा कीने।
त्यौं महमद हाशिम चलि आये। संग अनन्द चौधरी धाये।
पिले उमड़ तीन सजि गोलै। तीन्यौ ओर खग्ग झक झोले।
ते आवत छत्रसाल निहारे। अग्रनि उमड़ि तिहूँ दल मारे।

दोहा

तीन्यौ गोल बिदार कैं, फतै लई छत्रसाल।
मुघ करि त्रिपुर संहार कौ, नाचे भूत बिताल।

छन्द

ह्वाँ ते हनूटक कौ आये। भयौ ब्याह त्यौं बजे बधाये।
अति आतंक चहूँ दिशि फैले। भये बदन बैरिन के मैले।
होन फतूह लगी मनमानी। चली चौथ चुकि जग में जानी।
सुनत चाह कुंवरन मन कीनौ। सबन संग छत्रसालहि दीनौ।
रतनसाह त्यौंही चलि आये। अमर दिवान खबर सुनि धाये।
सबलसाह हितु आये कीनै। केसौराइ मिले मनु लीनै।
धारू अरु कीरति मन भाये। दीप दीवान दीप छवि छाये।
मिले रामजू मंगद सूरे। पृथ्वीराज बल विक्रम पूरे।

दोहा

माधोराइ बसन्त अरु, उदैभान त्यौं धर्न।
अमरसिंह परताप तहँ, मिले चन्द अरु कर्न।

छन्द

अब सब सुनौ साहिगढ़ बारे। जिन रन मध्य अस्त्र झुक झारे।
आइ इन्द्रमाने मिले अगाऊ। उग्रसेन सम काहि गनाऊ।
जगतसिंह बानैत बुंदेला। रन मे करत प्रथम बगमेला।
सकतसिंह त्यों गुननि गरूरे। दान कृपान युद्ध बल पूरे।
जामसाह अफन्द मरदानै। मनसिंह छोंड़ि मिले जंग जानै।
आये परबतसिंह प्रमानै। रूपसाह त्यो रन रस भीनै।
देव दिवान प्रेम उर बाढ़े। भारतसाह समर अति गाढ़े।
चन्द्रहंस अरिकुल को घाती। मिलौ सुजानराइ को नाती।

दोहा

दूजे भारतसाह त्यों, राइ अजीत बखन्त।
बलि दिवान के नद द्वै, चित्रांगद जसवन्त।

छन्द

रामसिंह जैसिंह बखानै। जादोराई करनजू जानै।
गाजीसिंह कटेरा बारे। दै करनाल दुवन जिन मारे।
जगत सिंह मुनि कबिन प्रमानैं। त्यौ गुमानमनि परम सयानै।
और अनेक कहाँ लगि गाऊं। गनतो सत्तर कुंवर गनाऊं।
केते सगे सोदरे सारे। और पमार अधेरे भारे।
नाते ममा फूफू के जेते। मिले आइ छत्रसालहिं तेते।
उच्च निसान दलनि फहरानै। धौंसा धुनि घन से घहरानै।
उमड़ि चली गोलन पर गोलै। दल के भार फनी फन डोलै।

दोहा

लगन लगे कुल कटक में, तंबू तुग कनात।
झंडा गड़े बजार में, अति ऊचे फहरात।

रनदूलह-पराजय

छन्द

लागी चमू चढ़न चतुरंगै। ज्यों जलनिधि की तरल तरंगै।
ऐड़दार जितही सुनि पावै। फौजैं उमडि तहाँ को धावैं।
बासा अरु वृन्दावन बार्यौ। प्रलै पथरिया ऊपर पार्यो।
दीनी लाइ निदर निदराई। फौज बहुत राई पर आई।
पहिलो पसर रनेही टूट्यौ। कोटा कूट दमोयौ लूट्यौ।
धामौनी मैं धूम मचाई। जब न और की बचै बचाई।
तब खालिक ऐसी मति कीनी। वाकन खबर साह को दीनी।
लिखो बहादुरखाँ को ऐसै। बादर फट्यो ढाकियै कैसे।

दोहा

चहूं चक्क गमदे फिरत, बड़े बुंदेला बीर।
अमल गए उठि साह के, थके जुझ करि मीर।

छन्द

कोका खबर हजूर जनाई। वहै लिखो वाकन में आई।
सुनत साह मन मैं अनखानैं। भेजे रनदूलह मरदाने।
संग बाइस उमराइ पठाये। आठक लिखे मद्दती ठाये।
बिदा भये मुजरा करि ज्योंही। बजे निसान कूच करि त्यौंही।
दतया अरु ओड़छौ वगैनी। सजी गिरौज कोच धामौनी।
उमड़ि इंदुरखी चढ़ी चन्देरी। पिलि पाढौर जुद्ध की टेरी।
ये मुद्दती उमड़ि चढ़ आये। मनसिबदार तीस ठिक ठाये।
कर्यो गढ़ा कोटा पर पेला। जहाँ सुनै छत्रसाल बुंदेला।

दोहा

उमड़्यौ रनदूलह सजे, तीस हजार तुरंग।
बजे नगारे जुझ के, गाजे मत्त मतंग।

छन्द

दिन के पहर तीन तब बाजे। लागी लाग मीर गल गाजे।
त्यौं छत्रसाल चढ़ाई मोहैं। अड़े बंब दै भये भिरौहैं।
उमड़ि शरि तुरकन त्यौ माँड़ी। छूटे तीर उडंत ज्यौं टांडी।
त्यौं रन उमड़ि बुंदेला हाँके। रंजक धुंवन घामनिधि ढाँके।
बाजन लगी बंदूखें सोई। गिरे तुरक जे लगे अगांई।
गिरत हरौल गोल के साऊ। कढि कतार तें ठिले अगाऊ।
लगे खान गोलिन की चोटें। नट ज्यौं उछल लाग लै लोटे।
समर बिलोकि सुरन भय कीनो। सूरज सरकि अस्तगिरि लीनौ।

दोहा

जोत जामगिन में जगी, लागे नखत दिखान।
रन असमान समान भौ, रन समान असमान।

छन्द

पहर रात लौ भई लराई। गोलिन सर सेथिन झर लाई।
खाइ घाइ सब खान अघाने। लोह मानि तजि कोह पराने।
डेरा कोस द्वैक पर पारे। हिम्मत रही हियै सब हारे।
अड़े बुंदेला टरे न टारे। जीते जूझ बजाइ नगारे।
रनदूलह रन तै बिचलाये। ह्वाँ तैं हनूटूक कौ आये।
मारि गुनाह मरोरी टोरी। खग झार झागर झखझोरी।
फिरि मवास रतनागर मार्यौ। औडेरा में डेरा पार्यौ।
दल दौरन हरथौन उजारी। धामौनी में खलभल पारी।

दोहा

चौंकि चौक चहुँ दिस उठे, सूबा-खान खुमान।
अवधौ धावै कौन पर, छत्रसाल बलवान।

तहवर-युद्ध

छन्द

त्योंही दौर करकरा कर्यो। आस पास नरवर को लूट्यो।
सो गाढ़ी सकलात सलौनी। पातसाह कों जात पठौनी।
सो ताकी छत्रसाल बुंदेला। लई लुटाइ फौज सों पेला।
सब ही लूट छूट कर पाई। लुंगो मोल मोधुवन लाई।
लूटी रसद साह की ज्योंही। वाकन लिखी हकीकत त्योंही।
सुनी दिलीस खबर ठिकठाई। सूबा दल को नालम आई।
रनदूलह ढाँढे रणझमी। पठये साह रोस करि रूमी।
ले मुहीम रूमी रिस कीनी। मोट उठाइ अरे की लीनी।

दोहा

फौज जोरि रूमी बढ्यो, बाजे तबल निसान।
छत्रसाल तासों कर्यो, बसिया मे घमसान।

छन्द

बसिया में माच्यो रनखेला। उत रूमी इत बीर बुंदेला।
तुपक तीर सैथी तरवारे। खात खकवत बीर हुंकारे।
उमगे भिरत जुद्ध रस पागे। कटि कटि गिरन परस्पर लागे।
मच्यो कल्यानसाह मन आछे। पग परिहार न दीनैं पाछे।
मीर महवहे उमडत आये। सनमुख कुटे हटे न हटाये।
गना रूम के तके बुंदला। कियों तुपकदारनि को पेला।
तिन चोटें कीन्हीं चितचीती। साखें भई सबनि की रीती।
जानी रूम को समर पहारू। बाटन लग्यो सबनि को दारू।

दोहा

भई मीर गलबल मच्यो, दारू बाटत लेत।
लग्यो पलीता सीढरन, उठ्यो धूम उड़ि स्वेत।

छन्द

त्योंही हला बुंदेलनि बोले। समर खेत खगगनि के खोले।
लागे मुंह ते मारि गिराये। पिजिवन बीर धुंवा पर धाये।
दारू उड़े उड़े अरि ज्योंही। मारे बीर बुंदेलनि त्योंही।
रूमी बिढरि खेत तैं भाग्यो। छत्रसाल जस जग में जाग्यो।
ज्यों रंग मच्यौ दिल्ली में औरें। दुदिलौं भये साह कित दौरें।
नृप जसवन्तसिंह के बेटा। कढ़े दिल्ली कौ मारिव बेटा।
फिरि जोधापुर धनी अन्यारे। अतिसाह अजमेर पधारे।
त्यौं अकबर सहिजादौ साऊ। राठौरन पर पिल्यौ अगाऊ।

दोहा

त्यौं प्रपंच रचि बुद्धि बल, दुरगदास राठौर।
सहिजादे सौं मिलि किये, तखत लैन के डौर।

छन्द

तखत लैन के लोभ बढ़ाये। पुत्रहिं पितहिं बैर उपजाये।
सहिजादौ संगी कर पायौ। तब दच्छिनकौं वाहि चलायौ।
ताकी पीठ साह उठ लागे। दच्छिन कौं उमग रिस पागे।
रूमी भगे साह त्यौं जानै। फारी परी कुल तुरकानै।
बल व्यवसाइ सबनि कै थाके। तब दिलीस तहवर मन ताके।
जानि जुद्ध अमनैक अठायौ। तहवरखाँ इहि देस पठायौ।
चढी चमू तहवर की बाँकी। दिसा धूरि धंधरि सौं ढाँकी।
ज्यौं तहवर की सुनी अवाई। त्यौंही लगन ब्याह की आई।

दोहा

सावर तैं आई लगन, मिले बोल बंधान।
दवादबे बीरा दियो, अब हितु भयौ निदान।

छन्द

जब दिन निकट ब्याह के आये। मंगल गीत दुहूँ दिस गाये।
तब दल बलदाऊ संग राखे। लागे करन काज अभिलाखे।

छुरी बरात ब्याह को साजी। तीस सवार संग अरु बाजी।
दूलह छत्रसाल छवि छाये। करन ब्याह सावरहि सिधाये।
तहँ बिधि सो आगौनो कीनी। बांध्यौ मौर इन्द्रछबि लीनी।
लागो परन भाँउरें ज्योंही। परी फौज तहवर की त्योंही।
अनी बनी दोई बनि आई। दोऊ वरी करी मन भाई।
इतहिं भाँउरें सजी सुहाई। उत तुरकनि सौं मची लराई।

दोहा

रन रुपि तहवर खान को, मुह मुरकायौ मारि।
पूरन वेद विधान सों, लइ भाँउरे पारि।

छन्द

मारी फौज तुरक मुरकाये। तँह सब धाये बजे बधाये।
ब्याही बरी जीति अरि लीनौ। कंकन छोडि तुरंगम दीनौ।
धामोंनी दौरन झकझोरी। फिरि पछोरि सब खरी पिछौरी।
चारी बार मबाली कूटे। गाँउ कर्ज्जीजर के सब लूटे।
रामनगर मार्‍यौ करि डेरा। कालिंजर को पार्‍यौ घेरा।
रोज अठारह गढ़ सों लागे। चौकिन तहाँ द्यौस निसि जागे।
बाहिर कढ़न न पावै कोई। रहे संक सकराइ गढ़ोई।
लई रोकि चारिउ दिस गैलैं। गढ़ पग परे रैन दिन पैलें।

दोहा

चिंतामनि सुर की तहाँ, कीनो आइ सुदेस।
अति आदर सों लै चले, न्योतो करि निज देस।

छन्द

न्योतो करि कीनी महिमानी। धन्य घरी सबही वह मानी।
तातैं पुरी तिलक मैं दीनो। उर आनन्द परम्पर लीनो।
ह्याँ ते नृप बिदा ह्वै कीनो। कालिंजरहि दाहिनो दीनो।
जरै उमडि तहँ सुभट अन्यारे। घाटी रोकि बीर गढवारे।

छत्रसाल त्यों हल्ला बोल्यो । खगान खेल बुंदेलन खोल्यो ।
समर भूमि अरि-स्रोथिन पाटी । रोकी रुकै कौन की घाटी ।
त्यारि बनहरी लूट मचाई । धामौनी सों लई लराई ।
पटना अरु पारौलि उजारे । तहवरखाँ पै परी पुकारे ।

दोहा

फौज जोर तहवर तहाँ, ठनै जूझ के ठान ।
गौने में छत्रसाल के, दल कौ परयौ मिलान ।

छन्द

परयौ मिलान जाइ जब गौने । करकै तंबू तनै सलौने ।
दहिनी दिसि उतरे बलदाऊ । जहं गोली पहुंचे पहुँचाऊ ।
थम्हे अपनी अपनी पाली । परयौ पहार पीठ तन खाली ।
ऊपर सिखर चौंपरा जान्यौं । सौ देखन छत्ता उर आन्यौ ।
छरी भीर कौतुक मन बाढ़ै । चढ़ि करि भये शिखर पर ठाढ़ै ।
ज्यौं यह खबर जसूसन दीनी । त्यौं तहवरखाँ बागैं लीनी ।
बखतरपोस सहस दस धाये । प्रलै मेघ से उमड़त आये ।
निकट आइ धौंसा घहराने । हयखुरधार छटा छहराने ।

दोहा

बढ़ी फौज उमड़ी निरखि, रच्यौ छता घमसान ।
चढ़ि सनमुख रनमुख तहाँ, बरषन लाग्यौ बान ।

छन्द

बरषन लाग्यौ बान बुंदेला । कियौ तुरक दै ढाल ढकेला ।
बखतर पोस बान सों फूटे । नल से लतज छांड़ के छूटे ।
कौतुक देखि जोगिनी गाई । खप्पर जटनि माजती धाई ।
बिसुनदास तहं मार मचाई । ओप कटेरहि भली चढ़ाई ।
गह्यो पहार बुंदेला गाढे । त्यौं पठान पैठे मन बाढ़े ।
चंड लोहु दुहूँ दिसि ठहराने । सूरज गगन मध्य, ठहिराने ।

सोर सिंहनादन के माचै। भूत बिताल ताल दै नाचै।
डेरन खबर जूझ की पाई। सुभट मीर त्यों उमड़त आई।

दोहा

चढ़े रंग सफजंग के, हिन्दू तुरक अमान।
उमड़ि उमड़ि दुहुँ दिसि लगे, कौरन लोहा खान।

छन्द

कोरन लोह खान भट लागे। दुहूँ ओर रन में रस पागे।
सुरतनाल हथनालैं छूटी। गरजि गरजि गाजै सी टूटी।
गोलिन तोरन की झर लाई। माची सेल्ह समसेरन घाई।
त्या लच्छे रावत प्रभु आगै। सेल्हन मार करी रिस पागै।
प्रबल पठान मारि कै साऊ। कढ्यो मिश्र हरिकृष्ण अगाऊ।
उमडि लोह लपटन मन दीनौ। तनके होम स्वामि हितु कीनौं।
बावराज परिहार पचार्यौ। सार पैर रवि मण्डल फार्यौ।
जूझ्यो नन्दन छिपी सभागौ। ज्योतन लग्यो इन्द्र पौ बागौ।

दोहा

कृपा राम सिरदार त्यों, कढ्यौ धंधेरा धीर।
बैठ्यो जाइ बिमान चढ़ि, भानु भेदि वह बीर।

छन्द

उतहि पठान चढ़त गिरि आवैं। इत छत्रसाल बान बरसावैं।
इक इक बान दुद्दै भट फूटैं। झुक झुक तऊ झपट रन जूटैं।
बान बेग जगतेस हंकार्यो। त्यों फरवान झपट झुक झार्यो।
घाउ ओढ़ि भुज ऊपर लीनैं। उमडि पाँउ रन सनमुख दीनै।
गिरे पठान डील त्यों भारे। गोलनि सेल्ह सरनि के मारे।
जंघा घाउ छतारे ओढ्यो। भुजदंडन रन सिन्धु बिलोड्यो।
पिले तुरक जे अखतरबारे। ते रन गिरे छता के मारे।
बढ़े गिरिनि सोनित के नाले। घर घमकन धरतीतल हाले।

दोहा

छहर जुझ द्वै पहर भौ, झरयौ सार सो सारु।
तेज अगिन कौ त्यौं घट्यौ, लोथन पट्यौ पहारु।

छन्द

बारह बीर खेत हत आये। सत्ताइस घाइल छवि छाये।
तुरक तीन मै खेत खपाये। घाइल द्वै सै बीस गनाये।
मारि तुरक कौ मुंह मुरकायौ। रन में बिजै बुंदेला पायौ।
मुरके तुरक खग्ग फिर खोल्यो। बल दिवान पर हल्ला बोल्यौ।
बजे नगारे फेर जुझाऊ। रन में रूप्यौ उमदि बलदाऊ।
पहर राति भर मार मचाई। मुरक्यो तुरक उहां स्रम खाई।
ओढ़ि अगिन के ढाल ढकेला। भलौ लरयौ बलकरन बुंदेला।
खमरि खेत तहवर बिचलायौ। सूबन के उर साल सलायौ।

दोहा

सले सात सूबानि के, धक्कनि हले पठान।
दियो भाल छत्रसाल कौं, राजतिलक भगवान॥

श्रीधर (मुरलीधर)

श्रीधर का ही दूसरा नाम मुरलीधर था। कुछ विद्वान् दोनों नामों से भिन्न-भिन्न व्यक्तियों का तात्पर्य लेते हैं। शिवसिंह-सेंगर तथा डा० ग्रियर्सन का मत है कि श्रीधर तथा मुरलीधर भिन्न-भिन्न व्यक्ति थे और दोनों मिलकर कविता करते थे। किन्तु 'जंगनामे' के एक दोहे से इस भ्रम के लिये स्थान नहीं रह जाता। वह दोहा निम्निलिखित है—

परिचय

'श्रीधर मुरलीधर उरुफ, द्विजवर बसत प्रयाग।
रुचिर कथा यह शाह की, बरन्यौ कथन अनुराग। ३॥"

[जं० ना० पृ० १]

इनके परिचय के संबंध में विशेष ज्ञात नहीं है। उक्त दोहे से केवल यही निश्चय होता है कि वे प्रयाग निवासी थे। इन के द्वारा रचित एक अन्य ग्रन्थ—'कविविनोदपिंगल' भी बतलाया जाता है, जैसा कि निम्निलिखित दोहे से सिद्ध है—

'श्रीधर मुरलीधर कियो, निजमति के अनुमान।
कविविनोद-पिंगल सुखद, रसिकन के मनमान॥"

इनकी रचनाओं का एक संग्रह "रत्नाकर" जी ने प्रकाशित कराया था। उसमें "जंगनामा" तथा "कविविनोद-पिंगल" के अतिरिक्त एक संगीत-ग्रन्थ, एक नायिकाभेद संबंधी ग्रन्थ तथा एक जैनसाधु-सम्बंधी-ग्रंथ और मिलते हैं। किन्तु श्रीधर की ख्याति का स्तंभ "जंगनामा" ही है। इन्होंने श्रीकृष्णचरित्र तथा चित्रकाव्य-सम्बन्धी कुछ स्फुट कविताओं की भी रचना की थी। 'जंगनामा' के सम्पादक

स्व० श्री राधाकृष्णदास ने इनके एक अन्य ग्रंथ की भी चर्चा की है, जिससे कवि के जीवन पर कुछ और भी प्रकाश पड़ता है। आप भूमिका मे लिखते है—

"प्रयाग मे एक कवि मुरलीधर मिश्र भी हुए है।...... इनका बनाया 'रामचरित्र' नामक ग्रंथ (हस्त लिखित) प्रयाग के 'भारती-भवन' मे सरक्षित है।....यह ग्रंथ सं० १८१८ मे बनाया था। कवि ने लिखा है कि सब जन्म स्वार्थ मे बिता कर अब यही निश्चय करके कि अंत मे राम के गुण गाकर परमार्थ सिद्ध करना चाहिये, इस ग्रंथ को बनाया।... इन्होंने अपनी वंशावली का वर्णन इस प्रकार से किया है कि यमुना गगा के बीच (प्रयाग ?) एक गॉव है, वहॉ परमानन्द नामक बड़े पंडित थे। उन्हे अकबर ने अपने दरबार मे स्थान दिया था ·· ..। उनके बेटे कपूरचंद, उनके पुरुषोत्तम (शाहजहॉ के समय मे) उनके प्रेमराज, उनेक पृथ्वीराज, उनके दिनमणि, उनके कई बेटो मे यह मुरलीधर हुए।❀

यदि श्रीधर और मुरलीधर दोनो एक ही व्यक्ति है तो श्रीधर की वंशावली भी यही मानी जानी चाहिये और "रामचरित्र" उनकी एक अन्य रचना।

उनके जीवन-काल तथा कविता-काल के सम्बन्ध मे भी कुछ ज्ञात नहीं, केवल अनुमान का आधार शेष रह जाता है। डा० ग्रियर्सन ने इनका समय सन् १६८३ लिखा था; किन्तु "जंगनामा" की रचना सं० १७६६ अर्थात् सन् १७१२-१३ मे हुई। अत यह तिथि अशुद्ध है। "जंगनामा" के एक अन्य सम्पादक विलियम अरविन ने जंगनामा की तिथि के आधार पर श्रीधर का समय उससे तीस वर्ष पूर्व अर्थात् सन् १६८३ निश्चित

❀ जंगनामा, भूमिका पृ० २१।

किया। पं० रामचन्द्र शुक्ल को भी कदाचित् यह अनुमान ठीक जंचा, इसीलिये उन्होंने अपने इतिहास में लिखा है—

"श्रीधर या मुरलीधर प्रयाग के रहने वाले ब्राह्मण थे और सं० १७३७ के लगभग उत्पन्न हुए थे।"*

"इनका कविता-काल सं० १७६७ के आसपास माना जा सकता है।"†

जंगनामा

जंगनामा की रचना सं० १७६९ वि० में हुई। इसमें जहाँदार-शाह तथा फर्रुखसियर के बीच हुए तीन युद्धों का वर्णन है।

सारांश — गणेश की वंदना के पश्चात् कवि बहादुर-शाह के परलोक-वास के बाद की घटना से कथा का आरम्भ करता है। बंगाल में महाजनों की आपस की चिट्ठी से फर्रुखसियर को बहादुरशाह की मृत्यु का समाचार विदित हुआ। उसने सैन्य-संग्रह करना आरम्भ कर दिया, किन्तु इसीबीच में उसको समाचार मिला कि जुलफिकारखाँ तथा अन्य अमीर उमरा मुईज़ुद्दीन से मिल गए हैं और उसे उन्होंने जहाँदारशाह के नाम से दिल्ली का सम्राट घोषित कर दिया है। फर्रुखसियर ने जहाँदार के साथ युद्ध करने के लिए बंगाल से कूंच किया। बादशाह ने भी यह सुनकर अपने पुत्र को ५०००० सिपाहियों की सेना देकर आगरे की ओर भेजा। फर्रुखसियर ने सैयद अब्दुल्ला खां (इलाहाबाद के सूबेदार) को पत्र लिखा, जिसके अनुसार सैयद ने सराय आलमचन्द में डेरा डालकर शत्रु का रास्ता रोक लिया।

---

* हिन्दीसाहित्य का इतिहास (नवीनतम संस्करण) पृ० ३२५।

† हिन्दीसाहित्य का इतिहास (नवीनतम संस्करण) पृ० ३९८।

दोनों सेनाओं की पहली मुठभेड़ सराय आलमचन्द में ही हुई जो इलाहाबाद जिलेमें भरवारी स्टेशन के पास है। शाही सेना की ओर से अली असारखाँ, जुलफिकारखाँ, जैनदीखाँ, फतह अलीखाँ आदि उमराव सम्मिलित थे और फर्रुखसियर के पक्ष में सैफुद्दी अलीखाँ, निजामुद्दी अलीखाँ, सिराजुद्दी अलीखाँ, राजा रतनचन्द, दरवेश अलीखाँ आदि कितने ही वीर थे। इसयुद्ध मे फर्रुखसियर के पक्ष की विजय हुई और शैफुद्दी अलीखाँ तथा निजामुद्दी अलीखाँ दोनो विजयी सरदार इलाहाबाद के सूबेदार अब्दुल्लाखाँ के पास पहुँचे। सैयद ने सैनिकों को पारितोपिक-वितरण किया और इस विजय का समाचार तुरन्त फर्रुखसियर के पास भिजवाया जो उस समय पटने मे था।

द्वितोय युद्ध फतेहपुर जिले के विंदकी नामक स्थान मे हुआ। इसमे जहाँदारशाह के पक्ष मे लड़ने वाले मुख्तार खाँ की पराजय हुई और वह मारा गया। शाही सेना तितर-वितर हो गई। फर्रुखसियर के सैनिकों ने खूब लूटमार की।

दूसरे दिन फर्रुखसियर ने दरबार किया और अपने सहायकों को ऊँचे ऊँचे पद तथा खिताबों से विभूपित किया। इधर सैयद अब्दुल्ला खाँ ने अपने बुद्धिमान वजीर को दिल्ली भेज कर वहाँ की सच्ची परिस्थिति का पता लगा लिया। ज्ञात हुआ कि जहाँदारशाह रात-दिन नशे मे चूर रहता है और उसका दरबार भी चंडखाना बन रहा है। रात-दिन ढोल-मृदंग, शराब-अफीम, रंडी-छोकरों की ही धूम है।

परिस्थिति अनुकूल देखकर फर्रुखसियर शीघ्रता से आगे बढ़ा। अंतिम युद्ध आगरे के पास सिकन्दरे मे पूस सुदी १५ सं० १७६९ को आरम्भ हुआ जिसमे जहाँदारशाह स्वयं उपस्थित

था । घोर युद्ध हुआ जिसके अंत में जहाँदारशाह पूर्णरूप से पराजित हुआ और दिल्ली की ओर भागा ।

इन्हीं तीनों युद्धों का वर्णन विस्तार से जंगनामे में किया गया है । यह ग्रंथ ६६ पृष्ठों में समाप्त हुआ है । यद्यपि इसमें तीन जंगों का वर्णन है किन्तु इसको अध्याय इत्यादि में विभाजित नहीं किया गया है । प्रस्तुत-संस्करण स्व० राधाकृष्णदास तथा किशोरीलाल जी द्वारा संपादित है और नागरी प्रचारणी सभा की ओर से प्रकाशित हुआ है । विलियम अरविन साहब को श्रीराधाकृष्णदास की ही कृपा से इसके कुछ अंश प्राप्त हुए थे, जिनको उन्होंने सन् १६०० में अपनी टिप्पणियों के साथ बंगाल-एशियाटिक-सोसाइटी के तत्वावधान में प्रकाशित कराया था ।

ऐतिहासिकता

बादशाह बहादुरशाह की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्रों में सिंहासन के लिये जो परस्पर संघर्ष हुआ, जंगनामे में उसी का वर्णन है । बहादुरशाह के चार पुत्र थे—(१) मोइज़ुद्दीन (जहाँदारशाह) (२) अजीमुश्शान (३) रफीउश्शान (४) शाहजहाँ बादशाह का विशेष प्रेम द्वितीय पुत्र अजीमुश्शान से था । उसकी मृत्यु के समय उसके पास लाहौर में अजीमुश्शान ही था । किंतु उसपर शेष तीनों भाइयों ने मिलकर आक्रमण कर दिया ।[1] उसका हाथी एक गोला खाकर ऐसा बिगड़ा कि पीलवान तथा अजीमुश्शान के साथ रावी में कूदकर डूब गया । तीनों भाइयों में बराबर राज्य बाँटने का विचार जहाँदारशाह को पसंद न आया और उसने दोनों भाइयों पर आक्रमण कर उन्हें

---

१ स्मिथ; हिस्ट्री ऑव इन्डिया, पृ० ४१६ ।

मार डाला और अपने को दिल्ली का सम्राट घोषित किया।*
इस कार्य में आसदखाँ के पुत्र जुल्फिकारखाँ ने बड़ी सहायता पहुँचाई।† जंगनामा मे इसका उल्लेख निम्नलिखित रूप में है—

"फेरि खबरि दिन दसक मैं, मौंची पहुँची आइ।
जुलफिकार उमराव सब, मिले मौंजदिहि जाइ ॥१८॥
× × × ×
मौजदीन सिर छत्रधरि, कुतबा कुटिब पढाइ।
चल्यौ दिली को चहुँ दिसा, लिखि फरमान पठाइ ॥२०॥
[जं० ना०; पृ० १]

फर्रुखसियर अजीमुश्शान का पुत्र था। उसको जब अपने पिता की मृत्यु का समाचार मिला तो दलबल के साथ वह दिल्ली पर आक्रमण करने के विचार मे चला। जहाँदारशाह ने भी अपने पुत्र को ५०००० सैनिकों के साथ सामना करने के लिये भेजा। श्रीधर ने इस युद्ध के प्रसंग मे जितने नाम गिनाए है वे सब तो किसी इतिहास मे नहीं मिलते (मिल भी नहीं सकते कारण कि वे प्रायः २५० से अधिक ही हैं) किन्तु उनमे से अधिकांश, ऐतिहासिक है। उदाहरण के लिये जुलफिकारखाँ (वजीर) सैयद अब्दुल्लाखाँ, "कुतबुल्मुल्क" (सैयद भाइयों में से एक तथा इलाहाबाद का सूबेदार) हुसेन अलीखाँ, (दूसरा सैयद भाई और पटना का सूबेदार) कोकिल ताशखाँ, आज्ञमखाँ तथा कुली अलीखाँ इत्यादि के नाम प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

इतिहासो मे जहाँदारशाह को बड़ा विलासी तथा अयोग्य चित्रित किया गया है। वह दिन-रात शराब मे मस्त रहता था

* सरकार और दत्त, मॉडर्न इण्डियन हिस्ट्री; पृ० २२०।
† वही; पृ० २२०।

और उसका दरबार भी ऐसे ही दुष्ट व्यक्तियों से भरा रहता था। उसने "लाल कुंवर"❀ नामक एक वेश्या को महल में रख लिया था। वह सारे कार्य उसी के संकेत पर करता था। फल यह हुआ कि सच्चे ईमानदार आदमियों को हटाकर उनके स्थान पर लालकुंवर से सम्बन्धित व्यक्तियों को ऊँचे-ऊँचे पद दिये गए।†

श्रीधर ने यद्यपि लालकुंवर का नाम नहीं दिया है फिर भी जहाँदारशाह का चरित्र-चित्रण वैसा ही किया है जैसा इतिहासों में मिलता है। निम्न-लिखित पंक्तियों से यह बात सिद्ध हो जाती है :—

"इत मौजदीं मगरूर मस्त अलस्त अमलैं खाइकै।
सिगरे कलाँवत है अमीर भरे रहे चित चाइकै॥
× × × ×
दारू सु दारू भरत गोली अमल गोली रंग की।
मिरदंग ढोलक तोप औसुर नाइ रीति तुफंगकी॥
× × × ×
कहुं छोकरे बागे बने दरबार कुंजरिन राहकी।
यह मौजदीं की मौज है गति और नाहिं निवाह की॥"

[ज० ना० पृ० २८]

अरविन साहब ने "बंगाल-एशियाटिक-सोसाइटी" वाले लेख में जंगनामा की कुछ घटनाओं को अनैतिहासिक सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।

सैयद अब्दुल्ला-इलाबाद का सूबेदार था, इसका पहले ही निर्देश किया जा चुका है। किन्तु जंगनामे में उसे पटना के

❀ लाल कुंवर, प्रसिद्ध गायक तानसेन की वंशज थी।

† अरवेन; 'दि फाल ऑव दि मुगल इम्पायर; पृ० १३२,
सरकार और दत्त, मॉर्डन इन्डियन हिस्ट्री, पृ० २२१।

युद्ध मे उपस्थित दिखलाया गया है । उसमे मीरजुमला को जहाँदारशाह के विरुद्ध लड़ते हुए चित्रित किया गया है और युद्ध की तिथि पूस सुदी १५ सं० १७६६ दी गई है। अरविन के अनुसार ये तीनो अशुद्ध है। किन्तु यह उनका भ्रम था।

पहली घटना के सम्बन्ध मे कहा जा सकता है कि पटना और इलाहाबाद मे इतना अंतर नही है कि सैयद अब्दुल्ला का दो चार दिन के लिये पटने मे पहुँच जाना असम्भव कहा जा सके। सम्भव है फर्रुखसियर की सहायता करने के निमित्त वह दो-एक दिन के लिए वहाँ पहुँच गया हो।

दूसरी घटना के सम्बन्ध मे सम्पादक महोदय (अरविन) को अर्थ समझने में ही भ्रम हो गया है! जिस दोहे से यह भ्रम उत्पन्न हुआ वह इस प्रकार है—

"तहँ मीर जुमला वीर बुद्धि गम्भीर बाहु विसाल।
मडिरह्यो मौजुद्दीन को कटरु गहि करवाल॥"

यहाँ उन्होने "मड़ि" का अर्थ विरोध मे युद्ध करना लिया है। जब कि वास्तविक अर्थ है 'मिल जाना'।❀

तिथि के सम्बन्ध मे अरविन साहब का मत अवश्य मान्य है। जगनामे मे तीसरे युद्ध की तिथि निम्नलिखित रूप मे दी गई है—

"सम्वत् सु सत्रह से ओन्हत्तरि पूप पून्यो बुधतहाँ।
सन् सो इग्यारह तेंतिसा माहे मुहर्रम चौदहाँ।"

[जं० ना०; पृ० २५]

इसप्रकार श्रीधर के अनुसार यह तिथि पूस सुदी १५ सं० १७६६ बुधवार, चौदहवाँ मोहर्रम सन् ११३३ हिजरी को पड़ती है। अरविन साहब ने दूसरे इतिहासों के साक्ष्यो तथा गणित

❀ जंगनामा, भूमिका; पृ० २३-२४।

के आधार पर इस तिथि को माघ वदी १०, सं० १७६६ अथवा १३ जुलहिज्ज, सन् ११२४ हि० (ता० ११ जनवरी सन् १७१३ ई०) को पड़ना निश्चित किया है।*

आलोचना

धन-प्राप्ति के लोभ मे पड़कर फर्रुखसियर को काव्य का चरित्र-नायक चुनने के कारण 'जंगनामा' एक साधारण कोटि की रचना हो गई है। ग्रन्थ भर मे केवल थोड़ा सा अंतिम अंश, जिसमे कवित्त और छप्पय ही अधिक है, सरस हो पाये है, अन्यथा अनावश्यक नामो तथा नीरस-पंक्तियो से ही खीच तान कर ग्रन्थ लम्बा करने का प्रयत्न दृष्टिगोचर होता है। ग्रंथ के आरभिक १६ पृष्ठो (पृ० ७-२२) मे केवल नामो की ही भरमार है। गणना करने पर २५० से अधिक नाम मिलते है। ६६ पृष्ठो के ग्रन्थ में सोलह पृष्ठ केवल नामो से ही रंगे हुए है। कुछ स्थल तो ऐसे हैं जहाँ चार शब्दो की पंक्तिवाले छन्दो मे निरन्तर एक-एक पंक्ति मे एक-एक नाम मिलता चला जाता है। एक स्थान पर चार पृष्ठो (१८-२३) की १२० पक्तियो मे १०० से अधिक नाम आ गए हैं। उदाहरण के लिये नीचे कुछ पक्तियाँ उद्धृत की जाती है—

"फतेह अली सैद संगी।
सैफ सैफुल्लाह जगी॥
असद अलीखाँ वीर धाय।
अस्व आतश खाँन पाय।॥
रुज्यौ रहमत खान वलहद।
मुत्तहौवर खान जेहि पद॥

---

*जगनामा, भूमिका; पृ० १४।

मैद अनवर मो धनुद्धर।
मीर मुद्दसनखाँ मजयो फिर॥"

[जं० ना०; पृ० १८]

इन मीरों और खानों की धर-पकड़ में रसचर्चाद्दनि के दर्शन कहाँ? फिर बीच-बीच में कहीं-कहीं डिंगल कविता की मबुना-सुरी वाली परंपरा का भद्दा अनुकरण भी मिल जाता है।

यथा—

"गजे पक्खरो भक्खरो जक्ख घोरे।
मनो मान जूके रगी जोर जोरे॥
करैं पौन भी पौन को पायदोरी।
अरब्बी गरब्बी तुरीले संभारी॥"

[जं० ना०; पृ० ७२]

दूसरी त्रुटि छंदों के चुनाव के सम्बन्ध में है। इन्होंने ग्रंथ भर में बारह प्रकार के छंदों का प्रयोग किया है, जिनमें केवल छप्पय कवित्त तथा भुजंगप्रयात ही वीर-रस प्रधान काव्य के उपयुक्त हैं, शेष ६ प्रकार के छन्दों में वीर-रस की सफल-कविता करना प्रतिभाशाली कवियों के लिये भी कठिन है। पादाकुल, अधमा, मधुभार, अर्द्धक, हरिगीतिका, हुलास, आदि ऐसे ही छंद हैं। कहीं-कहीं एक छंद के बीच में असावधानी के कारण दूसरे प्रकार का छंद अकारण ही घुस पड़ा है। उदाहरण के लिये हुलास के बीच में अकेला भुजंगप्रयात आ गया है।

[जं० ना०, पृ० ४०]

इनके अतिरिक्त कहीं-कहीं 'यति-भंग' तथा 'छंदोभंग' दोष भी मिल जाते हैं।

जैसे—

"अति दलभर दवत पुहमिम पवत, दादभट सवत धर्मनि नवैं॥"

इसमें ढब्बत, पब्बत, सुब्बत करके पढ़ने से यति ठीक बैठती है। इसीप्रकार एक अन्य उदाहरण देखिए—

"गिरिधर लाल बहादुर बीर समसेर गाहि कर पातसाही का पनाहा।"

इसमें 'सम' को 'सेर' से पृथक करके पढ़ने से छन्द ठीक बैठता है।

जंगनामा के कवि की विशेषता यह है कि सूदन, मान आदि की भाँति इन्होंने शब्द-नाद का अधिक प्रयोग नहीं किया है। फिर भी कहीं-कहीं निरर्थक-शब्दों का उपयोग मिलता है। जैसे—

"भराभरी गोलन की भराभरी तेगकी।
कटारिन की कराकरी तरातरी तीरकी॥"

[ज० ना०, पृ० ६४]

इन त्रुटियों के रहते हुए भी कहीं-कहीं घटनाओं का बड़ा सजीव-चित्रण मिल जाता है। उदाहरणस्वरूप एक पद नीचे उद्धृत किया जाता है। यह पद्य उस समय का है जब जहाँदार शाह का शराबी दरबार जमा हुआ था और इसीके बीच उसकी सेना के पराजय का समाचार एक दूत द्वारा मिलता है। उस समय के रंग में भंग का वर्णन कितना सुन्दर है—

"यह सुनत एजुद्दीन भाग्यो फौज सब सर्वैभगी।
वह सकल मजलिस मौज में इकबारगी हुससों पगी॥
तब लगी सुख विष सी गिरी अरु गीत गारी सी लगी।
अँग अमल की लाजीवटी तदबीर औंडर रिस जगी॥
कहुँ परी टिनगत ढोलकी सुधि ताल घुंघरू की गई।
सब गयो मद छुटि छाकसो रहि ऊहि आहि दई दई॥

[ज० ना० पृ० २९]

भय का कितना सजीव-चित्रण है। किन्तु साथ ही यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि ऐसे स्थल बहुत कम हैं। जैसा पहले कहा जा चुका है, ग्रंथ का अंतिम अंश (१७ पृष्ठ) साहित्यक-दृष्टि से उत्तम है। कारण यह है कि उसमें कवित्त और छप्पय ही अधिक हैं, जो वीर-रस के लिए सर्वथा उपयुक्त हैं। उदाहरणस्वरूप एक कवित्त नीचे उद्धृत किया जाता है—

"भालनि सों भाला भिरयौ बरछासों बरछनि,
 भिरे समसेर समसेरनि सुरंग से।
तीरन को कीनो तन तीरनि सुनीक नोक,
 तोरादार जोरन न पावत सुफंग मैं।
जंग सुलतानी मैं फाजी कैसौ कीनो काम,
 श्रीधर छबीलेराम राजा रन रंग मैं।
साढ़े तीन हाथ कद दसहथा हाथी चढ्यौ
 दोई हाथ होत है हजार हाथ जंग मैं॥"

[ज० ना०; पृ० ६२]

साराश यह कि श्रीधर में उत्तम काव्य-रचना की प्रतिभा वर्तमान थी अवश्य, किन्तु मुद्रा के लोभ में पड़कर कवि को उसे कृत्रिमता का बाना पहनाना पड़ा। मुद्रा-प्राप्ति के लोभ में उसे फर्रुखसियर जैसे बादशाह की विरुदावली गानी पड़ी और जैनसाधुओं को ब्रह्मा-विष्णु-महेश तक बनाना पड़ा तथा अपने आश्रयदाता को प्रसन्न करने के लिए नायिकाभेद-ग्रन्थ लिखना पड़ा।

भाषा

जंगनामा की भाषा परिष्कृत तथा व्याकरण सम्मत व्रजभाषा है; परन्तु जैसा कि उसकाल के अन्य कवियों

ने किया है, श्रीधर ने भी कहीं-कहीं डिंगल और बुंदेली के शब्दों का प्रयोग किया है। वस्तुत ऐसे प्रयोग अपवाद स्वरूप ही आये हैं। उदाहरणार्थ निम्नलिखित-पद्य में डिंगल के रूप रखे गये हैं—

परी पक्खरैं भालरा भूल भापैं।

× × × × ×

सजे पक्खरो अक्खरो लक्ख घोरे॥

इसीप्रकार बुंदेली के शब्द भी यत्र-तत्र स्वतंत्रता पूर्वक रखे गये हैं। 'मिले ओपची तोपची यों घनेरे' में 'ओपची' शब्द कुछ विद्वानों की दृष्टि में केवल तुक मिलाने के लिए कवि द्वारा गढ़ा गया है। परन्तु यह कथन निर्विवाद नहीं। कारण यह है कि यह शब्द पद्माकर और लाल जैसे बुंदेलखण्डी कवियों की रचनाओं में भी आया है। वास्तव में यह शब्द बुंदेली का ही है और यहाँ के विशेषण के रूप में प्रयुक्त है।

डिंगल की द्वित्त-वर्णों वाली पदावलियाँ भी अधिक प्रयुक्त हुई हैं—

भट्ट ठट्ट दट्ट मट्ट भट्टहरि आमट्टे हरि।
उद्धत जुद्धत क्रुद्ध सुद्धगाजत जिमि केहरि॥

अथवा

कोपप्पकरि पयानप्पथि घन ध्वानद्धलक्त।
लच्छच्छहरि वरच्छच्छवि वर स्वच्छच्छत्रक्त॥

इनकी भाषा में अवधी का पुट भी पाया जाता है—

दुहूँ ओर फौजैं साजि यों गलगाजि भट ठाढ़े भये।
खुर धार भार दुधार सो घटि छार सूरज भंप्ये।

लाल, मान आदि की भाँति लम्बी सूचियाँ गिनाने की प्रवृत्ति से बचे रहने के कारण श्रीधर की भाषा अधिक गम्भीर और प्रभावशाली हो गई है।

कवि ने शब्दालंकारों में यमक का प्रयोग विशेषरूप से किया है। कहीं-कहीं ये प्रयोग सुन्दर बन पड़े हैं—

'संग के तन खान दौरा। मनहुँ उनको खान दौरा।'

में 'खान' शब्द का प्रयोग ऐसा ही है। इसीप्रकार निम्नलिखित पद में 'दान' शब्द के प्रयोग में यमकालंकार की सुन्दर छटा है।

जे सुमन दान देत हैं। जिय देत भागे ठगठगे।
जे दान निरखे दान में। जिय दान हू में जगमगे।

अनुप्रास के भी कहीं-कहीं सुन्दर उदाहरण मिलते हैं परन्तु कवि उसके लिए प्रयत्नशील नहीं दिखाई पड़ता। निम्नलिखित पंक्तियों में अलंकार का निर्वाह स्वाभाविकरूप से हुआ है।

खोपरा लौं खोपरान फोरैं गन क्त गद,
पोरी लौं पलासी खाल खैंचि खैंचि खात है।
पाखर से खापरनि चहुवा चुरैलनि के,
चाइ भरे चर चर चपरि चबात हैं।

जंगनामा
फर्रुखसियर-जहांदारशाह
युद्ध-वर्णन

छप्पय

फर्रुकसियर समत्थ शाहजहाँ दग सज्जयो ।
पक्खर पक्खरि बहुल बार बारन दल गज्जयो ।
श्रीघर धौंसा घमक घोर दसहूँ दिसान भर ।
चमकत नेजे फहर बान बैरख निसान बर ।
भुव डलत मलत जेहि दिग्गि चलत, मक्क मोर चहुँ अक्क हुव ।
अति अक्क धुंधरित धूरि मढ़ि आफताब ध्रुव लोक बुव ।

कौन सबल बल उथपि निबल बलकाहि सुथप्पिहि ।
केहि महीप को मुलुक मीहि अब काहि समप्पिहि ।
काहि पाँय गज रज्ज करिहि केहि पील पीठि पर ।
खग्ग धर्निहिं केहि थरिहिं ढरिहिं केहि तमकि तेग तर ।
अबहि मँडहि खँड हं सों केहि, बड बाढ गढ़पति थरथर्‌या ।
सजि शहंशाह फर्रुखसियर, सो अब औरंग हम पग धरयो ।

भुजगप्रयात छन्द

दुहू ओर साजे महा मत्त दंती ।
सजे पक्खरों लवलकी पूर पन्ती ।
गड़ादार घेरें सिरी कट्ट घंटा ।
गजे मेघ मानो बजें घोर घंटा ।
घटा स्याम सी दीह ता खिंधिमा पै ।
परी पक्खरें फालरा भूल झाँपे ।

सजे पक्खरो भक्खरों लक्ख घोरे ।
मनो भानुजू के रथी जोर जोरे ।
चले चाइ सों चंचले चाल बाँकी ।
दर्याइ तुरकी तजीले इराँकी ।
करैं पौन सी पौन की पायदारी ।
अरब्बी गरब्बी खुरीले खंभारी ।
नचै नाटकी से पटी के चन्हावी ।
कछी पीठ पूठौ पले नीर रावी ।
सजे संदली और समुंदे सुरंगे ।
कबूतो बने फूलवारी सुअंगे ।
सजे ओज संजाफ, नीले हरीले ।
मुसुक्की सजे पञ्च कल्यान पीले ।
बड़े डील के कान छोटे नवीने ।
सुचौरी खुरी चाकरी जासु सीने ।
बड़े चंचलों नैन के, मुक्ख साँचे ।
खुरी पाव मूमै घनी दोप बाँचे ।
सजे साजियों चारिहूँ ओर योधा ।
सजे साज लोहा बँटो कुत्त क्रधा ।
पिले चारिहूँ ओर सूबे गरूरी ।
जिन्हों बार के शत्रु की फौज चूरी ।
कहाँ लों कहौं फौज में सूर राजे ।
कितेको बली लै बंदूखें गराजे ।
सबै सूरवाँ बीर बाँके बनैते ।
सजे साज बाजी चढे हाँक दै ते ।
कढ़े फौज सों डाँक घोरें धपावें ।
किते कूद कै कै सु भाले फिरावें ।
लख्यो दूसरी ओर गाढ़ो धनी को ।

चढ़ो कोपि के पूत दिल्ली धनी को।
दुहूँ ओर ठाढी चमू वाहि रोकैं।
दुहूँ ओर की फौज ठाढ़ी बिलोके।
सुफरु'कसियर शाहि के जोर सूबे।
पिले चारिहूँ अर साजे अजूबे।
बजी दीह धौंसानि आवाज अच्छी।
चहूँघा लखीजै बरच्छो बरच्छी।
छुटै त्यो अरावे उठी धूर भारी।
धुवाँ की उठी घुंघुरारी अँध्यारी।
चढ़े रोशनो ऊपरी बान छूटै।
मनो आसमानी महा लूक टूटै।
पिले चट को खट के चारि फेरे।
मिले ओंपची तोपची यों घनेरे।
चहूँ फौज की वीरता की बड़ाई।
चमूँ शत्रु की चूर कै कै हटाई।
चली उत्तरी फौज के गवँ ऐंठे।
महा मोरचा भीड़ि के पेलि पैठे।
लख्यो एजुदीं बार छूटो दुवारो।
परी भाग भाग्यो तर्फै कोह नारो।
सँभारे न घोरे रथी हेम हाथी।
सँभारे न कोऊ कछू संग साथी।
किहूँ छाँडि घोरैनि डारयो हथ्यारो।
किहूँ भाग सों आगेही पंथ धारो।
करें कोऊ हाहा परे कोऊ पैयाँ।
चले रामरे गाँव झेझा बकैयाँ।
घुसे चीहरो भागि केते निकामी।
किते को परे बन्दि नामी निनामी।

किते को गुमानो गरूरे निछाए।
बड़े हौंसिला कै तिया संग लाए।
तिन्हैं छोड़ि भागे छुटी चाल बाँकी।
गये फूटि ताले फटो हाथ नाकी।
सु रोवै असीले फसीले सहेली।
पुकारै खुदा आय है कौन मेली।
गरोहा बरो झाँकि झाँके झुरोखैं।
सबै मौजदी कों भरे नैन कोसैं।
कहूँ बैदरा को बढ़ी धूम धाई।
चहूँ तुच्च लुच्चानि ले आग लाई।
बरैं छावनी छाह डेरा सुभारी।
महाभीम फैली धुवाँ की अँध्यारी।
कहूँ आँच के तेज सों ताल फूटैं।
कहूँ वैदरा बीर बाजार लूटैं।
कहूँ बाँस की गाँठ फूटैं पटक्कैं।
चटापट्ट पाषान भारी पटक्कैं।
लुटैं केसरों दाख दारयो छुहारो।
लुटै चारु कस्तूरिका वस्त्र सारो।
कहूँ होत मोती बरैं चूर चूना।
कहूँ लै लुटेरे करैं मोट दूना।
जरैं चार आचार जूरी चिरौंजी।
कहूँ कौलगट्ट कसेरू करोंजी।
जरैं औ लुटैं चीर चीरा जरी के।
परे मोट के मोट लूटैं परी के।
भये वैदरा जौहरी लूटि लूटैं।
छिटैं ज्वारि लौं मोट मुक्तानि हूटैं।
किती तो जरै हाय हा रट्ट लागी।

क्रिती कामिनी दामिनी रुप भागी।

हरिगीता छन्द

दुहूँ ओर फौजें साजि यों गल गाजि भट ठाढे भए।
बाजे नगारे फीलवारे घम्म धुनि धुव कम्पए।
खुर थार भार दुधार सों छुटि छार सूरज झंपए।
तहवहलकी झुकि मेरु हल्लत पहल सम भुव कंपए।
दुहुँ ओर फौजनि ओज सों रन मौज देखा देख भो।
हथनाल तोपै बान जाल बिशाल गरज अलेख भो।
घोर नाल अँदोर दुहुँ दल रह कलाम्ब विशेष भो।
फर बजी बहकि वदूख अगनित तित बनैतनि तेख भो।
कड कडाकड सों अरावे छुटत टपकनि टाप की।
चहुँ ओर घोर घटा मदी धुंवधार तोप तराब की।
बर बान बगरत, बीजुरी सन गोल ओला थाप की।
नहि पहर एक पिछानि काहू रही पर की आपकी।
छुटि गयो सो धुंधुकार त्यां भिनुसार सों दुहु दिसि भयो।
ललकार बीर अमीर सांवत चोप सरकर बर लयो।
टप करत आगे बाजि बागे मौज मोद मने भयो।
बज उठे मारू मारु मारु अँदोर रनमण्डल छयो।
तहँ तीर तर तर बान सर नर सुभट भर गोला चले।
पग पिलत आँगहि आंगही सांवंत भूप भले चले।
भट लालमुख सुख भरे पीरे रंग कायर हलहले।
जिमि देखि जाचक दानि सुखमुख सूम दुखमुख वे फले।
इत उत दुहूं दल के जितै जे बीर बीर बीरी घिरे।
ते करन साके बलिक बांके हांकि भट भट सों भिरे।
शमसेर सरकि सिरोह बार मँभार सांवत सिर चिरे।
दीनी झमाझम झमकि झर झर झूमि झूमि पिते गिरे।

तहँ दौरि अगवर ह्वै सिधारयो धनी मुशरफ मीर है।
तिन मीर जुजन्क मीर अशरफ तासु पीर गुबीर है।
तब जुलफिकार गह्यो महाबल जुलफिकार अमीर है।
झमकी दुधारनि मार सार दुधार धीर धीर है।
तहँ अलीअसगरखाँ महाबल मस्ति पहुँचो आइ कै।
फिर जैनदीखाँ वीर पहुँचो तेग अंग अंगाइ कै।
फत्तहअलीखाँ सफशिकिनखाँ भये शामिल आइ कै।
पहुँचो हुसेनअलीयखाँ धामे हिरोल बनाइ कै।
सरदार तिनहिं हुसेनअलीखाँ लै अमीरन संग है।
रन भिर्‌यो जुल्ज़फिकारखाँ हमराह गाढे अंग है।
फर मैं फराफर होत तेग कटार फटक्कु फंग है।
तहँ तीर तरकस ख्वै खाली भये जात निषंग है।
सावत सेद हुसेनअली सों जोर जैतक साथ है।
तहँ हत्थहत्थनि मत्थमत्थनि करति लत्थनि पत्थ है।
गहि जब्बर हत्थर करें तत्थर परे बिरथ बितत्थ है।
उहि सत्थ वार समत्थ ह्वै एक मत्थगो बिन मत्थ है।
तब मैट अशरफ अगहरो भाई मुशर्रफ मीर को।
समसार तासु अंगावतो अंग अंग हो रन धीर को।
हेरो सुहूरनि हाथ प्यालो हरखियो हिय वीर को।
लीनी शहादति साहिबी सुरलोक बुद्धि गंभीर को।
पेल्यो मुशर्रफ मीर पालनि पीलवान जुझाइ कै।
तब अली असगरखाँ पिल्यो फर फार अंग अंगाइ कै।
सुबजैनदीखाँ गहि जुनब्बी फर कमान चढ़ाइ कै।
फत्तहअलीखाँ शफशिकिनखाँ भये अगहर आइ कै।
इन सबनि जाइ अंगाइ घायनि सलिल लगाई जूझियो।
किरवान गहि गहि जात रहि रहि एक एक अरूझियो।
फैली फुलंगें सार सारनि बजत परत न सूझियो।

फत्तहअलीखाँ शफशिकिनखाँ जैनदींखां जूझियो।
उत जुल्फिकारहि खान के संग के अमीर किते गिरे।
ठहराइ सकत न पाइ लखि दल आपु आइ किए थिरे।
हुस्सेनली खां भी उतारु पिले जंगी मुंढ चिरे।
उत भो उतारु जुल्फिकार दुधार दोऊ भट भिरे।
दोऊ अमीरल उम्मराव भिरे दोऊ तेहा भरे।
हातिम दोऊ रुस्तम दोऊ कायम दोऊ रन करवरे।
शमशेर सरकि सिरोइ की सांवत ये दोऊ लरे।
घन घाइ खाइ अंगाइ अंगनि अटल ह्वै दोऊ लरे।
मुखत्यारखां जावांजखां जाँनिसारखां आटोप कै।
सादिक सु लुतफुल्लाहखां आयो महाबल चोप कै।
फिर दिल दिलेर अलीय खां उमराव केतक कोप कै।
जिहि ओर आजमखां तहां फर लियो फौजनि छोप कै।
तब मारु मारु सबै रु हां हां हां दुहूं दल ह्वै रह्यो।
राजा छबीलेराम आजमखां बली कर वह गह्यो।
सुजतां कुलीखां सैदशेखर सूखियतखां रिस भर्यो।
फिर नेक कदम फतेह कर श्रीधर सुकवि जग जस लह्यो।
तहं पिले बखतर-पोस भरे महा धमकी मही।
गिरवान गहि गहि जात रहि रहि हह हाहंरि ह्वै रही।
कागने तरफन तीर की बर बान बरखन भर सही।
तरवारि ते तह वार त्यों अगवत चलावत हरखही।
तहं कंपत कायर गात कदली पात बात मनो लगे।
जे सूम दान न देत हे जिय देत भागे ठग ठगे।
जे दान निरखे दान में जिय दान हूं मैं जगमगे।
मुख लाल रंग प्रसन्नता हिगुं लाल रंग मनो रंगे।
राजा छबीलेराम को जंगी महाबत जूझियो।
मैं मेत मुख रुख फिरत लखि बर बीर सन मंह मूझियो।

तब आपु दै फल दै, अंगूठा जोर चरत असूझियो।
रनथंभ पीलहि थाँभि पेखि लगाइ राखो लूझियो।
राजा छबीलेरामजू को वंश सजि फौजें भली।
रन मड्यो रैयाराय राव गुलाब राव मही हली।
मुलत्यारखां बलवान की चतुरंग पृतना दलमली।
मुखत्यारखान समेति हाथी साथ जूझ्यो तेहि थली।
तब राज श्रीगिरधर बहादुर सुव बहादुर श्रौ फवै।
फर कोल हलि हला कियो दौरे महादल कै सबै।
दप कियो रैयाराय राव गुलाब राव जहा जबै।
सरदार सिगरे हांक दै दौरे दिलेर तहां तबै।
भगवन्तराय दिवान कायथ बीरवर काकोरिया।
तसु नंदराय सुवंस गहि किरवान टर वर टोरिया।
दर कियो वेनीराम नागर नौनिहाल अगोरिया।
फिरि शुजा सैद इमाम सेख सुपीर महमद पौरिया।
नर सूर मर बानी वली अफगां वतन चिहि टौलिया।
किरवान अहमदखां गही वह फौज फर वागै लिया।
फिरि सैद सुब शाकिर महम्मद मीर जिहिं रन ले लिया।
जसु वतन ओलमगोट रो सफजंग मैं जस फैलिया।
दौर्‌यो गुलाब साहेयुदींखां वीर आजम खान को।
दौर्‌यो वली सुलतांकुलीखां जिनै जस किरवान को।
रन मड्यो सेख रसूखियतखां जाहि सम बलवान को।
हरी कदम फत्तह नेक कदम जु देग तेगहु वान को।
नव्वाब आजम खां तहां फर भूमि हांकि हला कियो।
सुलतांकुलीखां बागवीर रसूखियतखां हूलियो।
भनि सुकवि श्रीधर नेक कदम सु फौज गुर गाढो हियो।
तहँ जबर जानीखान पर झर झरनि कैबर बरखियो।
नव्वाब आजमखां महाबल जबर जानीखां भिरो।

रह सत्थ आजम खां बली अंग अंग घन घायनि घिरो ।
शमशेर सर सर तीर तर तर मुख न काहू को फिरो ।
तहं हसित साथी सत्थ हाथी जूझि जानीखां गिरो ।
इतके भये सरदार साथी सहित सेर सुभाइ कै ।
उनके किते जूझे अरूझे रहे लोह अघाइ कै ।
नहिं लरत चलत न घर पर दोऊ अरे अरराइ कैं ।
वे लाख ये न हजार पूरे रहि रहे ठहराइ कैं ।
तब सैद कुतुबुलमुलुक वीर अमीर मनि रेला कियो ।
बंगश महम्मदखान शादीखान कर फर बर लियो ।
रन काज राजा रतनचन्द महाबली हिय हरखियो ।
जे कृष्णदास दिवान निज मुद्दी अलीखां को बियो ।
पुनि सैद अनवरखां समुद्दर खां संभारी तेग है ।
मंजू तयब तरब अरबनि यादगारो बेग हैं ।
सरदार बारहँ बार रुस्तमदस्त सद अनेग हैं ।
ये सैद अबदुल्लाहखांन रिकाब तेग फते गहैं ।
इत कियो हाँकि हलात दूनो आन उन आगी लियो ।
बलवान कोकिलताशखां तसु बीर आजम खां कियो ।
नौ शेरखान जुझार अतुल गफार हाक तहा दियो ॥
कछ लेत देत न रहकले हथनाल घन घुरनाल हैं ।
तूफान कहर तुफंग की फहरान बान विशाल हैं ।
तहं तीर सलभ समूह सम सुरलोक तर मर जाल हैं ।
असमान भानु विमान गो रुकि भयो धुंधूकाल है ।
तब बीर बीर निबरी भिरे मनु गहबरे भट भट भिरे ।
गजि उठो मारू मारु मारु पुकार करि फरि मुरु भिरे ।
बानैत गब्बी हे अरब्बी बीर गब्बी कर घिरे ।
तहं होत हूह फकाफकी फर मुख न काहू के फिरे ।
तब गहे कुतुबुलमुलुक के घर उतरि कोकिलताश खां ।

बंगश महम्मदखाँ इतै उत मीर आजमखान खाँ।
इत सूर साबीखान उत गोगेरीखाँ उनको कहाँ।
भट भिरे एकहि एक जे बबिरी पिंग हुँहुँ पहाँ।
उत सैद राजे खान अब्दुल्समुद अली मार्गे लियो।
इहि ओर राजा रतनचन्द गयंद चढ़ि रेला कियो।
सरदार इत उत के भिरे रन लंग पर्यान के बियो।
तरवारि तीर तुफंग साँगि कटार कै बर बरम्भियो।
जय कृष्णदास दिवान निजमुहीमखाँ खाँ को बढ़ो।
तबमैंद अनवर खाँ समुझ खान अगाहर ह्वै चढ़ो।
मजूर तैयब तरब साहब राय रोम महा मढ़ो।
लखि पिजनि कुतगुल मुत्तकखाँ नब पिक्कत रनरम हँ च चढ़ो।
चहुँ ओर फौजनि फौज मो मन मौज मार महा परी।
हथियार भार दुधार भर मनु मघा मेघन की झरी।
झिरि झिल्लम कुंडि कुरी कुरी फरिगइ बखतर की फरी।
करि मार मार संमार यार सभार सुनियत ललकरी।
घन-घटा घोर घमंड सो सम घुमड़ि फर फौजैं रही।
धोंसे धोंकारत गाज गाहि तरवारि चमकि छटा सही।
झर तीर गोलिन वार गोला परत ओला से तही।
महि मची मेदन गूद कीच कृपान सैयद जब गही।
मद भरे भ्रमत खरे मघाह अघार करिवर धरि अरैं।
सिर सरत ओनितधार मनहुँ पहार सो झरना झरैं।
बढि चली लोहुन की नदी लहरैं लरैं कहि को तरैं।
तेहि तीर दलदल मास का बलठान काहू का परैं।

कवित्त

फौजबल भुजबल मन मन सूबाबल,
श्रीधर हरीफन हरषि हहलावसो।

साहेब सर बुलंदखाँ नवाब करि फरे,
पत्थ के से हत्थ महाभारथ मचावतो।
जहाँ शाह मौजदीं रफीउलकदर कूटि,
जेवर जुलफिकार खानैं बाँधि ल्यावतो।
होतो हम राह जाहानूर के समर तो।
अजीम सों अजीम पातशाहो कौन पावतो।
सनमुख शाह जू के साजि सेन चारों अंग,
सैद अब्दुल्लहखाँ बीर आयो दल में।
बाजि उठ्यो मारू मारु मारु मो अँदोर जोर,
हाँके फौज बाँके पेलि पैठे रेल पल में।
श्रीधर भनत दोसतखाँ अगाह धाइ,
मुन कै चलाए भट वैसे चलाचल में।
वाह वाह कहैं पातशाह औ सिपाही सबै,
वाह वाह रह्यो है सचत दुहूँ दल में।

छप्पय

श्रीधर दलबल प्रबल लखि लोकपाल रह लज्जि।
महमद सालेह चोरजू चढ़त कटक बर सज्जि।
सज्जदल रनकज्ज जनप्प समज्जजयव्वर।
बंगगगहनि मतंगगगननि, उतुंगगिरिव्वर।
रंगगति सुरंगगगवन तुरंगगति गुर।
पच्छद्भर थिर कच्छकाव सुलच्छभर पुर।
लच्छ भट्ट टट्टिय चढ्यो महमद सालेह ज्वान।
धुजा बान झलकैं बजे उद्ध धुनि धुर ध्वान।
उद्धधुनि धुर ध्वान ढुकि सज युद्धज्जै भर।
लक्खम्भटरण दक्खन्नखुम सुवियक्खपक्के फर।
वार अवलिय उक्खारम्मपिक्खग याहच्चल किय।
बानविरकट कमानकठिन कृपानदुर लिय।

कर लिय खग कोप्या वली महम्मद साले ज्वान ।
अरि के वढि गढ़ मदनि पर किये सुकोपि पयान ।
कोपप्पकरि पयानप्पथि घन ध्वानद्धलकत ।
लच्छच्छहरि वरच्छच्छवि वर स्वच्छच्छलकत ।
युद्धज्जुरत सकुद्धभ्भटरण उद्दद्धर्मकिय ।
बाहक बलिव उछाहभ्भरि खग वाहव्वल किय ।
खगग्राह वलकिय वली महम्मद सालेह बीर ।
दुवन ठट्ट कट्टिय भयो श्रोनघ्घद भरि नीर ।
श्रोनघ्घद भरि नीरभ्भरित गंभीरग्गलकत ।
लुत्थरिन उलत्थ जलजिय जत्थत्थलकत ।
वीचच्चलन नगीचच्चलहर बीचच्चमकत ।
मुंडम्भरि करि कुम्भम्भरत सुभ्रम्भम्ममकत ।
महमद सालेह बीर कोपि भारी रन मंडेउ ।
अरि की प्रतन प्रचंड खंड खडन करि खंडेउ ।
गीध गृद्ध वेताल मास हर मुंड-माल लिय ।
रुहिरय रुहिर अपार पाइ भैरव गलगज्जिय ।
तकि शत्रु सूर को ग्रास कर श्रोन सिन्धु मज्जन कियो ।
लखि परब कृपानी रावरी मनहुँ दान उत्तम दियो ।

कवित्त

फौजनि की घटा की घमंड घोर घेरु करि,
मौज दीन मघवा के मत में उछाह भो ।
तोप गरजत तरवारि बीजु तरजत,
बरषत बाननि प्रबल चार्यो राह भो ।
तब गिरिवर कर धरि गिरिवरधर,
श्रीधर भनत ब्रज-मण्डल की छाँह भो ।
अब गिरिधरलाल बहादुर वीर,
समसेर गहि कर पातसाही को पनाह भो ।

माच्यो जोर जग रंग आजम अजीम जू सों,
गालिब गनीम आयो महमद गरूर है।
श्रीधर सरबुलन्दखाँ नवाब दौर के,
हिरौल ही हटायो कीनों चमू चकाचूर है।
मारि खानि खालि मैं बिदारि राउ दलपति,
गंजेउ जुलफिकारखान को गरूर है।
वाह वाह करे पातसाह औ सिपाह रही,
सही समसेर तेरी शाहि के हजूर है।
जहाँदारशाह शमशेर जोरे जेर करि,
जहाँ शाह रफीसान की ही कौन सी तथा।
आजम के संगन से जग में हरायो त्यों,
जुलफिकारखाँ को फेर लावतो वहै पथा।
श्रीधर सरबुलन्दखान किरवान धनी,
रुस्तम के काम कै घटावतो बडी कथा।
बार बार कहे पातशाह अफसोस करि,
हाय हमराह यो अजीमशाह के न था।
श्रीधर फरुकसाहि मौजदीं भिरै हैं दोऊ,
पूरो नेक कदम कों करम अल्लाह को।
कीनों खग बाह मोगलनि के दलनि भो,
हिरोल की पनाह जाके कोप की पनाह का।
गालिब गनीम गाज गंज मगरूरन को,
गरब को दलिक गजब गुमराह को।
देखे पातशाह उत शाह पायो निज दले,
बाह वाह करत सिपाह पातशाह को।
भारी पातशाह दोऊ अगारे अगारी लरैं,
धौंसन की दुहूँ ओर श्रीधर धुकार है।
बाजै बीर बीर गोला बान तरवारि तीर,

बाजे सार सार होत सोर मार मार हैं।
शेख खैरुल्लाह अलेख रन कीनो पैठे टिनो,
जुगनि के न्हुखे मसहारिन अहार हैं।
वाय खा ये वेसुमार पैठि दल अरि कै सु,
मार तें गिराये भीर बांके वेसुमार हैं।
बखतरपोस पखरैत फीलस्वारन को,
कारी घटा भारी ज्यों पयोद प्रलैकाल को।
श्रीधर भनत गाला बान सर भर भर,
बरषत थौंभे को 'करैरी तरवार को।
दिलाजाक दपटि हलीमखां बरग जाइ,
दल मिटि मार्‍यो मौजदीन विकराल को।
श्रोनित सलिल तट नाँचैं प्रेत पहपट,
घट घट घूंटैं कर खप्पर कपाल को।
इत गल गाजि चढ्यो फ़र्रुक्सियर शाहि,
उत मौजदीन करि भारी भट भरती।
तोप की डकारनि सो वीर हहकारनि सों,
धौंसा की धोकारनि धमकि उठी धरती।
श्रीधर नवाब फरजंदखाँ सु जंग जुरे,
जोगिनी अघायो जुग जुगनि की यरती।
हहर्‍यो हिरौल भीर गोल पै परी हों तूं न,
करतो हिरौली तौ हिरौले भीर परती।
मार्‍यो मौजदीने फर विफारि पलक बीच,
कीनों मौजदीन को कटकु अढ़ अढ़ है।
मीडि गढ़ आजम अजीम अजमति गढ़,
कूद्यो जटवारे के सकल मद्दी मढ़ है।
श्रीधर भनत महाराज श्री छबीलेराम,
तेरे वैरी बांची काहू सूर की न सट है।

जीत्यो च्यारो ओर मेरी फिकिर मो कीजे जोर,
ऐसे महाराज सों गहति गाढ़ो गढ़ है।
फिर मण्ड्यो श्रीधर छबीलेराम राजा,
पातशाह कों हिरोल पातशाहत को पाहरू।
तोप की तरापैं तारि गोला को गुलेल गनि,
पेलि दल गार्यो मौजदीने गहि गाहरू।
चढ़े हरि-हरि बम देपि आतपत्त थंभ,
जैत रन खंभ बीर बिक्रम उछाहरू।
सुरखरू आप भयो आबरू दिलीस पायो,
माहरू रफ़ीक भी मुखालिफ़ सिपाहरू।
भालनि सों भाला भिर्यो बरछा सों बरछानि,
सरे समसेर समसेरनि सुलग मैं।
तीरन को कीनो तन तीरनि तुनीर तोरु,
तोरादार जोरन न पावतु सुफग मैं।
जगं सुलतानी मैं कहानी कैसो कीनो काम,
श्रीधर छबीलेराम राजा रन रग मैं।
साढ़े तीनि हाथ कद दस हथा हाथी चढयो,
दोई हाथ होत हैं हजार हाथ जंग मैं।
श्रीधर अवाई देपि फ़रुक़सियर जू को,
आयो मत्त मोजदीं अनेक अभिलाख के।
धरिकु घमंड घोर माच्यो गड़ मुरि बागैं,
अढ़ियो छबीलेराम राजा मन माख के।
मारि पर दल हरखायो जूथ जोगिनी को,
करत बड़ाई सिशमकरहि साख के।
एके बीर कैयो लाखैं एक के न आन्यो मन,
एक ही गनत कैयो लाख कैयो लाख रे।
माच्यो जोर जंग दुहू ओर पातशाहनि सों,

उत तें उमडि दल मौजदीं को धायो है।
अंगद सो अडो पातशाहति पलटि डार्यो;
पूवी एतो आजमखाँ सबल बनैत मैं।
महा हुव भारथ को कमनैती पारथ की,
जैसे भीम भुजबल भाख्यो कुरुखेत मे।
श्रीधर कृपान गहि मुसलेहखान रन,
कीनो घमसान यों मसान हहरात हैं।
झूंडनि झंडूले प्रेत लोहू के प्रवाह परे,
छाती लरैं पौरैं पेलि पियत अन्हात हैं।
खोपरा लों खोपरिन फोरैं गलकत गट,
पेरी लों पलासी खाल खैंचि खैंचि खात है।
पाखर से खापरनि चहुवा चुरैलनि के,
चाइ भरे चर चर चपरि चबात हैं।

छप्पय

भट्ट ठट्ट डट भट्ट भट्ट हरि आभट्टे हरि।
उद्धत जुद्धत कुद्ध सुद्ध गज्जत जिमि केहरि।
बीर मुसल्लेह खाँ जलद उल्लद दल सज्जिय।
पक्खर पक्खर लक्ख स्याह सन्नाह समज्जिय।
बल तड़ित तेग तरपत कड़कि रस वर श्रीधर धर कुरेउ।
तहँ गोला पत्थर बित्थरिय सो अरि मत्थर थत्थरि थुरेउ।
अरि प्रतन प्रचंड खड खंडह करि खंडेउ।
गीध गृद्द बेताल मासहर मुंडमाल लिय।
रुहिर प रुहिर अपार पाइ भैरव गल गज्जिय।
तजि सत्तु सूर के प्रास कर श्रोन सिन्धु मज्जन किएउ।
लखि परत कृपानी रावरी मनहुँ दान उत्तम दिएउ।

कवित्त

आयो मौजदीन उत इततें फरुकसाहि,

दुहूँ ओर सोर ललकारें बीर बीर की।
भरा भरी गोलनि की झरा झरी तेग की,
कटारिन की कराकरी तरातरी तीर की।
श्रीधर बिलायो दौरि बीरन की भीर रुड,
मुडन को मेरु श्रोन सलिता गँभीर की।
वाह वाह करै पातसाह रु सिपाह सब,
देखो रे दिलेरी यारो मुशरफ मीर की।
कोऊ हूँढौ कोऊ बारो काहू मैं न गुग भारो,
कोऊ बारनारी बस मन में न आयो है।
सुन्दर सुजान सुजा सीलवंतु ओजवान,
दान पूरो एकै तोंहु विधि ने बनायो है।
श्रीधर भनत सानी जलालदी अकबर,
फरुकसियर पातसाह वर पायो है।
बाल पातशाहति सोयंवर कर करति,
तोहि देखि रीझि जयमाल पहिरायो है।
गेडी सो अरावो टारि भेडी सों बिदारि दल,
खलदल खूंदि कीनो छीन एजदीन को।
धावा करि पूरब में डावा ढारि फौजनि को,
मीन सो पकर लीनो शाहि मौजदीन को।
श्रीधर भनत पातशाहिन को पातशाह,
फरुकसियर भो पनाह दुहूँ दीन को।
मुलुक मुलुक दौरि फरदै फनूइनि को,
काँप्यो डरि गबर हरख बाढ्यो दीन को।
साजि दल फरुकसियर पातसाह-पति,
श्रीधर बहुत अब सहज शिकार है।
धूमर सुभासा मैं मराम इसफां कित,
सुनि जलधर धुनि धौंसा की धुकार है।

हवसाने हहल कँधारिन के खलमल,
बलक बदक सान जान न रुका रहे।
तारा दे केवारा दे केवारा दे के वारा देहि,
पौरि पौरि लंकपुर परत पुकार है।
दक्खिन दहेलि पेलि पच्छिम उदीची जीति,
पूरब अपूरब हठीलो हाथु लायो है।
श्रीधर शहनशाहि फरुकसियर नर,
सातो दीप सरहद हिन्द की मिलायो है।
दिन दिन बाढ़ति है बाढ़िहइ दिन दिन,
दिन दिन दूनो पातशाहति बढ़ायो है।
और पातशाह पातशाही पायों जब पाए,
तोसों पातशाह पातशाही जेब पायो है।
शादी शादियाने के उछाह आतपत्रनि के,
अङ्ग अङ्ग बाढ़े रङ्ग बाढ़े हैं रखत के।
तेरी पातशाही, पातशाही पायी जेब फल,
ठाढ़े नभ सुमन प्रसून बरखत के।
श्रीधर भनत पातशाहन को पातशाह,
फरुकसियर नर जबर नखत के।
तिनके बखत जे वे लखत तखत तोहिं,
बैठत तखत बढ़े बखत तखत के।

सूदन

सूदन के जीवन के विषय मे हिन्दी-संसार को अभी तक अधिक ज्ञान नहीं। न तो उनके जीवन-मरण की कोई प्रामाणिक तिथि मिलती है और न "सुजान-चरित्र" के अतिरिक्त किसी अन्य ग्रंथ का ही पता लगता है जिसमे कवि के संबंध मे कुछ पंक्तियाँ हों।

परिचय

'सुजान-चरित्र', मे केवल दो पंक्तियाँ आत्म-परिचयात्मक है, जिनसे केवल इतना ज्ञात होता है कि वे मथुरा निवासी माथुर चौबे थे और वसंत जी के पुत्र थे। वह सोरठा निम्न-लिखित है—

"मथुरापुर सुभ धाम, माथुर कुल उतपत्ति वर।
पिता बसंत सुनाम, सूदन जानहु सकल कवि।"

[सु० च० ३—१०]

यह सोरठा मंगलाचरण के उपरान्त हिन्दी के एक सौ पचहत्तर कवियो की सूची के पश्चात् आता है। कवियो के नाम भी काल-क्रम के अनुसार नहीं हैं, इसप्रकार केवल इतना कहा जा सकता है कि सूदन जी इन कवियो के परवर्ती या इनमे से कुछ के समकालीन रहे होंगे।

"सुजान-चरित्र" में महाराजा सूरजमल के सं० १८०२ (ठारे सैरु दुहोत्तरा*) से सं० १८१०† तक के युद्धो का विस्तृत वर्णन है। वर्णन विस्तार तथा रचनाशैली पर विचार करने

---

* सु० च० पृ० ७।

† वही; पृ० २२४।

से यह अनुमान होता है कि कवि ने अपनी आँखों-देखी-घटनाओं का वर्णन किया है। इससे इतना तो स्पष्ट है कि इनका कविता-काल सं० १८०२ से सं० १८१० वि० तक था।

"सुजान-चरित्र" मे राजा सूरजमल जाट के सम्पूर्ण जीवन की घटनाओं का वर्णन नहीं मिलता। उसके सप्तम "जंग" के अंतिम अंक मे सुजानसिह के साथ मरहठों की लड़ाई की तैयारी तक का वृत्तांत तो दिया गया है किन्तु न तो उस युद्ध के परिणाम की कोई सूचना मिलती है और न उसके पश्चात् की अन्य घटनाओं का ही वर्णन मिलता है। कवि ने ग्रंथ के प्रायः प्रत्येक अंक के पश्चात् निम्नलिखित छंद दिया है जिसमे केवल अंतिम पंक्ति प्रसंगानुकूल परिवर्तित रहती है। वह छंद इसप्रकार है—

"भूपाल पालक भूमिपति बदनेस नन्द सुजान हैं।
जाने दिलीदल दक्खिनी कीने महाकलिकान हैं॥
जाको चरित्र कछूक सूदन कह्यौ छंद बनाइकै।
कहि देव ध्यान कवीस नृपकुल प्रथम अंक सुनाइकै।"

किन्तु अंतिम-अंक के पश्चात् न तो यह छंद ही मिलता है और न समाप्ति सूचक "इति श्री" ही मिलती है। इस युद्ध मे राजा सूरजमल की पराजय भी नहीं हुई थी। इतिहास से ज्ञात होता है कि इस युद्ध मे भी वे विजयी हुए थे। इससे यह भी अनुमान नहीं किया जा सकता कि आगे की कथा का सूदन ने इसलिये निर्देश नहीं किया कि उससे इनके चरित्र-नायक का अपमान सूचित होता।

इधर खोज से पता चला है कि सूदन के वंशज अब तक मथुरा मे रहते है और भरतपुर राज्य की ओर से उन्हे २५) मासिक वृत्ति मिलती है। इससे यह भी अनुमान नहीं लगाया जा सकता कि सूदन के ऊपर राजा किसीप्रकार से असंतुष्ट

हो गया हो, जिससे ग्रन्थ-रचना का कार्य अचानक बन्द कर दिया गया हो। इसप्रकार अचानक ग्रन्थ-समाप्ति के सम्बन्ध मे केवल तीन अन्य अनुमान शेष रह जाते है और उनकी संभावना भी अधिक है। पहला तो यह कि सम्भवतः स्वयं कवि की अचानक मृत्यु से ग्रन्थ-रचना बन्द हो गई हो, दूसरा, यह कि सम्भवत किसी विशेष कार्य अथवा कारण-वश कवि कुछ समय के लिये बाहर चला गया हो और वहीं उसके जीवन का अंत हो गया हो और तीसरा यह कि कदाचित् प्रस्तुत-ग्रन्थ ही अपूर्ण प्राप्त हुआ हो तथा ग्रन्थ का शेष भाग महाकाल के जठर मे सदा के लिये समा गया हो।

मिश्र-बन्धुओ का विचार है कि "सुजान-चरित्र" की रचना सं० १८१० के कुछ पीछे हुई। इस सम्बन्ध मे वे लिखते है—

"जान पड़ता है कि सं० १८१० के कुछ पीछे यह ग्रंथ बना और इसीकारण प्रारंभ से इसमे दिल्ली और दक्षिणी दलो की दुर्गति का वर्णन हर अध्याय मे किया गया है।" मिश्र बन्धुओ का तात्पर्य प्रत्येक अंक के अन्त मे आने वाले छन्द से ज्ञात होता है जिसकी एक पंक्ति इस प्रकार है—

'जाने दिलीदल दक्खिनी कीने महाकलि कानहै।"

किन्तु इससे यह निष्कर्ष निकाल लेना कि ग्रन्थ की रचना ही सं० १८१० के पश्चात् हुई थी, नितांत भ्रमपूर्ण है। "दिल्ली और दक्षिणी दलो की दुर्गति" सं० १८०२ से ही प्रारम्भ हो जाती है। प्रथम जंग मे असदखॉ के साथ युद्ध तथा उसके मारे जाने का विस्तृत-वर्णन है। इस घटना की तिथि स्वयं सूदन ने इस प्रकार दी है—

"ठारे सै रु दुहोतरा अगहन मास सुजान।
बैठि सजल गढ़ नौहि कै किय आखेट विधान॥"
[सु० च०, जंग १, अंक २, दोहा १]

यदि "वहोतरॉ" की भाँति "दुहोतरां" का भी कोई अन्य विचित्र अर्थ लगाया जाय तव तो कुछ कहना ही नहीं है।

द्वितीय जंग (पृ० २८-४०) में "दक्खिनो दल की दुर्गति" का भी यथेष्ट वर्णन दिया गया है। महाराज जयसिंह के देहांत पर उनके दोनों पुत्रों—ईश्वरीसिंह तथा माधोसिंह—में अधिकार के लिये परस्पर विवाद चला। सूरजमल जाट ने जेष्ठ-पुत्र ईश्वरीसिंह का पक्ष लिया जिसका राज्यारोहण न्याय संगत था· मराठों ने माधोसिंह का पक्ष लिया। संग्राम में सूरजमल के पक्ष की विजय हुई तथा मराठे पराजित हुए। "दखिनीदल की दुर्गति" का वर्णन स्वयं सूदन के शब्दों में इसप्रकार है—

"घरि इक उद्धत जुद्ध चाल दखिनी दलखाइय।
संभू अरु सुखराम जंग बहु रंग मचाइय ॥२१॥
[सु० चद, जं० २, पृ० ३९]

× × × ×

"श्रोनित सलिल सिवार केस बहुवेस परे जहँ।
मेद गूद करि पंक सूकि पंकज सम सिरतहँ।"
[सु० च०, जं० २, पृ० ३६]

इस दुर्गति की तिथि भी सूदन ने इसप्रकार दी है—

"ठार सै अरु चार मैं पावन सावन मास।
मद्दत करिय सुरेस की किय दखिनी दलनास ॥"
[सुजान-चरित, पृ० २८]

"दक्खिनी-दल" की यह दुर्गति सूदन की कपोल-कल्पना भी नहीं, प्रत्युत प्रामाणिक-इतिहासों के साक्ष्यों से पूर्ण रूप से पुष्ट है। इस युद्ध में राजा सूरजमल ने स्वयं अपने हाथों से

पचास शत्रुओं का वध किया और १०८ को घायल किया ।* श्री कालिकारंजन कानूनगो ने अपने प्रामाणिक-इतिहास "हिस्ट्री आफ दी जाट्स" में इस दुर्गति का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है ।† इसप्रकार जो "सुजान-चरित" के आरंभ से ही "जानें ढिली दल दक्खिनी कीने महा कलिकान हैं ।" मिलने लगता है उससे बिना तिथि पर विचार किये यह लिख देना कि ग्रन्थ सं० १८१० के बाद रचा गया, केवल भ्रम ही कहा जा सकता है ।

यदि ग्रन्थ की घटनाओं का अध्ययन भाषा तथा क्रिया-पदों को दृष्टि में रखते हुए किया जाय तो सरलता से यही निष्कर्ष निकलता है कि कवि ने जितनी घटनाओं का वर्णन किया है, उन सब में उसने स्वयं भाग भी लिया है । असम्भव नहीं कि सं० १८१० के किसी युद्ध में ही कवि की मृत्यु भी हुई हो, जिससे ग्रन्थ का कार्य उसी समय समाप्त हो गया हो । 'कहि प्रथम अंक सु गाइकै" अथवा "सुनाइकै" से भी स्पष्ट विदित होता है कि जैसे-जैसे घटनायें बीतती जाती थीं, कवि उनको पद्यबद्ध करके अपने आश्रयदाता को सुनाता जाता था ।

सूदन के प्रथम आश्रयदाता भरतपुर नरेश बदनेस सिंह ही थे, इसमें संदेह नहीं । इस बात की पुष्टि अंतर्साक्ष्य से ही हो जाती है । सूदन ने एक स्थान पर लिखा है—

"ज्यौं जयसाहि नरेस, करत कृपा तुव देस पैं ।
त्यौं ब्रजेस बदनेस, करत रहौ हम पर कृपा ।।"

इस दोहे से भी सिद्ध हो जाता है कि सूदन भरतपुर-राज्य

---

* नरेन्द्रसिंह वर्मा—महाराज ईश्वरीसिंह का जीवन-चरित्र [पृ० ६७]

† कालिकारंजन कानूनगो, "हिस्ट्री ऑव दि जाट्स" पृ० ६८ ।

के दरबार में सूरजमल के पिता बदनेससिंह* के ही समय में आ गये थे तथा "द्वितीय जंग" की रचना भी बदनेस के ही राज्य-काल मे ठीक उसी घटना के पश्चात् हुई जिसका इसमें वर्णन है। "करत रहौ हम पर कृपा" के क्रिया—पद से स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि कवि कुछ समय पूर्व से ही दरबार में रह रहा था।

कवि के वंशजों को राज्य की ओर से २५) मासिक अब तक मिल रहा है। इससे भी सिद्ध होता है कि उसकी मृत्यु किसी युद्ध मे ही हुई होगी जिसके उपलक्ष्य मे भरतपुर के गुण ग्राहक राजा ने इस वृत्ति का प्रबंध कर दिया; अन्यथा केवल दरबारी-कवि होने से ही इस समय तक उनके वंशजों की इस प्रकार सहायता न होती रहती।

सुजान-चरित्र

सूदन का एक मात्र ग्रन्थ "सुजान-चरित्र" ही उपलब्ध है। इसमें इतिहास प्रसिद्ध भरतपुर-नरेश सूरजमल जाट की विरुदावली है। प्रायः दो सौ वर्षों का प्राचीन

सारांश

यह ग्रंथ सात जंगों मे विभाजित है। प्रत्येक जंग प्राय. एक सर्ग के आकार का है, जिसमें दो से लेकर सात अंक तक है। यद्यपि कुछ अंक अत्यन्त छोटे आकार के हैं किन्तु स्थूल-रूप में उनको हम अध्यायों के रूप में ही समझते हैं। प्रत्येक अंक के अंत में एक ही छंद† रहता है जिसकी अंतिम पंक्ति प्रसंग के अनुकूल परिवर्तित होती रहती है।

---

* बदनेससिंह की मृत्यु सं० १८१२ में हुई थी। इसप्रकार यदि सुजान-चरित्र १८१० के पश्चात् लिखा गया होता तो उसमें "त्यौं ब्रजेस बदनेस" की कोई आवश्यकता ही नहीं थी।

† "भूपालपालक भूमिपति बदनेस नन्दसुजान हैं।" इत्यादि।

प्रथम जंग के पहले अंक में मंगलाचरण के पश्चात् संस्कृत-कवियों तथा १७५ भाषा-कवियो की वंदना के साथ एक सोरठे मे आत्म-परिचय दिया गया है; तत्पश्चात् भरत-राजवंश का वर्णन है।

दूसरे, तीसरे, तथा चौथे अंको मे सं० १८०२ मे सूरजमल अथवा सुजानसिंह और असदखॉ के बीच हुए युद्ध और असदखॉ को पराजय तथा उसके मारे जाने का विस्तृत-वर्णन है। इस जंग मे कुल चार अंक है।

द्वितीय जंग के प्रथम अंक मे आमेर पर माधोसिंह के साथ दक्षिणियो की चढाई तथा आमेर वालो का सुजान से सहायता मागने का वर्णन है। दूसरे अंक मे सुजानसिंह के कुंभेर से कूच करने तथा ईश्वरीसिंह की सहायता मे मराठो के विरुद्ध युद्ध करने एवं मराठो की पराजय का वर्णन है। तीसरे अंक में दक्षिणी मराठों का फिर छापा मारना और सुजानसिंह की सेनाओं के साथ घोर-युद्ध के पश्चात् पराजित होकर भागना और संधि को प्रार्थना करना वर्णित है। द्वितीय जंग यहीं समाप्त हो जाता है।

तृतीय जग मे कुल पांच अंक हैं। बख्शी सलावतखॉ के विरुद्ध जो युद्ध सं० १८०५ मे हुआ था, उसकी तैयारियो का और उसमे हकीमखॉ, अली कुली खॉ, फतेहअली खॉ, तथा रुस्तम खॉ इत्यादि मुगलसरदारो के वध का विशद-वर्णन इन पॉच अको मे प्रस्तुत किया गया है। अत मे पॉचवे अंक में सलावत खॉ द्वारा सन्धि की प्रार्थना का भी निर्देश है। पंचम अंक केवल दो पृष्ठो का है।

चतुर्थ जग के प्रथम अंक मे नवलराम का पठानो के हाथ से मारे जाने, वजीर मनसूरखॉ का अहमदशाह की आज्ञा से पठानो पर आक्रमण करने, और सुजानसिंह को सहायतार्थ

निमंत्रित करने की कथा है। दूसरे, तीसरे और चौथे अंकों में युद्ध की तैयारी, रुस्तमखाँ तथा सुजानसिंह में घोर-संग्राम का वर्णन है। पाँचवे छठवें और सातवें अंकों में रुस्तमखाँ के मारे जाने तथा उसकी सेना के भागने का बड़ा सुन्दर-चित्रण है। इस जंग में कुल सात अंक हैं। यह ग्रन्थ भर में सबसे बड़ा जंग है। यह युद्ध सं० १८०६ में हुआ था।

पंचम जंग के चार अकों में रायचन्द्रगूजरसिंह के साथ युद्ध तथा उसके परास्त होने और जाने की घटना का वर्णन है। इस घटना का समय सं० १८०६ वि० था।

षष्ठ जंग के प्रथम अक मे पहले दिल्ली की बादशाही का संक्षेप में अहमदशाह के समय तक का वर्णन है। राजा शांतनु से लेकर जनमेजय तक का वृत्तांत देकर फिर कवि ने चौहान-वंशीय-पृथ्वीराज तथा शहाबुद्दीन मुहम्मदगोरी के युद्धों का वर्णन किया है। इसके अनन्तर संक्षेप में पठानों के राज्य का वर्णन करते हुए चगताई वंश के तैमूरलंग से लेकर अहमदशाह तक के बादशाहों के नाम तथा राज्य-काल दिये गये हैं।

अहमदशाह के वजीर मनसूरजंग और बख्शी गाजीउद्दीन से द्वेष हो गया, फलस्वरूप अहमदशाह ने मनसूर को दिल्ली से निकाल दिया और उससे मंत्रीपद छीन लिया गया। मनसूर ने राजासुजानसिंह को सहायता माँगी। सुजानसिंह ने इसके उत्तर में कहा कि वह तब तक नहीं सहायता कर सकता, जब तक दिल्ली के सिंहासन पर कोई दूसरा बादशाह नहीं बैठा दिया जाता।

द्वितीय अक मे राजा की सलाह मानकर मनसूर द्वारा अकबरशाह को दिल्ली का सम्राट घोषित करने, सुजानसिंह के द्वारा दिल्ली पर आक्रमण करने तथा शहर को लूटने का बड़ा ही विस्तृत-वर्णन है। इस प्रसंग में बाजार की साधारण

से साधारण वस्तुओं, नाना-जाति और देश की स्त्रियों की नाना भाषाओं मे विलाप करने, भाँति-भाँति के शस्त्रों, बरतनों, खेमो, कपड़ों, मसालो, दवाइयों ग्रंथो आदि की लूट का विशद्-वर्णन मिलता है।

इसके पश्चात् के चार अंकों मे क्रमशः कोटरा के युद्ध मे शाही-सेना की पराजय, गाजीउद्दीन की मराठों से सहायता की प्रार्थना, अंत मे युद्ध होना और सहायता मिलते हुए भी गाज़ी-उद्दीन की पराजय और संधि मे मनसूरजंग को फिर अवध की नवाबी मिलने का वर्णन है। ७२ पृष्ठों का यह जंग, ग्रन्थ भर मे सबसे बड़ा है।

अंतिम जंग (सप्तम) मे मराठा सरदार मल्हारराव के साथ होने वाले युद्ध की तैयारी दिखाकर सुजानसिंह की विजय के लिये ईश्वर से प्रार्थना करते हुए अचानक ग्रंथ की समाप्ति कर दी गई है। बीच मे प्रसंगवश रूपराम द्वारा व्रजशोभा-तथा, कृष्णलीला का वर्णन कराया गया है और अंत मे मुचकुंद की कथा कहलाई गई है।

ऐतिहासिकता

राजा सूरजमल ने जाटवंश को विभूषित किया था। सुजान-चरित्र कार ने जाटों की उत्पत्ति यदुवंशी क्षत्रियों से बतलाई है और अपने चरित्र-नायक को श्रीकृष्ण का वंशज माना है। "सुजान-चरित्र" के अनुसार सूरजमल की वंशावली निम्नलिखित प्रकार से होगी :—

परब्रह्म के चौबीस अवतारों मे एक कृष्ण का अवतार हुआ जिन्होंने कंस का वध किया। कृष्ण के पश्चात क्रमशः रौरिया, पचैसिंह, (प्रताप के सगोत्रीय) मद्दू महिपाल अथवा

मदूसिंह, पृथ्वीराज, तथा मकनि भुवाल हुए। मकनि भुवाल (?) या मकुनीसिंह को सूदन जी चंद्रवंशी बतलाते हैं; यथा—

"सुत भयौ मकनिभुवाल भूरह भय बिनासन जोग।
जिन कियौ ससिकुल प्रगट भूपर निखिल वसुधा भोग॥"
[सु० च० पृ० ५]

मकुनीसिंह के पश्चात् क्रमशः खानचंद, भावसिंह तथा बदनेस हुए। इन्हीं बदनेस सिंह के पुत्र सुजानसिंह अथवा सूरजमल जाट हुए।✽

यह वंशावली किस पुराण के आधार पर दी गई है, इसका उल्लेख नहीं और न किसी पुराण में इसप्रकार की कोई वंशावली मिलती ही है। जाटों की उत्पत्ति के विषय में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। वर्तमानकालीन जाट अपनी उत्पत्ति यदुवंशी कृष्ण से ही मानता है किन्तु इसका न तो उसके पास कोई प्रमाण है और न कोई शृंखलाबद्ध वंशावली ही। इतिहासों में भी सबसे पहले जाटों की चर्चा औरंगजेब के ही काल में आती है। उस समय गोकुल नामक जाट-डाकू बड़ा प्रसिद्ध हो रहा था। इसके पूर्व के जाटों का इतिहास अभी अंधकार में ही है। यही कारण है कि सूदन के द्वारा दी गई वंशावली में भी बदनेस के पहले आये हुए सारे नाम भ्रमोत्पादक ही हैं।

इस समय जाट लोग पंजाब, सिंध, राजपूताना के सूबों तथा दोआब के पश्चिमी-भागों में अधिकतर मिलते हैं, और इनमें से प्राय एक तिहाई मुसलमान, बीस प्रतिशत सिक्ख, तथा शेष पचास प्रतिशत हिन्दू हैं।†

✽ सुजान-चरित्र पृ० ४-५

† कानूनगो—"हिस्ट्री ऑव दि जाट्स" पृ० २।

कर्नल टॉड जाटों की उत्पत्ति यूरोप की आक्सस नदी के आस-पास के निवासियों से बतलाते हैं। उनके अनुसार जाट लोग जटलैंड के जटों के वंशज हैं जिनमें गेट, यूटी, येठ इत्यादि जातियाँ अब भी वर्तमान हैं।

सर हरबर्ट रिजले, जाटों को शुद्ध-आर्य† मानते हैं और उनको राजपूतों का वंशज मानते हैं।※

कुछ अन्य विद्वानों का मत है कि इनकी उत्पत्ति, शिवजी की जटा से हुई जिससे इनका नाम जाट पड़ा। कुछ लोग जाट शब्द की व्युत्पति 'यदु' शब्द से करते हैं। उनके अनुसार यदु से यादव हुआ, फिर यादव से जाट शब्द की व्युत्पत्ति हुई।

महाभारत में यत्रतत्र पंजाब तथा सिंध के निवासियों के वर्णन में "जात्रिक" तथा "मद्रक" शब्द भी मिलते हैं। दोनों शब्द दो भिन्न-भिन्न जातियों के द्योतक हैं और दोनों को "वाह्लीक" संज्ञा दी गई है। सर जेम्स कैम्पबेल और डा० ग्रियर्सन का मत है कि संस्कृत-साहित्य में जाटों के सम्बन्ध में सर्वप्रथम इसी स्थल पर निर्देश किया गया है। इनमें से पहला विद्वान तो जाटों को कनिष्क का वंशज मानता है और दूसरा आर्यों की किसी निकृष्ट-श्रेणी से इनकी उत्पत्ति मानता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि महाभारत में वाह्लीकों की घोर-निंदा की गई है और उनके अनेक घृणित-आचारों का वर्णन किया गया है।

कुछ विद्वान् जाटों की उत्पत्ति पुराणों में प्रतिपादित "जाठर" वंश से मानते हैं।

※ हर्बर्ट रिजले—"पिपुल्स ऑव इण्डिया" पृ० ६०—६१।

† बंबई गजेटियर, जि० ६, पृ० ४५६।

पद्मपुराण की निम्नलिखित पंक्तियाँ, इस संबंध में विशेष विचारणीय हैं—

'क्षत्रशून्ये पुरालोके भार्गवेन यदाकृते।
विलोक्याक्षत्रियां धात्रीं कन्यास्तेषां सहस्रशः॥
ब्राह्मणान् जगृहुस्तस्मिन् पुत्रोत्पादन लिप्सया।
जठरे धारितं गर्भं संरक्ष्य विधिवत् पुरा।
पुत्रान् सुषुविरे कन्या जाठरान् क्षत्रवंश जान्॥"

[प० पु०]

अर्थात् भार्गव परशुराम के द्वारा पृथ्वी के सारे क्षत्रियों का नाश हो जाने पर उनकी कन्याओं ने पृथ्वी को क्षत्रियशून्य देखकर पुत्रप्राप्ति की कामना से ब्राह्मणों के साथ भोग किया तथा "जाठर" नामक क्षत्रियों को उत्पन्न किया। इसी "जाठर" का अपभ्रंश 'जाट' हो गया। इस मत को जाट विद्वान् चौधरी लहीरी सिंह भी मानते हैं।

किन्तु वर्तमान-काल में "जाठर" दक्षिणी मराठों के कढ़ड़ा ब्राह्मणों की एक शाखा है, जिनका जाटों से कोई संबन्ध नहीं।

उक्त विवेचन का परिणाम केवल यही निकलता है कि इनमें से किसी विद्वान् का मत हमें सत्य के निकट नहीं पहुँचा सकता। इसप्रकार अब केवल जाटों की वेशभूषा, उनके परंपरागत-सिद्धान्तों, विश्वासों इत्यादि पर विचार करना शेष रह जाता है। वर्तमान काल के जाटों की शारीरिक-रचना, भाषा, उनके चरित्र, तथा सामाजिक आचार-व्यवहार पर विचार करने से निष्कर्ष निकलता है कि जाट लोग शुद्ध-आर्यों की संतान हैं और राजपूतों से उनका विशेष सम्बन्ध है। अधिकांश आधुनिक विद्वानों का भी यही मत है। अतः सूदन

द्वारा प्रस्तुत की हुई वंशावली के नाम चाहे अशुद्ध ही हो, किन्तु उसकी परंपरा निर्विवाद-रूप से मान्य है।

अब यहाँ "सुजान-चरित्र" मे दी हुई तिथियो तथा घटनाओ की जाँच भी आवश्यक है। इस ग्रन्थ मे निम्नलिखित सात तिथियाँ दी हुई है—

(१) सं० १८०२—फतेहअली को सहायता कर असदखाँ को पराजित करना।

सूदन ने इसका उल्लेख निम्नलिखितरूप मे किया है—

'ठारं सै रु दुहोतरा, अगहन मास सुजान।
बैठि सजल गढ़ नौहि कै, किय आखेट विधान ॥१॥

[सु० च०; पृ० ७]

(२) सं० १८०४—ईश्वरीसिह का पक्ष लेकर मराठो से युद्ध।

यथा—

"ठारै सै अरु चारिमै, पावन सावन मास।
मद्दति करिय सुरेस की, किय दखिनी दलनास ॥२॥"

[सु० च०, पृ० २८]

(३) सं० १८०५—सलावतखाँवख्शी से युद्ध।

यथा—

"ठारौसौ रु पचोतरा, पूस मास सित पच्छ।
श्रीसुजान विक्रम कियौ, ताहि सुनौ नर दच्छ ॥२॥'

[सु० च०; पृ० ४१]

(४) सं० १८०६—मनसूरजंग का पक्ष लेकर पठानो को पराजित करना।

यथा—

'अष्टादश पट बरस रितु, पावस भादौं मास।
सूरज है मनसूर संग, किय पठान दल नास ॥२॥
[सु० च०; पृ० ५६]

(५) सं० १८०६—घासहरे के रावबड़गूजर को परास्त करना।

यथा—

"ब्रह्म (१) सिद्धि (८) धरि बिंदु (०) निधि, (९) वरष गतागतमाह।
घासहरे पै कोप करि, चल्यौ सूर नरनाह ॥२॥
[सु० च०, पृ० १०५]

(६) सं० १८१०—सफदरजंग की सहायता करते हुए दिल्ली को लूटना।

यथा—

"गत पुरान (१८) सत वरष दस, (१०) मधुरितु माधव मास।
सूरत हित मनसूर कैं, गह्यौ दिल्ली पै गांस ॥२॥
[सु० च०, पृ० १५४]

(७) स० १८१०—भरतपुर पर मराठों का आक्रमण।

यथा—

"ठारै सै सु दसोहरा, हिमरितु महिना गोप।
दच्छिनदल दिल्लीदलनु, कीनौ ब्रज पै कोप ॥२॥
[सु० च०; पृ० २०२]

जाटों का एक अत्यन्त सुन्दर तथा प्रामाणिक-इतिहास प्रो० कालिकारंजन कानूनगो द्वारा लिखा गया है, जिसमें अनेक फारसी, महाराष्ट्री, अँग्रेजी, संस्कृत तथा हिन्दी-ग्रन्थों की समुचित सामग्री का उपयोग किया गया है।❋

❋ कानूनगो—'हिस्ट्री ऑव दि जाट्स" पृ० ६७।

उसमें इन तिथियों का निम्नलिखित रूप में उल्लेख हुआ है—

(२) जयपुराधीश ईश्वरीसिंह की सहायता मे मराठों से युद्ध के प्रारंभ की तिथि—

रविवार, २० अगस्त, सन् १७४६ ई० अर्थात् सं० १८०६ वि० ।

(३) मुगल सेनापति सादतखाँ अथवा सलावतखाँ से युद्ध की तिथि—सन् ११६२ हिजरी अर्थात् सं० १८०६ वि ।१

कुछ फारसी तवारीखों मे यह तिथि ११६३ हि० के रूप में भी मिलती है। इस प्रकार एक वर्ष और बढ़ जाने पर सं० १८०७ वि० हो जाता है।

(४) नवाब सफदर जंग उपनाम मनसूरखाँ के साथ पठानों के विरुद्ध युद्ध करने तथा पराजित करने की तिथि सन् १७५१ ई० (११६४) अर्थात् सं० १८०८ वि० दी हुई है ।२

(५)राव बहादुर सिंह बड़गूजर के साथ युद्ध करने की कोई तिथि नहीं दी गई है।

(६) दिल्ली लूटने (जाटगर्दी) की तिथि सन् १९५१ ई० दी गई है। अर्थात् सं० १८०८ वि० ।३

(७) इसी प्रकार मराठों के आक्रमण की भी तिथि सन् १७५४ ई० अर्थात् सं० १८११ वि० दी गई है ।४

---

१ वही, पृ० ७१ ।

२ कानूनगो- हिस्ट्री ऑव दि जाट्स पृ० ८३ ।

३ वही पृ० ८४

४ वही पृ० ८६

इसप्रकार जहाँ तक इन दोनों ग्रन्थों के सन् संवतों की तुलना का प्रश्न है, दोनों की कोई भी तिथि नहीं मिलती। सुजान-चरित्र में दिए हुए संवतों से उक्त इतिहास ग्रन्थ के संवत दो या एक वर्ष अधिक निकलते हैं। इसका निर्देश पहले ही किया जा चुका है कि इस इतिहास की सारी तिथियाँ फारसी तवारीखों पर आधारित है। दोनों में कौन शुद्ध है, यह कहना कठिन है।

किन्तु सुजान-चरित्र में दी गई घटनाओं के विवरण इस ग्रन्थ में उद्धृत किये हुए फ़ारसी लेखकों के विवरणों से अक्षरशः मिलते है। उदाहरण के लिए द्वितीय जंग का कारण इतिहासकार ने जयसिंह की मृत्यु के पश्चात् ईश्वरीसिंह तथा माधोसिंह के बीच उठे हुए परस्पर विद्वेष को बतलाया है। इसमें सूरजमल ने ईश्वरीसिंह का पक्ष लिया क्योंकि उन्होंने सहायता की प्रार्थना की थी और उनका सिंहासनासीन होना ज्येष्ठ-पुत्र के नाते उचित भी था। मराठों ने माधोसिंह का पक्ष लिया। उनकी सेना बड़ी विशाल थी जिसकी समानता में ईश्वरीसिंह के पक्ष की सेना कुछ नहीं थी। यह सूरजमल के ही साहस और शौर्य का फल था कि ईश्वरी सिंह हारते-हारते बच गये और संधि में उनको सिंहासन मिला। माधोसिंह को केवल पाँच परगने मिले। यह युद्ध बांगरू में हुआ था।*

सूदन द्वारा दिया हुआ निम्नलिखित विवरण कितना मिलता-जुलता है—

कारण—

दोहा

"सुरपुर को जैसिंह गए, बीते बहुतदिनान।
हुतौ भूप आमेर कौ, ईसुर सिंह अजान ॥३॥

*कानून गो—"हिस्ट्री ऑव दि जाट्स" पृ० ६६-७०

तासौं दक्खिन के दलनु, रोपी आनि सुजंग।
माधौंसिंहहिं संग लैं, दियौ देस मैं दंग ॥४॥

सोरठा

देखि देस कौ चाल, ईसुरसिंह भुवाल ने।
पत्र लिख्यौ तेहि काल, बदनसिंह ब्रजपाल कौं ॥१॥

[सु० च० पृ० २८]

स्थान—

"बगरू महलनि पहुँचकै, नरपति डेरा दीन।
चहूँ ओर अपनी चमू, सावधान करिलीन ॥२॥

[सु० च०; पृ० ३६]

संधि—

"दोइ परगने❀ लै दिये, ईसुरसों मल्लार।
माधौ कौ समझाइ कै, पठै दियौ ननसार ॥१२॥
पनु जीत्यो मल्लार को, मनु जीत्यौ इसुरेस।
रन जीत्यो सूरज बली, थाभि ढुंढाहर देस ॥१३॥

[सु० च० पृ० ३९]

युद्ध के वर्णन मे भी कोई अतिशयोक्ति नहीं है। बूँदी के सूरजमल कवि ने भी सुजानसिंह के शौर्य का वर्णन उसीप्रकार ओजपूर्ण ढंग से किया है। यथा—

"सह्यो भले ही जट्टिनी, जाय धरिष्ट अरिष्ट।
जाठर तस रविमल्ल हुव, आमेरन को इष्ट ॥"

तृतीय जंग सादातखाँ तथा सूरजमल के बीच हुआ था, जिसमे अन्त मे संधि हो गई। इतिहास मे संधि की तीन शर्तें थीं— प्रथम तो सूरजमल के पुत्र जवाहिरसिंह को नवाब के

❀'हिस्ट्री आव दि जाट्स' में पाँच परगने देने का वर्णन है।

हरावल मे पद मिले, दूसरे मुसलमान लोग कभी जाटों के राज्य मे पीपल के वृक्ष न काटे, तीसरे मन्दिर और मूर्तियों को कोई हानि न पहुँचावे।*

"सुजान-चरित्र" मे अन्तिम दो शर्तों का उल्लेख नहीं, पहली शर्त उसी रूप मे है। यथा—

"बिनती एक नवाब सों, मेरी रुखसद देहि।
लाला सिंह जवाहरे अपनो हरवल लेहि ॥५॥

[सु० च०, पृ० ५८]

सादातखाँ को सूदन ने सलावतखाँ लिखा है। इसके अतिरिक्त अन्य सभी नाम भी उसीप्रकार से मिल जाते हैं। युद्ध की तैयारी के प्रसंग मे इतिहास मे रुस्तम खाँ, हकीमखाँ फतेअली, अलीकुली आदि का नाम मिलता है।† सुजान ने भी इन व्यक्तियों का नाम दिया है। यथा—

"रुस्तमखाँ सुहकीमखाँ, अरु कुबरा अति चंड।
फतेअली सु अलीकुली, साजी सैन उदंड ॥४॥

[सु० च०, पृ० ४६]

चतुर्थ जंग मे सफदरजंग की सहायता करते हुए पठानों को परास्त करने का वर्णन है। इसके भी प्रायः प्रत्येक कारण-विवरण परस्पर मिलते हैं।

षष्ठ जंग मे "जाटगर्दी" का विस्तृत-वर्णन है। इसकी कथा संक्षेप में प्रो० कानूगो के इतिहास के आधार पर निम्न-लिखित है—

नवाब सफदरजंग उधर पठानों के साथ युद्ध में फँसा हुआ था, उसीसमय अहमदशाह अब्दली ने भारत पर

---

*कानूनगो—'हिस्ट्री आव दि जाट्स' पृ० ७४।
† कानूनगो—'हिस्ट्री आव दि जाट्स' पृ० ७३।

आक्रमण किया। पंजाब के कुछ भाग पर अपना अधिकार करने के पश्चात्, उसने दिल्ली के तत्कालीन सम्राट अहमद-शाह को भी धमकी दी। बादशाह ने डरकर संधिकर ली। वजीर सफदरजंग को जब ऐसा ज्ञात हुआ तो वह बादशाह से असंतुष्ट हो गया, कारण कि वह मंत्री था और बादशाह ने बिना उसकी परामर्श के ही सारा कार्य स्वयं कर लिया। फल यह हुआ कि बादशाह ने उसका मंत्रिपद छीनकर गाजी-उद्दीन को उसके स्थान पर वजीर बनाया। सफदरजंग ने बदला-लेने के विचार से सूरजमल से सहायता माँगी। सूरजमल नेएक विशाल-सैन्य के साथ आक्रमण करके इस अवसर से पूरा लाभ उठाया। दिल्ली के बाज़ार में मनमानी लूटमार हुई जो जाटगर्दी के नाम से प्रसिद्ध है। इसकी समानता इतिहासकार "शाहगर्दी" और "भाऊगर्दी" से किया करते हैं। अन्त में बादशाह ने मल्हारराव से सहायता मांगी, किन्तु सूरजमल ने कूटनीति का ऐसा जाल फैलाया कि उसको संधि करनी पड़ी। सफदरजंग को अवध और इलाहाबाद की नवाबी वापस मिल गई।❀

सूदन द्वारा प्रस्तुत किया हुआ विवरण भी प्राय इसी प्रकार का है। उदाहरण के लिए संक्षेप में कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की जाती है—

कारण—

'पातसाहि अहमंद के, भौ वजीर मनसूर।
पोता मलिक निजाम कौ, बकसी भौ मगरूर ॥१५॥

. ...

एक रोज पतसाहदी, बकसी लै मरजी।

❀कालिकारंजन कानूनगो—"हिस्टी आव द जाट्स" पृ० ८१-८६।

बिन वजीर दीवान मैं, कीनी यह अरजी ॥
हजरत्त सफदरजंग, मै क्या अदब बजाया ।
नाजर फिदवी साहिका दै दगा खिशाया ॥

... ...

साहिजहानाबाद मैं जद सैं, यह आया ।
तदसैं हुकुम हुजूर दा नहिं एक बजाया ॥
फेरे साहि मनसूर कौं अहदी जगवाया ।
साहिजहानाबाद तें तदही कढवाया ॥

... ...

दिल्ली से बाहर हुवै मनसूर रिसाया ॥"

[सु० च०, पृ० १९७-१९८]

लाल दरवाजे को तोड़ने और दिल्ली की लूट का वर्णन—

खारी खतरानी चतरानी सतरानी फिरैं,
बाँभनी बिन्यानी तुरकानी पररानी हैं ।
काइथी अरोरी, थोरी वैसनि तमोरी गोरी,
काछिनी करानी औ भट्यानी महरानी हैं ।
हीरी बहु फीरी नर नीरी तीरी पीरी भई,
सूरज के तेज-चंदकला ज्यौं परानी हैं ।
नूपुर बलय चलयानु रसनानु धुनि,
मानहुं प्रभात पंछी बानी मदरानी हैं ॥२१॥

[सु० च०, पृ० १९८]

इस जंग मे प्रसंग-वश सूदन ने दिल्ली के सम्राटों तथा मुसलमान बादशाहों की भी क्रम से चर्चा की है। उसमे मुगल-बादशाहों के दिए हुए राज्यकाल तथा इतिहास के सर्वथा अनुकूल ही है। उनके अनुसार अकबर ने ५२ वर्ष, जहाँगीर ने २२ वर्ष, शाहजहाँ ने ३२ वर्ष, औरंगजेब ने ५० वर्ष,

बहादुरशाह ने ५ वर्ष, "मौजदी शाह (?) ने १ वर्ष, फर्रुखसियर ने ६ वर्ष, रफीदरजातिशाह (?) ने ३ मास, शाहजहाँ (द्वितीय) ने ४ मास तथा मुहम्मदशाह (महमंद साहि) ने ३० वर्ष राज्य किया। उसके पश्चात् अहमदशाह दिल्ली का सम्राट बना। ये आँकड़े इतिहास-विरुद्ध नहीं।

अंतिम (सप्तम) जंग में भरतपुर पर मराठों के आक्रमण का वर्णन है किन्तु अचानक ग्रन्थ की समाप्ति हो जाने से यह कथा अधूरी ही रह जाती है। इतिहास से ज्ञात होता है कि सूरजमल की स्त्री रानीकिशोरी उपनाम "हँसिया" की नीति कुशलता से इस युद्ध में भी सूरजमल के ऊपर कोई संकट न आने पाया और अन्त में संधि हो गई।

किन्तु इतनी समानता होने पर भी सुजान-चरित्र में कुछ अंशों में, अन्य इतिहास ग्रन्थों से, बड़ी विभिन्नता है। बड़ा आश्चर्य है कि सूरममल जाट के जीवन की सं० १८१० तक की भी कुछ प्रसिद्ध-घटनाओं का सुजानचरित्र में निर्देश ही नहीं है। "हिस्टरी ऑफ दि जाट्स" के अनुसार सूरजमल द्वारा किया सर्वप्रथम युद्ध हेमकरन जाट संगोरिया से लड़ा गया था जो उनके जीवन की मुख्य-घटनाओं में अपना एक मुख्य-स्थान रखता है। इसी युद्ध के फलस्वरूप उनको भरतपुर का इतिहास-प्रसिद्ध दुर्ग मिला था।※ इसका उल्लेख "सुजान-चरित्र" में कहीं नहीं है।

दूसरा अन्तर यह है कि सुजान-चरित्र की प्रथम जंग वाली घटना का उल्लेख और किसी इतिहास में देखने में नहीं आता।

सूरजमल जाट की अनेक स्त्रियों में रानी किशोरी उपनाम

※ कानूनगो—'हिस्ट्री ऑव दि जाट्स' पृ० ६६।

हँसिया* का उनके जीवन में एक प्रमुख स्थान है, जिसका निर्देश ऊपर किया जा चुका है। किन्तु दुर्भाग्य वश हँसिया के नीति-कौशल-पूर्ण कार्य के पूर्व ही ग्रन्थ को समाप्ति होगई है। फिर भी उसके साथ विवाह का भी कहीं निर्देश नहीं। संभव है युद्ध-वर्णन-प्रधान-ग्रन्थ होने से "सुजानचरित्र में" उसके वर्णन के लिए कोई अवसर ही न मिला हो।

आलोचना

जिसप्रकार भूषण को शिवाजी और गोरेलाल को छत्र-साल मिले, उसीप्रकार सूदन को भी एक सच्चा वीर चरित-नायक मिल गया। भरतपुर-नरेश राजा सूरजमल जाट के नीति-कौशल तथा राज्य-प्रबंध की सभी इतिहासकार मुक्त-कंठ से प्रशंसा करते हैं। यहाँ तक कि तत्कालीन मुसलमान लेखकों ने भी अपनी तवारीखों में उसके गुणों की उसीरूप में प्रशंसा की है। आधुनिक विद्वानों में भी कोई उसे "जाटों का "यूलिसेस" कहता है, कोइ 'प्लेटो'।† "सुजान-चरित्र" में जो कुछ सुन्दरता है उसका रहस्य भी यही है।

"सुजानचरित्र" में कुल ७ जंग तथा ३१ अंक अथवा अध्याय है। एक-एक जंग में सुजानसिंह उपनाम सूरजमल के एक-एक युद्ध का विस्तृत-वर्णन है।

---

* रानी किशोरी उपनाम हँसिया के विवाह के संबंध में एक बड़ी मनोरञ्जक कथा प्रचलित है। कहा जाता है, एक बार राजा सूरजमल हाथी पर सवार होकर बाहर जारहे थे कि मार्ग में उनको कई बालिकायें मिलीं। उनमें से केवल एक लड़की को छोड़कर शेष सभी डरकर भाग गईं। राजा ने लड़की की निर्भयता पर मुग्ध होकर उससे विवाह कर लिया। इसी स्त्री का नाम रानी किशोरी उपनाम हँसिया था।

† कानूनगो—"हिस्ट्री आफ दि जाट्स" ६५।

साहित्यिक-दृष्टि से ग्रन्थ का अध्ययन करने पर सर्व-प्रथम दृष्टि जाती है, घटनाओं के वर्णन-विस्तार पर। किसी विशेष घटना का वर्णन कवि ने इतने 'तूल' के साथ किया है कि कहीं-कहीं उसके कारण बड़ी नीरसता आ जाती है और पाठक का जी ऊबने लगता है। अनेक प्रसंगों में कवि अपनी बहुविज्ञता-प्रदर्शित करने की अनधिकार-चेष्टा करने लगता है, जिसका परिणाम यह होता है कि पाठकों को अरुचि हो जाती है, जो प्रबन्ध-काव्य के लिए सबसे बड़ा दोष है। कहीं-कहीं कई पंक्तियों तक घोड़ों की सूची मिलती है तो कहीं वस्त्रों तथा लूटी हुई सामग्री की। कहीं कवियों के नामों की भर-मार है तो कहीं विभिन्न-जातियों की विभिन्न भाषाओं का प्रदर्शन है। ग्रन्थ के आरम्भ के ही १७५ कवियों की लम्बी सूची है और सब को प्रणाम किया गया है। इसप्रकार इस कवि ने सूची गिनाने की सीमा तोड़ दी है। सात जंगों के काव्य में छः बार लम्बी लंबी सूचियों की गणना गिनाई गई है। सबसे लम्बी सूची षष्ट जंग में है जो ५ पृष्ठों तक चली गई है। उसी में से एक स्थल यहाँ उद्धृत किया जा रहा है जो इसप्रकार है—

"काथ करौजी कारी जीरी। काइफरौ कुचिला कनकोरी ॥
कुकरौंदा करहरी कहीरा। कनट कटाई कारी जीरा ॥
कुलथी कमल गटा सुकवेला। ककरासिंगी कंद सुकेला ॥
कमलमूल ।किरवार कसेरू । काचनून कर मूल कनेरू ॥

फिर भी सूदन ने युद्धों का वर्णन इत्यादि सुन्दर किया है, इसको निर्विवाद रूप में मानना पड़ेगा। इस सम्बन्ध में प्रायः सभी समालोचक एक-मत हैं। मिश्रबन्धु इन्हें वीररस का "बढ़िया" कवि मानते हैं और इनकी गणना "दास" की

श्रेणी में करते हैं। आप लोग लिखते हैं—"युद्ध की तैयारी में सूदन, युद्ध-वर्णन में 'लाल' और आतंक एवं भागने के वर्णन में भूषण प्रायः सर्व श्रेष्ठ हैं।"

लाला सीताराम जी बी० ए० 'सूदन' को "पृथ्वीराज-रासो के अमर कवि "चन्द" के समकक्ष रखते हैं। पं० रामचन्द्र शुक्ल अपने इतिहास में लिखते हैं कि, "सूदन में युद्ध, उत्साह-पूर्ण-भाषण, चित्त की उमंग आदि वर्णन करने की पूरी प्रतिभा थी·· ······।"※ इस सम्बन्ध में प्रथम जंग से निम्न-लिखित कवित्त उद्धृत किया जाता है—

"अनी दोऊ बनी घन लोह कोह सनी घनी,
धर्मनु की मनी बान बीतन निसग में।
हाथी हटि नात साथी संगन थिरातश्रौन,
भारती में न्हात गंग कीरति तरंग में।
भानु की सुतासी कवि सूदन निकारी तेग,
बाहत सराहत कराहत न अंग में।
बीर-रस रंग यों आनन्द उमंग में सो,
पगु पगु भाग होत जोधन को जग में ॥२१॥
[सु० चं० पृ० २१]

किन्तु युद्ध-वर्णन में भी "शब्दों की तड़ातड़ और भड़ाभड़ से जी ऊबने लगता है।"※

उसमें भीतरी उमंग की अपेक्षा बाहरी तड़क भड़क ही अधिक मिलती है। डिंगल के अनुकरण पर कवि ने शब्द नाद को अधिक महत्व दिया है। ऐसा ज्ञात होता है कि कवि वीररस के उद्रेक के लिये शब्दनाद का प्रयोग आवश्यक समझता है। किन्तु यह उसका भ्रम था। वीर-रस के उद्रेक

※रामचन्द्र शुक्ल,—'हिन्दी साहित्य का इतिहास' पृ० ४३४।

के लिये केवल बीहड़, अर्थहीन, कर्णकटु-शब्दों की आवृत्ति ही पर्याप्त नहीं, सच्चे आंतरिक-उत्साह तथा ओज की आवश्यकता होती है। "सुजान-चरित्र' के युद्ध सम्बन्धी अधिकांश स्थल "कड़कड़ धड़धड़" से ही भरे पडे है। सात जंगो के वर्णन मे कवि ने १२ बार शब्दनाद का प्रयोग किया है।

यह जानकर और भी कष्ट होता है कि इन पदो मे उन्हीं सूरजमल जाट की विरुदावली है, जिनके सम्बन्ध मे इतिहासज्ञो की धारणा है कि यदि पेशवा की सेना का संचालन भरतपुर के अनुभवी महाराज के कथनानुसार हुआ होता और वे रुष्ट होकर लौट न आए होते तो पानीपत के तीसरे युद्ध मे मरहठों की पराजय कभी न होती। शुक्ल जी ने ठीक ही लिखा है कि, ऐसे चरित्र को लेकर जो गांभीर्य कवि मे होना चाहिए, वह इनमें नही पाया जाता ❀

किन्तु ऐसे प्रयोगो के कारण उत्पन्न शैथिल्य की शाति के लिये उपचार रूप मे एक अन्य गुण भी इनके पास था। वह है इनके द्वारा किये हुए विविध छंदों का प्रयोग। केशव की भांति इन्होने भी अनेक प्रकार के छन्दो का सफल-प्रयोग किया है। इकतीस अंको के इस काव्य मे लगभग निन्नावे प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया गया है।

छन्दो की इस विविधता के कारण नीरसता की मात्रा बहुत कुछ कम हो गई है। उसके कम होने का एक दूसरा भी कारण है; वह है ग्रंथ मे विभिन्न-भाषाओं का प्रयोग। इस सम्बन्ध मे दिल्ली की लूट वाला अंश विशेष उल्लेखनीय है। नाना देश की स्त्रियों का नानाप्रकार की भाषाओं मे विलाप बड़ा मनोरंजक हो गया है। किन्तु साथ ही यह भी ध्यान मे रखना होगा कि इस

❀ राचन्द्र शुक्ल—'हिन्दी साहित्य का इतिहास' पृ० ४२२।

प्रकार की भाषा के साथ खिलवाड़, कहीं-कहीं सीमा का भी अतिक्रमण कर गया है, जिससे कृत्रिमता दृष्टिगोचर होने लगती है।

कहीं-कहीं अलंकारों के प्रयोग में कृत्रिमता तथा शिथिलता आ गई है। अनुप्रास का लोभ तो कवि को इतना है कि सूची-परिगणन में नामों को भी वह अनुप्रास के हिसाब से सजाता है। यथा—

"सोमनाथ सूरज सनेही सेख स्यामलाल,
साहिब सुमेर सिवदास सिवराम हैं।
सेना पति सूरति सरबसुख सुखलाल,
श्रीधर सुबलसिंह श्रीपति सुनाम हैं।
हरि परसाद हरिदास हरिबंस हरी
हरिहर हीरा से हुसेन हितराम हैं।
जस के जहाज जगदीस के परममीत,
सूदन कबिन्दन को मेरो परनाम हैं ॥६१॥"
[सु० च०; पृ० ३]

एक दोष और जो सूदन के सम्बन्ध में उल्लेखनीय है, वह यह है कि इन्होंने अपनी कविता में 'जु' और 'सु' का निरर्थक-प्रयोग अत्यधिक किया है। यहाँ तक कि नामों के दो खण्ड करके उनके बीच में भी 'सु' अथवा 'जु' भिड़ा दिया गया है। यह शैथिल्य-दोष से भिन्न नहीं कहा जा सकता। कहीं कहीं तो इसके कारण अर्थ का अनर्थ हो जाता है। यथा—

फर्रुक जु सेर, (फर्रुखसियर) किले जुदार, मीराँ जु साहि, जुहिमायूँ (हुमायूँ) इत्यादि।

कुछ स्थलों पर तो लगातार कुछ पंक्तियों तक 'सु' का प्रयोग चला जाता है। उदाहरण-स्वरूप द्वितीय जंग से निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं—

"वलकैं सुऊँट कतार। तिनपै अनेक सवार ॥
ललकैं सुपाइक सथ्थ। पलकैं न राखत मथ्थ ॥
ढलकैं अनत सुढाल। सलकैं सुसैल विसाल ॥

× × × ×

गलकैं सुसेली स्याम। बलकै सुबचन उदाम ॥
[सु० च०; पृ० ३७]

गणना करने पर ज्ञात हुआ कि ग्रन्थ भर में 'सु' १२५ वार और 'जु' २५ वार आया है।

सुजान-चरित्र का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि वीर-रस के अतिरिक्त अन्य रसों पर भी कवि का समान अधिकार है। शृंगार-रस सम्बन्धी कुछ पद तो इतने सुन्दर हैं कि वीर-रस की अपेक्षा उनमें ही कवि को अधिक सफलता मिलती हुई दिखाई देती है। मंगला-चरण के पद शेप ग्रंथ के पदों की अपेक्षा अधिक सुन्दर है। उदाहरण के लिये द्वितीय जंग से शंकर की वंदना का एक छप्पय उद्धृत किया जाता है:—

रुकम अचल बर भूमि सुभग सुरसरि जल बिलसत।
त्रिविध पवन जहँ गवन भवन दुति ससिकर मिलिसत।
सेनानी सुरदेत ताल बेताल लगावत।
गंग धरनि भखि भंग रंग सौं डॅमरु बजावत ॥
गिरिसुता सहित आनन्द सों दै चुटकी थेइ थेइ करत।
गननाथ नचत तांडव रचत सुंड हलत विघननु दहत ॥
[सु० च०, पृ० २८]

इसमें भाव और भाषा दोनों प्राञ्जल और सुसज्जित हैं।

सूदन की भाषा साहित्यिक-व्रज-भाषा है, यद्यपि उसमें अन्य भाषाओं का पुट भी यत्र-तत्र मिलता है। व्रजनिवासी होने के कारण इस कवि के अधिकांश कवित्तों तथा सवैयों मे

भाषा

व्रज-भाषा का सौंदर्य स्वभावत. निखर आया है परन्तु भुजंगप्रयात, भुजंगी, और कड़खा इत्यादि छन्दो मे जहाँ शब्द-नाद की उद्-भावना की चेष्टा की गई है वहाँ डिगल और मारवाड़ी के रूप घुस आये हैं और भाषा की स्वाभाविक-मृदुता नष्ट होगई है। व्रजभाषा की स्वाभाविक कोमलता निम्नलिखित कवित्त मे देखी जा सकती है.—

अदिति असोक भरी सोक भरी दिति और
दोष भरी पूतना अदोष करी ओपिका।
कंस हिये भौ भरी अभौ भरी अंधवंस
पडव कै कीरति अकीरति की लोपिका।
लाज भरी द्रोपदी सुराज भरी व्रजभूमि
कुबरी इलाज सो श्रवाज करी कोपिका।
देवकी अनन्द भरी ज्यों व्रजचन्द धरी
भाग भरी जसुदा सुहाग भरी गोपिका॥

[सु० च० पृ० ४]

सूदन की भाषा मे व्रजभाषा का पूर्ण-प्रभाव रहते हुए भी पंजाबी, मारवाड़ी वैसवाड़ी तथा पूर्वी के प्रयोग प्रचुर परि-माण मे आ गये हैं। 'सुजान-चरित्र' मे इतनी भाषाओं का एक साथ स्वतंत्रता-पूर्वक प्रयोग देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि माथुर चौबे होने के कारण कदाचित सूदन जी पंडागिरीका व्यवसाय भी करते रहे हों और इस कार्य मे विभिन्न-प्रदेशो से आये हुए यात्रियो के सम्पर्क से उन्हे अन्य भाषाओं के प्रयोगो का भी अभ्यास हो गया हो। यदि ऐसा नहीं होता तो इतने धड़ल्ले के साथ दूसरी बोलियो के प्रयोग सूदन में नहीं मिलते। 'सुजान-चरित्र' में ऐसे प्रयोग अनेक हैं। कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं:—

पंजाबीः—किथ्थे जला पेड किथ्थे उजलले मिड़ाउ असी,
तुसी कोलओवाँ असी जिंदगी बचावांहां।
भट्ट ररा साहि हुआ 'चदला बजोर येलो
एहा हाल कीता वाह गुरु नू मनावांहां।
जावां किथ्थे जावां अम्मा बाबे केही पावां जलो
एही गल्ल अप्पें लथ्थो लथ्था 'गली जावांहां॥
[सु० च० पृ० १६८]

मारवाडीः—आव्या तमे आगल न रयाव्या .माटी कागजनै,
डागला नहीट्ट कौं फठामडन लोध्यूं छै।
डोकरी न छैया साथैं मोकल्या न मामी हाथैं
घरण न आथे भूडा पोतियों न दोध्यू छै।
[सु० च० पृ० १६८]

ढुंढारी.—

कठे रहा ठाकरां कि ठाकरा पधार्या बीरा।
चाकरां लारें म्हे उभा र पग धावां छा।

इसीप्रकार

'मरना हमे बीस विस्से विचारौ।
हैगो नफा शत्रु जु मारि डारौ॥"

मे "हैगी" आगरे की वोली से ले लिया गया है।

'सुजान-चरित' मे पूरबी बोली के रूप भी यत्र-तत्र मिलते हैं:—

बबुआ न आवा मोर भैयन न पावा थाक,
तुपक की न लावा गांठ ढीवू आन धावा है।
चाकरी की लकरी की फकरी बिहानी कीन्ह,
सनई न कनई दिहांत यां बताबा है।

अस कप कीन्ह म्वार दिल्ली का नवाब खार,
चीन्हत न मार मनसूर जट्ट धावा है।
तुहिफों न मुहिफों कपीं लुहिफों रही न जाग,
भाग कुल और तोपखान बाघ ध्यावा है।

[सु० च० पृ० १६७-७०]

इस कवित्त के पांचवे चरण मे 'म्वार' शब्द बैसवारी का है।

फारसी-मिश्रित-भाषा का भी एक उदाहरण देखिये.—

महलसराइ सैरखाने बूआ बूबू करौ,
मुझे अफसोच बड़ा बड़ी बीबी जानी का।
आलम मे मालुम चकत्ता का घराना यारों,
जिस का हवाल है तनैया जैसा तानी का।
खाने खाने बीच से अमाने लोग जाने लगे,
आफत ही जानों हुआ ओज दहकानी का।
रब की रजा है हमैं सहना बजा है वख्त,
हिन्दू का गजा है आया और तुरकानी का।

[सु० च० पृ० १६६]

कहीं-कहीं शुद्ध ब्रजभाषा के बीच पंजाबी के प्रयोग आ गये हैं.—

रवा लई आप तजी जिया की।
वाहीं प्रिया को न किस्मिया की।

इस मे 'किस्मिया' शब्द 'जटवारे' मे बोला जाता है और पंजाबी से प्रभावित है।

'सुजान-चरित' की भाषा पर समग्र-रूप से विचार करने पर यह स्वीकार करना पड़ता है कि भाषा के दृष्टिकोण से यह ग्रन्थ अत्यंत उच्च कोटि का है—इस मे शैथिल्य कहीं भी नहीं है'

सुजान-चरित

सुजान सलाबतखाँ युद्ध-वर्णन

तृतीय-जंग

कवित्त

बाप विष चाखै भैया खटमुख राखै देखि,
आसन मैं राखै बसवास जाको अचलै।
भूतनु के छैया आस पास के रखैया,
और काली के नथैया हू के ध्यानहू ते न चलै।
बैल बाघ बाहन बसन को गयन्द-खाल,
भाँग कौं धतूरे को पसार देतु अचलै।
घर को हवालु यहै संकर की बाल कहै,
लाज रहै कैसे पूत मोदक कौं मचलै॥ १॥

दोहा

ठारो सै रु पचोतरा, पूस मास सित पच्छ।
श्री सुजान विक्रम कियौ, ताहि सुनौ नर स्वच्छ॥ २॥

छन्द अरिल्ल

बहुत दिना बीते निज देसहि। तबहीं दूत कह्यो नरेसहि॥
दिल्लीपति बकसी इहि देसहि। आवत तुम सौं करन कलेसहि।
सहस तीस असवार संग गनि। पैदल पील फील बहुते भनि।
जोरे तुरक सहस दस बीसहि। आवत तुम सों करि मन रीसहि।
अलीकुली, रुस्तमखाँ संगहि। हकीमखाँ कुचरा हित जंगहि।
फतेअली औरो बहु मीरन। राजा राउ लयें संग धीरन।
इन्द्रनगर दच्छिन दिस कढ़िय। निपट गरूर पूर हिय चढ़िय।
कछु छिनु आवै मेवातहि। करिहै तहाँ अधिक उतपातहि।

याते वेगि करौ कछु घातहिं । जातें वाको होइ निपातहिं ।
अब जो नीक होइ सो कीजहि । याहि मारि जग में जस लीजहि ।
यों कहि दूत नाइ निज सीसहिं । सूरज आइ कह्यो व्रज-ईसहिं ।
तुरक सहस जोरें दस बीसहिं । दिल्ली ते निकस्यो धरि रीसहि ।
हम सो जुद्ध करन मन राखतु । महाराज मैं हूँ अभिलाषतु ।
आइस ईस तुम्हारो पाइय । तो याको कछु हाथ लगाइय ।
तब व्रजेश सुनि कैं यह भाषिय । तात मतो मो मन यह राखिय ॥३॥

सोरठा

दिल्ली ते कढि दूरि, जब आवै मैदान भुव ।
एक झपट करि सूर, याकौ दूरि गरूर करि ॥ ४ ॥

दोहा

मतो मानि बदनेस को, सूरज उदित प्रतापु ।
आइसु लै असवार ह्वै, करि हरदेव सुजापु ॥ ५ ॥

छन्द पद्धरी

जब चढ्यो सिंह सूरज अमान । बज्जे निसान घन के समान ।
पीरे निसान सोभित दिसान । अरि गहन दहन मानहु कृसान ।
सुंडाल चलत सुंडनि उठाइ । जिनके जंजीर झनझनत पाइ ।
घनघनत घंट अरु घुघुर-माल । भनभनत भवर मद पर रसाल ।
छनछनत तुरंगम तरह दार । फनफनत बदन उच्छलत बार ।
सनसनत सिमटि जब करत दौर । गुनगिनत सु तिनके कचितु-मौर ।
सोहैं अनेक गजगाह वंत । चमकंत चारु कलगी अनंत ।
झलकंत जिरह बखतर नवीन । तमकंत बीररस भट प्रवीन ।
टमकंत तबल टामक बिहद्द । ठमकंत टाप बिनु भुव गरद्द ।
ढमकत ढोल ढफला अगार । धमकंत धरनि धौंसा धुँकार ।
खमकंत वीर करि करि सुघोप । लमकंत तुरंगम पाइ पोप ।
हमकंत चले पाइक अनेक । इक जग रंग जानत बिवेक ।

कोदंड चंड कर कटि निषंग। इक चंड भुसंडी लै तुफंग।
इक सेल साँग समसेर चर्म। रनभूमि भेद जानत सुपर्म।
सब चढ़े बढ़े उच्छाह पूरि। छपि गयो गगन रवि उड़िय धूरि।
चतुरंग चमू सत रंग रूप। सजि चल्यौ सूर सूरज अनूप॥ ६॥

दोहा

कूच कियौ डेरा दियौ, नौगाएँ मेवात।
तरन तनेने तेह सों, जुद्ध हेत ललचात॥ ७॥

हरगीत छन्द

भूपाल-पालक भूमिपति बदनेस नन्द सुजान हैं।
जाने दिलीदल दक्खिनौ कीने महाकलिकान हैं।
ताको चरित्र कछूक सूदन कह्यौ छंद बनाइ कै।
सजि सैन सूरज चढ़ि्यौ कहि प्रथम अंक सुनाइ कै॥ ८॥

इति प्रथम अंक॥ १॥

छन्द पवंगा

सूरज चारि उपाय प्रवीन सुचित्तई।
साम दाम अरु भेद दंड धरि नित्तई॥
खल के मन की लैन बात करि सील की।
बिदा कर समुझाइ प्रवीन वकील की॥ १॥
देस-काल बल-ज्ञान लोभ करि हीन है।
स्वामि-काम मैं लीन सुसील कुलीन है॥
बहु विधि बरनै बानि हिये नहि भय रहै।
पर-उर करै उदेग दूत तासों कहै॥ २॥
खान सलावत पास वकील सुजाइ के।
करी सलाम कवाद अदाब बजाइके॥
नैननु लई सलाम सलावतखान ने।
कह्यौ कहा कहि वेग सुतोहि सुजान ने॥ ३॥

दोहा

कुँवर बहादुर ने प्रथम, तुमको कह्यौ सलाम।
फेरि कही कि नवाब दूत, आये हैं किहि काम ॥ ४ ॥
करत चाकरी साह की, हम पायो यह देस।
ताहि उजारत आप क्यों, तुमको कह्यौ सदेस ॥ ५ ॥
जो कछु तुम्हैं दिलीस नै, कह्यो ताहि कहि देउ।
ता माफक हम सों अबै, आप चाकरी लेउ ॥६॥

छन्द निसानी

इसी गल्ल धरि कन्न में बकसी मुसक्याना।
हमनूं बूझत हौ तुमी क्यों किया पयाना ॥
असी आवने भेद नू अब लौं नहिं जाना।
साह अहम्मद ने मुझे अपना करि माना ॥
तखत आगरा ग्वालियर हिंडौन बयाना।
होडिल पलवल अलवरी मेवात सध्याना ॥
वार पार मथुरा तलक हूवा फरमाना।
बकसी की जागीर दै बकसी मैं ठाना ॥
इनमें ते जे तुझ तरें तहं करि मो थाना।
दा कौर दै साहि नूँ सग होहि सयाना ॥
होर कहा है साहि ने सो भी सुन जाना।
असदखान सरकार दा चाकर क्यों माना ॥
तैं अपने मन में गना बूढा तुरकाना।
कै एक गल्ल कबूल करिकै हो मरदाना ॥
जब यों कह्यौ नवाब ने सुन दूत अमाना।
मामला तिनहिं न होइसी दिल अदर जाना ॥
तिसी घड़ी नव्वाब सें कर जोरि बखाना।
जेहा जिसनूं लोड़िये तेहा फुरमाना ॥

वह बंदा है साहि दा दरपुस्त पुराना ।
दोनों तखतों दे विचौं तद ही ठहराना ॥
जिसका नाउ सुजान है देसी नहि आना ।
जमी न अँगुल छोड़सी यह उस दा बाना ॥
मैनूं रुखसद दीजिये नाहक बतराना ।
हूवा बंदा दुहुँ ओर दा बदगी सुजाना ॥
ये जुवाब नव्वाब सुनि दिल माहि रिसाना ।
तद वकील सौं यों कह्या करि जाहि पयाना ॥
उसी वख्त सिर नाइकें सो हुआ रवाना ।
आगे सिंह सुजान कों भेजा परवाना ॥
अवल आपनो बंदगी बक्सी सतराना ।
जसी करी तेई लिखो नहिं नेकु भुलाना ॥
होर लिख्या इस तुरक नूँ तेहा अधिकाना ।
जंग अखाड़े में इसे कीजे सनमाना ॥ ७ ॥

सोरठा

ओमजेस कौ नंद, कागद बाँचि वकील कौ
अंग अंग आनन्द, हिये हरदेव कहि ॥ ८ ॥
सूरज रियौ विचार, मंच डेरा ह्वाँई रहै ।
चंचल हय असवार, पाइक चलो चलाक सें ॥ ९ ॥

तोटक छन्द

रथ ऊँट गयंद मुकाम कियं । तिन । ंग पदातिनि राखि दियं ।
छ हजार सवार तयार ।लयं । तिहिं संग सुजान हरषि हियं ।
रवि ऊगत बार पयान ३ियं । हय के असवार न और थियं ।
करलै फिरवान निसान दियं । जिहि के सम सूर न और बियं ।
तिहँ बार तुरंमग साजि घनं । असवार भयौ बदनेस तनं ।
रन जीतन कों मन राखि पनं । करि दुंदुभि दोह अवाज घनं ।

जब कूंच कियौ रस बीर सनं। तब पीत पताकन सोभ बनं।
जनु चञ्चल दामिनि सोमघनं। हय टापन सौं कहुँ होत ठनं।
वह सेनु दरेरनु देति चली। मनु सावन की सरिता उफली।
थहि सैल मनो मुख काढ़ि रहे। अरु ढालनु कच्छप रूप गहे।
जल जोरि तुरंगम देखि रहे। जनु मीन जहाँ धुज देह लहे।
द्रुम ज्यों द्रुम ढाहति आवत है। इम सैन नदी सु कहावत है।
दस कोस सुभूमहि पीठि दिय। तिहिं थान मुकाम सुजान लियं।
निस एक बसे परभात भयौ। तब आयसु सिंह सुजान दियौ ॥१०॥

सोरठा

हे नवाब दस कोस, कोस पाँच औरौं चलैं।
दिखा दिल्ली के जोस, रोस भरे लरिहैं भले ॥११॥
यों कहि सिंह सुजान, पाँच-कोस कौ कूँच करि।
चौकी करी अमान, सहस सहस असवार की ॥१२॥

छन्द पद्धरी

सरदार सुगोकुलराम गौर। जिहिं संग सहस हय करत दौर।
तसु अनुज सु सुरतिराम संग। सत चार तुरीवर लेत जंग
सत पाँच तुरी कूरम प्रताप। सँग लियैं जुद्ध पर-बल उथाप।
अरु एक सहस बलिराम बीर। हय हंकि हँकारत समर धीर।
सत चारि बाजि स्यौसिंह धीर। इक सथ्थ हत्थ बल करि गँभीर।
एक सहस बाजि कीने सनाह। वह धीर बीर महमद पनाह।
सत बेद किलयानु सहित जोर। रन-भूम सिंह राना कठोर।
सत एक हवंदनु लै उदग्ग। हरिनारायन जिहिं प्रबल खग्ग।
इहि भाँति और बलवान जोध। सब सत्रु हेत हिय धरत क्रोध।
इनके सुगोल किय चारि चंड। खल-खंडन तिनकौ बल अखंड।
इनतै जु अरध निजु राखि सथ्थ। जे हथ्थियनिहूँ सौं करत हथ्थ।
इहि भाँति पाँच चौकी बनाइ। यह कह्यौ बचन तिनसौं सुनाइ।

तुम जाहु चहूँ दिसि तें मरद । परबलहिं घेरि दीजे दरद ।
जहँ खान पान पावे न जान । अरु जुद्ध बार सब सन्निधान ॥१३॥

दोहा

ऐसें बचन सुजान के, सबै सुभट उरधारि ।
बकसी की तकसी करन, चले सेल पटतारि ॥ १४ ॥

छन्द भुजंगप्रयात

चहूँ ओर धाए धरा धूमधारें । घर्म कै धरें पाइ दै दै हँकारें ।
सबै ओर तें धाइ के धूम पारी । सुनैं सैद की फौज ने भीति धारी ।
हुते फौज ते बाहरे ते डराने । कुल-स्त्री लगैं ज्यौं पराए पियाने ।
किहूँ धाइकै धाइकै पील लीने । किहूँ फील पाठे पटकि हाथ कीने ।
किहूँ छैल ने बैल लै गैल चाही । किहूँ लै तुरी को धनी मैन गाही ।
कहूँ फील फैले मनो हैं घटाए । भुसुंडीन सों मारि काहू हटाए ।
भए सद के लोग सब्बे इकट्टे । मनो सिंह की सक सों रोझ्रवट्टे ।
तहाँ सोर बाढ्यो कहें जट्ट आए । करौ सावधानी रहौ ठौर ठाये ।
सबै सैदकी फौज यौं खलभलानी । लगे आगिके ज्यौं उठै ओटि पानी ।
कबौ दौरि काहू सुनी आपबकसी । लगी एक ही बारही मैं धमकसी ।
घरी एक मैं चेत ह्वै बीर बोल्यौ । घणी बार लौं आपनो सीस डोल्यौं ।
करौ वे करो बेगही सावधानी । बुलाओ नकीबो नहीं बात मानी ॥१५॥

दोहा

तब नकीब सौं यौं कियौ, हुकुम सलाबतखान ।
तोप बान अरु रहकला, चौकस करौ दवान ॥ १६ ॥
कटक बीच में राखिकै, इनसे यह कहि देउ ।
आप आपने मोरचा, सब चौकस करि लेउ ॥ १७ ॥
ताबदार रक्खो किये, सबै अराबी एहु ।
ज्यों हरीफ आवे नजरि, तबै धड़ाधड़ देहु ॥ १८ ॥
तबही सूरज के सुभट, निकट मचायो दुन्द ।
निकसि सके नहि एकहू, कस्यौ कटक मसमुन्द ॥ १६ ॥

हरगीत छन्द

भूपाल-पालक भूमिपति, बदनेस नन्द सुजान हैं।
जाने दिलीदल दक्खनी, कीने महाकलिकान हैं।
ताको चरित्र कछूक सूदन, कह्यौ छन्द बनाइ कैं।
बकसीहि वेढन सुभट सूरज, दुतिय अङ्कहि धाइ कै ॥ २० ॥

इति द्वितीय अङ्क ॥ २ ॥

छप्पय

छुट्टन लगे उदंड चंड कोदंड भुसुंडी।
जब्बर जग्ग घनघोर मारु गोलन की मंडी।
आस पास ब्रजबीर मीर बहु मोरनु पारतु।
निकसि सकै नहिं कोइ रैन दिन जुद्ध बिचारतु।
इह भाँति कछुक बासर गए, तब बकसी रोसहि भर्यौ।
सरदार मद्धि दर बार जे, तिनहिं आयु आइसु कर्यौ॥

दोहा

तुम सवार इस बार हो, निकसौ सबै अगार।
मैं भी साइत देखि कै, एक करौंगा मार ॥ २ ॥
खान सलावत कौ हुकुम, वे अमीर सुनि कान।
अपये अपने मन लगे, जुद्ध हेत ललचान ॥ ३ ॥
रुस्तमखाँ सुहकीमखाँ, अरु कुमरा अति चण्ड।
फतेअली सु अलीकुली साजो सैन उदंड ॥ ४ ॥

छप्पय

उन्नत असित मतंग ललित कंचन अम्बारिय।
घन दामिनि के भेस गजनु घटनु घुनि धारिय।
रुकम रजत बर बाजि साजि साजे बहु रंगनि।
तंगन लिए पतंग मनौ इम भरत छलंगनि ॥ ५ ॥
अंगन अनूप कवचनि कसिय, लसिय मनौ फनिधर खरे।

हयनाल हकि हथनाल हुव सतनलि सनमुख धरे ॥५॥
दै दै दिघ्घ निसान वान नीसान अग्ग धरि।
चढे गयंदनु पिट्ठि दिट्ठि अति रोस रंग भरि।
चँवर चलत चहुँओर चारु सिप्पर चमकावत।
चलत चमू चतुरङ्ग मनहुँ पावस घन धावत।
ठुक्कत तबल्ल इफगल्ल रव मल्ल भल्ल फेरत भले
सूरज-प्रताप-पावक निरपि मनु पतङ्ग आवत चले॥ ६ ॥

पावकुलक छन्द

जबहीं कटक निकट तैं कढ्ढे। पाँचौ चपल गयंदनि चढ्ढे।
तबहि अभ्र उतपात सुबढ्ढे। गिद्ध आइ सनमुख रव रढ्ढे।
लरत बिलाउ सामुहैं आए। आमसिंह श्रवननि फटकाए।
सिवा श्रगाल सामुहैं रोए। रजकु वस्त्र लायो बिनु धोए।
अगिन धुंधात मनुज कर लाए। मुकुलित केस जटिल दरसाए।
आनि उलूक धुजा पर बैठे। पलचर परत चमू मैं पैठे।
चलत गयंद अचानक धुक्कैं। अक्कसमात चाल कौ चुक्कैं।
आँकुस गिर्यो महावत करतें। गद गद कंठ भए रन टर तें।
नैनन नीर बह्यो तिहि बेरें। उठे रोम मानौं जम घेरें।
भए इते उतपात महा ए। बस परि काल नही मन लाए।
मानौं जमपुर जात पलाए। पाँचौं घढे गयंदनि आए।
सहस दोइ दोई हय साजैं। पैदल पील बहुत गल गाजैं।
भए आनि रनभूमि इकट्ठे। निकट सिंह के ज्यौं मृगपट्ठे।
कोर बाँधि पाँचौ भए ठाढ़े। आगे धरे जँजानु गाढ़े।
हथनाल रु हयनाल उदढ्ढी। तोप रहकला और भुसढ्ढी।
अपनौ कटक घेरिकै ठाढे। कोप दोइ डेढ़क भुव बाढे॥ ७ ॥

दोहा

तबही सिंह सुजान सों, कही दूत ने धाइ।
आजु तुरक बाहर कढे, सजे सैन बहु भाइ॥ ८ ॥

मन्नमखाँ सुहफीमखाँ, गुपरा अरु अखिसार।
फतेअली नु अलीकुली, निकसे जङ्ग विचारि ॥९॥

सोरठा

सुनि तहँ सिंह सुजान, धारयो धीरी दृढ़ करी।
महल छोड़ि लखान, आपु चलयो जुटबार का ॥१०॥

छन्द अनुगान

दुहुँ ओर धुंधिय धूरि कंपिय चमक धुंधिय मन्द।
घनपटह बज्जिय गज गरज्जिय भीति भज्जिय फुन्द।
दधनान दफिय तोप टफिय पुनि धमंकिय नंद।
हयनाल छुट्टिय तरु भुसुंडिय धरनि धंडिय संड।
दुन्दुभि धमंकिय भेरि भंकिय ना नक्किय कूर।
अति घोर सोर भयान बढ्ढिय मारु रढ्ढिय गूर।
जखि दूरि नहहिं फद विहहहिं बदन बहहिं टेरि।
कुहुकंत बान चलाइ चंडिय देत गोला बखेरि।
धरधरत देन धवान पौ गरसरत बखतर अंग।
तरतरत तेहनु सौं भरे दर दरत लाल निषंग।
फरफरत धनुपन की भरे भर भरत बीर तुनीर।
धरधरत धन्ढ हिहाय सो नहिं टरत एकहुँ बीर।
दुहुँ देखि दपटत छदन झपटत जाइ लपटत धाइ।
फिरि फेरि अहुटत चलत जुहटत दुहूँ पुहटत आइ।
नहि जमनि ठहू भइ साहय रहिय पाइ रुपाइ।
अज-बीरहू रनधीर रुप्पिय जैति हेत लुभाइ ॥११॥

छप्पय

या विधि जुद्धहि करत दिवस बीतन जब लगिय।
सुपक तोप जज्जाल चोट इनही की दगिय।

यह सुनि सूरज कहिव आज ए जान न पावैं।
करिहैं श्री हरिदेव सोत्र करनी कह तामैं ॥
यों वचन मानि सबही सुभट सनमुख धाइय रोस धरि।
इकबार सिमटि चहुँ ओर ते कहत देव हरिदेव हरि ॥१२॥

भुजंगी छन्द

छुटे एकही बार सो जुद्ध काजैं। जुटे जाइकै धाइकै छोह साजैं।
खुटे खग्ग हथ्थौं अरब्बीनु चढ्ढे। हटैं नाहिं कोऊ सवै साथ बढ्ढे।
चहूँ ओर सौं सोर यौं मार छायौ। मनौ सिंधु सद्दे हवा पौं हलायौ।
किहूँ सेल सम्भारि कै हाँक कीनी। बिये तेग सौं काट कै डारि दीनी।
किहूँ बाढ के सेर समसेर बाही। किहूँ लै भुसुंडीनु सौं देह दाही।
तहां चंड कोदंड लै हथ्थ केते। धए सत्रु के सामुहैं पग्ग देते।
कहूँ लेहु रे लेहु रे लेहु म्हैं। कहूँ देहु रे देहु रे वीर बद्दैं।
अहट्टैं भयो सद्दता भूमि माहीं। तहां आपनी आपनी चोट वाहीं।
कहूँ सेल सन्नाह कौं फोरि वैठे। मनौ भानु ना मैं फनी जात पैठे।
कहूँ सांग दुहूँ अंग लौं भेदि अच्छी। किधौं श्रौन पानी चली भाजि मच्छी
लगे तीर तीखे कछू भाल दीसैं। मनो तीन नैना धरें ईस रीसैं
कहूँ तेग तेगौं झरे झार उट्ठी। मनो घोर ज्वालामुखी जग्ग रुट्ठी।
किते भाल भालेनु सौं लाल कीने। मनौ फाग के ख्याल के रंग भीने।
भरे बत्थ सौं बत्थकै लत्थपत्थै। मुखौ मारुही मारु पौ बीर कथ्थैं।
पलक एक ऐसे भई मारु भारी। लखैं दूरिही तैं हँसै रैनचारी।
धए सूर के सूर दै पाइ अग्गैं। डराने तहीं खान के लोग सग्गैं।
जिन्हैं स्वामि के काम की लाज भारी। खड़े खेत खूनी नही संक धारी।

दोहा

अलीकुली मुफतेअली, कुबरा गए पलाइ।
रुस्तमखां रु हकीमखाँ, ए पग रहे गड़ाइ ॥१५॥

हरगीत छन्द

भूपाल पालक भूमिपति, बदनेस नन्द सुजान हैं।
जाने दिलीदल दक्खिनी, कीने महाकलिकान हैं॥
ताको चरित्र पवित्र सूदन, कह्यौ छंद बनाइ कै।
यति छुंद शुद्ध विरुद्ध उद्धत, तृतिय अंक सुनाइ कै॥१५॥

इति तृतीय अंक

दोहा

दुहूँ गयंदन पै चढ़ैं, धनुष बान गहि हथ्थ।
जम-किंकर जिमि कोह कै, नरनु करत लथ पथ्थ॥१॥

छप्पय

तिनके जुद्धहिं देखि बहुत चरबीचर आइय।
जुगिननि जोरि जमाति जहाँ जाहर जमुहाइय॥
काली करत कलोल खलखलैं तहँ खबीस गन।
भैरव भभरयौ फिरत पिता के द्वार हेत रन॥
जहँ ईस दूत जगदीस के, गीरवान गनिका उमगि।
जहँ रुस्तमखाँ रूहकीमखाँ, स्वामिकाम हित रहिये पगि॥२॥

संजुता छन्द

रन तैं न पाइ चलाइये। धनुबान लै समुहाइये।
बलु आपनो सब संग लै। बिफरे सुबीर उमङ्ग लै।
तिहिं देखि जट्ट झपट्टिए। पल ए कमाहिं दपट्टिए।
तहँ गौर गोकुलराम ने। बहु रंग जंग मचावने।
करि कुद्ध जुद्धहिं पिल्लियौ। गहि सेल साँगनु भिल्लियौ।
तिहिं भ्रात सूरतिराम हैं। बहु सूरता की धाम हैं।
बलिराम बिक्रम-आगरौ। गहि तेग जुट्टि उजागरौ।
हरताप कूरम केहरी। बरसाइ बाननु की झरी।
सिबसिंह सार सम्हारिकै। मिलि गयौ फौजहिं फारिकै।

अरु मीर बीर बिहडनौ। बहु रीति जुद्धहि मंडनौ।
जहि तेग तीरन जुट्टयौ। पर भूमि तैं नहिं छुट्टयौ।
सर स्यामसिंह सम्हारिकै। धरि मारियै ललकारि कैं।
व्रजसिंह बीर महाबली। जिनि लै अनी अरि की दली।
पखरैत पाखरमल्ल हैं। करि धयो पारथ हल्ल हैं।
अरु किसनसिंह दरेर दै। गहि दई साँग करेर दै।
बलवंड सिम्भू को तनैं। जिहिं नाम हरिनाराइनैं।
अरु औरहूँ बहु सूर हैं। पर प्रान पौरुष पूर हैं।
इतमें इते बलवान हैं। उत सेख मुगल पठान हैं।
तिन में मच्यो घमसान है। सर सेल साँग कृपान हैं।
दुहुँ दट्टि दट्टि दबट्टहीं। अरि नाम लै लै रट्टहीं।
इक देत घाइ झटक्कि कै। हय तें सुदेस पटक्कि कै।
इक देत हूल हटक्कि कै। इक एक परत लटक्कि कै।
सुहकीमखाँ भुजदंड तें। अरु रुस्तमाँ, बलवंड तें।
ज्यौं कुपित सेही अंग तें। त्यौं छुटत बान निषंग तें।
तिहि देखि सिम्भू को बली। रिस ज्वाल अन्तर उच्छली।
फटकार सेलहि हथ्थ में। हय हंकियौ अरि गथ्थ में।
सुहकीमखाँ लखि आवतो। जो हुतो चाप नचावतो।
तिहिं कान लौं कसि बान कों। तकि दियौ ताकि भुजान कों।
सर सो लग्यो उर आइ कै। छुत कर्‌यो श्रोन बहाइ कैं।
वह बीर तीरहिं कढ्ढि कै। रस रुद्र रंगहि बढ्ढि कैं।
हय हंकियौ गजदंत पै। मनु राखि कै अरि अंत पै।
ज्यौं सिंह गज मदमंत पै। हय लस्यौं यौं करि-दंत पैं।
फटकारि सेलहिं उद्ध कौं। तकि आपुनो अरि सुद्ध कौं।
वह सेल गजमद भेद कै। सुहकीम खाँ तनु छेद कै।
तबही सुतीरन छुट्टियौ। सुहकीमखाँ रन छुट्टियौं।
इक दयौ सरकटि तब्धि पै। वह लग्यौ हिरनहिं धद्धि पै।

तब ही सुसंभू पूत ने। गहि तेग बल मजबूत ने।
गज कुम्भ दह्य करकि कै। मनु परिय बिज्जु तरकि कै।
फिरि धाइ गज गद्दी दली। कसना बिदारिय भुजबली।
नु हकीमखाँ भुव पारियौ। गज पट्ठ तें गहि डारियौ।
इमि गिरत लोग निहारियौ। मनु कन्ह कंस पछारियौ।
तबही सु सेल रु साँग की। बरषा भई चहुँ आँग की।
तबही सु औरन टौरि के। लिए रुस्तमा झकझोरि कै।
करि एक एकहि चोट सों। राख्यौ हकीम हुँ ओट सों।
तबही सु. तिनके साथ के। करि एक एकहिं हाथ के।
सरदार जूझत खेत मैं। भजि गए बहुत अचेत मैं।
तजि कै हथ्यारनु पिट्ठि दै। धस गए लसकर निट्ठि दै।
ब्रज बीरहू निन संगही। चलि गए कटक उमंगही॥ ४॥

दोहा

तब ही बकसी के कटक, खलभल परी अपार।
आए आए सब कहैं, सूरज सुभट उदार॥ ५॥
घरी चारि डेरा लुटे, बुटे तुरक बेहाल।
जट्ट जट्ट कहते फिरैं, सब ने जान्यो काल॥ ६॥
फेरि बगद ब्रज-बीर सौं, आए ताही खेत।
जहाँ परे रुस्तमखाँ, अरु हकीमखाँ रेत॥ ७॥

कवित्त

हुव्व पै हकीमखाँ सुधक्कपक्क छोडि धायौ,
पग न डिगायौ भरि आयौ मन रीस नैं।
निपट भयान छिन मान रन थान कर्यौ,
सान धरै बाननु चलाय दस बीस नैं।
रेव खेत भयौ तऊ सेत जस लेत रह्यौ,
नेत नेत गायौ कोटि तीन और तीस नैं।

जोगिनी रकत पायौ तन ताकौ प्रेतपूत,
सीस पायौ ईस ने असीस ब्रज-ईस नैं ॥ ८ ॥
तोम तम छाए सुलतान दल आए, सौ तौं,
अमर भजाए उन्हैं छुई है अचकसी ।
काल कैसी रसना कराल करवाल तेरी,
व्याल भाल कहि कै करन लागो तकसी ।
सूदन सुजान मरदान हरिनाराइन,
देव हरिदेव जंग जैति ताहि बकसी ।
जूझत हकीमखाँ अमीरनु कैं धकसी,
औ बकसी के जिय में परी है धकपक सी ॥९॥
चौकतु चकत्ता जाके कत्ता की कराकनि सौं,
सेल की सराकनि न कोऊ जुरे जंग हैं ।
कंथक अमीर मीर धीर तें फकीर करे,
बीर बलबीर कौं सदा ही सुमी सग हैं ।
सूदन सकल देस देसन अदेस भयो,
भाजत दुवन ज्यौं लियैं तुरंग तङ्ग हैं ।
जैति को निधान तेज भान के समान मान,
आजु तो जहान मैं सुजान सुख रंग हैं ॥१०॥

सवैया

जुद्ध जुरे न मुरे ब्रजबीर, सुसेलन सों धकपेल मचाए ।
जुग्गिन खप्पर पूर नची, पर के सिर दौर हरे पहराए ।
फेर फिरे तन श्रौन भरे, मनु भोर के भान सुरेस पैं आए ।
देखत सिंह सुजान अमान, सुजान भरे उठि अंक लगाए ॥११॥

त्रिभंगी छन्द

बाजे सहदाने तुजस पुराने तूर पुराने गुन गाने ।
बक्सी दल भाने मंगल माने यो सुख साने हरषाने ।

आए अतुराने बाँधे बाने जे मरदाने समुहाने।
ते कंठ लगाने दै बहु माने सूरज माने जग माने॥१२॥

छन्द हरगीत

भूपाल-पालक भूमिपति, बदनेस-नन्द सुजान हैं।
जाने दिलीदल दक्खिनी, कीने महाकलिकान हैं।
ताकौ चरित्र कछूक सूदन, कह्यौ छंद बनाइ कै।
सु हकीम रुस्तम जितियौ, रन अंक चौथो गाइकै॥१३॥

इति चतुर्थ अङ्क

तोमर छन्द

तबही सलाबत खान। मनमैं भयो कलिकान।
इत जानि दोऊ बीर। अब को धरै रन धीर।
जबही सु साम उपाइ। अपने हियैं ठहराइ।
तबही वकील बुलाइ। कहियौ बहुत समुझाइ।
तू जा सुजानहिं पास। हमसौं करैं इखलास।
सब मुलक उसकौ देहुँ। अरु आपने सँग लेहुँ।
ज्यौं बने त्यौं तू जाउ। करिहौं बडो उमराउ।
जब यौं कही नव्वाब। सु वकील दीन जुवाब।
ज्यौं कहत आपु नवाब। त्यौं कहौं जाइ सिताब।
वह है सुजान अमान। जो मानिहै बलवान।
कहि यौं उठै सिर नाइ। तिहि बार आयौ धाइ।
जहँ हो बजेस कुवार। रनभूमि कौं जितवार।
तिहि निकट पहुँच्यौ जाइ। करि राम राम बनाइ।
तिहि देखि सिंह सुजान। कछु लग्यो मृदु मुसिकान॥१॥

दोहा

कहि भेज्यौ सु नवाब ने, सो सब सुनी सुजान।
कही कि कह्यौ नवाब कौं, हम कौं सबै प्रमान॥२॥

तब सूरज ने यों कह्यो, मंद मंद मुसिकाइ।
मेरो नाथ सलाम तू, कहियों सीस नवाइ ॥३॥
बेअदबी हमतें बनो, ताहि न राखैं चित्त।
ज्यों चाकर हम साहि के, त्यों नवाब के नित्त ॥४॥
बिनती एक नवाब सों, मेरी रुखसट देहिं।
लालासिंह जवाहरै, अपनो हरवल लेहिं ॥५॥
जैसी कही नवाब की, मानी सिंह सुजान।
त्योंहीं सूरज की कही, करी सलाबतिखान ॥६॥
लालासिंह जवाहरै, लीनो वेगि बुलाइ।
सब सेना ताकों दई, बकसी दियौ मिलाइ ॥७॥
श्रीसुजान के पूत कों, हरवलु लियौ नवाबु।
कूंच ढुंढ़ाहर कौं कियौ, दोउन गाँठ्यौ दावु ॥८॥
मुस्तकीम लखि तनय कों, हिय हरिदेव मनाय।
धायो आयौ व्याह कों, रैन दिना इक भाय ॥९॥
तीन कर्म में एकहू, ज्यो मथुरा में होइ।
फेरि न आवै जगत मैं, यह बिचार चित टोइ ॥१०॥
दोइ कर्म परवस निरखि, एक जान निज हाथ।
कर्‌यौ ब्याह मथुरा पुरहि, कृपा पाइ यदुनाथ ॥११॥
इति तृतीय जंग।

जोधराज

'हम्मीर-रासो' के रचयिता जोधराज के जीवन-वृत्त से संबंधित अधिक सामग्री उपलब्ध नहीं। उनके द्वारा रचित, एक मात्र ग्रंथ हम्मीर-रासो में, आत्म-

परिचय

परिचय के रूप में केवल निम्नलिखित पंक्तियाँ मिलती हैं—

पृथिराज राज जग मैं प्रसिद्ध। भृगुवंश मध्य प्रगटे सुसिद्ध।
नृप चन्द्रभानु तिहि वंश मध्य। किरवान दान दोऊ प्रसिद्ध।
तिन निवराण जग ग्राम नाम। जुत वर्णाश्रम निज धर्म धाम।
जय कीरति भुवमंडल उदार। घन तेज प्रतापी बल अपार।
सब कहैं राठ को पातिशाह। जस श्रवन सुनन को सदा चाह।
द्विजराज गौड़-कुल जग प्रसिद्ध। विद्या विनीत हरि धर्म वृद्ध।
सब दया दान उदार धीर। गुणसागर नागर परम धीर।
कुल पंच वृक्ष के मूल जान। द्विज आदि गौड़ जानत जहान।
सौ चौदह से चालीस च्यार। जन सासन सागर अति उदार।
अब सब को किंकर मोहि जानि। ऋषि अत्रि गोत्र में जन्म मानि।
डिङ्चरिया राव कहि विरद ताहि। शुभ राठदेश में उदित आहि।
तिहि नाम ग्राम भल योजनार। सब प्रजा सुखी जुत वरण चार।
जहँ बालकृष्ण सुत जोधराज। गुन जोतिष पंडित कवि समाज।
नृप करी कृपा तिहि पर अपार। धन धरा बाजि गृह बसन सार।
वाहन अनेक सत्कार भूरि। सब भाँति अजाची कियो भूरि।
नृप एक समय दरबार माहि। रासो हमीर कह्यौ सुन्यों नाहि।

[ह० रा०; पृ० १-३]

ज्ञातव्य बातें इसमें इतनी ही हैं कि पृथ्वीराज के वंश में "राठ पातिसाह" उपाधिधारी चंद्रभान नामक राजा किसी

निम्बराण नामक स्थान का अधिपति था। जोधराज इसी राजा के आश्रित थे। कवि अत्रिगोत्रीय-गौड़-वंश कुलोत्पन्न-ब्राह्मण था, जो काव्य-कला मे निपुण होने के साथ ही साथ ज्योतिष-शास्त्र का भी ज्ञाता था। उसके पिता का नाम बालकृष्ण था। राजा चन्द्रभान की ही आज्ञा से कवि ने "हम्मीर-रासो" की रचना की। किन्तु उक्त विवरण मे कवि की जन्म-मरण-तिथि पर कोई प्रकाश नही पड़ता।

हम्मीर-रासो

जोधराज का एक मात्र ग्रन्थ "हम्मीर-रासो" प्राप्त है, जिस के कुल ६७६ छंद है। प्रारम्भ मे गणेश तथा सरस्वती की

सारांश

वन्दना की गई है, तत्पश्चात् पृथ्वीराज के कुल मे उत्पन्न चन्द्रभान का वर्णन करते हुए कवि ने अपना परिचय दिया है। उक्त चन्द्र-भान ही निम्बराण का जागीरदार था और उसी के दरबार मे आदि गौड़-कुलोत्पन्न अत्रिगोत्रीय बालकृष्ण के पुत्र जोध-राज जी रहते थे, जिन्हे वहाॅ का कवि-संप्रदाय 'डिडबरियाराव' के नाम से पुकारता था। हम्मीर की वंशावली प्रस्तुत करने के लिए कवि ने पौराणिक शैली का अनुकरण करते हुए कल्पांतर के प्रारम्भ मे सृष्टि-रचना के उपाख्यान से कथा का प्रारम्भ किया है। उनके अनुसार प्रथम कल्प के आदि मे संसार रूपी उपवन के जड़-चेतन, प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष सभी पदार्थ बीजरूप से अनादि परमात्मा के उदर मे स्थित थे और जगदीश्वर योग निद्रा मे निमग्न थे। उन्होने अपनी इच्छा के अनुकूल माया को उत्पन्न किया और नाभिकमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई।

जलज से उत्पन्न ब्रह्मा ने बहुत काल पर्यंत विचार-निमग्न रहने के पश्चात् तप करके सृष्टि उत्पन्न करने का निश्चय

किया। सर्वप्रथम उन्होंने पंच महतत्वों की रचना की और तत्पश्चात् बीज-वृक्षादि जड़-पदार्थों की रचना कर तथा सनक, सनंदन सनत्कुमारादि चार पुत्रो की उत्पत्ति करके मानव सृष्टि का विस्तार करना चाहा; किंतु कुमारो के अखण्ड ब्रह्मचर्य-धारण करने से उनको निराशा हुई। इसलिये ब्रह्मा ने उसी विधान से अन्यान्य मुनिवरो की रचना की। मन से मरीचि, कान से पुलस्त्य, नाभि से पुलह, त्वचा से नारद, छायासे कर्दम, पीठ से अधर्म, कण्ठ से धर्म और ओष्ठ से लोमपादि अनेक ऋषि हुए।

ब्रह्मा के पुत्र मरीचि की तेरह स्त्रियाँ थीं जिनमे एक का नाम कला था। कला से कश्यप और धर्म दो पुत्र हुए। अत्रि के तीन पुत्रो में बड़े का नाम सोम हुआ जिससे बुद्ध और फिर बुद्ध से पुरूरवा नामक पुत्र हुआ। इसी पुरूरवा के छः पुत्र हुए जिनसे चन्द्रवंशियो के छः कुल विख्यात हुए।

इसीप्रकार भृगु के कुल मे परशुराम हुए, जिन्होने सारी पृथ्वी को क्षत्रिय-विहीन कर दिया। क्षत्रियो के समूल नष्ट हो जाने पर सारी वसुंधरा अनेक अमानुषी-अत्याचारों से पीड़ित हुई। इससे भयभीत होकर ऋषियो ने फिर से क्षत्रियो की उत्पत्ति के लिये आबू पर्वत पर एक यज्ञ किया। उसी यज्ञ कुण्ड से क्रमशः चालुक्य, परमार और प्रतिहार क्षत्रियो की उत्पत्ति हुई। जब इनसे भी दैत्यों का नाश न हुआ तो ऋषियो ने द्वितीय बार यज्ञ किया, जिससे चहुआन की उत्पत्ति हुई, जिसने ऋषियों का आशीर्वाद प्राप्तकर सारे दैत्यों को समूल नष्ट कर दिया।

इसी चहुआन-वंश में आगे चलकर बारहवी शताब्दि के प्रारम्भ मे जैतराव नामक एक राजा हुआ। एक दिन

शिकार खेलते समय वह जंगल में अपने साथियों से पृथक हो गया। वाराह का पीछा करते हुए वह पद्मऋषि के आश्रम पर पहुँचा। ऋषि की आज्ञा शिरोधार्य कर राजा ने भयंकर तप करके शिव को प्रसन्न कर लिया और सं० ११,१० वैशाख सुदी अक्षय-तृतीया को शनिवार के दिन रणथम्भोर के दुर्ग की नींव डाली।

पद्मऋषि उसी दुर्ग में रहकर उग्र तपस्या करने लगे। उनकी तपस्या से भयभीत होकर इन्द्र ने मकरध्वज को षड्-ऋतु तथा अप्सराओं के सहयोग से उनकी तपस्या भंग करने के लिये भेजा। कामदेव पद्मऋषि की तपस्या भंग करने में सफल हो गया। ऋषि जी अप्सराओं के साथ विलास करने में तल्लीन हो गए। कुछ समय पश्चात् जब अप्सराएँ चली गईं, तब पद्मऋषि को अपनी सच्ची स्थिति का ज्ञान हुआ और पश्चात्ताप में उन्होंने अपने शरीर के पाँच खण्ड करके यज्ञ कुण्ड में हवन कर दिया। इन्हीं ऋषि के मस्तक से अलाउद्दीन बादशाह (?) वक्षस्थल से राव हम्मीर, भुजाओं से महिमाशाह और मीर गभरू (?) चरणों से उर्वसी, अर्थात अलाउद्दीन की बेगम रूपविचित्रा का अवतार हुआ।

हम्मीर का जन्म सं० ११४१ वि० कार्तिक शुक्ल, द्वादशी रविवार को हुआ, और उसीदिन गजनी में शहाबुद्दीन के यहाँ अलाउद्दीन का जन्म हुआ।

एक समय अलाउद्दीन अपने परिवार के साथ जंगल में शिकार खेलने गया। बादशाह शिकार के पीछे कुछ दूर चला गया और सब बेगमें एक सरोवर में जलक्रीड़ा करने लगीं। इसीसमय एक प्रबल झंझावात उठा और सर्वत्र धूलि से अंधकार छा गया जिससे अलाउद्दीन की सर्वाधिक सुन्दरी बेगम रूपविचित्रा भटककर जंगल में चली गई। वहाँ अचा-

नक नवाब महिमाशाह मिल गया । बेगम ने उससे अपनी वासना पूर्ण करने का घृणित प्रस्ताव किया । पहले तो महिमा-शाह ने अपनी चरित्रनिष्ठा दिखलानी चाही किन्तु रानी के बारबार कहने पर वह तैयार हो गया । दोनों की प्रेम-क्रीड़ा के ही प्रसंग में वहाँ एक शेर आया जिसे महिमाशाह ने केवल एक बाण से मार डाला । यथा समय बेगम डेरे पर पहुँचा दी गई ।

कुछ दिनों बाद अलाउद्दीन एक समय उसी रूपविचित्रा से महल में वार्तालाप कर रहा था कि वहाँ एक चूहा निकल पड़ा । पहले तो बादशाह को बड़ा भय प्रतीत हुआ, किन्तु अपनी सुन्दरी स्त्री के सामने अपने शौर्य-प्रदर्शन की लालसा से एक बाण चूहे को लक्ष्य करके उसने मारा जिससे बेचारे का काम तमाम हो गया । रूपविचित्रा को महिमाशाह की वीरता का स्मरण हुआ और वह हँस पड़ी । बादशाह के अत्यंत आग्रह करने पर उसने सारा वृत्तांत कह सुनाया । इसपर वह अत्यंत क्रोधित हुआ और महिमा को अपने राज्य से निकाल दिया । वह अपने साथियों के साथ आश्रय के लिए इधर-उधर भटकने लगा । अंत में महाराज हमीर ने उसे शरण दी । इस समाचार से बादशाह अत्यंत क्रुद्ध हुआ । उसने महिमा को रणथंभोर से निकाल देने के लिए लिखा। हम्मीर ने महिमा को भेजना अस्वीकृत कर दिया और उसे ५ लाख की जागीर का स्वामी बना दिया ।

बादशाह ने एक बार फिर दूत भेजकर महिमाशाह को भेजने के लिए कहा, किन्तु हमीर ने पुन. अस्वीकृत कर दिया: इसपर बादशाह ने अपने सरदारों को बुलाकर उनका मत पूछा । सिवा एक वृद्ध सरदार के सबों ने बादशाह की हाँ में हाँ मिलाई और आक्रमण करने की सलाह दी ।

शीघ्र ही सेना तैयार होकर रणथंभोर के पास पहुँच गई। शाही सेना मे ४५ लाख पैदल, ५० हजार हाथी तथा ५ लाख घोड़े थे। मार्ग में इस सेना ने प्रजा को बहुत कष्ट दिया।

आक्रमण की सूचना पाकर हम्मीर ने अभयसिंह परमार, सूरसिंह राठौर आदि पाँच सरदारों के साथ बीस हजार सेना भेजी। इस सेना ने शत्रु का ऐसा सामना किया कि अमीर उमराव इतस्ततः भागने लगे। इसप्रकार इस युद्ध मे तीस हजार शाही सैनिक काम आए।

इसके अनंतर संपूर्ण सेना ने दुर्ग को घेर लिया और पुन महिमा को वापस माँगा। हम्मीर ने अस्वीकृत किया और शरणागत को निराश करना असम्भव बतलाया।

हम्मीर ने शिवजी को प्रार्थना करके उन्हे प्रसन्न किया जिससे उसे बारह वर्ष तक सकुशल युद्ध करने का अभयदान मिला। उसने प्रसन्न होकर सैन्य-संग्रह किया। इसीसमय छाँड़गढ़ के स्वामी तथा हम्मीर के चाचा रणधीर भी उसकी सहायता मे प्रस्तुत हुए।

रणधीर ने शाही सेना पर गढ़ से खूब गोले तथा बाणों की वर्षा की और स्वयं रणक्षेत्र मे उपस्थित हुआ। शाही सेनापति मोहम्मदअली ने भी दुर्ग पर खूब गोले बरसाए, किन्तु अंत मे शाही सेना हार गई।

सैनिकों मे भगदड़ मच जाने से अलाउद्दीन भी घबड़ा गया। वजीर मुहम्मदखाँ के परामर्श से उसने अपनी एक छोटी सी सेना छाँड़गढ़ पर भी आक्रमण करने के लिए भेजी। उसे आशा थी कि इसप्रकार रणधीर अपने परिवार पर आपत्ति आती देखकर बादशाह से संधि कर लेगा। किन्तु इससे कोई लाभ न हुआ। अब हम्मीर को परास्त करने का अन्य साधन सोचा जाने लगा।

इसीसमय रणधीर के कहने से हम्मीर ने अपने दोनों राजकुमारों को युद्ध का समाचार भेजकर चित्तौड़ से बुलाया। दोनों राजकुमार तीस हजार राठौर, आठ हजार चौहान तथा पाँच हजार परमार सैनिकों के साथ रणथंभोर आए। दोनों सेनाओं में घोर संग्राम हुआ जिसमें दोनो कुमार अपनी समस्त सेना के साथ वीर-गति को प्राप्त हुए। इस युद्ध में शाही सेना के सत्तर हजार सैनिक तथा अनेक उमराव काम आए।

इसके अनंतर राव रणधीर ने भी भयंकर युद्ध करते हुए बीस हजार राजपूतों के साथ वीरगति प्राप्त की। एक हजार से अधिक राजपूत स्त्रियाँ सती हो गईं। दूसरे पक्ष में एक लाख मुगल सेना तथा दो चुने हुए सेनापति नष्ट हुए। छोड़ीगढ़ पर अलाउद्दीन का अधिकार हो गया।

अब तो अलाउद्दीन की सेना ने रणथंभोर को चारों ओर से घेर लिया।* एक दिन राव हम्मीर ने दुर्ग के उच्चतम शिखर पर सभा-मण्डप सजवाया। सगे-सम्बंधियों के मध्य में स्वर्ण सिंहासन पर आसीन हम्मीर के सम्मुख एक चन्द्रकला नामक वेश्या नृत्य कर रही थी। चन्द्रकला के प्रत्येक गीत से अलाउद्दीन के अपमान की ध्वनि निकलती थी। वह नीचे डेरा डाले पड़ा था उसकी ओर पीठ करके वह वेश्या भर्त्सना-पूर्ण पदाघात करती थी जो अलाउद्दीन को असह्य हो गया। उसने इस वेश्या का प्राणांत करने वाले को पारितोषिक देने की प्रतिज्ञा की। इसपर मीरमहिमा के भाई मीरगभरू ने एक ऐसा लक्ष्य मारा जिससे वह वेश्या आहत होकर तुरन्त धराशायी हो गई। इस दुर्घटना से राजपूतों के आश्चर्य तथा क्रोध का ठिकाना ही न रहा।

---

* इस संग्रह में ग्रन्थ का यही अंश लिया गया है।

इसके उत्तर में महिमाशाह ने हम्मीर की आज्ञा पाकर एक ही बाण में बादशाह का छत्रभंग कर दिया। इसप्रकार का लक्ष्य साधन देखकर। अलाउद्दीन बड़ा ही आश्चार्यन्वित तथा हतोत्सहित हुआ। वह अपने मंत्री के परामर्श पर घबड़ाकर भागने ही वाला था कि हम्मीर का कोषाध्यक्ष सुरजनसिंह आकर शाह से मिल गया। अलाउद्दीन ने उसे छाँड़गढ़ का राज्य देने का लोभ दिया; इसके फलस्वरूप सुरजनसिंह ने भी विभीषण का काम किया। उसने उसी समय रावहम्मीर के पास जाकर कहा कि भण्डार-गृह की रसद तथा शस्त्रागार के गोले बारूद सभी समाप्त हो चुके है, अतएव आपका लड़ना व्यर्थ है। हम्मीर ने जब स्वयं जाकर कोष का निरीक्षण किया तो सच-मुच वह खाली मिला।❀

यह सब होते हुए भी हम्मीर अपने प्रण से विचलित न हुआ। उसने सैन्यसंग्रह करके शाही सेना पर भयंकर आक्र-मण करने का निश्चय किया। इधर उन्होंने शाह के दूत से उसे पुनः युद्ध के लिए आमंत्रित करके रानी की परीक्षा लेने के लिये सारी कथा कहकर उसकी राय माँगी। वीर राजपूत स्त्री ने सोमेश्वर, पृथ्वीराज, भोज, विक्रमादित्य, कर्ण आदि के आदर्शों का अनुकरण करते हुए शरणागत की रक्षा तथा अपने प्रण की रक्षा के लिये युद्ध में वीरगति प्राप्त करना अधिक श्रेयस्कर बतलाया।

शाही सेना पर महाभयंकर आक्रमण हुआ। महिमाशाह तथा मीरगभरू आपस में लड़ते हुए मारे गए। हम्मीर ने

❀ वास्तव में "जोराभौरा" (कोट) खाली नहीं हुए थे। हम्मीर को धोखा देने के लिए सुरजन ने सामानों के ऊपर सूखा चमड़ा रखवा दिया था। ऊपर से पत्थर डालने पर वह खड़क उठा।

भी असाधारण वीरता दिखलाई। महिमाशाह के मारे जाने पर शाह ने फिर संधि का प्रस्ताव किया, किन्तु हम्मीर ने युद्ध-स्थल में मरना ही श्रेयस्कर समझा। अंत मे शाही सेना पराजित हुई। अलाउद्दीन बन्दी बनाकर राव हम्मीर के सामने लाया गया। उन्होंने अलाउद्दीन को मुक्त कर दिया।

हम्मीर की सेना अपार हर्ष से दुर्ग की ओर लौटी, किन्तु भूल से उन लोगों ने अलाउद्दीन के जीते हुए झंडे ही आगे रक्खे। इस पर रानियों ने समझा कि हम्मीर की सेना पराजित हुई और यह शत्रु की सेना आ रही है। सब रमणियाँ जौहर करके अग्नि मे भस्म हो गईं।

हम्मीर को इस घटना पर बड़ा शोक हुआ। वे अपना शिर काटकर शिवजी को अर्पित करने ही जारहे थे कि अलाउद्दीन भी यह समाचार पाकर उनके पास पहुँच गया। राव ने शाह से रामेश्वर जाकर समुद्र में प्राण-त्याग करने को कहा। बादशाह ने वैसा ही किया। हम्मीर ने भी शिवजी को अपना शिर अर्पित कर दिया। स्वर्ग मे जाकर सब फिर मिल गए।

इसप्रकार रासो समाप्त होता है, जिसे सुनकरचन्द्रभानु जी ने कवि जोधराज को बहुत दान दिया और अनेक प्रकार से प्रसन्न किया।

चैत्र सुदी तृतीया बृहस्पतिवार सं० १८८५ को यह ग्रंथ समाप्त हुआ।

ऐतिहासिकता

'हम्मीर-रासो' एक ऐतिहासिक काव्य होने पर भी उसमे इतिहास-विरुद्ध अनेक घटनाएं तथा तिथियाँ मिलती हैं।

ससि वेद रुद्र संवत गिनो, अंग खाभ्र पित साक।
दक्षिण अयन सु सरद ऋतु, उपजे गए न नाक।१७५।

गजनी गौरी शाहसुत, भय अलावदी साय।
ताहीं दिन रणथम्भगढ़, जन्म हमीर सुभाय ।१७६।
शशि रुद्र वेद संवत सुजान। पट सहस इनक साकों प्रमान।
रवि जाम अयन दक्षिण सुगोल ऋतु शरद शुभ्र सुंदर अमोल ।१७८।
ग्यारा सै दस अगरों, संवत माधव मास।
शुक्ल तीज शनीवार कै, चन्द्रास अनयास। ८८।

प्रथम दो छन्द में हम्मीर तथा अलाउद्दीन का जन्म सं० ११४१ बतलाया गया है और उसी को तीसरे छन्द में दुहरा दिया गया है। तीसरे छन्द के "शशि रुद्र वेद के" स्थान पर "शशिवेद रुद्र" पाठ ही ठीक है, जिसके अनुसार सं० ११४१ वि० होता है। किन्तु इतिहासज्ञों को यह विदित है कि सं० ११४१ में न तो हमीर का जन्म हुआ था और न अलाउद्दीन का। अलाउद्दीन का राज्य-काल १२९५ ई० से १३१५ ई० तक (सं० १३५२ वि० से १३७२ वि०) माना जाता है।

चतुर्थ छंद में जैतराव के रणथम्भौर की नींव डालने का समय वर्णित है। वह १११० वि० बतलाया गया है। ये जैतराव हमीर के पिता थे। इतिहास के अनुसार हमीर का समय १३५७ वि० के आस पास होने के कारण २५० वर्ष पूर्व उनके पिता का होना सम्भव नहीं।

इस ग्रन्थ में केवल ग्रन्थ-रचना का संवत ठीक दिया गया है—

चन्द्र नाग वसु पंच गिनि, संवत माधवमास।
शुक्ल सु त्रितिया जीवजुत, तादिन ग्रन्थ प्रकास ॥९६८॥

इससे ज्ञात होता है कि इस ग्रन्थ की समाप्ति सं० १८८५ वि० वैशाख शुक्ल तृतीया को हुई।

हमीर को ही चरित्र-नायक बनाकर जैन-ग्रन्थकार नयन-चन्द्र सूरि ने 'हमीर महाकाव्य' नामक ग्रन्थ लिखा है। इसके संवत रासो की अपेक्षा अधिक प्रामाणिक हैं।

रणथम्मनाथ सुत इक पूर। चढ़ि तेज मनूं ऊगंत सूर।
रतनेस नाम जग है विख्यात। चितौड़ दुग्ग पाले सुतात ॥२५२॥

इससे ज्ञात होता है कि चित्तौड़ में हमीर का पुत्र रतनेस (रतनसेन) था जिसे अलाउद्दीन ने पद्मिनी के लिए कैद कर लिया था। यह रतनसेन सिसोदिया वंश का था, जिसे चित्तौड़ का राज्य, परम्परा से प्राप्त हुआ था। जोधराज ने इसको हमीर का पुत्र बताकर सिसोदिया तथा चौहान वंश को मिश्रित कर दिया है। इसप्रकार जोधराज ने अनेक भ्रम फैलाये हैं। इसका कारण एक ही है। इतिहास में दो हमीर हुए हैं। एक चौहान वंश का तथा दूसरा सिसोदिया वंश का। दोनों के पिता का नाम जैतराव ही था। दोनों का समय भी लगभग एक ही था। जोधराज ने भ्रमवश दोनों को मिला दिया है।

महरम्म आपनों तजि सुमाहि। ल्याए सुदेव निन्दवान जाहि।
बहु बोलि विप्रपूजा कराहिं। करि धूप दीप आरति बनाहिं।
पद परसे दरसे सकल देव। नैवेद्य पुज्य नाना सु भेव।
कर जोरि साहि बन्दन सुकीन। यह भाँति गवन डेरा सुलीन।

इसमें अलाउद्दीन द्वारा हिन्दू देवताओं की स्तुति कराई गई है। यह एक इतिहास-विरुद्ध बात है।

जोधराज ने अलाउद्दीन के पिता का नाम शहाबुद्दीन दिया है, किन्तु प्रामाणिक-इतिहासों से यह बात सिद्ध नहीं होती।

आलोचना

रणथंभोर-नरेश राव हम्मीर के हठ से कौन इतिहास-प्रेमी परिचित नहीं हैं? राजपूताने के इतिहास लेखकों को

ऐसे महापुरुषों के चरित्र पर सदैव गर्व रहेगा। जोधराज का यह सौभाग्य था कि उनको एक ऐसा वीर राजपूत चरित्र-नायक के रूप में मिल गया। "हम्मीररासो" में कवि की सफलता का यही मूल कारण भी समझना चाहिए।

ग्रंथ-रचना सरस तथा प्रभावोत्पादक स्थलों से पूर्ण है, विशेषकर हम्मीर की उक्तियाँ अधिक आकर्षक हैं। यथा—

पच्छिम सूरज उग्गवै, उलटि गंग बहनीर।
कहो दूत पतिसाहसों, हठ न तजै हम्मीर ॥३२६॥

× × × ×

अनहोनी नहि होय, होय होनी है सोइय।
रजक मोह हरि हथ्थ, डर सु मानव क्यों कोइय॥
नहिं तजूं शेख को प्रण करिव, सरन धरम क्षत्रिय तनो।
मन है विचित्र महिमा तनो, सत्य वचन मुखतें भनों ॥३२७॥

[ह० रा०, पृ० ३४६६]

इसीप्रकार हम्मीर की रानी आशादेवी के एक-एक शब्द भारतीय आर्य-महिला की वाणी के शृंगार होने योग्य हैं। हठी हम्मीर की स्त्री के मुख से ऐसे ही वचन कहलाना सर्वथा उचित है। दुर्ग जब चारों ओर से घिर गया तब हम्मीरराव ने अपनी पत्नी की परीक्षा लेने के लिए महिमाशाह को वापस देकर अपना हठ छोड़ देने का प्रस्ताव उसके सामने किया। इस पर रानी ने आश्चर्य-मिश्रित आवेश में जो कुछ कहा, उसमें का कुछ अंश इस प्रकार का है:—

"राखि सरन शेखन तजो, तजो शीश गढ़ वेगि।
हठ न तजो पतसाह सों, गहि कर तजो न तेगि ॥६७४॥
कहाँ जैत कहँ सूर कहँ, कहँ सोमेश्वर राँण।
कहाँ गए प्रथिराज जे, जीति साह दल आँण ॥६७६॥

कहाँ जैन वहँ मूर अधि निन गढ़ गौरी साह।
होतव जगमें प्रबल है चिता किजियशाह ॥३८०॥
[ह० रा०; पृ० १४०—१४१]

हम्मीर के सबंध में "तिरिया तेल हम्मीर हठ चढ़े न दूजी बार" वाला दोहा बहुत प्रसिद्ध है। उसीप्रकार की कुछ सबल तथा सुन्दर प्रभावोत्पादक-पंक्तियाँ इस ग्रंथ में भी हैं। निम्नलिखित उदाहरण इस कथन को पुष्टि के लिए अलम है—

हठनौ राव हमीर कौ, औ रावण की टेक।
सत राजा हरिचंद कौ, अर्जुन बाण अनेक ॥६६०॥
गही टेक छाँडे नहीं, जीभ चोंच जरि जाय।
मीठो कहा अंगार कौ, ताहि चकोर चुगाय ॥६६१॥
[ह० रा०, पृ० १३६]

दोहाछंद में भी इसप्रकार का सफल रसपरिपाक देखकर ही कवि के रचनासौष्ठव का अनुमान लगाया जा सकता है। आचार्य-प्रवर पं० रामचन्द्र शुक्ल ने यथार्थ ही लिखा है कि 'हम्मीर-रासो की कविता बड़ी ओजस्विनी है। · प्राचीन वीरकाल के अंतिम राजपूत वीर का चरित जिस रूप में और जिसप्रकार की भाषा में अंकित होना चाहिए था उसी रूप और उसीप्रकार की भाषा में जोधराज अंकित करने में सफल हुए है, इसमें कोई संदेह नहीं।*"

ग्रन्थ के अध्ययन से ज्ञात होता है कि कवि वीररस के अतिरिक्त अन्य रसों में भी समान रूप से सफल हुआ है। ग्रन्थ के आरंभ में पद्मऋषि की तपस्या भंग होने की कथा के बहाने कवि ने षट्ऋतु वर्णन तथा प्रसंगवश कुछ प्रकृति

*पं० रामचन्द्र शुक्ल, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास,' पृ० ४१६।

चित्रण भी किया है जो वीरगाथा-काल के अन्य कवियों की अपेक्षा सुन्दर ही हुआ है। शृंगार-रस मे जोधराज बिना अधिक प्रयास के ही सफल हो गए है।

कवि ने मित्र-पक्ष के मुख्य पात्रो का चरित्र-चित्रण भी बड़ा सुन्दर किया है। हम्मीर के पूर्वजो की महत्ता का वर्णन करने से उसकी दृढता प्रमाणित होती है। राव के पूर्व पुरुष वीसलदेव ने सोनागढ़ के युद्धक्षेत्र पर अस्सी-हजार मुसलमान सैनिको का वध किया था। इसीप्रकार महारानी जी का चरित्र एक राजपूत क्षत्राणी के ही अनुकूल चित्रित किया है, जो पहले उद्धृत की हुई पंक्तियो मे स्पष्ट हो जाता है। यही नहीं वीर महिमाशाह का चरित्र भी यथासाध्य उत्कृष्ट ही चित्रित किया है। छॉड़गढ़ दुर्ग के अधिपति काकारणधीर के सम्बन्ध मे यह कहावत अब भी प्रसिद्ध है—

"जो कनवुज काकै करी, करी छोडि रणधीर" ।४८४।

[ह०रा०, पृ० १२१]

जोधराज ने रणधीर का जो चरित्र चित्रित किया है उससे यह कहावत पूर्ण रूप से चरितार्थ हो जाती है।

किन्तु इन सब गुणो के रहते हुए त्रुटियाँ भी इस ग्रन्थ मे अनेक मिलती हैं। इनमे अधिकाश प्रबन्धगत ही है। ऐतिहासिक-आख्यान को काव्य का स्वरूप देने के लिए कवि ने कुछ घटनाओ की कल्पना की है। इस सबध मे एक मुख्य घटना महिमाशाह मगोल तथा अलाउद्दीन की बेगम रूपविचित्रा के परस्पर प्रेम-प्रसग के सबध की है। यह घटना ऐतिहासिक हो या न हो किन्तु इस कथा का वर्णन बड़े विस्तार से मिलता है। एक तो किसी अनावश्यक प्रासगिक कथावस्तु

का इतना विस्तार ही खटकता है,* दूसरे इस प्रसंग में कुछ ऐसे अश्लील-अंश आ गए हैं, जिनसे रचना की सारी गंभीरता नष्ट हो जाती है।

इसीप्रकार अलाउद्दीन के चूहे से भयभीत होने की कथा शत्रुपक्ष की तुच्छता दिखाने के लिए कही गई है। किन्तु न तो अलाउद्दीन चूहे से डर ही सकता था और न ऐसे तुच्छ शत्रु पर विजय पाने में हम्मीर का कोई महत्वही रह जाता है। निदान महिमाशाह के हम्मीर की शरण में जाने की सारी कथा अस्वाभाविक तथा नीरस ज्ञात होती है। एक दृष्टि से देखा जाय तो कवि को अधिक दोषी भी नहीं ठहराया जा सकता। 'रासो' के अंतर्गत इसीप्रकार प्रेम प्रसंग दिखला कर स्त्रियों को ही युद्ध का कारण बताना परंपरा से चला आ रहा था, जिसका पालन दरबार के आश्रय में रहने के कारण इस कवि के लिए भी आवश्यक हो गया।

इसके अतिरिक्त कई अन्य अस्वाभाविक घटनाएं भी मिलती हैं, जैसे पद्मऋषि के विभिन्न अंगों से हम्मीर, अलाउद्दीन, महिमाशाह, उर्वशी की एक साथ उत्पत्ति; अलाउद्दीन द्वारा हिंदू देवताओं की स्तुति तथा उसका रामेश्वर के समुद्र में प्राणांत आदि कई अद्भुत कथाओं की अवतारणा की गई है। इन सबको प्रबंध-गत-दोष के ही अंतर्गत लिया जायगा।

"जीति सिसिर विति तबै फिरि आयव ऋतुराज।
मिले उवरसी पदम ऋषि रुरे शक्र के काज।" ॥१६१॥
[ह० रा०; पृ० २६]

---

*दोनों का प्रेम-प्रसंग ही प्रायः १० पृष्ठों में वर्णित है,

यह दोहा वसन्त-विषयक इकतीस छंदों को लिखने के पश्चात् आया है। इसको प्रथम पंक्ति प्रारंभ में होनी चाहिए थी। काव्यशास्त्र के अनुसार इसमें क्रमभंग दोष है।

छंद ४२० से लेकर ४२६ तक की शिवस्तुति, गोस्वामी तुलसीदास की स्तुति से प्रभावित है। इसीप्रकार अन्य स्थलों पर भी तुलसीदास के भाव मिल जाते हैं। उदाहरण के लिए शिशिर ऋतु के वर्णन में कवि ने लिखा है—

"बहै बहु भाँति त्रिविद्ध समीर।
रहै नहि धीरज होत अधीर॥
लता तरु भंटत संकुल भूर।
भये तृण गुल्म हरे जड़ मूर॥१२६।

इनमें भी तुलसीदास के वसंतवर्णन की स्पष्ट छाया है। एक स्थान पर तो रामचरितमानस का एक प्रसिद्ध दोहा ज्यों का त्यों रख दिया गया है, जो इसप्रकार है—

'काह न पावक जरि सकै, का नहि सिंधु समाय।
का न करै अबला प्रबल, किहि जग काल न खाय॥१५९॥
[ह० रा०, पृ० २६]

कहने की आवश्यकता नहीं कि यह दोहा मानस के अयोध्याकाण्ड का है।

बड़े सौभाग्य की बात है कि सूदन, मान आदि की भाँति न तो यह महाशय कहीं सूची गिनाने ही बैठे और न युद्ध-वर्णन में "तड़ातड़-भड़ाभड" के फेर में पडे. फिर भी कहीं-कहीं द्वित्त-वर्णों के प्रयोग की प्राचीन परंपरा का अनुकरण अवश्य दृष्टिगत हो जाता है. यथा—

इतै राव हम्मीर कम्मान कीनी ।
मनो पथ्थ भारथ्थ सारथ्थ कीनी ॥८६०॥
[ह० रा०, पृ० १८०]

भाषा

जोधराज की भाषा मे जहाँ एक ओर व्रजभाषा के साहित्यिक रूप है वहाँ दूसरी ओर साधारण बोलचाल के शब्द और क्रियापद भी पर्याप्त मात्रा मे मिलते है। इनकी भाषा की विशेषता यही है कि वह सर्वत्र भावानुकूल चलती है। यदि वीर रस के प्रसंग मे डिंगल की द्वित्त-वर्णा वाली परंपरा का सहारा लिया गया है तो शृंगार वर्णन मे 'कोमल-कांत-पदावली' का उपयोग सुन्दरता के साथ किया है।

उदाहरण के लिये सेना वर्णन मे भाषा का स्वाभाविक प्रवाह देखिये —

लसै वैरख सो मनो विज्ज भारी ।
बरै दान वर्षा मनो भुम्मि कारी ॥
लसै उज्जवलं दिन्त बगपंक्ति मानों ।
इती साह की सेन सज्जी सुजानें ॥३८७॥
[हंमीर रासो पृ० ७८]

प्राचीन कवियों की भाँति जोधराज ने 'हि' विभक्ति के स्थान पर 'ह' का प्रयोग भी कहीं-कहीं किया है।

संयुक्ताक्षरों का प्रयोग वीर-रस के प्रसंग मे सर्वत्र हुआ है। उदाहरण के लिये एक युद्ध-वर्णन देखिये :—

तहाँ तीस हज्जार निस्सान बज्जैं ।
सुतो वीर सोरं सुनैं मेघ लज्जैं ॥

सताईस लक्खं महावीर वंके।
टरैं नाहिं जगं भये ताम हंके॥
परे जोजनं अट्ठ औ दोय फौजं।
कटे वंक बन्नं छुटै नाहि रोजं॥
चढं उव्वटं बाट थट्टे सु चल्ले।
मनो सागरं छंडि वेला उगल्ले॥

'हम्मीररासो' का अध्यायन कर लेने पर यह विश्वास हो जाता है कि कवि जोधराज का भाषा पर पूर्ण अधिकार था और उसे भावानुकूल बनाने की कला में वे निष्णात थे।

हम्मीर रासो

रणधीर-यवन-सेना-युद्ध-वर्णन

दोहरा छन्द

मैं पहलै पतिसाह सों, करी बात अत्र टेक।
सो अब चौरै साहि सों, करो जंग अब एक।

त्रोटक छन्द

चढ़िए करि कोप हमीर मनं।
करि दिढ्ढ सगढ्ढ सम्हारि पनं।
बहु तोप सुसिद्ध संवारि धरा।
बुरजें बुरजें धर धूम परी।
बहु कंगुर कंगुर बीर अरे।
सब द्वारन द्वारन धीर परे।
सब ठौरन ठौरन राखि भरं।
चढ़िए गजपै चहुवान नरं।
बहु बीर हमीर सु संग चढ़े।
गजराजन उप्पर द्दद बढ़े
करे डंबर अम्बर सीस लगे।
मनु सोवत धीर सबोर जगे।
बहु चंचल बाजि करत्त खुरी।
तिन उप्पर पख्खर सोंज परी।
जर जान जवान लसैं दल मैं।
रन मैं उनमत्त लसै बल मैं।
बहु दुंदुभि बज्जत घ र घनं।
निकसे तब राव करन्न रनं।
बहु बारन बारन बीर कढे।

गज बाजि सु मिंदन जान चढे।
लखि साह सनम्मुख कोप किय।
रणथंभ चहूँ दिस घेरि लियं।
मिलि राव हमीर सु साहि दलं।
त्रिफरे बर बीर करंत हलं।
सर छुट्टत फुट्टत पार गजं।
सु मनो अहि पच्छय मध्य रजं।
तरवार बहैं कर पानि बल।
धर मन्य धँर धर इक खलं।
मुख अग्ग बढे रणधीर जँर।
तिनसों पतिसाह के बीर अर।
अजमंत मुहम्मद इक अली।
तिन संग असीसु सहस्स चली।
तिहि द्वंद अमंद बिलंद कियो।
रणधीर महा रण झेलि लियो।
करि कोप तबै रणधीर मनं।
बर बैन कहै पन धारि घनं।
महिमंद अली मुख आय जुरयो।
दुहुँ बीर तहाँ तब जुद्ध करयो।
अजमत कमान लई कर मैं।
रणधीर के तीर बह्यो उर मैं।
रणधीर सुकोपि क साँगि लई।
अजमत कै फुटि के पार गई।
परियो अजमत सु खेत जबै।
महमंद अली फिरि आय तबै।
रणधीर सु कोपि के बैन कहै।
कर देखि अबै मति भुल्लि रहै।

किरवान सु धीर के अंग दई।
कटि टोप कछू सिर मांझ भई।
तब कोप किया रणधीर मनं।
किरवान दई महमद तनं।
परियो महमंद अमंद बली।
तब साहि कि सैन सबै जु हली।
लुथि लुथ्यि परै बहु बीर अरे।
बहु खंजर पंजर पार करै।
धर सीस परै करि रीस मनं।
कर पांव कटै बहु कौन पनं।
यहि भांति भिरे चहुवान बली,
मुरि साह को सेनि सु भग्गि चली।
बलखी जु परे जू हजार असी,
लखि कालिय अट्ठ सु हास हसी।
चहुवान परे इक जो सहसं,
सुरलोक सबै बर बीर बसं।

दोहरा छन्द

असी सहस बलखी परे, महमदं अजमत खान।
तहाँ राव रणधीर के परे सहस इक ज्वान।
भजी फौज सब साह की, परे मीर दोइ बीर।
करे याद पतिसाह तब, गज्जनि गढ़ के पीर।

चौपाई छन्द

भज्जिय फौज साह की जबहीं,
फिरो फिरो बानी कह सबही।
तहां साह करि कोप सु बुल्लिव,
समर भुम्मि अब छंडि सुचल्लिव।

सरबसु खाय भोग करि नाना,
अबै परम प्रिय लागत प्राना।
समर विमुख तें जानब जोई,
हनूं आप कर तनों न सोई।
सुने साह के कोपि सु वैन,
फिरो सेन इम मत्र सु धन।
बख्तर पक्खर टोप सु सज्जिय,
जुरे जंग बहु मीर सु गज्जिय।

दोहरा छन्द

बोदित खाँ पतिस्याह सों,
करी सलाम सु आय।
हजरत देखहु हाथ मम,
कैसी करू बनाय॥

पद्धरी छन्द

करि कोप बादितखाँ जुरे जंग,
मनो प्रलै पावक उठे अंग।
गुंजत निसान फहरात धुज्ज,
जुटि जिरह टोप तन नैन रुज्ज।
लिए हुकम साह तन में रिसाइ,
किन्हों सु जुद्ध फिर बीर आइ।
छूटत तोप मनु बज्रपात,
जनु सुनिक धरा छूटि गर्भजात।
बहु बान चलत दोउ ओर घोर,
थररात अमित मच्यो सु सोर।
भए अंध धुंधसु सुझै न हथ्थ,
बीर चहुवान तहं करि अकथ्थ।

रणधीर उतै बाधत्ति खान,
बजरंग अंग जुट्ट सु पान।
हजार बीस बादित्य साथ,
सब जुरे आय रणधीर हाथ।
बज्जंत सार गज्जंत अस्म,
रणधीर मध्य आइ स सम्भ।
करि क्रुध जोध बाहंत मार,
टूटंत अंग फूटंत पार।
करि खेल मेल दोउ ओर वीर,
बाहंत बीर किरवान धीर।
हज्जार बीस बहुत माह,
धर परे वीर करि अकथ दाह।
रणधीर मीर दोउ भिरे आइ,
बाधत्त गाहि तब रोस बाइ।
लागी सुढाल भू टूटि ताम,
फिर दई सीस किरवान जाम।
लागी सु सीस धर पर्यो जाय।
दुई टुक होय भुमि अद्ध काय।

दोहरा छन्द

भयो सोच जिय साह कै, जीतिय जंग हमीर।
बादित खां से रन परे, बीस हजार सुबीर।
महरम खां कर जारि कै, करे अर्ज तिहि बार।
लै कर शेख हमीर अब, किमि मिल्यो यहि बार।
गही तेग तुम सों अबै, हठ नहि तजै हमीर।
सेख देय मिल्लै नहीं, पन सच्ची बर बीर।

छप्पय छन्द

कर कुरान गहि साह सीस साहिब को नायो।
गढ दिस दल चहु ओर घोरि रज अम्बर छायो।
देखि अलावदि साह कहै दल बहल भारी।
अब हमीर की अदिल आय पहुचोह सुसारी।
महरम्म खान इम उच्चरै अदिल हाथ साहिब तनै।
का होनहार ह्वैहे अबै को जानै कैसी बनै।

दोहरा छन्द

हजरति अपने इष्ट पर, पावक जरत पतग।
यह हमीर कबहुँ न तजै, मेल टेक रणथभ।
साह दसों दिसि जित्ति कै, अब आए रणथभ।
कहै राव रणधीर सों, जुरो सूर रण रंग।
अप्पन धर्म न छुडिए, कहै बात रणधीर।
निसि बासर अब साह सों, भिजिय जंग हमीर।

छप्पय छन्द

को कायर को सूर घोस बिन दृष्टि न आवै।
बिन सूरज की साख सार छत्री न समावै।
बीर गिद्ध अरु संभु सकल फलहारी जेते।
धर पर धरै न पाव रैन मैं दिनचर जेते।
इम कहै राव रणधीर सों मैं अधर्म नाहिन कहूं।
अब अलावदी साह सो रैन सार पकहु न गहूं।

छन्द भुजंगप्रयात

लरै नो सयहं रणथंभ देवा,
करै कोव भारी पिलै हर्ष नेवा।

गरज्जंत वीरत्त आतंक भारी,
घनै घोर बर्षन्त वर्षा करारी।
कभू हक्कवै सुग्गिम गज्जंत वीर,
कभू घोर अधार वर्षन्त पीरं।
गणान्नाथ हथ्थं लिए तिच्छि फर्षी,
पिनाकी पिनाक किए आप दर्षी।
धरै मुद्गरं हथ्थ भैरव्व अमानो,
हसे देव जुट्ट सु कट्टे अमानो।
इतें पीर हजरत्त के सथ्थ पिल्ले,
अबद्दल्ल एकं हुसैनं सुमिल्ले।
रहीम सयद्दं सुलत्तान जक्को,
अहमद्द कानीर सूलं सु मक्को।
इतै बीर जुट्टे सु कट्टे पुरान,
भयो जुद्ध भारी सु भूल्ले कुरानं।
परे खेत नौ सैद दट्ठं धरन्ना,
हंसे शंकर भैरवं की करन्ना।
परे पीर यूं नौं रसूलं सु अल्लो
पर्यौ पीर दूजो कुतब्बं सु चल्लो।
पर्यो जो हुसैनं कर्यो जुज्झ भारी,
परे हेरि हिम्मत्ति अल्लो सुभारी।
सयद्दं सुलत्तान आयो जु मक्का,
अदल्लो परे और तुक्क सु बक्का।
पर्यौ दूसरो जो रसूलं सु खेतं
तबै बादस्याहू भयो सो अचेत।
परे मीर नौ सैद जानत साहं.
लरे अट्ठ बीरं हटे बैन काहं।
ऊजंमत्त भारी हमीरं सु जानी,

तबै कुच किन्नो दूरं छाडि कानी।
उलट्टे परे जोय किल्लों दिवानं,
जुरे खान जेते सु तेते श्रमान।
वजीरं अमीर सबै खान चुल्ले,
सबै घात मंत्रं सु मंत्री सु खुल्ले।

दोहरा छन्द

मरहम खां उज्जीर तब, अरज करी सब खोलि।
बख बलखी उमराव तो, सदकै भए हरोलि।
अरु बकसी के बचन सुनि, साह कियो अति सोच।
निबही राव हमीर की, गिनो हमैं सब पोच।
महिमा साह हमीर गढ़, ये तीनों साबूत।
बाजी रही हमीर की, मैं कायर सु कपूत।

छप्पय छन्द

मरहम खां कर जोरि साह कों ऐसैं भाख्यों।
इक हिकमत तुम करो नीक जानो तो राख्यों।
महल छाड़ि करि फते बहुरि गढ सों जुध किज्जिय।
तोरि छाड़ि रणधीर मारि कैं पकरि सु लिज्जिय।
आतक संक गढ़ मैं परें मिलै राव हठ छडि कैं।
गहि सेख देय मिलि सुत्तै करो कुच जब उलटि कै।

चौपाई छन्द

कहै साह महरम खाँ सुनियों।
यह मत खूब किया तुम गुनियों।
छाडि दरा को प्रथम दिली जे।
चन्द राज महँ फतह जु कीजै।

दोहरा छन्द

मरहम खाँ पतसाह सोँ, हुकुम पाय तिहि बार ।
सफजंग तजबीज करि, घेरी छाडि हकारि ।

छन्द त्रियक्खरी

कोप पतिसाह गढ छाडि लग्गै ।
सहम सब तीन नीसान धग्गै ।
सहस दस नाल आरब्ब छुट्टै ।
गरन गिरि मेरु पाषाण फुट्टै ।
उठत गुब्बार महि तप लग्गै ।
गए बन छंडि मृग सिंह भग्गै ।
लक्ख पचीस दल और फेर्यौ ।
यह भांति पतिसाह गढ छाडि घेर्यो ।
कहै पतिसाह नहिं विलम किज्जै ।
चन्द दिन बीच गढ छाडि लिज्जै ।
कहे रणधीर मन धीर धरिए ।
आय चहुंवान सफजंग करिये ।
निस्सान सों सद सुन्दर सुबज्जै ।
राव रणधीर आयुद्ध सज्जै ।
वीर रस राग सिंधूर बज्जै ।
सहस छत्तीस दल संग लिज्जै ।
सहस दस सूर कुल तेग खेलैं ।
अप्प जिय रविपरम ल पिल्लैं ।
यही भांति रणधीर चौगान आए ।
उडि जमी गर्द असमान छाए ।
अबदल्ल करिम्म पतिसाह पेलै ।
मीर रणधीर चौगान ठिल्लै ।

बहै बान किरवान औ चक्र चल्लैं ।
रणधीर कह सूर तुम होहु भल्ले ।
साह सों सूर संमुक्ख जुरिए ।
हब्स के मीर दस सहस्र परिए ।
टुट्टि सिर मीर धड़ पहुमि लप्पै ।
पंच सत सूर उडि गिद्ध झप्पै ।
राव रणधीर अप्पन सिधारे ।
अबदुल करम खां पहुमि पारे ।
साहि रणधीर सफजंग जुरिए,
साह दल उलटि दो कोस परिए ।
कहै रनधीर नहिं विलंब किज्जै,
बीति चन्द रोज गढ छाड़ि लिज्जै ।
गढ कोट हू भीति नहिं हृथ्य आवै,
युं ही पतिसाह दल न्यों खिसावै ।

दोहरा छन्द

बरं पंच गढ छाड़ि को, नहि संबत पतिसाह ।
द्वादस बरष रणथंभ सों, निधरक लरि अब साह ।

छप्पय छन्द

धनि सुराव रणधीर साह मुख आप सराहै ।
सुक द्रिसि सम्मुख आय कोप करि सार समाहै ।
साह बचन इम कहै मीर महरम खां सुनिज्जै ।
जीति जंग रणधीर धन्य वह राव सुभनिज्जै ।
पतसाह राडि सफजंग की मनै मरिय आपन मधैं ।
चहुं ओर जोर उमराव सब किए मोरचा दृढ आवैं ।
जवै राव रणधीर कहै हम्मीर सुनिज्जै ।
सबै हिन्द को साथ बोलि रणथंभ सुलिज्जै ।

लिखि फर्मानह राय वंश छत्तीस बुलाए।
जुरे जग चौगान उमंग दल बहल छाए।

कर जोरि सबै हाजिर भए राव वचन विधि या कह्यो।
मैं गही तेग पतिसाह सो घरि जाहु जौन जीवो चह्यो।

कह काको रणधीर राव सुन वचन हमारे।
अबै छाडि चित जाहिं खाय कर निमक तिहारे।
अलोदीन सो जुद्ध छंडि गढ़ घोरे भग्गो।
जितो साहि की सेन मारि रण खंड विहंडो।

चाहूँ सुनीर या वंश को अकथ गाथ ऐसी करूँ।
रवि लोक भेदि भेटूँ नुमट अप्प सीस हर हिय धरूँ।

दोहरा छन्द

कहै राव हम्मीर सों, मंत्र एक रणधीर।
जमीति गढ़ चित्तौड़ को, अजहुँ न आइय बीर।
लिखि फर्मान हमीर तन, पठए गढ़ चित्तौर।
बंचि खान वल्हन कुंवर, हए कौन नहिं थोर।

चौपाई छन्द

हर्षे उभय कुँवर चहुआनं,
चतुरंग के सुरंग सजि आनं।
सोला सहस्र चमू सजि सारी,
सजे खान वल्हन सी भारी।
सहस तीन कमधज्ज सु जानों,
सहस अट्ठ चहुवान बखानों।
सहस पंच पम्मार अमाने,
सोला सहस सजे करिवाने।

मोतीदाम छन्द

मिले तब आय कुमार सु दोय,
हमीर सुचाव कियो बहु जोय।
बढ्यौ हिय हर्ष दुहूँ उर सोय,
कहै तब बैन सु राव सु होय।
करैं हम जंग लखो अब हथ्थ,
उठे दुहूँ बीर कही यह गथ्थ।
चढ़े चतुरंग कियो तन कोप,
मनो अरुनोदय भान सु ओप।
बजे रणतूर सु भेरि सबद्द,
भए पद गोमुख बीर सु सद्द।
चढ़े कुँवरेस तबै चतुरंग,
बढ्यौ हिय हर्ष करैं रणरंग।
कहै तब खान सु बालहन सीह,
करे सफजंग अबैदल बीह।
रतन्न कुमार रखो गढ़ ओर,
नरव्वल ग्वालिर श्रोर चितोर।
नटै तब अन्न करो सफजंग,
तजो मति टेक करो अतभंग।
असी सुनि बैन हमीर सुभाय,
भरे जल नयन रहे मुरझाय।
कही तब कौंर नहीं थिर कोय,
चलै गिर मेरु नहीं थिर सोय।
मिले सुरलोक ससोक सकौन,
सुनी यह राव रहे गहि मौन।
गए रनवास जहां दोउ बीर,

किया परनाम जुहार सुधीर ।
नवै रनवास भरे जल नैन,
कही तद्द आसमती यह बैन ।
कगो तुम उच्छ्व है यह वार,
कहे तद्दि बैन हँसे जु कुमार ।
धरो तुम सीस हमारे जु मोर,
करें सिर सेहर बाँधि सजोर ।
बँध्यो तब मौर कुमारन सीस,
दई बहु भाँतिन आसु असीस ।
कियो बहु हर्ष कुमार अपार
गए हर मंदिर सो तिहि बार ।
गनेसुर शकर पूजि सुभाय,
करै बहु ध्यान गहे जब पाय ।
चढे बरबीर बढ्यो हिय चाव,
बजे बहु बाजि निसानन वाव ।
गजे असमान धरा बहु भाय,
गजे घनघोर घटा मनु छाय ।
तुरंग अनेक सुफेरत सूर,
धर्ता तिन उप्पर पक्खर पूर ।
झलक्कत नूर चमक्कत सेल,
चढे सुख और बढे सुख मेल ।
उठै रज अम्बर सुज्झ न भान,
हुये हर देखत छुट्टिय ध्यान ।
चली संग अच्छरि जुग्गनि ताम,
मिली बहु पंखनि गिद्धनि जाम ।
मिले बहु भूचर खेचर हूर,
चले पल चारिय भूत सुभूर ।

वरे सु जु द्वार हमीरहिं ध्याय,
करी यह बात परस्सि सुपाय।
मिले भव आनि सुनो चहुँवान
करै खल रीत तजे नहिं बान।
तजों धनाधाम रु लोभ सु मोह,
धरौ मनु टेक मरन्न सुजोय।
इतो कहि सीस नवाय हमीर,
कियो रणथंभहि बंदन धीर।
चले सनम्मुख उमै कुमरेस,
सजे चतुरंग तनय करि रेस।
जहाँ पतिसाह अलावदि ओर,
चली बर बीरति बांधि मुमौर।

दोहरा छंद

करि असवारी कुमर दोउ, उतरे पौलि सु छान।
डेरा करे उछाह जुत, बजि निबनि नीसान।
सुनि नौबति के नाद तब, बहु उछाह गढ जान।
तब अलावदी हसम किमि, चाहत भयो निदान।
बोलि खान सुलतान तब, मसलति करी जु साहि।
गढ मे कहा उछाह अति, कहा सबब यह आहि।
है यह राव हम्मीर के, लघु भय्या के पूत।
लरन काज इन सेहरो, सिर बांध्यो मजबूत।
भउय संक पतिसाह उर, कीनो बहुत विचार।
जों न सिंह के मुख चढ़ै, सो भिल्लै हन मार।

चौपाई छंद

कहै वजीर साह सुनि यत्त,
मीर अरब्बिय जांनि सु तत्त।

मर्कट-वदन सूकर सम कानं,
दृग मंजार भेस खल जानं।
तुम सो मत प्रथिराज सु अग्गं,
गढ गज्जनि आए गहि खग्गं।
तुमहिं दिली के तख्त बसाए,
गोरीसा के भए सहाए।
वे दोउ कुमर पकरि अब लावै,
सन्मुख होइ तो मार गिरावै।
सुनि वजीर के बचन सुहाए,
मीर जमालखान बुलवाए।
कहै साह सुनि मीर जमालं,
है यह काम तुम्हारे हालं।
आगै तुम गहियो प्रथिराजं,
क्यों तुम गहु कुवर दोउ आजं।

छप्पय छंद

सुनि जमाल खाँ मीर हथ्थ धरि मुच्छ सँवारिय।
पाँव परसि कर जोरि बचन बड़ काज निहारिय।
जो आयुस अनुसरो सकल हिन्दू गहि लऊं।
सम्मुख गहै जु सार मारि तिहिं धूरि मिलाऊं।
इम कहि सलाम कीनो तुरत सज्जि सथ्थ सब अप्पबल।
सजि कवच टोप कर खग्ग गहि उभै ओर किन्निय सुदल।

भुजंगप्रयात छंद

इतैं कुमर चित्रंग के जंग जुट्टे,
उतैं मीर आरब्ब के बीर लुट्टे।
दुहुँ ओर घोर निसानं सु गज्जं,
मनो पावसं मेघ घोरं सु गज्जं।

दुहूँ ओर खडं प्रचंडं सुभारी,
छुटै नाल गंला घंटूकं सुभारी।
भयो सोर घारं धुंआ घोर घोरं,
गई सुद्ध सुज्झै नहीं नैन ओरं,
करैं सेल खेलं महाबीर बके,
फुटे अंग अंगं करे दोय हके।
बहैं तेग अंगं करैं टूक दोई,
हँसी कालिका देखि कौतुक सोई।
चहैं जम्म दंड करैं बाहु जोरं,
कहै अत अंतं कहूँ सीस तोरं।
कहूँ हथ्थ मथ्थं परे बीर बंके,
उठै रुंड मुंडं करैं जोर हंके।
उतैं मीर जामील ध्यायो हंकारं,
इतै खान धायो भिरियौ इक्क यारं।
उतैं मीर तीरं चलायो हंकारी,
लग्यो वाजि के सो भयो वारि पारी।
परयो खांन को वाजि फुट्टौ सु अगं,
चढे और बाजी करयौ फेरि जगं।
दई खांन जम्मील कै अंग बच्छी,
परयौ भुम्मि कीरं सुतो आय मुच्छी।
दोऊ सैन देखैं भिरे बीर दोई,
भए लथ्थ बथ्थ कुमार सु सोई।
परयो जोर भारी कुमारं सु जान्यौ,
तबै राव हम्मीर उप्पर सुठान्यौ।
लियो बोलि मखोदरं सूर सोऊ,
करो ऊपरं जाय कुम्मार दोऊ।
महाबीर अज्जान बालग्घु सूर,

महायुद्ध जानै इतो वै करूरं ।
चले सूर संखोदरं खेत आए,
उतै आरबीसेन द्वै लक्ख धाए ।
उडै बान गोला गजं बाजि फुट्टै,
बहै बान कम्मान ज्यों मेघ उट्टै ।
धरे आयुधं बीर सों बीर तुल्लै,
परैं सीस भू मैं झिती सीस झल्लै ।
कहैं खांन कुम्मार बैन हुंकारी,
सुनो सर्व सत्थं करो जुद्ध भारी ।
रहै नाम लोक महा मुक्ति मिल्लै,
रहैं नाहिं कोई सदा आय भिल्लै ।
चलाए गजं कोपि कुम्मार सोई,
उत आरबी मीर जम्माल होई ।
तबै बीर बालन्नसी कोप किन्नौं,
महा तेग जम्माल कै सत्थ दिन्नौं ।
कट्यौ टोप ओपं लगी जाय मत्थं,
तबै मीर बालन्न भय लुट्ठ वत्थं ।
कटारं कुमार चलायो पु भारी,
पर्यौ मीर जम्माल भू मैं सु थारी ।
सबै सत्थ जम्माल को कोपि धायो,
तहां बालन्न मारि धरनी गिरायो ।
तबै खांन कुम्मार धायो रिसाई,
बनो सेन आरब्ब धरनी मिलाई ।
तबै बीर संखोदरं जंग कीनो,
किते आरबी खेत पार्यौ नवीनो ।
चिवे सेल खेलं करैं वार पारं,
भभक्कैं घटैं घाव छुट्टै पनारं ।

बहै तेग वेगं परे सीस भारी,
उड़ै बीर रुंड परै मुंढ कारी।
परे दोय कुम्मार किन्नी अनथ्थं,
बरी अच्छुरी सूर लोक सु मथ्थ।
परे मीर आरब्ब के पोन लख्ख,
तहाँ हिन्दु की भीर सौरा सुभख्ख।
परे दो कुमारं महाबीर बंके,
परे एक संखोदरं कीन हंको।
तहाँ आठ हजार चहुवान जानं,
परे तीन हज्जार कमधज्ज मानं।
पंमारं परे पाँच हज्जार सोई,
परे बीर सोला सहस्रं सुजोई।
परे स्वामि के कज्ज कुम्मार दोई,
सुनी राव हम्मीर जीते सु सोई।
भजे आरबी ज्यों बचे जंग तेयं,
कहै साह देखो सु हिन्दू धजेयं।

पद्माकर

जीवन चरित्र

पद्माकर हिन्दी-जगत के लब्ध-प्रतिष्ठ एवं विख्यात कवि है। आपकी गणना रीति-कालीन अंतिम भाग के प्रतिनिधि कवियों मे की जाती है। आप तैलंग ब्राह्मण थे। आपके पूर्व-पुरुष गोदावरी के निकट रहा करते थे। आपके वंश के मूल-पुरुष मधुकर भट्ट अत्रिगोत्रीय, तैत्तिरीय-शाखा के यजुर्वेदी-ब्राह्मण थे। सं० १६१५ मे जब गढ़मांडले मे महारानी दुर्गावती राज्य करती थीं तो वहुत से पंचद्राविड़ ब्राह्मण उत्तर की ओर तीर्थाटन के विचार से आये और यहाँ आकर वस गये। इन दाक्षिणात्यों में से कई ने श्री गो० विट्ठलनाथ जी का आश्रय ग्रहण किया था। इनके यहाँ वसने पर एक समुदाय की दो शाखायें भी हो गई, जो मथुरास्थ और गोकुलस्थ के नाम से, प्रसिद्ध है। पद्माकर मथुरास्थ शाखा के थे।

पद्माकर के पिता मोहनलाल भट्ट मध्यप्रान्त के अंतर्गत सागर मे रहा करते थे। इनके पूर्व-पुरुषो का निवास उत्तर मे आने पर पहले पहल बाँदा हुआ। इसीलिए ये लोग बाँदा वाले भी कहलाते थे। पद्माकर का जन्म सं० १८१० में सागर मे ही हुआ था। आचार्य केशव के समय से ही बुन्देलखण्ड व्रज-भाषा-काव्य का एक केन्द्र हो चला था। अतएव पद्माकर के पूर्वज भी व्रजभाषा-काव्य की ओर स्वाभाविक रूप से आकृष्ट हुए। पद्माकर के पिता मोहनलाल भट्ट भी व्रजभाषा के कवि थे। किन्तु कविता की अपेक्षा अनुष्ठानो और मंत्र-सिद्धि के सम्वन्ध मे उनकी अधिक प्रसिद्धि थी। इसीके

प्रभाव से उन्होंने राजन्य-वर्ग के बहुत से लोगों को अपना शिष्य बनाया। दीक्षा की यह परम्परा अब तक इनके वंश में बराबर चली आती है।

पद्माकर की काव्य-प्रतिभा अत्यन्त प्रखर थी। आपका निम्नलिखित छन्द अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसकी रचना आपने सोलह वर्ष की अवस्था ही में की थी :—

संपति सुमेर की कुबेर की जु पावै ताहि,
तुरत लुटावत बिलम्ब उर धारै ना।
कहै पदुमाकर सुहेम हय हाथिन के,
हलके हजारन के बितर बिचारै ना।
गज गज बकस महीप रघुनाथ राव,
याहि गज धोखे काहू को देइ डारे ना।
याही डर गिरिजा गजानन को गोइ रही,
गिरि तें गरे तें निज गोद तें उतारै ना॥

यह प्रसिद्ध है कि इस छन्द पर प्रसन्न होकर सागर-नरेश रघुनाथराव आपा साहब ने इन्हें एक लक्ष मुद्रा पुरस्कार स्वरूप दी थी। पद्माकर के वंश में यह छन्द 'लखिया' के नाम से प्रसिद्ध है। ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ दिनों बाद आपा साहब से इनकी अनबन हो गई। अतएव पद्माकर अपने मूल-स्थान बांदा चले आये और मंत्र-दीक्षा देने का कार्य आरम्भ कर दिया। इन्होंने जैतपुर-नरेश तथा सुगरा निवासी नोने अर्जुनसिंह को अपना शिष्य बनाया। अर्जुन सिंह की प्रशंसा में पद्माकर के कतिपय छन्द प्राप्त हैं। यह भी प्रसिद्ध है कि पद्माकर ने "अर्जुन रायसा" नामक काव्य ग्रन्थ की रचना की थी। किन्तु वह अब तक प्राप्त नहीं हुआ।

सं० १८४६ वि० में पद्माकर रजधान के गुसाईं अनूपगिरि उपनाम हिम्मतबहादुर के यहाँ गए और वहाँ सं० १८५६ वि० तक रहे। उन्हीं हिम्मतबहादुर की प्रशंसा में पद्माकर ने "हिम्मतबहादुर विरदावली" लिखी, जिसका एक अंश इस संग्रह में उद्धृत है।

जयपुर-नरेश जगतसिंह से इनकी भेंट होने के विषय में एक किंवदन्ती प्रचलित है। जिस समय पद्माकर जयपुर पहुँचे, महाराज जगतसिंह अत्यन्त विलासप्रिय होने के कारण इनसे मिलते ही नहीं थे। एक समय महाराज तथा उनके काव्य-गुरु दोनों ही एक समस्या की पूर्ति में संलग्न थे किन्तु किसीप्रकार पूर्ति नहीं हो रही थी। पद्माकर को किसीप्रकार समस्या ज्ञात हो गई और इन्होंने उसकी पूर्ति कर महाराजा के पास भेज दी। उसे पढ़कर सब लोग चमत्कृत हो उठे। अब पद्माकर को दरबार में स्थान मिल गया। जगतसिंह के आश्रय में ही आप ने अपने प्रसिद्ध नायिका भेद सम्बन्धी-ग्रन्थ 'जगद्विनोद' की रचना की। पद्मा-भरण की भी रचना यहीं पर हुई।

ग्वालियर नरेश दौलतराव सेंधिया के नाम पर इन्होंने 'आलीजाह-प्रकाश' नामक ग्रंथ की रचना की जो वास्तव में जगद्विनोद का रूपान्तर मात्र है। ग्वालियर में ही सरदार ऊदोजी के कहने से इन्होंने 'हितोपदेश" का भाषानुवाद किया। कुष्ट रोग से आक्रान्त होनेपर आपने वाल्मीकी-रामायण का आधार लेकर रामस्तुति सम्बन्धी पदों की रचना फुटकर छन्दों में की थी जो "प्रबोधपचासा" नाम से प्रसिद्ध है। कुष्ट रोग बढ़ जाने पर इन्होंने "गंगालहरी" की रचना की। यह प्रसिद्ध है कि इस रचना के अनन्तर कवि रोग से मुक्त भी हो गया

था। "राम-रसायन" ग्रन्थ भी इन्हीं का लिखा हुआ कहा जाता है। इसप्रकार पद्माकर रचित अनेक ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं।

इनके उदयपुर तथा चरखारी नरेश के दरबार में रहने के भी कतिपय प्रमाण उपलब्ध हैं। उदयपुर के गनगोर के मेले पर इनके कुछ पद्य मिलते हैं तथा यह प्रसिद्ध है कि चरखारी-नरेश के अपमान करने पर ही पद्माकर सं० १८८३ वि० में कानपुर आकर गंगातट पर वास करने लगे थे। इन्हीं दिनों "गंगा लहरी" की रचना हुई। सं० १८९० वि० में इनका स्वर्ग वास हुआ।

हिम्मतबहादुर विरदावली

कवि की वीररस-पूर्ण यह एकमात्र रचना है। इसमें हिम्मत बहादुर के अनेक युद्धों का वर्णन है। इसी में नुगरा-निवासी नोने अर्जुनसिंह के साथ बनगांव (बुन्देलखण्ड) में हुए युद्ध का भी वर्णन है। युद्ध का समय कवि ने इस प्रकार बताया है —

निर्माण काल

संवत अठारह से सुनौ, उनचास अधिक हिये गुनौ।
वैसाख बदि तिथि द्वादसी, बुधवार जुत यह यादसी।

इससे ज्ञात होता है कि इस युद्ध का आरम्भ वैशाख वदी द्वादसी बुधवार सं० १८४९ वि० में हुआ था। पद्माकर सं० १८४९ वि० से १८५६ वि० तक हिम्मतबहादुर के साथ थे। अत यह अनुमान है कि इस ग्रन्थ की रचना भी इसी बीच हुई होगी।

उक्त दोहे में "यादसी" शब्द भरती का प्रतीत है। इससे अनुमान है कि यह समय सम्भवत: स्मृति के आधार पर दिया गया है।

स्व० लाला भगवानदीन जी ने लिखा* है कि "बांदे में रहने ही के समय पद्माकर ने "हिम्मतबहादुर विरदावली" की रचना की थी।" पद्माकर सं० १८४९ वि० से सं० १८५६ वि० तक हिम्मतबहादुर के आश्रित रहे। अपने आश्रयदाता की प्रशंसा पर इस ग्रन्थ की रचना संभवतः राजधान में हुई होगी।

इस संग्रह में "हिम्मतबहादुर विरदावली" का ही एक अंश होने के कारण अर्जुनसिंह और हिम्मतबहादुर के चरित्र के सम्बन्ध में कुछ लिखना अनावश्यक न होगा।

अर्जुनसिंहः—इनका असली नाम अर्जुनसिंह था और नोने यह इनकी उपाधि थी जो कि बांदा-नरेश से इन्हें प्राप्त हुई थी। ये पँवार क्षत्रिय थे। इनके पिता जैतपुर राज्य के एक छोटे से जागीरदार थे। इनके कुछ वंशज चरखारी के वंसिया नामक गांव में मिलते हैं। ये सर्व प्रथम चरखारी में नौकर हुए। किन्तु चरखारी-नरेश खुमानसिंह से कुछ झगड़ा होने के कारण बांदा-नरेश गुमानसिंह के दरबार में पहुँचे। जब हिम्मतबहादुर ने करामत खां के साथ बुन्देलखण्ड पर चढ़ाई की और 'तेंदवारी' के मैदान में गुमानसिंह ने उनका सामना किया तो, अर्जुनसिंह ने बड़ी वीरता दिखलायी और शत्रु को हराकर यमुनापार भगा दिया। यहीं पद्माकर से इनका परिचय हुआ। उनकी विद्वत्ता पर मुग्ध होकर इन्होंने पद्माकर को अपना दीक्षा-गुरु बनाया। इनके विजय की तीसरी लड़ाई, जिसे बुन्देलखण्ड का महाभारत कहना चाहिये, 'गढ़ौरा' में हुई जिसमें इन्हें पन्नाराज्य का बहुत सा हिस्सा मिला। इसके

---

* भूमिका हि० ब० वि० पृ० ४।

अनन्तर 'बनगांव' वाली लड़ाई हुई, जिसमे अर्जुनसिंह मारे गये।

हिम्मतबहादुर :—ये कुल पहाड़ मे रहने वाले ब्राह्मण के लड़के थे। जब ये बहुत छोटे से थे, तभी इनके पिता का देहान्त हो गया था। इनके एक बड़े भाई भी थे। इनकी माता ने इनके पालन-पोषण मे असमर्थ होने के कारण इन्हे राजेन्द्र-गिरि नामक एक गोसांई के हाथ सौंप दिया और उसने दोनो लड़कों को अपना शिष्य बना लिया। बड़े लड़के का नाम उमरावगिरि और छोटे का नाम अनूपगिरि रक्खा। राजेन्द्र गिरि ने इन्हे युद्ध-विद्या मे निपुण कर दिया।

जब ये बीस वर्ष के हुए, इनके गुरू का देहान्त हो गया। अनूपगिरि अपने भाई और दो चार चेलो के साथ लखनऊ के नवाब शुजाउद्दौला की सेना मे नौकर हुए। शुजाउद्दौला ने इन्हे "हिम्मतबहादुर" की पदवी दी। इनके वंशज अभी तक "रजधानिया गौसाई" कहलाते हैं।

शुजाउद्दौला ने इन्हें करामतखां के साथ बुन्देलखंड जीतने के लिये भेजा। ये इस लड़ाई मे बहुत बुरी तरह हारे। बांदा नरेश के सेनापति अर्जुनसिंह की वीरता से इनके छक्के छूट गए। इसके कुछ ही दिन के अनन्तर गदौरा की लड़ाई मे अर्जुनसिंह को शक्ति-हीन हुआ देखकर इन्होने मरहठों के सूबेदार अलीबहादुर को बुलाकर चालीस हजार सेना की सहायता से बड़ी कायरता पूर्वक अर्जुनसिंह का वध करवाया। इस लड़ाई को अर्जुनसिंह के दीक्षा गुरु पद्माकर ने अपनी आखो हिम्मतबहादुर के साथ रह कर देखा था। इसी लड़ाई का वर्णन, इस पुस्तक में विस्तार से किया गया है।

इस घटना के बाद हिम्मतबहादुर अधिक दिन तक जीवित न रह सके। अलीबहादुर ने अपने कथना-नुसार इनको विजित-देश का कुछ अंश दे दिया। पर यह बात अली बहादुर के लड़के शमशेरबहादुर को बुरी लगी और उसने जागीर लौटा लेनी चाही। हिम्मतबहादुर ने अपनी सहायता के लिए ईस्टइंडियाकंपनी से प्रार्थना की और विजित-देश का कुछ भाग देने का वचन दिया। अंग्रेजों ने इनकी सहायता तो की, किन्तु बाद मे हिम्मतबहादुर को भी देश-रक्षा के लिए अयोग्य बताकर राज्य का प्रबन्ध अपने हाथ मे ले लिया।

हिम्मतबहादुर की मृत्यु कालिंजर-दुर्ग के अवरोध के समय हुई। ऐसा कहा जाता है कि जीवन के अन्तिम दिनों मे हिम्मतबहादुर तथा इनके भाई का चरित्र गिर गया था।

विवरण

विरदावली में कुल २११ पद्य हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि यह पॉच सर्गों मे विभाजित है। किन्तु इसके किसी भी संस्करण अथवा उद्धरण में यह सर्गविभाजन नहीं किया गया है। यदि ऐसा किया गया होता तो निस्सन्देह ग्रन्थ की सौन्दर्य-वृद्धि होती। प्रत्येक सर्ग के अन्त में एक हरिगीतिका छन्द है, जिसकी अन्तिम दो पंक्तियां सब में समान रूप से इस प्रकार है.—

पृथुरित्ति नित्त सुवित्त दै, जग जित्त कित्ति अनूप की।
बर बरनिये विरदावली, हिम्मत बहादुर भूप की।

प्रथम सर्ग, मंगलाचरण के एक छप्पय तथा एक हरिगीतिका मे ही समाप्त कर दिया गया है। इसमे भगवान् कृष्ण से अनूपगिरि को विजय देने की प्रार्थना की गई है। द्वितीय

सर्ग के ४४ छन्दो मे हिम्मतबहादुर की अतिशयोक्तिपूर्ण-प्रशंसा की गई है :—

मुख माहिबी ग्रमरेस हैं, भुव-भारधर भुजगेस हैं।
मन-मौज देत महेस है, गुन-ज्ञानवान गनेस हैं।

साथ ही इसमे बुन्देलखण्ड की चढ़ाई का वर्णन किया गया है। इसके अनुसार हिम्मतबहादुर ने दतिया तथा पन्ना राज्य के कुछ भाग पर अधिकार कर लिया था।

तीसरे सर्ग मे केवल १६ छन्द है। इसमे सेना की सजावट तथा चरित्र-नायक के आतंक का दिग्दर्शन कराया गया है। चतुर्थ सर्ग सब से बड़ा है। इसमे ११६ छन्द हैं। इसीमे हिम्मतबहादुर की अर्जुनसिंह पर चढ़ाई तथा युद्ध का वर्णन है। इस युद्ध मे हिम्मतबहादुर के मानधाता तथा जुलफिकार नामक दो सरदारो के मारे जाने का उल्लेख है और हिम्मत-बहादुर के कई भतीजो का भी अर्जुनसिंह से युद्ध करने का वर्णन है। उनका चित्रण महान् वीरो के रूप मे किया गया है। इसीमे अन्य कई सरदारो से युद्ध का वर्णन किया गया है। पंचम सर्ग मे हिम्मतबहादुर तथा अर्जुनसिंह के युद्ध का विस्तृत वर्णन है। इसीमे हिम्मतबहादुर के हाथ अर्जुन-सिंह के मारे जाने की कथा है। अन्त मे हिम्मतबहादुर को आशीर्वाद देकर कथा समाप्त हुई है।

अर्जुनसिंह की मृत्यु के सम्बन्ध मे पद्माकर का यह कथन कि वे हिम्मतबहादुर के हाथ मारे गए, इतिहास के विरुद्ध है। वास्तव मे इनकी मृत्यु इन्ही के वंशजो

ऐतिहासिकता

द्वारा हुई थी, जो नवाब के यहां नौकर हो गए थे

यह प्रसिद्ध है कि पद्माकर शृंगारी-कवि थे। वीर-रस की रचना केवल लोभ के वशीभूत होकर उन्होंने की थी। अतः उसमें उनकी असफलता अनिवार्य थी।

आलोचना

किन्तु इस असफलता का कारण एक मात्र लोभ ही नहीं था। बात यह है कि मुक्तक-काव्य की अपेक्षा प्रबन्ध-काव्य की रचना में अधिक योग्यता अपेक्षित होती है। मुक्तक-रचना में सामग्री एकत्र कर देना ही पर्याप्त होता है, किन्तु प्रबन्ध में रस-सामग्री के साथ प्रवाह का ध्यान अधिक रखना पड़ता है। यदि प्रबन्ध-काव्य पाठक को कथा-प्रवाह में मग्न नहीं कर देता तो उसकी असफलता निश्चित है। यद्यपि 'विरदावली' एक प्रबन्ध-काव्य है किन्तु उसमें प्रवाह के निर्वाह पर ध्यान नहीं दिया है। सूची गिनाने की प्रथा प्रबन्ध-काव्य के लिये अत्यन्त हानिकारक है। इससे प्रवाह में बाधा पडती है, अर्जुनसिंह के सहायकों का वर्णन करना हुआ तो कवि ने क्षत्रियों के छत्तीस कुलों की सूची गिना दी।

प्रबन्ध में रस-संचार के लिये उल्लिखित गुणों के अतिरिक्त रसानुकूल आलम्बन सर्वथा आवश्यक है। यदि किसी कापुरुष को वीररस का आलम्बन बनाया जाय, तथा उसके द्वारा रण-क्षेत्र का संचालन कराकर तलवारों की झनझनाहट, तोपों की गड़गड़ाहट तथा खून की नदियां बहा दी जाय, तो भी वहाँ वीर रस की उत्पत्ति नहीं हो सकती। अपितु वह एक उपहा-सास्पद घटना होगी। इसलिये संस्कृत-साहित्य के रीति-ग्रन्थों में प्रबन्ध-रचना के लिये प्रख्यात कथा-वस्तु तथा धीर, वीर और उदात्त नायक का विधान किया गया है। केशव की राम-चन्द्रिका में भाषा तथा भावों की उत्कृष्टता न होने पर भी कहीं कहीं सहृदयों की वृत्ति रम जाती है। इसका एक मात्र कारण,

उसके नायक मर्यादा-पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र हैं। यदि भूषण अपनी रचना का आलम्बन शिवाजी ऐसे वीर को न बनाते तो उनकी रचना का सम्मान इतना कदापि न हुआ होता। लोक-मंगल करने वाले वीरों का यशोगान कवि की अखण्ड-कीर्ति का साधन होता है। किन्तु पद्माकर ने वीर-रस के लिये एक ऐसा नायक चुना जिसमें वीरत्व की भावना नाम की ही थी। उन्होंने हिम्मतबहादुर को नायक केवल अधिक धनप्राप्ति की आशा से ही बनाया। उसमें किसीप्रकार का चारित्रिक-आदर्श न था। यदि कवि उसके स्थान पर अर्जुनसिंह को नायक बनाता तो उसे निश्चय सफलता मिलती। क्योंकि अर्जुनसिंह सदाचारी तथा राष्ट्रीय-वृत्ति का एक क्षत्रिय था।

पद्माकर का काव्य-जीवन शृंगार-प्रधान होने से उनकी रचनाओं में—"केलिन में कूल में कछारन में कुंजन में क्यारिन में कलिन कलीन किलकन्तु है" इस सूची की प्रधानता मिलती है। 'विरदावली' में पद्माकर ने अर्जुनसिंह के सहायक क्षत्रियों के छत्तीस कुलों का वर्णन अत्यन्त-विस्तार से किया है। तलवार तथा बन्दूक के जितने नाम कवि को अवगत थे, सब गिना दिये हैं। इससे साहित्यिक-सौन्दर्य तो नष्ट हो ही गया है वर्णन में भी रोचकता कम हो गयी है। हृदय में निसृत तथा अनुभूति से व्यक्त हुई कविता ही सच्ची, आकर्षक तथा हृदयग्राहिणी हो सकती है। रीतिकाल के कवि आश्रयदाता के रुच्यनुकूल कविता करना अपना कर्तव्य समझते थे, अत उनमें अनुभूति का अभाव स्पष्ट लक्षित होता है।

'विरदावली' की शैली अधिकतर वर्णनात्मक है। अतः इसमें साहित्य-सौन्दर्य का अभाव होना कोई विशेष आश्चर्य

की बात नहीं है। इसमें अलंकार-सौन्दर्य भी अन्यग्रन्थों की अपेक्षा अल्प परिमाण में ही है :—

दिसि दिसिन दादुर से उमंग, सुनकीव दूंदि मचावहीं।
कलकीर कोकिल से तहाँ, ढाढी महाधुनि छावहीं।
रन रंग तुंग तुरंग-गन, सत्वर उड़त्त मयूर से।
तहँ जगमगानी जामगी, जुगनून हू के पूर-से।
[हि० वि०. पृ० १४]

इसमें उपमालंकार है। किन्तु वीर-रसोत्कर्ष में वह सहायक नहीं है। मोर की गणना शीघ्रगति वाले पक्षियों में नहीं है। उसके साथ समानता प्रगट करने से घोड़े का ही महत्व कुछ कम हो जाता है।

भावों का संगठन समुचित-रीति से कहीं प्रकट नहीं होता है। ग्रन्थ इतिवृत्तात्मक होने से सर्वत्र गम्भीरता का अभाव ही दृष्टिगोचर होता है। अर्जुनसिंह का अपने अनुयायियों को विस्तृत-उपदेश अत्यन्त नीरस प्रतीत होता है —

पहिरे गरे गुटिका कवच रचि भागवत गीतान के।
× × × ×
बह जंत्र मंत्र अनेक दुर्गा भागवत गीतान के।
गुटिकागरे त्रिच सोभही जे करत जय घमसान के।

इन छन्दों से प्रकट होता है कि ये वीरत्व के लिए उत्साह तथा शक्ति की अपेक्षा यंत्र, तंत्र, मंत्र-गुटिका आदि की आवश्यकता का ही समर्थन करते थे। इनकी सहायता से विजय का पूर्ण विश्वास उन्हें हो जाता था। इन्होंने क्षत्रिय-राजाओं को युद्ध तथा द्यूत के लिए सर्वदा सन्नद्ध रहने का आदेश दिया है :—

जग जुआ जुद्ध को कबहु सनेहु नहि नाहीं करै।

इनके इस उपदेश से इनके लोक-कल्याण के ज्ञान पर पर्याप्त प्रकाश पड़ जाता है।

इस ग्रन्थ मे कुछ छन्द ऐसे मिलते है जो संस्कृत से अनुवादित प्रतीत होते है:—

आयू रक्षति मर्माणि आयुरन्न प्रयच्छति।
अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वे न दैन्यं न पलायनम्॥

"विरदावली" मे इसका इस प्रकार वर्णन है,—

निज आयु रक्षा करत तनकी आयु मर्म बचाय ही।
निज आयु सिंह सपेट ते सुबचाइ घर को ल्यावहीं।
निज आयु अन्न अमोघ देत यहै विचारत गाजिये।
परिए न कबहूँ दीन अरहि न कबहूँ रनते भाजिये।

नायक की वीरता का दिग्दर्शन, प्रतिनायक के वीरता-वर्णन से अधिक सुन्दर होता है। इसे पद्माकर जानते थे। उन्होंने हिम्मतबहादुर के विस्तृत-वर्णन के साथ ही साथ अर्जुनसिंह का भी वीरोचित-वर्णन किया है।

हिम्मतबहादुर की वास्तविक दुर्बलता का चित्रण कवि ने नहीं किया। जिस युद्ध मे हिम्मतबहादुर अर्जुनसिह से हार गए थे, उसका वर्णन इन्होंने किया ही नहीं है। अलीबहादुर का उल्लेख नहीं के बराबर है। यह वही सरदार है, जिसकी सहायता से हिम्मतबहादुर को अर्जुनसिह पर आक्रमण करने की हिम्मत हुई। वीर-काव्य की दृष्टि से यह उचित भी है। किन्तु इससे ऐतिहासिकता नष्ट हो जाती है।

पद्माकर अपने अन्य ग्रन्थों के कारण परिष्कृत-ब्रज-भाषा के लिये प्रसिद्ध होने पर भी अपनी इस

भाषा

कृति में उसके दर्शन नहीं करा पाते। सर्वत्र बनावटीपन ही लक्षित होता है :—

पृथुरिति नित्त सुचित्त है जग जित्ति कित्ति अनूप की।

यह इनके प्रधान छन्दों में से एक है। इसका उपयोग सर्ग-विभाजन के लिये किया गया है। इसमें अनुप्रास तथा ओज लाने के लिये "रित्ति" "नित्ति" "जित्ति" "कित्ति" आदि शब्दों को कितना तोड़ामरोड़ा गया है। पद्माकर के विचार से वीर-रस में ओज का प्रदर्शन करने के लिये संयुक्ताक्षरों की महान आवश्यकता है, चाहे वहाँ वीर-रसोपयुक्त भावों का अभाव ही हो। उदाहरण के कुछ पद्य उपस्थित किये जाते हैं :—

करि धक्काधक्की, हक्काहक्को, ठक्काठक्की मुदित मची।
तह ढुक्काढुक्को, मुक्कामुक्को, दुक्कादुक्की होन लगी।
इन इक्काइक्की, झिक्काझिक्की, फिक्काफिक्की जोर लगी।
ढालन के ढक्के लागत पक्के इत उत थक्के थरक्त हैं।
इक इक्कन ढक्के बँधे झमक्के तनन तमक्के तरकत हैं।

वास्तव में संयुक्ताक्षरों के शब्द-जाल द्वारा ओज का प्रदर्शन तथा वीर-रसका उत्कर्ष नहीं हो सकता। उसके लिये व्यंग्यपूर्ण-उक्तियाँ तथा उत्साहपूर्ण-संवादों की नितान्त आवश्यकता है। 'विरदावली' में इसका सर्वथा अभाव है। जब भाव रसोत्पत्ति में सहायक नहीं हो सकते, तभी इन वाह्याडंबरों का आश्रय लिया जाता है।

कहीं-कहीं वीप्सा भाव व्यंजन की सहायक होता है, किन्तु उसका अतिरेक हानिकारक ही है :—

नहँ हरपि हरहर हरपि हरहर हरिप हरहर करि मिल्यो ।
वहँ कहनि हरहर की सुधुनि सुनि जिगर सत्रु न को हिल्यों ।
घम घमाघम झम झमाझम धम धमाधम व्है ठई ।
चम चम चमाचम तम तमातम छम छमाछम छितिछई ।

इसप्रकार ही शब्द की अनेक वार आवृत्ति रसोद्रेक में सहायक तो होती ही नहीं, कानों को अप्रिय भी प्रतीत होती है।

इनकी भाषा में संयुक्ताक्षरों को देखकर उसके प्राकृत-मिश्रित होने का कुछ लोगों को भ्रम हो गया था। किन्तु व्रज-भाषा के शब्दों को ही ओजस्वी वनाने के लिये उन्हें द्वित्त तथा संयुक्ताक्षरों के रूप में प्रयुक्त किया गया है। इनकी भाषा वुंदेली-मिश्रित होने पर भी व्रजभाषा ही है। वुंदेली व्रज की ही एक शाखा है, अत: दोनों का एक में ही समन्वय हो सकता है।

हिम्मतबहादुर-विरदावली

छप्पय

आन फिरत चहु चक्क, धाक धक्कनि गढ़ धुक्काहिं।
लुक्कहिं दुवन दिगंत, जाय जहँ तहँ तन मुक्कहिं।
दुंदुभि धुनि सुनि घोर, जलद मन-मद तजि लज्जहिं।
भज्जहिं खल दल विकल, सोक-सागर महँ मज्जहिं।
धनि राजइन्द्र गिरि नृप सुवन, उथपन-थपन जग जयउ।
वर नृप अनूपगिरि भूप जय, सुभट सेन सज्जत भयउ।

हरिगीतिका

नृप धीर वीर बली चढ़यौ, सजि सेन समर सुपेल की।
सुनि सब बीरान के बढ़ी, हिय हौंस बर बगमेल की।
पृथु-रित्त नित्त सुवित्त दै, जग जित्ति चित्त अनूप की।
वर बरनिये विरदावली, हिम्मतबहादुर भूप की।

डिल्ला

समर प्रबल दल दिग्ग उमंडिय,
दुंदुभि धुनि दिगमंडल मंडिय।
दर्बरात घन ते अति धुक्कनि,
भर्भरात अरि भजन सुलुक्कनि।
उनमद दुरद घटनि छवि छज्जिय,
जौन जलद पटलनि तकि लज्जिय।
उच्च निसान गगन महँ डुल्लहिं,
सुर विमान झकझोरनि झुल्लहिं।
झलमलाति झूलनि छवि ठानिय,

बिज्जुल मनहु मेघ लपटानिथ।
अड़त फेर ऐंडात उमंडत,
झूमत झुकत गजत धुनि मंढत।
उलहत मदनि समुद-मद गारत,
गिरिवर गरद मरद करि डारत।
सिन्दूरनि सिर सुभग उमंडिय,
उदयाचल-रवि छुबि छिति खंडय।
घनघनात गजघंट उमंगनि,
सनसनात सुर-श्रुति सुभ अंगनि।
घुमड़ि चलत घुम्मत घन घोरत,
सुंडनि नखत झुड झकझोरत।
चलत मतंगनि तक्कि तमंकिय,
पखरैत हय हूड़क हुमंकिय।
सिर झारत न सहत मृग-सोभनि,
कहुं कहुं चलत छुवत छिति छोभनि।
उड़त अमित गति कारि करि ताछुन,
जीतत जनु कुलटान-कटाछुन।
थिरक्कत थिरकि चलत अग अंगनि,
जीतत जुमकि पौन मग संगनि।
पच्छ-रहित जीतत उड़ि पच्छिय,
अंतरिच्छ गति जिन अवलच्छिय।
दिननि अमोल लोल गति चल्लहि,
विदित अमोल गोल दल मल्लहिं।
बाग लेत अति लेत फलंगनि,
जिमि हनुमत किय समुद उलंघनि।
जिन पर चढ़त सिन्धु-ढिग लग्गहिं,
मंडल फिर फिर उठत उमग्गहिं।

पघन प्रचंड चंड अति धावहिं,
तदपि न तिनहिं नेकहू वै पावहिं ।
तिन चढ़ि भट छवि छटनि छलक्किय,
रन उमंग अग अंग झलक्किय ।
उमहि अग्रवर पैदर लिन्हउ,
जिन हठि प्रथम युद्ध व्रत लिन्हउ ।
बन्दीजन बिरदावलि बुल्लहिं,
सुनत सुभट-दगकमल प्रफुल्लहिं ।
मानव सुरनि अलापत ठड्ढिय,
बीर उरनि रस बीर सु बड्ढिय ।
खार झलकि झलमल छवि उग्गिय,
मानहुँ अमित भानु भुव उग्गिय ।
उमड़त दल छिति डग डग डुल्लत,
कल्लोलनि बढ़ि समुद उछल्लत ।
गढ़ ढुकहिं गढ़पति-उर कंपहिं,
शत्रु सोक-सागर महँ झंपहिं ।
धूरि-धुंध-मंडित रबि-मंडल,
अकबकात अलकेस अखंडल ।
थंभि न सकत भूमिधर डिक्करि,
टुट्टत रद्द फटत नभ चिक्करि ।

छप्पय

चिक्करि चिक्करि उठहिं, डिक-डिक्करि करनिन-जुत ।
खल दल भज्जत लज्जि, तज्जि हय-गय दारा सुत ।
संकत लंक अतंक, बंक हकनि हुइकारत ।
डग डग डुल्लत गब्बि, सब्ब पब्बयनि सिधारत ।
तहँ 'पद्माकर' कवि बरन छमि, नृप अनूपगिरि जब चढ़्यउ ।
तब अमित अराबो अंखलन, इक्क बार छुट्टत भयउ ।

हरिगीतिका

छुट्टत भयउ इक बार जब, सब तोपखानो-तडकि कै।
टुट्टत भयउ गढ़-वृन्द गढपति, भाजि गे सब सडकि कै।
पृथु रित्ति नित्ति सुचित्त दै, जग जित्ति कित्ति अनूप की।
वर वरनिये बिरदावली, हिम्मतबहादुर भूप की।

भुजंगप्रयात

तुपक्कै तडक्कै धडक्कै महा हैं,
भले चिल्लिका-सी भडक्कैं जहाँ हैं।
खडक्कैं खरी वैरि छाती भडक्कैं,
सडक्कै गये सिन्धु मज्जै गडक्कै।
चले गोल-गोली अतोली सनंकैं,
मनो भोर भौरैं उडातीं भनंक्कैं।
चढ़ी आसमानैं छई वेप्रमानैं,
मनो मेघमाला गिलै भासमानै।
गिरैं ते मही मैं जहाँ भभंराकैं,
मनो स्याम ओरे परैं भभंराकैं।
चलैं रामचंगी धरा मैं धमंकैं,
सुने तें अवाजैं चलो वैरि संकैं।
तमंचे तहाँ वीर-संचे छुडावैं,
कसे बंक बानै निसानै उडावैं।
छुटी एक कालैं विसालैं जँजालैं,
जगी जामगी त्यो चलैं ऊँटनालैं।
गजैं गाज-सी छूटती त्यौं गनालैं,
सुनें लज्जितीं गज्जती मेघमालैं।
चली भूँगरी ऊच है आसमानैं,
मनो फेरि स्वर्गै चढ़े दिग्घ-दानैं।

परी एक बारै धमाधम धरा है,
मनो ये गिरी इन्द्र हू की गदा है।
किधौं ये विमानन की चक्र भाहैं,
परी टूटि हैं कै चिराको मथुँ हैं।
छुटी है अचाका महाबानबाली,
उड़ी है मनो कोपि कै पन्नगाली।
खरी कुहकुहाती जुहाती नहीं है,
चली हैं अनंतं दिगंतं दही हैं।
चली चद्दरैं त्यो मचे हैं धड़ाके,
छड़ाके फड़ाके सड़ाके खड़ाके।
छुटे सेर बच्चे भजे बीर कच्चे,
तजैं बाल-बच्चे फिरैं खात दच्चे।
छुटे सत्र गिरै करैं डिग्ब दिप्पे,
सबै सत्रु छिपै कहूँ हूँ न दिप्पे।
कराबीन छुट्टैं करैं बीर घुट्टैं,
करी-कन्ध टुट्टैं हने-दन्त तुट्टैं।
चली तोप धाँ-धाँ-धँधाँ-धाँह लग्गी,
धड़ाधड़ धड़ाधड़ धड़ा होन लग्गी।
झड़ाझड़ झड़ा बीर बाँके छुड़ावैं,
भड़ाभड़ भड़ाभड़ भड़ा त्यों मचावैं।
दगो यों अराबो सबै एक बारे,
किधौं इन्द्र कोप्यो महावज्र डारै।
किधौं सिन्धु सातौ सबै भर्भराने,
प्रलैकाल के मेघ कै घर्घराने।
सुनी जो अवाजैं सबै बैरि भाजैं,
न जाजैं गाहै छोड़ि दीन्ही समाजैं।
तजैं-पुत्र दारैं सम्हारे न देहैं,

गिरैं दौरि उट्ठैं भजैं फेरि जैहैं।
उलत्थैं पलत्थैं कलत्थैं कराहैं,
न पावैं कहूँ लोक सिन्धून थाहैं।
तजैं सुन्दरी त्यों दरी में बसे हैं,
तहाँ सिंह बग्घान हू ने ग्रसे हैं।

छप्पय

छिति अति छज्जिय अत्र, छत्र-छाहन छवि छक्किय।
चहुँव चक्क धकपक्क, अरिन अकरक्क धरक्किय।
इक्क दुवन तजि धरनि, सरनि तुव चरण सु तक्किय।
हय गय पयदल छोड़ि छोड़ि, सुख सागर नक्किय।
जगमग प्रताप जग्गव उमंगि, उथल-पथल जल-थल गयउ।
नृप-मनि अनूपगिरि भूप जब, निज दल-बल हंकत भयउ।

हरिगीतिका

हंकत भयउ निज दल सकज्ज, ह्वै करि भटन की पिट्ठि पै।
हर हरषि भाषत तहाँ रापत, डिट्ठि आरि की डिट्ठि पै।
पृथु रित्ति नित्त सुबित्त दै, जग जित्ति कित्ति अनूप की।
बर बरनिये बिरदावली, हिम्मतबहादुर भूप की।

त्रिभंगी

तहँ दुहुँ दल उमडे, घन सम घुमडे, झुकि-झुकि झुमडे, जोर-भरे।
तकि तरल तमके, हिम्मत हुंके, वीर धमंके, रन उभरे।
बोलत रन करखा, बाढ़त हरषा, बानन बरषा, होन लगी।
उलझारत सेलैं, अरिगन ठेलैं, सीननि पेलैं, रारि जगी।
बन्दीजन सुह्मे, रोसन लुह्मे, डग-डग डुल्ले, कादर हैं।
धौंसा-धुनि गज्जे, दुहुँ दिसि बज्जे, सुनि धुनि लज्जे, बादर हैं।
नीसान सु फहरैं, इतउत छहरैं, पावक लहरैं-सी लगतीं।

छुवतो नकि नाका, मनहु सलाका, भुजा पताका, नभ जगती ।
कढ़ि कोटनबारे, बीर हँकारे, न्यारे-न्यारे, अभिरि परे।
किरवाननि झारैं, सुभट बिदारै, नेकु न हारै, रोष भरे।
कानन लों तानैं, गहि कम्मानैं, अरिन निमानैं, सिर घालैं।
सूधे अति पैठैं, मुच्छनि ऐंठे, भुजन उमैठे, गहि ढालैं।
अत्रन की मूकें, घालि न चूकैं, दै दै कूकैं, कूद परै ।
गहि गरदन पटकें, नेकु न भटकैं, झुकि झुकि झटकैं, उमंग भरे।
रन करत अड़ंगे, सुभट उमंगे, बैरिन बंगे, करि झपटैं।
सीसन की टक्कर, लेत उटक्कर, घालत छक्कर, लरि लपटैं।
तहँ हत्थाहत्थी, मत्थामत्थी, लत्थापत्थी, माचि रही।
काटैं कर झट-झट, बिकट सुभट-भट, कासों खटपट, जात कही।
गहि कठिन कटारी, पेलत न्यारी, रुधिर पनारी, बमकि बहैं।
खंजर खिन खनकैं, ठेलत ठनकैं, तन सनिसनि कैं, हिलगिर हैं।
गहि गहि पिसकब्जें, मरमनि गब्जैं, तकि तकि नब्जै, काटत हैं।
कम्मर ते छूरे, काटत पूरे, रिपुतन रूरे, काटत हैं।
करि धक्काधक्की, हक्काहक्की, ढक्काढक्की, मुदित मची।
घनघोर घुमंडो, रारि उमंडो, किलकत चंडी, निरखि नची।
एकै गहि भाले, करि मुख लाले, सुभट उताले, घालत हैं।
तोरत रिपु-ताले, आले-आले, रुधिर-नाले, चालत हैं।
झारत असि जुरि जे, बीरनि उर जे, पुरजे पुरजे, कोटि करैं।
हथियारनि सूटैं, नेकु न टूटै, खलदल कूटैं, लपटि लरैं।
तह दुक्कादुक्की मुक्कामुक्की डुक्काडुक्की होन लगी।
रन इक्काइक्की झिक्काझिक्की फिक्काफिक्की जोर जगी।
काटत चिलता हैं, इमि असि बाहैं, तिनहिं सराहैं, बीर बड़े।
टूटैं कटि झिलमैं, रिपु रन बिलमैं, सोचत दिल मैं, खड़े खड़े।
ढालन के ढक्के, लागत पक्के, इतउत थक्के, थरकत हैं।
इक इक्कनि टक्के, बँधे झमक्के, तननि तमक्के, तरकत हैं।

ललकत फिरि लपटे, छत्तिन छपटे, करि अरि चपटे, पेरत हैं।
भट भुजनि उखारत, छिति पर डारत हँसि हुंकारत हेरत हैं।
ठोंकत भुजदंडनि, उमड़ि उदंडनि, प्रबल प्रचंडनि चाव-भरे।
करि खलदल खंडन, बैरि विहंडन नौऊ खंडन, सुजस करे।
दस्ताने करि करि, धीरज धरि धरि, जुद्ध उभरि भरि, हंकत हैं।
पैठत दुरदन में, रोपित रन में, नेकु न मन में, संकत हैं।
निकसी तह खग्गें, उमड़ि उमग्गैं, जगमग जग्गैं, दुहुं दल में।
भाँतिन भातिन की, बहु जातिन की, अरि पाँतिन की, करि कलमें।
तहँ कढ़ी मगरबी, अरि गन चरबी, चापट करबी-सी काटैं।
जंग जोर जुनब्बै, फहरत फब्बै, सुंडनि गब्बै, कर पाटैं।
बिज्जुन सी चमकें, वाढ़न धमकें, तीखन तमकें, बन्दर की।
बंदरी सु खग्गैं, जगमग जग्गैं, लपकत लग्गैं, नहि बर की।
सोहैं सुभ सुरती, चलत न मुरती, रन मे फुरती, बीरन को।
बीलम तरवारें, झुकि झुकि झारें, तकि तकि मारें, धीरन कों।
गजकुम्भ बिदारें, सु लहरदारें लहरनि धारें, विधि विधि की।
लखि लालू वारें, रिपुगन हारें, मोल विचारें, नव निधि की।
तहँ खुरासानी, जग की जानी, धलैं कृपानी, चकचौंधैं।
निव्वाज-हु-खानी, दलनिधिखानी, बिज्जु-समानी, रन कौंधैं।
असिवर नादौटैं, चलत न लौटैं, मुंडनि मोटैं, काटि करैं।
बर मानासाहीं, भटनि दुबाही, झिलमनि बाहीं, नहीं झरैं।
सुभ समर सिरोही, जगमग जोही, निकसत सोही, नागिन-सी।
कर करी तुकत्ती, तीखन तत्ती, हनि रिपु-छत्ती, नहिं बिनसी।
गज्जत गज दुरदा, सहित बगुरदा, गाजिब गुरदा, देखि परे।
तुरकन के तेगा, तोरन तेगा, सफल सुवेगा, रुधिर-भरे।
जग जगी जिहाजी, मंजुल माजी, सूरन साजी, सोभि रहीं।
दिपती दरियाई, दोनौं धाई, भटनि चलाई, अति उमहीं।
तहं सु अलेमानी, और न सानी, सहित निसानी, चलन लगीं।

सुजुनेद-डु-खानी, पूरित पानी, दिपति दिखानी, जगाजगी।
दोनौं दिसि निसरी, लखत न बिसरी, मंजुल मिसरी, तरवारैं।
तन तोरन रुपती, गालिब गुपती, फकफक फुपती, फुकिफारैं।
हेरी जु हलब्बी, सुंदनि गब्बी, सीस हलब्बी-सी चमकैं।
तहं करत फरट्टे, बीर सुभट्टे, चहुं दिसि पट्टे, घमघमकैं।
घालत अति चौंडे, गहि गहि गाडे, रिपु-सिर भाड़े, सेज्ञ हरैं।
करि करि चित चोपैं, रन पग रोपैं, धरि धरि धोपैं, धूम करैं।
जिन ने घति भारे, बखतर फारे, दलनि दुधारे, वहु निकसे।
तहं सु बरदमानी, खडग पिहानी, हर बरदानी, हेरि हंसे।
चरबी जिन चाबी, दर्बहिं न दाबी, दिपति दुताबी, देखि परें।
सुरिं सुरत कहूँना, उत्तम ऊना, सब तें दूना, काट करैं।
छीलत जे काचैं, रन मे नाचैं, सुदम तमाचैं, ओप धरैं।
रंजित रनभूमी, सुखड़ग रूमी, रिपु-सिर तूमी, सो करैं
असिवर अंगरेजें, घलिघलि तेजैं, अरिगन भेजैं, सुरपुर को।
लखि फरंकसाहीं, बीरनब्राहीं, खल भजि जाहीं, दुर दुर को।
रिपु-फलनि फफोरैं, मुख नहिं मोरैं, बखतर तोरै तकब्बरी।
इक एकनि मारैं, धरि ललकारैं, गहि तरवारैं, अकब्बरी।
इमि बहु तरवारैं, काढ़ि अपारैं, सुचित विचारैं, नहिं आवैं।
तिनके बहु खनकैं भिलमिनि फनके, ठनकत ठनके, तन तावैं।
बकचकैं चलावैं, दुहु दिसि धावैं, हयनि कुदावैं, फूल भरे।
गजदंत डराटैं, हौदा काटैं, बाँधि सपाटैं, अति उमरे।
हथियन सों हत्थी, मत्था मत्थी, रारि अकत्थी, करन लगे।
जंजीरनि घालैं, सुंड उछालें, बाँधत फालैं, फर उमगे।
गहि गहि हय फटकैं, दिसि दिसि फटकै, भूपर पटकै, नहिं लटकैं।
पायनि सों पीसैं, अरिगन मीसैं, जम से दीसैं, नहिं मटकैं।
प्रति गजनि उठेलैं, दंतनि ठेलैं, ह्वै भट-मेलैं, जोर करैं।
जुत्थन सों जूटैं, नेकु न हूटैं, फिरि फिरि छूटैं, फेरि लरैं।

करि करि इमि टक्कर, हटत न थक्कर, तन तकि तक्कर, तोरत हैं।
मारे रन गुंडनि, भाले झुंडनि, तऊ न मुंडनि, मोरत हैं।
इमि कुंजर लपटें, दुहुँ दल दपटें, झुकि झुकि झपटत, झूमत हैं।
अरि पटल पटा से, फारत खासे, सुघन घटा से, घूमत हैं।
तहँ अर्जुन बंका, करि करि हंका, दुरद निसंका, हूलत हैं।
बैठो जु किलाएँ, सुच्छनि ताएँ, रन-छवि छाएँ फूलत हैं।
झारत हथियारन, मारत वारन, तन तरवारन, लगत हँसैं।
पैरत भालन कों, सर जालन कों, असि घालन को, धमकि धँसैं।
तहँ मची हकाहक, भई जकाजक, छिनक थकाथक, होइ रही।
तब नृप अनूपगिरि, सुभट सिन्धु तिरि, अर्जुन सो भिरि, खड्ग गही।
हय दावि कन्हैया, सुमिरि कन्हैया, सुगज कन्हैया, पर पहुँचो।
झारत तरवारें, तकि तकि मारें प्रबल पमारे, गहि कहुँचो।
पटक्यो गज परतें, उमड़े उभरतें, अरिसिर, धरनें, काटि लियो।
रिपु-रुंड धरा को, आपत ताकर, हरहि हरा को, मुंड दियो।
लहि अर्जुन-मत्था, गिरिजा नत्था, अमित अकत्था, नचत भयो।
डमडमरु बजावै, बिरदनि गावै, भूत नचावै, छबिन छयो।
किलकिलकत चंडी, लहि निज खण्डी, उमड़ि उमंडी, हरपति हैं।
संग लै वैतालनि, दै दै तालनि, मज्जा-जालनि करपति हैं।
जुगिननि जमातीं, हिय हरषातीं, खदखद खातीं, मांसन को।
रुधिरन सों भरिभरि, खप्पर धरिधरि, नचनीं करिकरि, हासन को।
बज्जत जय डंका, गज्जत बंका, भज्जत लङ्का, लौं अरि गे।
मन मानि अतंका, करि सत संका, सिन्धु सपंका, तरितरि गे।
नृप करि इमि रारनि, लरि तरवारनि, मारि पमारनि, फत्ते लई।
लूटे बहु हय गय, देत खलनि भय, जग में जय-जय, सुधुनि भई।

छप्पय

जय जय जय धुनि, धन्य-धन्य गज्जिय छिति छज्जिय।
फहरत सुजस-निसान, सान जय-दुंदुभि बज्जिय।

सोंभहि सुभट सपूत, खाइ तन, वाइ अतुल्ले।
विमल बसन्तहि पाइ, मनहु, कल किंसुक फुल्ले।
तहँ पदमाकर कवि बरन इमि, रन उमङ्ग, सफजंग किय।
नृप-मनि अनूपगिरि भूप जहँ, सुख-समूह सु फतूह जिय।

हरिगीतिका

मं, सुख समूह फतूह जिय, हिय मंजु मोदन सों भरै।
काली कपाली निस दिना, नित नृपति की रक्षा करै।
पृथु-रित्ति नित्त सुवित्तदै, जग जित्ति कित्ति, अनूप की।
वर बरनिए बिरदावली, हिम्मतबहादुर भूप की।

चन्द्रशेखर

"हमीरहठ" के रचयिता पं० चंद्रशेखर जी वाजपेयी पं० मनीराम वाजपेयी के पुत्र थे। कहा जाता है कि इनके पिता जी भी अच्छे कवि थे। चंद्रशेखर जी का जन्म मिती पौष शुक्ल १० संवत् १८५५ में फतहपुर जिले में असनी के निकट मोअज्जुमा बाद नामक स्थान में हुआ। भाषा में इनके काव्यगुरु करनेस महापात्र* थे, जो निकटस्थ असनी ग्राम के निवासी थे। कहा जाता है कि वाजपेयी जी संस्कृत के भी कवि थे किंतु इनके संस्कृत-काव्यगुरु का पता नहीं।

परिचय

दस वर्ष की अवस्था से लेकर २२ वर्ष की अवस्था तक गुरु के चरणों के निकट विद्याध्ययन करने के पश्चात् चंद्रशेखर जी देशाटन के लिए निकले। उससमय कवि के पिता भी जीवित थे।

पर्यटन करते हुए ये, सर्वप्रथम दरभंगा गए, जहाँ इनका बड़ा सम्मान हुआ। वहाँ सात वर्ष बिताकर २९ वर्ष की अवस्था में ये जोधपुर दरबार में पहुँचे। जोधपुर के तत्कालीन महाराज मानसिंह बड़े गुणग्राही थे और स्वयं भी कविता करते थे। कवि चंद्रशेखर ने उनके दरबार में उपस्थित होकर निम्नलिखित कवित्त पढ़ा—

---

* चन्द्रशेखर जी नरहरि के वंशज थे, जिन्हें अकबर ने "महापात्र" की उपधि दी थी जो फारसी शब्द "ख्वालीजक" का उल्था है। महापात्र से पिंडदान कराने वाले 'महाब्राह्मण' का तात्पर्य न लेना चाहिए।

"द्वादस कलासों मारतण्ड ये उवेंगे चण्ड,
सेस वारि साँसनि समस्त सत्र जलि हैं।
छूटि जैहैं अचल अवास अमरेस वारो,
कूट जैहैं कहलि कली सी भूमि छलि हैं।
शेखर कहत अलका में कलापात ह्वै हैं,
पावक पिनाकी को त्रिसूलसों निकलि हैं।
तून तानि भौंहे मानवंसी भूप मान नावों,
जानि लैहैं प्रलय पयोधिकूटि चलिहैं।"

इसपर महाराज ने प्रसन्न होकर सौ रुपये मासिक-वृत्ति स्वीकृत करदी और कविजी आनंद से उसी दरबार में रहने लगे। किन्तु छ वर्ष पश्चात मानसिंह के उत्तराधिकारी तख्तसिंह ने प्रबंध अपने हाथ मे लिया। उन्होने कवियो पर किए जाने वाले व्यय को व्यर्थ समझकर सब के वेतन आधे कर दिए। उस समय उनके दरबार मे बावन कवियो का दल रहा करता था। चंद्रशेखर को आधे वेतन पर संतोष न हुआ, अत वे वहाँ से चलकर भ्रमण करते हुए तत्कालीन पटियाला नरेश कर्मसिह के दरबार मे पहुँचे। वहाँ इनको पर्याप्त धन प्राप्त हुआ, और इनके रहने का भी बड़ा सुन्दर प्रबंध हो गया। जोधपुर के राजा ने अपने अपराध के लिए क्षमा मांगी और इनको फिर बुला भेजा, किन्तु इन्होने पटियाला छोडकर पुन. जोधपुर जाना स्वीकार न किया।

कभी-कभी अवकाश लेकर ये वृंदावन जाया करते थे और उतने कालतक "वृंदावनशतक" की रचना करते जाते थे। उनका यह ग्रंथ वृंदावन मे ही अवकाशकाल मे तैयार हुआ।

महाराज कर्मसिंह के अदेशानुसार इन्होने छ हजार श्लोको का एक नीति-ग्रंथ भी लिखा। कर्मसिंह की मृत्यु के पश्चात

उनके उत्तराधिकारी नरेंद्रसिंह ने भी इनमे किसीप्रकार का अंतर न आने दिया।

एक वार महाराज "हम्मीरहठ" की चित्रावली देख रहे थे। उसी समय उन्हे काव्यबद्ध हम्मीरहठ सुनने की इच्छा हुई। कवि चंद्रशेखर ने उसी चित्रावली के आधार पर प्रस्तुत "हम्मीरहठ" की रचना करके महाराज को अभिलाषा पूर्ण की। इनका स्वर्गवास सं० १६३२ विक्रमीय मे हुआ। इनके वंशज अब भी पटियाले के दरवार में रहते है।

इनके द्वारा रचे हुए निम्नलिखित ग्रंथ कहे जाते है—

(१) हम्मीर-हठ (२) राजनीति (३) नखशिख (४) रसिक-विनोद (५) वृंदावन शतक (६) गुरुपंचाशिका (७) ताजक (ज्योतिषग्रन्थ) (८) माधवी वसंत (वृहत्) (९) हरिभक्ति विलास। इनमें रसिकविनोद नखशिख तथा हमीरहठ बाबू जगन्नाथदास "रत्नाकर" द्वारा प्रकाशित किए जा चुके है।

हमीर-हठ

प्रारंभ मे मंगलाचरण के अनंतर पटियाला नरेश नरेंद्रसिह की आज्ञा से चित्रावली के आधार पर 'हमीरहठ' को काव्य-बद्ध करने का उल्लेख है। कथा संक्षेप

सारांश में इसप्रकार है—

अलाउद्दीन बादशाह, एक वार, वेगमो के साथ शिकार खेलने जाता है। जंगल मे उसकी एक मरहठी वेगम महिमा-शाह मंगोल नामक एक वीर सरदार पर मुग्ध हो जाती है। उनके प्रेम-प्रसंग ही मे एक शेर वहाँ आ पहुँचता है। महिमा एक ही वाण मे उसका काम तमाम कर देता है।

शिकार से लौटकर अलाउद्दीन अपनी उसी बेगम के साथ प्रेमालाप करता रहता है कि कमरे में एक चूहा प्रवेश करता है, जिसे देखकर बादशाह भय के मारे इधर-उधर उछलने-कूदने लगता है। इसपर बेगम हँस देती है जिसका वह कारण पूछता है। बहुत हठ करने पर स्त्री सारा कारण बता देती है जिसके फलस्वरूप बादशाह महिमा पर कुपित होकर उसका प्राणांत कर देने के लिए आदेश देता है। महिमा भागकर हम्मीर की शरण में जाता है। अलाउद्दीन के लाख माँगने पर भी वीर राजपूत शरणागत की रक्षा में अंत तक डटा रहता है जिसके कारण उसपर शाही आक्रमण होता है।

अलाउद्दीन पराजित होकर भगने लगता है, उसी समय हम्मीर का भाई रनपाल उससे मिलकर दुर्ग का सारा भेद खोल देता है। तब अलाउद्दीन का द्वितीय आक्रमण होता है। हम्मीर सारे राजपूतों का संग्रह करके खुले हुए मैदान में अंतिम संग्राम करने के लिए प्रस्ताव रखता है। भयंकर-युद्ध के पश्चात् शाही सेना पराजित होकर भागती है।

विजय की प्रसन्नता में शाही-निशान आगे किए हुए राजपूतों की सेना दुर्ग की ओर लौटती है। रानियाँ उसको शाही सेना समझ कर जौहर कर लेती है। हम्मीर को जब यह समाचार मिलता है तब वह अपने पुत्र को राज्य देकर आत्म हत्या कर लेता है। इसीपर पटियाला नरेश को आशीर्वाद देते हुए ग्रन्थ समाप्त कर दिया जाता है।

ग्रन्थ की समाप्ति सं० १६०२ वि०, फाल्गुन कृष्ण, चतुर्थी, रविवार को हुई, जैसा कि निम्नलिखित दोहे से ज्ञात होता है—

"कर नभ रस अरु आतमा,' संवत फागुन मास।
कृष्ण पक्ष तिथि चौथ रवि, जेहि दिन ग्रंथ प्रकास ॥४००॥"
[ह० ह०; पृ० ६१]

ग्रन्थ चार सौ तीन छन्दों तथा इकसठ पृष्ठों में समाप्त होता है।

ऐतिहासिकता

हम्मीर को नायक बनाकर लिखे गये ग्रन्थों में वर्णित घटनाओं से 'हमीर-हठ' में कई स्थानों में भिन्नता है। अन्य ग्रंथों में महिमाशाह का प्रतिस्पर्धी गभरूशाह है, किन्तु इसमें उसका नाम उडियान रखा गया है। इसीप्रकार सुरजन के स्थान पर हम्मीर के भाई रणमल की कल्पना की गई है। छांड के राव रणधीर तथा अलाउद्दीन के युद्ध तक का उल्लेख नहीं है। जोधराज के प्रसंग में 'हम्मीर-रासो' की ऐतिहासिकता पर विचार करते हुए जिन घटनाओं की जांच की गई है, उनमें से अधिकांश 'हमीरहठ' में भी वर्णित हैं; अतः यहाँ उनकी ऐतिहासिकता पर पुन: विचार करना अनावश्यक है।

आलोचना

"हमीर-हठ" की रचना बड़ी ही सबल, प्रौढ़ तथा प्रभावोत्पादक-शैली में हुई है। कवि ने यद्यपि शृंगार तथा नीति संबंधी अन्य ग्रन्थों की भी रचना की है, किन्तु प्रात. स्मरणीय राव हम्मीरदेव को आलंबन बनाने से "हमीर-हठ" में उसकी स्वाभाविक काव्य-प्रतिभा निखर उठी है। कवि की कीर्ति को चिरकाल तक स्थिर रखने के लिए यह एक ही ग्रंथ पर्याप्त है।

आडम्बरहीन-उक्तियों के द्वारा स्वाभाविक-उमंग की व्यंजना प्रस्फुटित करने में चन्द्रशेखर जितने सफल हुए हैं, वैसी

सफलता इस खेवे के थोड़े ही कवियो को सुलभ हो सकी है। इस वर्ग के अधिकांश कवि इसप्रकार की प्रतिभा से वंचित ही रह गए। अलाउद्दीन द्वारा भेजे हुए दूत के सामने हम्मीर की इस उक्ति मे कितनी स्थिर-प्रज्ञता झलकती है—

"चलै सेस डोलै, महीमेरु हल्लै, महारुद्र को तीसरो नैन खोलै।
चहूँ ओर तोपैं, चलैं बान छूटैं, झकाझोर समसेर की मारबोलैं।
उठैं रुंड भूमैं, परैं मुंड लोटैं, भरे कुंड लोहू बहे बीर डोलैं।
चलै प्रान ज वैं, कटैं गात सारे, टरै बात ना जौन हम्मीर बोलै ॥६२॥"
[ह० ह०; पृ० १६–१७]

सूदन, मान आदि अन्य दरबारी कवियों का यह सामान्य विश्वास हो गया था कि वीर-रस के उद्रेक के लिए निरर्थक शब्द-नाद तथा व्यर्थ शब्द-जाल का प्रयोग अनिवार्य है। यही कारण है कि उनके युद्ध-वर्णनो मे 'तड़ातड़ भड़ाभड़' के अतिरिक्त और कुछ नही मिलता, किन्तु चन्द्रशेखर के हमीर-हठ मे ऐसी प्रवृत्ति कही नही दिखाई देती। ऐसे स्थलो पर इस कवि ने बहुत ही सुन्दर साहित्यिक-विवेक का परिचय दिया है। दुर्ग के बाहर निकलकर हम्मीर द्वारा किए हुए भयंकर युद्ध का तो कवि ने मानो चित्र ही खीच दिया है। कहीं भी व्यर्थ का वाग्जाल नहीं और ऐसा एक भी स्थल नहीं, जहाँ पाठक को किसीप्रकार की कुरुचि हो। युद्ध-वर्णन-संबंधी यह कवित्त कितना सुन्दर है—

"गहर गराव नक थहरत भूमि मही,
गगन गरद्द मैं न भान सरकत हैं।
बरषत गोली बरषा मैं ज्यौं जलद, ज्वान,
मारे बान तानत कमान मरकत है।
केते लोट पोट भए समर सचोट केते,
बाहन पै बिकल बिहाल खरकत है।

फाटे परे रेजा लौं करेजा टूक टूक कढ़े,
छाती छेद विसिख विसारे करकत है ॥३१५॥"
[ह० ह०; पृ० ४८]

ग्रन्थ का अध्ययन करने से यह भी ज्ञात होता है कि कवि प्रवन्ध-रचना की कला मे भी बड़ा दक्ष है। किसी घटना का कितना विस्तार होना चाहिए, तथा किस स्थान पर कैसे छन्द का प्रयोग होना चाहिए, इस संवंध मे कोई भी त्रुटि नहीं दिखाई देती। रही प्रसंग-विधान की वात। इस विषय मे कवि ने महाराज द्वारा प्रस्तुत की हुई चित्रावली का ही अनुसरण किया है—उसके विरुद्ध न जाने के लिए वह बाध्य था। यह वात ग्रन्थ के ही दोहो से पुष्ट हो जाती है, जो इसप्रकार है—

"निकट बोलि दीन्ह्यौ हुकुम, यह हमीर हठ जौन।
छंद बंद करिकै रचौ, कथा सोहावनि तौन ॥४॥
महाराज के हुकुम तें, जेहि विधि चित्र चरित्र।
सो सेपर भाषा करी, दूषन करेहु न मित्र ॥५॥"
[ह० ह० पृ० १]

इस विषय मे उसको दोष देने वालो को कवि ने पहले से ही सचेत कर रखा है। वास्तव मे प्राचीन-काल से ही प्रेम-प्रसंग को लेकर वड़े-वड़े युद्धो का वर्णन करना कवियो के लिए एक प्रकार से अनिवार्य हो गया था। इसी परम्परा के कारण 'पृथ्वीराज-रासो' मे पृथ्वीराज के कई व्याह कराए गए, तथा संयोगिता-स्वयंबर को महानयुद्ध-काण्ड का कारण वतलाया गया। सारांश यह कि यह परंपरा वड़ी प्राचीन थी और ज्ञात होता है इसी का अनुसरण करते हुए, किसी ने हम्मीर-हठ की कथा मे भी कल्पना का मिश्रण करके वह चित्रा-वली तैयार की थी जिसका पूर्ण अनुसरण कवि ने भी किया। एक रूपवती और निपुण स्त्री के साथ महिमा मंगोल के भागने

तथा हम्मीर की शरण में जाने तथा उसके फलस्वरूप युद्ध होने की कथा ठीक उसीप्रकार से हम्मीर-संबंधी अन्य ग्रन्थों में भी आई है। नयनचन्द सूरि द्वारा रचित "हम्मीर-महाकाव्य", जोधराज कवि द्वारा रचित "हम्मीर-रासो" तथा ग्वाल कवि द्वारा रचित "हम्मीर-हठ" में कोई भी ग्रंथ इस घटना से अछूता नहीं, किंतु संस्कृत-काव्य-ग्रन्थ के अतिरिक अन्य दोनों हिंदी-काव्यों से चन्द्रशेखर के "हमीर-हठ" में कहीं अधिक साहित्यिकविवेक मिलता है, यह निस्संकोच कहा जा सकता है।

इसी परंपरा का अनुकरण करने से अन्य दो घटनाएं भी उसीप्रकार ले ली गई है। उनमें से एक तो है, बाण द्वारा नर्तकी के वध के संबंध में और दूसरी है अलाउद्दीन का चूहे को देखकर डरने के संबंध में। चारो ओर से शत्रु की सेना द्वारा घिरे रहने पर नायक की निश्चिन्तता दिखाने के लिए गढ़ के भीतर नाच कराने का वर्णन भी परंपरागत चला आ रहा है। इसीप्रकार की कथा जायसी के पद्मावत में भी है।

दूसरी घटना के सम्बन्ध में आचार्य शुक्ल जी ने लिखा है—

"एक त्रुटि हमीर-हठ की अवश्य खटकती है। सब अच्छे कवियों ने प्रतिनायक के प्रताप और पराक्रम की प्रशंसा द्वारा उससे भिड़ने वाले या उससे जीतने वाले नायक के प्रताप और पराक्रम की व्यंजना की है। राम का प्रतिनायक रावण कैसा था ? इन्द्र, मरुत्, यम सूर्य आदि सब देवताओं से सेवा लेने वाला, पर हम्मीर-हठ में अलाउद्दीन एक चुहिया के कोने में दौड़ने से डर के मारे उछल भागता है और पुकार मचाता है।"❀

❀ रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृ० ४६५।

किन्तु शुक्ल जी ने यदि निम्नलिखित पंक्तियों पर ध्यान दिया होता तो कदाचित् चन्द्रशेखर पर इसप्रकार के दोषारोपण का अवसर ही न प्राप्त होता। वे पंक्तियाँ ग्रन्थ के आरंभ में ही इसप्रकार से आती हैं—

"महराज के हुकुम तें, जिहि विधि चित्र चरित्र।
सो सेखर भाषा करी, दूषन करेहु न मित्र ॥५॥"

चित्र का अनुसरण करने से ही कवि ने इस घटना का संकेत मात्र कर दिया है, अन्यथा अलाउद्दीन के प्रताप का वर्णन कवि ने किस प्रकार की ओज-पूर्ण शैली में किया है, यह नीचे के उद्धरणों से ही ज्ञात हो जायगा—

"देस दिलीपति दीनपति, दिल्ली तखत नसीन।
दूजो सूरज सो तपै, साह अलाउद्दीन ॥८॥
थर थर कंपै मेदिनी, रविरथ झंपैधूरि।
साह अलाउद्दीन जब, सहज चलत कछु दूरि ॥९॥
असी लक्ख दलबल सजे, जिहिं दिसि देखत बंक।
तिहि दिसि कोप्यो काल जनु, होत राव सब रंक ॥१०॥"
[ह० ह०; पृ० १-२]

कवि की उत्कृष्ट काव्य-प्रतिभा का एक प्रकार से और परिचय मिलता है। वह केवल वीर-रस में ही नहीं, प्रत्युत अन्य रसों की उच्चश्रेणी की कविता करने में समान रूप से सफल हुआ। "रसिक-विनोद" "नखशिख" आदि को यदि छोड भी दिया जाय, फिर भी हमीर-हठ में ही शृंगार रसात्मक-स्थलों को पढ़कर ऐसा ज्ञात होता है मानो उस रस के किसी सिद्धहस्त कवि की सुन्दरतम रचना पढ़ रहे हैं।

इसीप्रकार युद्ध के अवसर पर रौद्र, भयानक तथा वीभत्स और युद्ध के उपरांत शांतरस के उद्रेक में भी कवि पूर्ण रूप

से सफल हुआ है। इसमें हास्य का अभाव है। केवल एक स्थान पर चूहे से अलाउद्दीन को भयभीत चित्रित करने के ही प्रसंग में हास्यरस आया है, किन्तु वहाँ पर रसाभास ही मानना पड़ेगा। वीर-रस-प्रधान-काव्य में हास्य का अभाव खटकता भी नहीं।

वीर-रसात्मक स्थालों पर तो कवि को आश्चर्यजनक सफलता मिली है। "हमीर-हठ" के सम्पादक काव्य-रसिक "रत्नाकर" जी, इनकी कविता पर मुग्ध होकर लिखते हैं—

"इस ग्रंथ की कविता बड़ी मनोहर और उमंगवर्द्धिनी है। ओज, माधुर्य और प्रसाद, तीनों गुण अपने-अपने स्थान पर सुशोभित हैं।" कुछ स्थलों पर तो एक-एक शब्द इतने प्रभावोत्पादक हैं कि पढ़कर रोमांच हो उठता है। दूत के द्वारा महिमा मंगोल को वापस देने के लिए अलाउद्दीन के संदेश का उत्तर हम्मीर किस प्रकार से देता है—

"धड़ नच्चै लोहू वहै, परि बोलै सिर बोल।
कटि कटि तन रन मैं परै, तौ नहिं देहुँ मँगोल ॥६५॥
सिंह गमन सुपुरुष बचन, कदलि फलै इकबार।
तिरिया तेल हमीरहठ, चढ़ै न दूजी बार ॥

[ह० ह०; पृ० १२]

रण-प्रयाण के समय अपने पुत्र को हम्मीर की माता किन शब्दों में आशीर्वाद देती है —

"तीरां ऊपर तीर सहि, सेलां ऊपर सेल।
खग्गां ऊपरि खग्ग सहि, इन सन्मुख सुत खेल ॥२७९॥
भुज मुख छाती सामुहैं, घावाँ ऊपर घाव।
पलक न झंपै पूत की, चढ़ै चौगुनौ चाव ॥२८०॥

[ह० ह०; पृ० ४३]

शुक्ल जी ने वस्तुतः ठीक ही लिखा है कि, "चंद्रशेखर जी का साहित्यिक-भाषा पर बड़ा भारी अधिकार था। युद्ध, मृगया आदि के वर्णन तथा सम्वाद आदि सब बड़ी मर्मज्ञता से रखे गए है। जिस रस का वर्णन है, ठीक उसके अनुकूल पद विन्यास है। .... तात्पर्य यह है कि "हमीरहठ" हिन्दी-साहित्य का एक रत्न है। "तिरिया तेल हमीर हठ चढ़ै न दूजी बार" वाक्य ऐसे ही ग्रंथ मे शोभा देता है।

हमीर-हठ मे अलंकारो की भी छटा खूब मिलती है, किन्तु वह कहीं भार-स्वरूप नहीं हुई है, सर्वत्र काव्य के सौंदर्य की वृद्धि ही करती है। नीचे एक उदाहरण दिया जाता है, जो बाण से मूर्छित होकर नर्तकी के नीचे गिरने के प्रसंग का है।

लाग्यो बान छाती मैं अचानक विषम दग,
कौंधा सो चमकि चकचौंधा लग्यो चोटते !
हेम की छरी सी मंजु मोतिन जरी सी,
भिझरी टूटि भूमि पै परी सी परी कोटतें ॥१८०॥
[ह० ह०, पृ० ३०]

प्रत्येक दृष्टि से विचार करने पर चन्द्रशेखर वीर-रस के उत्कृष्ट कोटि के कवि सिद्ध होते है। कतिपय आलोचकों ने उन्हे लाल और सूदन की श्रेणी मे रखा है, किन्तु कोई भी निष्पक्ष आलोचक इनके ग्रंथो का तुलनात्मक अध्ययन करके सरलता से यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि चन्द्रशेखर इन दोनो कवियो से कहीं अधिक श्रेष्ट है। उनको वीर-रस के अमर-कवि भूषण की कोटि मे ही रखना अधिक न्याय-संगत होगा।

चन्द्रशेखर की कविता मे कई कवियो की प्रतिभा का एक साथ आनन्द मिलता है। उनके युद्ध-वर्णनो को पढ़कर भूषण

का स्मरण होता है, नाटकीय तथा आवेशपूर्ण कथोपकथन को पढ़कर केशव का स्मरण होता है, सबल तथा ओजपूर्ण उक्तियों के दोहों को पढ़कर "वीर-सतसई" के रचयिता वियोगीहरि का स्मरण होता है, उनकी प्रबंध-रचना की सरलता देखकर लाल का स्मरण होता है तथा उनके छप्पयों को पढ़कर इस छन्द के आदि निर्माता चन्दबरदाई का स्मरण हो उठता है।

भाषा

चन्द्रशेखर की भाषा स्वच्छ और परिष्कृत-व्रजभाषा है। अधिकांश-स्थलों पर उसकी कोमलता वीररस के सम्यक् परिपाक में बाधक हो गई है, यही कारण है कि युद्ध-वर्णन में इस कवि को उतनी सफलता नहीं मिली, जितनी वीररस के अन्य-प्रसंगों से। उदाहरण के लिए हम्मीर के प्रति उसकी माता के ये वचन उद्धृत किये जा सकते हैं.—

तीरों ऊपर तीर सहि, सेलों ऊपर सेल।
खग्गों ऊपर खग्ग सहि, रन सन्मुख झुल खेल ।।
भुज मुख छाती सामुहें, घावों ऊपर घाव।
पलक न झंपै पूत की, चढ़ै चौगुनो चाव ।।

[हम्मीर-हठ पृ० ४३]

युद्ध-वर्णन के कुछ कवित्तों में भी भाषा बड़ी भावानुकूल बन गई है:—

गहर गराव नक थहरत भूमि मढ़ी,
गगन गरद मैं न भान सरकत हैं।
बरषत गोली बरषा मैं ज्यों लद्दद ज्वान,
मारैं बान तानत कमान मरकत हैं।

केते लोट पोट भये समर सचोट केते,
　　　　　　　　वाहन पै विकल बिहाल लरकत हैं।
फाटे फरे रेज़ा लों कलेजा टूक टूक कढे,
　　　　　　　　छाती छेद बिसिपि बिसारे करकत है ॥
　　　　　　　　　　　　[हम्मीर-हठ, पृ० ४८]

ब्रजभाषा के साहित्यिक रूपों के साथ साथ साधारण बोलचाल के रूप भी इनकी भाषा में स्थल स्थल पर प्रयुक्त है। उदाहरण के लिए एक कवित्त का यह चरण देखा जा सकता है —

परयौ मीर पाछै धरयौ दंड ढोबा।
　　　　　　　　दिये जात नाहीं कही पास तेरे।

इसमें "कही पास तेरे" ग्रमीण प्रयोग है।

समग्ररूप से विचार करने पर यह स्वीकार करना पड़ता है कि कतिपय दोषों के रहते हुए भी 'हम्मीरहठ' एक उच्च कोटि का काव्य-ग्रन्थ है।



हम्मीर हठ

भुजगंप्रयात छंद

दुहुँ ओर सों घोर यों तोप बाजैं। प्रलैकाल के से मनो मेघ गाजैं।
हलै मेरु डोलै मही सेस कंपै। उठी धूमधारा धुजै भानु झंपै।
भई बान बंदूक की मार भारी। मनों वारिधारा महा मेघधारी।
उठै सोर प्याले निराले चमंकै। घटाजूट मैं दामिनी सो दमंकै।
लगैं कोट मैं आनि कै जोर गोला। न पाषान टूटे कहूँ एक तोला।
जहाँ साह की फौज मैं आन लागैं। उड़ै केतिको केतिकौ दूर भागैं।
लगैं बान गोली गिरैं सूर ऐसे। गिरह खात पंछी गिरहबाज जैसे।
परी मार ऐसी दुहू ओर भारी। परे साह की फौज मैं खग्गधारी।
फटे टोप कुंडी तनं त्रान फूटै। कटे अंगअंग नरं प्रान छूटै।
उठावत एकै करैं एक जंगं। लुरैं एक लोटैं परे अंग भंग।

दोहा

होत जुद्ध अति क्रुद्ध है, लरत सुभट रनधीर।
तँह निसंक चहुआनपति, देखत नाच हमीर।
बाजत ताल मृदंग धुनि, नाचति नटी नवीन।
लसत वीर हम्मीर तहँ, राग-रंग- रस लीन।

कवित्त

रुचित रुचिर मनि मन्दिर मैं रांच्यों रंग,
नाचति सुगध बार अंगना निहारी है।
मंजु मैनकासी मंजुघोषासी सरस भरी,
रंभासी अनूप रूप भूषन सँवारी है।
तालगति तानें लेति सात सुर तीन ग्राम,
भावभरी करति अलाप सुकुमारी है।

पूरें सम पायल करति झनकारी नाच,
देखत निसंक या हमीर हठधारी है।

सवैया

होति दुहूँ दिसि मार भयंकर तोपनि लोप चहैं करि दीनों।
नाचति बारबधू गढ़ पैं दल बीच कुलाहल भूतन कीनो।
ताल मृदंगन की धुनि होति सुनें उतसाह करें मन हीनो।
बीर हमीर हिये हरपै लखि मार भयो सुलतान मलीनो।

छप्पय

तीनि ग्राम सुर सात होत आलाप राग पट।
लाग डाँट सम बिसम तान उनचास कोटि बट।
नचत बार अंगना बजत मिरदंग ताल तहँ।
लख्यो कोट ऊपर निहार चहुआन राज जहँ।

बैठ्यो हमीर रनधीर अति, निडर संक मानै न हिय।
आलाउदीन अन्तक सरिस, पातसाह मन कोप किय।

चढ़ै नैन भृकुटी कराल मुख लाल रंग करि।
दाबि दंत फरकंत अधर बलवंत क्रोध भरि।
करों छार छन मैं पहार धरि कोट उलट्टौं।
हुवन देस दलमलौं उलटि देसनि दहपट्टौं।

मारौं हमीर पल मैं पकरि, सक न यह मेरी करे।
आलाउदीन जानै न मोहि, गढ़ गंवार गाटौ धरै।

दोहा

पातसाह अति क्रोध करि, दीन्यो हुकुम जरूर।
मुगलबेग उडियान को, हाजिर करो हजूर।

हुक्म पाइ उढियान को, हाजिर कियो तुरन्त।
करि सलाम ठाढो भयो, सूर निकट सावंत।
साह कह्यो उढियान सों, नाचत नटी निहारि।
ओट न एकौ देखिये, चोट तीर की मारि।

छप्पय

करि सलाम उढियान लई कर में कमान गहि।
प्रथम करी टंकार फेरि गोसा संवारि तहि।
लियो तीर तुनीर माहिं तीछन अति जोई।
रोदे फांक जमाइ चाप सज्जित करि जोई।
तान्यो कसीस भरि कान लगि, बान बीच छाती हनो।
नाचंत नारि भूमै परी, चौंकि चमकि चपला मनो।

कवित्त

गुनिन गहीली गति लेति गरबीली अंग,
अंग दरसावति उलटि पट ओट तें।
काम अबलासी कला कोटिनि करति,
चंचला सी चित्त चोरति चलति लचि ओटतें।
लाग्यो बान छाती मैं अचानक विषम दृग,
कौंधा सो चमकि चक चौंधा लग्यो चोट तें।
हेम की छरी सी मंजु मोतिन जरी सी,
फिझरी सी टूटि भूमि मैं परीसी परी कोट तें।

दोहा

तरफराति तरुनी गिरी, सर मार्यौ उढियान।
हरषि साह साबस कही, चकित भयो चहुँथान।

चौपाई

हरषे पातसाह मन माही। कियो हमीर सोच लखि ताहीं।
प्रथम मंत्र मान्यो कछु नाहीं। हठ करि मंड्यो जग छयाहीं।
भयो उदास संक कछु आनी। ऐसी बात मोर जब जानी।
आयो तहाँ तुरत मंगोल। बोल्यो हाथ जोरि मृदु बोल।

मीर उवाच

महाराज राजन सिरताज। भये उदास आप केहि काज।
तुरत लेत बदलो मैं देखौ। मरो अलाउद्दीनहिं लेखौ।
कह्यो मीर को सुनि मनभायो। धीरज बहुरि भूप मन आयो।
दिवस दूसरे सोई रंग। लाग्यो होन दुहूँ दिसि जंग।
पुनि हमीर गढ ऊपर आयो। सुरपति कैसो साज सजायो।
अंग अंग प्रति भूषन साजै। निरखत कोटि काम छवि लाजै।
उड़त चवँर चारौ दिसि ऐसे। सरद घटा रवि ऊपर जैसे।
भूप भवन बैठ्यो दरबार। दियो नाच को हुकुम उदार।
बहुरि नटी जब निरतन लागी। देखन लाग्यो भूप अनुरागी।
देखत साह कोप मन कीन्ह्यो। कोट कटा करिवे मन दीन्ह्यो।
ताही समय तुरत उठि धायो। लिये कमान तीर चलि आयो।
हाजिर भयो तहाँ पुनि मीर। कहे बचन मंगोल गभीर।

मीर उवाच

कहो आप उड़ियान संघारौ। जासो जाइ सोच मिटि सारो।
हुकुम होइ साहैं तकि मारौ। छन में छत्र-भंग करि टारौ।

हम्मीर उवाच दोहा

साह न मारत काठ को, जो खेलत सतरंज।
उचित न यह जो डारिये, पातसाह प्रभु-गंज।

सोरठा

छोड़ि साह के प्रान, मारि और मेरो हुकुम।
महिमा गही कमान, सुनि आयसु चहुआन की।

दोहा

हाथ जोरि हम्मीर कहँ, महिमा गही कमान।
अर्धचन्द्र सर साधि कै, तानी कान प्रमान।
बज्र सरिस छोर्‌यो विषम, मीर तीर परचंड।
पातसाह सिरछत्र को, दंड कियो द्वै खंड।
एक तीर सों काटि कै, छत्र दियो महि डारि।
तब हमीर हरहुर हँसे, सनमुख मीर निहारि।

कवित्त

खंड ह्वै टूटक पर्‌यो लूक सो लपकि छत्र,
हूकसी समानी हियें साह सोक सों भरे।
जोहत जके से चौंकि चलत थके से सबै,
सुकुर मनावत अमीर अतिहीं डरे।।
आनि धर्‌यो आगें आन सहित उठाइ हेम,
हीरन रचित गजमुकता लसै जरे।
मानो आसमान तें नछत्रन समेत पर्‌यो,
भूमि मैं कलाधर सपूरन कला धरे।
छत्र के परत सबही की छबि छीन भई,
दीन भयो बदन अलाउदीन साह को।
पीर उठी उर मैं अचानक अमीरन के,
धीरज धरै को धार धूजत सिपाह को।
सहमि गये से सबै सोचत ससक कहै,
खैर करी खालिक खुदाय सदराह को।

भयो थ्यो दिल्ली को पति देखत पनाह आज,
दाह मिटि गयो थ्यो हमीर नरनाह को।

दोहा

पीर अमीरन के उठी, धीर तज्यो सुलतान।
तुरत मंगायो आप ढिग, छत्र सहित रिपुबान।
सर में बांध्यो साह तब, गह्यो बली कर अत्र।
तिय बदले तेरो कियो, मीर भंग सिर छत्र।
महिमाँ मीर मंगोल मैं, कर बर गही कमान।
है दुरलभ अब आप को, जियत राखिबो प्रान।

चौपाई

सर में लिख्यो मीर को जौन। बाँच्यो पातसाह तब तौन।
भयो सपेद बदन दृग झंपे। डोलत दंत गात सब कंपे।
करत विचार और सब ठाढे। खर भर परी सोच मन गाढ़े।
पीर मनाइ कहत कर जोरी। बच्यो साह साहब गति तोरी।
साह अलाउद्दीन सुलतान। करत बिचार छोड़ि अभिमान।
जुद्ध होत बीते दिन एते। घटे कटक कहि जात न जेते।
अगनित सूर बीर सावंत। गज तुरंग और सुतुर अनन्त।
पैदल परे भूमि में लोटैं। लगीं बान गोली की चोटैं।
तुपक तीर तोपनि की मार। बरषे मनो मेघ जलधार।
गढ़ गाढ़ो छूटब कठिनाई। नर पाथर की परी लराई।

दोहा

कोट ओट गढ़पति लरैं, अगंन आवत घाव।
दह पट्टत दल दूरि तें, चढ़त चौगुनो चाव।
कटा होत दीसत नहीं, मारे सकत न छूटि।
कोट कटक की मार में, गयो सकल दल खूटि।

सवैया

मौन भये मन ही मन मैं, सुलतान विचारत बात अनेकौं।
जो लरियै मरियै इत तौं, गढ़ को चढ़ि पैयत घात न एकौं।
नाहक जात मरे सिगरे भट, आवत हाथ लखात न एकौं।
छोंड़ि चलौ अपने घर कौं, जो भई सो भई कहि जात न एकौं।
दीरघ सोच दिलीपति के दल, छीन भयो बलहीन मलीनो।
मान गई अपमान अँगै निज, प्रान बचे सोइ उद्यम कीनो।
हार लई अपने सिर मानि, निदान यहै करि आयस दीनो।
लै अपनो दल संग सबै उठि, भाजि चल्यो सहमा भयभीनो।

कवित्त

मारे गढ़ चक्कवै हमीर चहुआन चक्क,
डारे गोल गरद मिलाइ मद मानी के।
छोटे रेत खेत एकै पोटै लेत देत एकै,
चोटनि समेत लडे लाडिले पठानी के।
हारे दरमारे राह बसन हथ्यार डारे,
वाहन संभारे कौन भरे परेसानी के।
भाजे जात दिल्ली के अलाउद्दीनवारे दल,
जैसे मीन जाल तें परत दिसि पानी के।
भागे मीरजादे पीरजादे औ अमीरजादे,
भागे खानजादे प्रान मरत बचाइ कै।
भाजि गजबाजी रथ पथ न संभारैं पारैं,
गोलन पै गोल सूर सहमि सकाइ कै।
भाग्यो सुलतान जान बचत न आन बेगि,
बलित बितुंड पैं बिराजि बिलखाइ कै।
जैसें लगें जंगल मैं ग्रीपम की आगि चलै,
भागि मृग महिप बराह बिललाइ कै।

भाजे जात रंक से ससंकित अमीर परें,
भीरन पै भीर धरें धीर न रहैं थिरे।
जंगल की जार मैं पहार मैं पराइ परे,
एकै बारि धार में उछार मारि कै परे।
कंपित करी पैं साह साहब अलाउदीन,
दीन दिल बदन मलीन मन मैं खिरे।
प्रबल प्रचंड पौन पच्छिमी हमीर मारे,
बद्दल समान मुगल-दल उड़े फिरे।

दोहा

भग्यो प्रबल दल संग लै, दिल्ली को सुलतान।
हरप्यो राय हमीर उर, गढ़ पर बजे निसान।
आइ अरज मंत्रिन करी, सुनिए राय हमीर।
हिन्दु धनी हद आपकी, पत राखी रघुबीर।
नयो साह दिसि आपनी, रह्यो हमारो खेत।
ऐसें सुजस सुपंथ मैं, ईश्वर सब कों देत।

परिशिष्ट १

टिप्पणियां

'चन्दवरदाई'

'रेवातट समयो' के अन्तर्गत जो संकलन इस पुस्तक में दिया गया है, उसके पूर्व के भी कतिपय पदों को यहाँ दिया जाता है। इससे इस संकलन को भलीभाँति समझने में विशेष सहायता मिलेगी :—

दोहा

देवगिरी जित्ते सुभट, आयौ चांवंड राव।
जय जय नृप कीरति सकल, कहि कव्विजन आव ॥

शब्दार्थ—जित्ते = विजय प्राप्त की। सकल = संसार मे। कव्विजन = कवियो ने।

अर्थ—सामन्त आदि ने देवगिरी पर विजय प्राप्त की, संसार मे राजा की कीर्ति फैली और कवियो ने उसकी जय जयकार की। उसके बाद एक दिन चावंडराव राजा के सामने आया।

मिलत राज पृथ्वीराज सौ, कहि राव चाँवंड।
रेवातट जों मन करौ, तो वन अपुव्व गज झुंड ॥

शब्दार्थ—जों = जाने का। अपुव्व = अपूर्व।

अर्थ—राजा से मिलकर चावंडराव ने कहा—रेवातट को जाने [चलने] का मन मे विचार किया जाय, यहाँ वन मे हाथियों का अपूर्व झुंड है।

कवित्त

सुनहु राज पृथिराज विपिन रवनिक करि जुथ्थ।
रेवातट सुन्दर समूह वीरगज हत चवन रथ ॥

आखेटक आचंम पंथ पावर रुकि खिल्लौ।
सिंधवट्ट दिल्ली सभूह राज खिल्लत दोइ चल्लौ॥
जल जूह कूह कस्तूर मृग पह पंखि अरु पवत खह।
चहुवान मान देखे नृपत्ति कीहिन बनत दख्खिन रह॥

शब्दार्थ—रवनिक = रमणीय। करि = हाथी। हन्त = मारने को। चवन = चाहने के। पावर = पॉवर। खिल्लौ = आगे बढ़ना। सिंधवट्ट = सामुद्रिक देश। खिल्लत = खेलते हुए। जूह कूह = झुंड की चहचहाहट। पह = पास में ही। खह = खूब, बहुत से। दख्खिन = दक्ष।

अर्थ—हे राजन! वह वन अति रमणीय है, वहाँ हाथियों का समूह है। उसे मारने की इच्छा से, सुन्दर वीरों के समूह के साथ अनोखे आखेट के लिए, रेवातट के रास्ते पर पॉवर प्राणियों को रोकते हुए, आगे बढ़ना चाहिए। हे दिल्लीश! सामुद्रिक देश के मुहाने (सीमा) तक आप दोनों राजा (पृथ्वीराज और रावल समर विक्रम) शिकार खेलते हुए चलिए। वहाँ पक्षियों के कलरव तथा कस्तूरी मृग के साथ ही कन्दराये है। वहाँ के राजा लोग बडे दक्ष है, वचन द्वारा उनकी प्रशंसा नहीं की जा सकती, वे लोग आपको बड़े मान सहित देखेगे।

दोहा

एक ताप पहु पंग को, अरु रवनीक जुथान।
चांवड राव बचन्न सुनि, चढ़ि चल्यौ चहुवान॥

शब्दार्थ—ताप = डर। पंग को = जयचन्द को।

अर्थ—वीरचंद कमध्वज से देवगिरी में विजय करने के कारण जयचन्द से विरोध हुआ, उसका डर और इधर

रमणीय स्थान देखने की इच्छा, ऐसी द्विविधा होते हुए भी पृथ्वीराज, चावंडराव के वचन सुनकर, घोड़े पर चढ़कर चलता बना।

कवित्त

चढ़त राज्ज पृथिराज, बीर अगिनेव दिसा कसि।
सब्ब भूमि नृप नृपति, चरन चहुआन लग्गि धसि॥
मिल्यौ भान बिस्तरी, मिल्यौ खल गढ़ी नृप।
मिल्यौ नंदिपुर राव, मिल्यौ रेवा नरिंद अप॥
बन जूथ मृग सिंघह अरु गज, नृप आखेटक खिल्लइ।
लाहौर थान सुरतान तप, वर कग्गद लिखि मिल्लइ॥

शब्दार्थ—अगिनेव = आग्नेय। कसि = कसकर, तैयार होकर। धसि = झुक झुककर। बिस्तरी = राज्य विस्तार करने वाला। तप = डर।

अर्थ—जब पृथ्वीराज ने शिकार के लिए चढ़ाई की तो उसके साथी सामन्तों ने भी तैयार होकर उसी के साथ दिल्ली से आग्नेय दिशा की ओर प्रस्थान किया। उस समय जनता और राजा लोग आ आकर चौहान (पृथ्वीराज) के चरण छूने लगे। राज्य-विस्तार करने वाला भानु नामक राजा, खट्टूल गढ़ी का राजा, नेदीपुर का राव और स्वयं रेवानरेश आकर पृथ्वीराज से मिले। राजा मृग, सिंह और हाथियों के समूह का भी शिकार करने लगा। उधर लाहौर स्थान पर गौरीशाह के आंतक [ताप] की सूचना सम्बन्धी [चन्द पुण्डीर द्वारा लिखित] पत्र मिला।

दोहा

खाँ ततार मारुफ खाँ, लिए पान कर साहि।
घर चहुआनी उप्पेरै, बज्जा बजन वाहि॥

शब्दार्थ—पान = बीड़ा । साहि = ग्रहण किया, पकड़ा ।

अर्थ—उसमे लिखा था कि तत्तार खॉ और मारुफ खॉ ने हाथ मे बीड़ा ग्रहण किया है और चौहान की भूमि पर रण-वाद्य बजवाना निश्चय किया है ।

साटक

श्रोतं भूरय गोरिय वर भरं, बज्जाइ सज्जाइ ने ।
सा सेना चतुरंग बंधि उललं, तत्तार मारुफयं ॥
तुम्भो सार स उपराव सरसी, पल्लानयं खानयं ।
एक जीव साहाब साहि ननयं, वीरं यं सयं सेनयं ॥

शब्दार्थ—श्रोतं = सुना । भरं = (भट) योद्धा । उललं = अचानक । तुम्भो = तू भी । सार = लोह, तलवार । सरसी = सुन्दर । पल्लानयं = चढ़ाई की है या खदेड़ देने के लिए । यंसयं = अंश से ।

अर्थ—[पत्र मे लिखा था] हे राजा ! (पृथ्वीराज) सुनिये, गौरीशाह के श्रेष्ठ-योद्धा बाजे बजवाकर युद्धार्थ सजे हैं, तथा चतुरंगिणी सेना को पंक्ति बद्धकर अचानक तत्तार खॉ और मारुफ खॉ आगे बढ़े हैं । हे राजन् ! (पृथ्वीराज) आप भी सुन्दर लोहे को ऊपर उठाइए, क्योंकि मुसलमानो ने चढ़ाई की है या क्योंकि इन म्लेच्छों का पलायन करना है (या भगाना है) [आगे पत्र मे यह भी लिखा था] उन सैनिको और शाहबुद्दीन मे एकता है और उनकी सेना वीरतायुक्त है ।

दोहा

अहि बेली फल हथ्थ ले, तो ऊपर तत्तार ।
मेच्छ मसूरति सत्ति कौं, बंध कुरानी वार ॥

शब्दार्थ—अहिवेली=नाग फणी(एक शस्त्र)। सत्ति कै=सत्य कहा। वार=वातें, आयते।

अर्थ—कुरान की आयतो को मुसलमान मसुरनिखॉ ने पढ़कर सुनाई और सच्चो बतलाई, इसपर तत्तार खॉ ने तुझ पर नाग फणी (एक शस्त्र) उठाई है।

खट मुर कोस मुकाम करि, चढ़ि चल्यो चौहान।
चंद वीर पुंडीर कौ, कग्गद करि परिवान॥

शब्दार्थ—खट=छ। मुर=मुड़कर। परिवान=प्रामाणिक

अर्थ—वीर चंद पुंडीर के उस पत्र को प्रामाणिक समझ, जहॉ शिकार खेल रहा था, वहॉ से मुड़कर राजा ने छः कोस पर मुकाम किया और वहॉ से [घोड़े पर] चढ़कर चला।

गौरी वे दल सम्मुहौ, गौ पंजाब प्रमान।
पुव्व रु पच्छिम दुहॅ दिसा, मिलि चुहान सुरतान॥

शब्दार्थ—वे=के। सम्मुहौ=सम्मुख, सामने।

अर्थ—पंजाब की ओर गौरीशाह की सेना के सामने वह गया और पूर्व तथा पश्चिम दिशा से चौहान और शाहबुद्दीन का आगे जाकर इस प्रकार सामना हुआ।

यहॉ से पुस्तक मे संकलित भाग का अर्थ आरम्भ होता है। अतएव यहॉ पदो को न देकर उनकी संख्या दी जाती है। मूल पदो को संकलन मे देखने की आवश्यकता है।

१ रेवातट ···· ·सुरतान।

शब्दार्थ—आवाज= कोलाहल।

अर्थ—[शिकार को जाते समय पीछे की (राजधानी की) रक्षा के लिए चंद पुंडीर नियुक्त किया गया था, उसके पत्र

द्वारा] रेवातट पर ही पृथ्वीराज को ज्ञात हुआ कि श्रेष्ठ गोरी-शाह देश में भयंकर कोलाहल मचाता हुआ, [युद्ध के लिए] सज्जित हो रहा है।

२ दूत ... . मिल्लि।

शब्दार्थ—संभलि = सुनकर। खिल्लि = खेलकर। जूह = समूह। पद्धर = समतल।

अर्थ—दूतों के वचन सुनकर, श्रेष्ठ आखेट खेलने के पश्चात् रेवातट की समतल भूमि पर मृग-जाति में श्रेष्ठ सिंह-स्वरूप योद्धा-गण एकत्र हुए।

३ मिले .... . कलह।

शब्दार्थ—भवन = पुरुषार्थ की। सहँ = के स्थान पर। भीरि = आपत्ति। अप्पु मति = अपनी बुद्धि।

अर्थ—सब सामंत एकत्र हुए तथा उन्होंने राजा से मंत्रणा की। उन्होंने यह भी कहा कि गोरी की चतुरंगिणी सेना दसगुनी है तथा वह सुसज्जित है। [यदि स उप्पर पाठ मान लिया जाय तो इस पंक्ति का अर्थ यह होगा कि शाह की सेना दस गुनी है तथा इसके पश्चात् (इसके ऊपर) चतुरंगिणी ढग से सजी है।] अब पुरुषार्थमय मंत्रणा से न चूकना चाहिए और केवल श्रेष्ठ मत पर ही विचार करना चाहिए। [भावार्थ यह है कि इसप्रकार की श्रेष्ठ मंत्रणा करनी चाहिए जिससे विजय ध्रुव हो।] अपना बल घट गया है अतएव पिछली भूलों पर विचार करना चाहिए। शरीर के बदले मोक्ष और युक्ति के द्वारा ही गोरी को बाँधने का उपक्रम करना चाहिए। [भावार्थ यह है कि वीरतापूर्वक प्राण देकर तथा युक्ति-पूर्वक नीति से कामलेकर गोरी को परास्त करना

चाहिए।] हे पृथ्वीराज ! युद्ध मे अपने ऊपर आपत्ति आई है अतएव स्वय अपनी बुद्धि से सोचकर शत्रुता करना आवश्यक है।

४ सुनिय··· ····· जानिवौ।

शब्दार्थ—मुसक्यौ=मुस्कराया। कसक्यो=कसा। भारत्थी=भारतीय सस्कृति का। अंच=चिनगारी। उड्डत=झाड़ते समय। मुक्खाँ लग्यौ=सामना किया। वानिवौ=टेक रखना, पट्टन्तर=परीक्षा-काल।

अर्थ—पृथ्वीराज की यह बात सुनकर पज्जूनराय और प्रसंगराय मुस्कराये, देवराव वागरो ने भी संकेत करके पॉव को कुछ खींचा और वोला—भारतीय-संस्कृति का यह आदर्श-वाक्य है कि शरीर के वदले मे मुक्ति अच्छी है। हमारे लोहे द्वारा लोहे की चिनगारी भड़कते समय शत्रु को वृक्ष के पत्तो के समान डोलने लग जाना चाहिए। सुलतान को दवाते हुए हम लोगो ने सदा सामना किया है इसलिये दिल्लीश्वर की सेना को अपनी टेक रखनी चाहिए। समूह मे भिड़ते हुए धैर्यवान सामन्तो का अव परीक्षा-काल समझना चाहिए।

५ कहे ··· तरवर किनौ।

शब्दार्थ—तार=ताड़ना। भीर=आपत्ति। परिहारिय=नष्ट की। विरास=स्थान विशेष। विम्भर=विफरे हुए। कित्ती गनौ=तुच्छ है।

अर्थ—तव पज्जूनराय वोला—मैंने ताड़ना [भय दिखला] करके तत्तारी को निकाला, दक्खिण या दस देश के निवासी यादवो पर आपत्ति ढाई। [अथवा उन पर आई हुई आपत्ति को मिटाया]। मैंने ही चांवडराय सहित युद्ध कर जांगलू के

राजा को बाँधा और ब्रह्म क्षत्रिय [संभव है चालुक्य वंश के लिए कहा हो] विरास स्थान पर बड़गूजर [एक जाति विशेष] वीरों की भी वही दशा की। क्रोधित, दलनकर्त्ता चौहान के सामन्तों की सेना के सामने गोरीशाह का दल क्या है? भीम के समक्ष कौरव दल वृक्ष की जड़ों के समान तुच्छ है।

६. कहै · · · · लोकपति।

शब्दार्थ—राज मत=राज मंत्रणा। गत=घेरा। दिव लोकपति=इन्द्र।

अर्थ—जैत्र प्रमार ने कहा, हे पृथ्वीराज! राजमंत्रणा सुनिये! गोरी शाह युद्ध करना चाहता है, इसलिए लाहोर दुर्ग के घेरे को ग्रहण कर लेना चाहिए। अत. अपनी सब सेना को आप एकत्र कीजिए और इष्ट मित्र तथा सम्बन्धियों को पत्र लिख दीजिए। सामन्त और स्वामी की यही मंत्रणा होनी चाहिए और भी जो मंत्र आपको जंचे उसे कार्यान्वित करें। क्योंकि ऐसी ही मंत्रणा से धन और धर्म दोनों की रक्षा होती है और यश के योग्य कहलाकर ऐसी मंत्रणा पर चलने वाले पुरुषों की ही दीप्ति इन्द्र के समान देदीप्यमान होती है।

७ वह वह ···· ··करन कौ।

शब्दार्थ—वह वह कहि=वाहवाह कर। हुक्कारि=हुँकार कर। सा पुरिष=सत्य पुरुष। झुमझै=लड़ते हैं। अलमझै= उलझ कर फँस कर।

अर्थ—वाह वाह कहता हुआ रघुवंशी रामराय बड़गुज्जर हुंकार करके बोल उठा। सब सामन्त गण सुनिये, शाह के आने मात्र से ही शक्ति का पलायन हो रहा है [सब का बल

टूट रहा है] यह ठीक नहीं है। गजराज, सिंह और सत्पुरुष या वीर पुरुष जहाँ रुँध जाते हैं [रोके जाते हैं] वहीं पर लड़ पड़ते हैं। वे कठिन समय को नहीं देखते, लज्जा के पंक में फँसकर वे नहीं हटते। योद्धागण अन्य मंत्रणा जानते ही नहीं, वे तो केवल मरने की ही मंत्रणा ग्रहण करते हैं। मैंने ही सुलतान को पहले सेना सहित बाँध लिया था और यदि पुनः नहीं बाँधूँ तो मैं करण का पुत्र नहीं॥

८ रे· ·लञ।

शब्दार्थ—राज लै=राजाओं के लिए। आप=अपने। भग्गै=भाग्यार्थ। धर खिल्लौ=रुंड स्वरूप हो धड़ पर खेलेंगे क्रन=कर्ण।

अर्थ—तब जैत्र प्रमार बोला, हे गँवार गुर्जर, राजाओं के लिए यह मंत्रणा ठीक नहीं होती। व्यर्थ हम लोगों के मर जाने से राजा निर्बल हो जाता है, इससे कौन सा ग्रह-कार्य सिद्ध हो सकता है? ऐसा करने से तो चौहान के हम सब सेवक देश के भाग्यार्थ केवल रुंडरूप होकर खेलेंगे [अर्थात् वीर गति को प्राप्त होंगे] बाद में स्वामी के संग्राम में अकेला रहने पर कौन काम कर पावेंगे? फिर तो राजा के पास शेष पंडित, भट्ट, कवि और गायक, जिनका कि वह ग्राहक है, रह जायेंगे, क्या वे उसकी आड़ हो सकते हैं? [उसकी रक्षा कर सकते हैं?] वे तो उसी प्रकार हैं जैसे हाथी के शिर की शोभा के लिए भँवर जिनको वह अपने कर्णों को शनैः शनैः हिलाकर उडाता हुआ शोभा पाता है. अर्थात् भँवर केवल मद सुगंध के हेतु ही हाथी के पास आते हैं वे उसकी विपत्ति में सहायक नहीं हो सकते।

९ परी· ·· परवान।

शब्दार्थ – परी पोर=भूल हुई। [किन्तु यदि 'परीषो' पाठ है तो उसका अर्थ होगा 'परीक्षा करो'] तन=शरीर। [किंतु यदि 'रतन' पाठ है तो उसका अर्थ होगा 'लीन होना'] दंग=युद्ध। परवान=निश्चय

अर्थ—रामराय बड़गुज्जर बोला पहले के युद्धों में मुझसे भूल हुई है। [पाठांतर के अनुसार अर्थ होगा—सुलतान के साथ आगे युद्ध होने वाला ही है, मेरे युद्ध मे रत होने की परीक्षा कर लेना] अब यह मंत्रणा विचार लीजिए कि लड़ना मरना निश्चय है।

१० गजन · ·सुरतान

शब्दार्थ—परवान=पंख युक्त। पखर खण्डरें=पाखारों के खण्ड खण्ड।

अर्थ—इस प्रकार पृथ्वीराज के साथियों के गर्जना करते ही सम्राट चौहान के अश्वों के मानो पंख लगे हो, ऐसे दिखलाई पड़े और उनके पाखारो की कड़ियों के खण्ड खण्ड बजने लगे।

११ ग्यारह ·· · परवान।

इस दोहे मे कंठ शोभा छन्द का लक्षण दिया है। इस छंद में ग्यारह अक्षर होते हैं तथा पॉच, छ पर यति होती है और लघु गुरु समान होते हैं।

१२. फिरे है ···· पवन्नमनं।

अर्थ—जीन कसे हुए घोड़े इधर उधर घूम रहे है। यह ऐसे प्रतीत हो रहे हैं मानो उनमे चिड़ियों के पंख लगा दिये गये हैं। उसकी उपमा का चन्द कवि इस प्रकार वर्णन करता है, मानो पृथ्वी पर सूर्य के सारथी अरुण ने रथ को सजाया

है। उन घोड़ों की छाती सुन्दर और पुष्ट दिखलाई देती थी, और वे जल से पूरित खाइयों को लाँघ जाते थे। वे आकाश मे उड़कर चारो पैरों पर खड़े हो जाते थे। उनके खुर की आवाज निरंतर सुन पड़ती थी। उनके आगे सोने की हमेले बँधी हुई थीं। उनके शिर के बाल चामर के समान थे, हवा चलने से उनमे शब्द हो रहा था। इसकी उपमा कवि इस प्रकार देता है कि तारो के वीच ग्रह एकत्र हो गये है या शनिश्चर की गोद मे सूर्य उदय हो रहा है। उनके श्वेत वस्त्र पीछे की ओर उड़ते हुए शोभायमान हैं, मानो जार को देखकर कुलटा स्त्री उसी की ओर बढ़ती जा रही है। घोड़ो के मुख की शोभा घूँघट ढकने सी दिखाई दे रही थी, मानों कोई कुल-वधू घूँघट निकाल कर चल रही है। उनकी अनेक उपमाओं का वर्णन नहीं किया जा सकता। यदि वाग न हो तो वायु और मन भी उनकी बराबरी [दौड़ने मे] नहीं कर सकते।

१३ नव··· ·· ··बाजिय।

अर्थ—घड़ियाल के नौ बजाते ही पृथ्वीराज उठकर राज महल मे चला गया। अर्ध-रात्रि के व्यतीत होते ही वहाँ पर शीघ्र ही दूत आ पहुँचा। उसने आकर पृथ्वीराज को जगाया। जिस प्रकार सिंह अधिकार से बाहर होकर स्वतंत्र हो जाता है उसी प्रकार गोरीशाह के सम्बन्ध में विचार किया। [दूत द्वारा उसे पता चला कि] शाह के आठ हजार हाथी और अट्टारह लाख घुड़सवार चौदह कोस की दूरी पर उपस्थित हैं।

१४ वीच······प्रान।

शब्दार्थ—सहथान=उस स्थान की ओर चन्द= चन्द पुण्डरि

अर्थ—जब से पृथ्वीराज ने चन्द पुण्डीर का पत्र पढ़ा तब से जिस स्थान पर वह था उधर से ही वह मुड़कर शीघ्र चल

पड़ा और उसके वीरों के शरीर और मन मोक्ष भोगी प्राण अंकुरित हो गये।

१५. मची ·· अरिदाह।

शब्दार्थ—कूह=हल्ला, शोर। सनाह कवच निमान=निशा रूपी या नष्ट करने के लिए।

अर्थ—हिन्दू दल में शोर मच गया और प्रत्येक ने कवच कस लिए। वे दस सहस्त्र योद्धा श्रेष्ठ दीपकों के सदृश्य शत्रु-समूह रूपी घनी रात्रि को नष्ट करने के लिए प्रदीप्त हो उठे—अर्थात् युद्धार्थ कटिबद्ध हो गये।

१६ बावरू · · नद पार।

शब्दार्थ—बावस=निराश

अर्थ—उधर चन्द पुण्डीर और शाही दल निराश नहीं हो पाये थे [युद्ध कर ही रहे थे] तब तक पृथ्वीराज के दूतों ने आकर खबर दी कि श्रेष्ठ गोरीशाह ने सेना सजाकर नदी को पार किया है।

१७ पंचासज · दरबार।

शब्दार्थ—पंचासज=पंचनद। बंध=बाध। थति=समूह। दरबार=दर्रे के मुहाने पर।

अर्थ—पीछे से जब गोरियों के स्वामी ने पंचनद के बाँध को पार किया तो वीर चन्द ने अपने वीर समूह को नदी के दर्रे के बाहर नियुक्त कर दिया।

१८ पाँ ·· ··सजरति पाँ।

शब्दार्थ—गज तार=हाथियों को सजाया

अर्थ—मारूफ खाँ, तत्तार खाँ तथा श्रेष्ठ खिलजी खाँ दृढ़ता पूर्वक डट गये और छत्र ग्रहण कर मुजीक खाँ ने गोल

की सेना को पंक्ति बद्ध किया। आग्नेय शस्त्रधारी श्रेष्ठ बलवानो ने हाथियो को सजाया, जिनका भार नूर खाँ, हुज्जाब खाँ और नूर मोहम्मद पर छोड़ा गया। गोरी के श्रेष्ठ वीर वजीर खाँ तथा हजरत खाँ ने हरावल [सेना के अग्रभाग] की रचना की और उसका भार सजरत खाँ को सौंपा गया।

१६, रचि······ · गहर।

शब्दार्थ—टकी = एक विशेष तौल। चौं = चार। तेगसिह = तलवारो सहित। बिहर = चल पड़ते थे। गहर = गहरी।

अर्थ—हरावल को सुलतान ने स्वय शाहजादे और शाहीवंशजों से सुसज्जित किया, जिनमे महमूद से पैदा हुआ वीर सुविहान [सुमान] हरवल पक्ष में नियुक्त किया गया। बीस टंकी कमान खींचने वाले मंगोल खाँ और लल्लरी खाँ एव चार चार तलवार चलाने वाले अन्य बहुत से वीर रक्खे गये, जिनके सनसनाते हुए बाण शत्रु का प्राण खीच लेते थे। वहीं पर श्रेष्ठ गोर वंश का जहाँगीर खान भी था जिसके वीरो के सामने हिन्दू बार बार विचलित हो जाते थे। इस प्रकार पश्चिम दिशा के खान पट्ठान कठिन हरावल की रचना करके खड़े हुए थे।

२० रचि······ बिना।

शब्दार्थ—गब्ब = गर्व। सरवक = दूके हुए, मत्त। पट्टे = पट्टा

अर्थ—पठानो द्वारा रची हुई हरावल मे इसमान खाँ, गक्खर खाँ, केली खाँ कुंजरी खाँ शाह की अश्वारोही सेना को तैय्यार करने वाले थे और खम्भ रखने वाला [प्रतिष्ठा रखने वाला] महान अंग धारी खुरासानी बब्बर खाँ, हवसी खाँ और हुज्जार खाँ श्रेष्ठ थे। जिसका शाह को या संसार को गर्व था। उनके

आगे मद से मत्त पट्टा चलाने वाले श्रेष्ठ आठ गजराज थे। पंचतत्वों से रहित स्वयं ब्रह्म से शरीर का निर्माण हो जाय किन्तु उसमें लज्जा का संचार न हो [अपने गौरव की चिन्ता न हो] तो वह भी उन हाथियों से युद्ध नहीं कर सकता।

२१ करित · · दुरयौ।

शब्दार्थ = निरस्ते = पास थे। लहु = लघु। दुस्तम = दुरूह।

अर्थ—इस प्रकार व्यूह रचना की माया की गई जिसमें चार शाही वंश के और तीस खुदा के फरिश्ते के समान ही अपने फरिस्ते रखे गये थे। उस सेना में शाह शर्म स्वरूप आलमखाँ और उजबक खाँ नजदीक थे, छोटा मारूफ खाँ, गुमस्त खान, वजरंग वाले और दुरूह थे। इस प्रकार शाह ने व्यूह रचना करके हिन्दू सेना के ऊपर भारी रण वाद्य वजवाये। इस प्रकार शाह विशेष सेना को अलग रास्ते पर लाया और आप शोर करता हुआ चिनाव नदी को पार किया। उस शोर को वीर सामन्तों ने सुना जिससे प्रत्येक वीर के शरीर का रोष झलक उठा।

२२ तमसि· ··साज।

शब्दार्थ—तमसि तमसि = तमोगुण से पूरित।

अर्थ—सब सामन्तों में तमोगुण ने स्थान पाया, पृथ्वीराज क्रोधित हो उठा। वीर चंद पुण्डीर ने सजकर दृढ़ पाँव से और बढ़ते हुए गोरी को रोका।

२३ उतरि ·· ·सो करी।

शब्दार्थ—सुपथ्थ धर = श्रेष्ठ पथ (स्वर्ग) को ग्रहण किया; ढुरि = गिरे, घायल हुए।

अर्थ—तब शाह ने चिनाव नदी को पार किया। उस समय चंद पुण्डीर बाण-प्रहार से घायल होकर धराशायी हो

गया था। वह उठाया गया, उसके पाँचों भाइयों ने तब तक श्रेष्ठ पथ को [स्वर्ग को] ग्रहण कर लिया था। यह चरित्र देखकर श्रेष्ठ दूत चौहान [पृथ्वीराज] के पास पहुँचा और कहा कि गोर का स्वामी गोरीशाह आपकी ओर बड़े वेग से बढ़ रहा है। अपने पक्ष का श्रेष्ठ धैर्यवान योद्धा [चंद पुण्डीर] और मारूफ घायल होकर गिर पड़े हैं और शाही सेना एकत्र हो गई है। इस प्रकार लाहौर से पाँच ही कोस के मोड़ पर शाह ने पड़ाव डाला है।

२४ बीर·· सुरतान।

शब्दार्थ—रोस = क्रोध।

अर्थ—यह सुनकर शत्रुता के कारण टेढ़ा होता हुआ श्रेष्ठ वीर [पृथ्वीराज] व्योम से जा लगा अर्थात् अत्यधिक क्रोधित हो आया, और बोला—मैं तभी सोमेश्वर का नन्द कहा जा सकता हूँ, जब कि सुलतान को फिर से बंधन में लूं।

२५ चन्द्रव्यूह · ·कंद।

शब्दार्थ—भंगल = लाभार्थ।

अर्थ—धन्य है राजा पृथ्वीराज को जिसने अपनी सेना का चन्द्रव्यूह बाँधा और उसने सुलतान पर आक्रमण करने का इष्ट देव की वन्दना करके सेना को बढ़ाया।

२६ बर ····बलिय।

शब्दार्थ – राह = राहु। टारे = नाशक। रारी = तलवार।

अर्थ—श्रेष्ठ पंचमी मंगलवार को पृथ्वीराज ने युद्धारंभ के लिए निश्चित किया। राहु और केतु उस दिन पृथ्वीराज के लिए अनुकूल हुए। क्योंकि दुष्ट ग्रह के हटने पर शुभ कार्य की संभावना होती है। अष्ट चक्र पर योगिनी स्थिर रहने से तलवार के लिए भोगभक्ता के रूप में थी। गुरु [बृहस्पति] और

रवि पाँचवे स्थान पर थे, इस प्रकार बड़े भारी अष्ट मंगल ग्रह राजा को थे। केन्द्रीय स्थान पर बुद्ध था और त्रिशूल व चक्र रखने वाले (शिव-विष्णु) बलवान राजा के रक्षक थे। ऐसी शुभ घड़ी को श्रेष्ठ ढंग से ग्रहण करके वह श्रेष्ठ बलवान राजा क्रूर रूप में सूर्योदय होने पर चढ़ा।

२७ सोरचि · ··चन्द।

शब्दार्थ—उद्ध=उर्ध्व। अवद्ध=मध्य।

कद=किरणे। महव=महोवें=[वर्षागम के पूर्व बादल में रेखायें निकलकर सारे बादल को अरुण वर्ण कर देती है, उन रेखाओं को महोवें कहते हैं।

अर्थ—वह क्रूर सूर्य्य उर्ध्व, मध्य एवं अधोभाग में महोवें के रूप में किरणे फैलाता हुआ भयानक अरुण रूप धारण करके उदित हुआ। जिसको उसने खेद प्रगट करते हुए वन्दना की। कविचंद कहता है कि इसका क्या भाव है? अर्थात युद्ध के आरम्भ से अन्त तक भयानक रूप रहेगा। इसलिए राजा ने खेद प्रगट किया।

२८ प्रात. ·· ·····वछेति उर।

शब्दार्थ—वंछई=इच्छा की। वर=प्रियतम।

अर्थ—वीर पृथ्वीराज उस प्रात काल के होने की कामना सारी रात्रि इस तरह करता रहा जैसे दम्पति चक्रवाक बुद्धि बल से देवताओं के सापेक्ष्य सूर्य की इच्छा करते हो। इसी प्रकार प्रतिदिन वियोगिनी अपने पति को, रोगी स्वस्थ होने की, दीन-कर्ण के समान दानी की तथा सती अपने सतीत्व की हृदय में अपेक्षा करती रहती है।

२९ क्रम · पापान।

शब्दार्थ—क्रमगाह=कर्मगाथा। वापान=व्याख्यान, प्रशंसा।

अर्थ—वीरों की कर्मगाथा मोक्ष गाथा है उसकी क्या प्रशंसा करे। मन मे अनखने वाले वे सामन्त कच, करौती और पाषाण तुल्य थे।

३० बाई··   ·आन।

शब्दार्थ—वाय = वायु। धुंधरी = धुधला पड़ जाना।

अर्थ—विषम वायु के कारण चारो ओर धुधलापन छा गया। ऐसा प्रतीत होता था मानो सूर्य पर बादल छा गये हो। देखे किसके घर मे मंगल सूचक वाद्य बजते है और किसके शिर पर मंगल ग्रह [क्रूर ग्रह] आकर उतरता है।

३१ दिष्ट······जान।

शब्दार्थ—दिवट = दृष्टिगोचर। चक्कत = चक्राकृति। खहकि = आकाश मार्ग पर।

अर्थ—शाह की सेना दृष्टिगोचर होते ही लौह धारियों के बाण चक्राकृति हो इस प्रकार चल पड़े, मानो पुन रात्रि का आगमन लक्षित कर आकाश मार्ग पर नक्षत्र चल पड़े हो।

३२ धजा · ···पाइ।

शब्दाथ—बिय = दोनो। मान = मानो।

अर्थ—वायु के कारण ध्वजाये टेढ़ी होकर उड़ने लगीं, मानो तारागण सहित चन्द्रमा दोनो राजाओ के पांवों पड़ता हो अर्थात् दोनो ओर की तारा-युक्त जरीदार ध्वजाये वायु के कारण टेढ़ी हो होकर, एक दूसरी सेना के सामने कुछ झुक झुक कर पुन उठती है। कवि ऐसी स्थिति पर उत्प्रेक्षा करता है।

३३ से.....   अंग।

शब्दार्थ—सनि = शृंगो। संकहि = शंख की। सद्द = शब्द

अर्थ—शृंगी और शंख की ध्वनि के साथ ही साथ सुरंगी

कुहुक की ध्वनि भी हुई, जिसके सामने नक्कारों की ध्वनि कानों को सुनाई नहीं देती थी, मानो वह लुप्त सी हो गई है।

३४ अनि · · दह्वाट।

शब्दार्थ—अनि=सेनाये। वाट=आघात। चित्रंगी रावर =चित्तौड़ पति रावल। दह्वाट=तितर वितर।

अर्थ—दोनों सेनाये आघात करती हुई भयानक बादलों के रूप मे जब मिल सी गई तो ऐसे समय मे विपत्तीय बादल सम दल को चित्तौड़ पति रावल के बिना कौन तितर वितर कर सकता है? अर्थात् सेनाओ के मिलते ही रावल समर-विक्रम के घोड़े की रास उठी।

३५ पवन सबल।

शब्दार्थ—घालि=नाश करना। फहकि=फृ फृ कर। =शब्द। भसुंड=भुशुड।

अर्थ—मेवाड़ पति समर ने सामर्थ्यवान, बलवान्, विषम-स्वरूप, प्रचण्ड पवन के समान चलकर सेना मे भिडंत की। प्रारम्भ में ही युद्धान्तर मिलता हुआ दिखलाई पड़ा। वह श्रेष्ठ तलवार निकालकर शत्रु सैनिकों का नाश करने लगा और मार मार शब्द उच्चारण करता हुआ वृक्ष रूपी वैरियों के पत्ते रूपी शिरों का नाश करने लगा। उसने फेफड़ो से फृ फृ शब्द कर हड्डी और कंकाल उखाड़ दिए। हाथियों के सुंड काटता हुआ बीहड़ बन रूपी शाही दल के क्रूर कंटकों को उखाड़ कर, शाही दल की रजोगुण रूपी रज [सेना] का नाश कर दिया।

३६ रावर ......कर।

शब्दार्थ—उप्पर=सहायता पर। खिजि=क्रोध करता हुआ। दहड़=दस

अर्थ—रावल समर विक्रम की सहायता पर क्रोध करता हुआ जैत्र प्रमार और उसकी सहायता पर चावंडराय और हुस्सैन खाँ सजधज कर बढ़े। उन दोनो ने बढ़कर हरावल के मध्यभाग को पीछे ढकेल दिया, और उसके पक्ष मे आहडो की [मेवाती] सेना पंक्ति बद्ध होकर उलझ पड़ी। किंतु धार राज-वंशीय जैत्र प्रमार को धन्य है, जिसने तलवार को धारण कर हाथ उठाकर उसको अच्छी प्रकार से चलाया, जिसके द्वारा शाही दल के दो हाथी और दस श्रेष्ठ योद्धा मारे गये।

३७ छत्र····· रूष।

शब्दार्थ—राज दुअ=पृथ्वीराज और समरसिंह। हथ-नारि गोर जंवूर=अग्नेयास्त्र विशेष। उम्भंति=खड़ी हुई। रुख= तरफ, ओर

अर्थ—घेरे की सेना के प्रमुख, शाही छत्र को हाथ मे रखने वाले मुजीकखान ने घबड़ाकर शाही छत्र जैत्र प्रमार को अर्पित कर दिया। उस छत्र को जैत्र ने अपने शिर पर धारण किया। इतने मे पृथ्वीराज और रावल समर विक्रम दोनो नरेश एक-त्रित हो, अपनी अपनी सेनाओ का चक्राकृति व्यूह रचकर उस स्थान पर आ पहुँचे। एक अग्रपंक्ति मे मीर हुस्सेन का पुत्र था और दूसरी अग्रपंक्ति मे वीर चन्द पुण्डीर था। प्रथम हमले मे चन्द पुण्डीर केवल घायल हुआ। इस चन्द्र व्यूह की रचना मे चन्द्रमा की दोनो अनियो के स्थान पर दोनो नरेश थे। चन्द्रव्यूह के मध्यभाग पर श्रेष्ठ वीर रघुवंशी रामराय बड़गुज्जर खड़ा हो गया और गोरीशाह के सामने वीर सारंग देव सॉखले ने एकदम हमला कर दिया। जिससे अग्नेयास्त्र धारी शाही सेना दोनो पार्श्वों पर खड़ी हो देखती ही रह गई।

३८ छुटि.....भग्गयौ।

शब्दार्थ—घटिय = कम हो गया । मन = चित्त । खरक्कै = खटकने लगा ।

अर्थ—मध्याह्न का सूर्य शिर पर चढ़ आया । शाही दल की अर्ध शक्ति घटकर छूट गई । वीरों के कन्धों का टेढ़ापन निकल गया और वे श्रेष्ठ कुरंगो रूपी कायरों में जा सम्मिलित हुए । शाह का अर्ध बल शेष रहा अर्थात् शाही दल के आधे योद्धा खड़े रहे । उन्होंने अर्ध घड़ी तक लोहे का उत्तर लोहे से दिया । किन्तु सिंह को मन से सामना करना था अतएव सबल शत्रुओं की विशाल काया उनके चित्त में खटकने लगी । उस समय आपत्ति का नाश करने वाला पुण्डरि लड़ने को तिरछा होकर जा पहुँचा । जिससे शाह की शेष सेना भी इस प्रकार भागने लगी, जैसे नव वधू के हृदय से सूर्योदय होने पर पति की शंका भाग जाती है ।

३६ तेज . ..वार ।

शब्दार्थ—तेज = कान्ति । उब्भै = रहते हुए । भीर = आपत्ति ।

अर्थ—यह देखकर श्रेष्ठ गोरी के मुख की कान्ति विलीन हो गई, इस पर धीरज दिलाता हुआ तत्तार खाँ बोला—मेरे उपस्थित होते हुए भी इस समय आप पर [सुलतान पर] आपत्ति आई ।

४० सोलंकी · · ·मरन ।

शब्दार्थ—सुप लग्गा = मुँह लगा हुआ । वंध = भाड़ ।

अर्थ—इतने में चालुक्य नरेश माधव और खिलजी खान में युद्ध होने लगा । दोनो योद्धा बलवान, वीररस स्वरूप, वीर रस में सने हुए, तलवार चलाने और युद्ध करने में प्रवुद्ध थे । दोनों ने हाथ उठाये और चालुक्य का आघात हुआ जिससे उसकी तलवार टूट गई । तब उसने कटारी निकाल ली । परस्पर एक दूसरे को दूर ही रोक लेने

का प्रयत्न जब नहीं चल सका, तब अधम युद्ध [छल-युद्ध] होने लगा। जिसमें चालुक्य वीर सारंग देव का भाई [माधव] विशेष घाव लगने से धराशायी हो गोरी-शाह के योद्धा के द्वारा मृत हुआ।

४१ पग्ग·· ··गयो।

शब्दार्थ हहकि=हट करके। जमन=यवन। गजि= गर्जना करने लगी। समाहिय=पकड़ी। रज=कलंक। उच्छंगन=बाहुपाश में।

अर्थ—हट करके तलवार द्वारा भिड़ती हुई यवन सेना समुद्र सी गर्जना करने लगी और उस सेना के श्रेष्ठ हाथी, घोड़ों ने तरंगों का रूप धारण कर लिया। यह देखकर के भारी क्रोध करके गोईन्दराव तैय्यार होकर बढ़ा। उधर अनस्य—किसी से विनष्ट नहीं किया जाने वाला जो मीर [खिलजी खाँ] था, उसने पानीदार तलवार ग्रहण की और वह लज्जा रूपी पूर्वी हवा के सहारे आगे बढ़ता हुआ अति दल बल सहित भिड़ पड़ा। उसने राज्य लक्ष्मी को छोड़ दिया, किंतु रजोगुण को नहीं छोड़ा रज (कलंक) नहीं लगने दिया, किंतु वह रज रज (कट कट कर रज कणों के तुल्य) हो गया। उसे अप्सरा बाहुपाश मे न ले सकी और न वह देव विभाग में ही स्थान पा सका अर्थात् सीधा दोजख को चला गया।

४२ पीर·····कवन।

शब्दार्थ—दझ्झै=जलादिया। नवपतंग=तरुण सूर्य्य। विरुझाइय=धारण किया। आरत्रि=अग्नि।

अर्थ—तव पतंग के समान झपट कर जयसिंह वीर ने अपने शरीर को जला दिया, किन्तु उसके तरुण सूर्य के सदृश्य गति को प्राप्तकर एक बार शत्रुओं की धज्जी धज्जी उड़ गई उधर

से। विपक्षी मुसलिम योद्धा ने तेल, पात्र, बत्ती और अग्नि का स्वरूप धारण किया, इधर जयसिंह पंच तत्वों को अर्पित करते हुए भी, पाँचो से भिड़कर उन पाँचो शत्रुओं को मृत्यु की राह लगा दिया। उसने स्वयं अग्नि रूपी दुलहन की श्रेष्ठता से संयोग कर लिया किन्तु शत्रुओं को भी जला-भुना कर नष्ट कर दिया। उसने मृत्यु पाते हुए भी दैत्य स्वरूपी मुसलमानो से विजय प्राप्त कर ली। इस पृथ्वी-मंडल में उसकी अन्य कौन समानता करने वाला है?

४३ रुपौ·· ·धुआ।

शब्दार्थ—पारस = चारो ओर। आसहि = बढ़कर। सिर-वनी = सिर पर आघात किया। कप्यौ = कम्पित हुआ।

अर्थ—इसके पश्चात् पुण्डीर नामक वीर अथवा पुण्डरि का कोई भाई डट गया। उसे चारो ओर से शाही सेना ने घेर लिया। वीरो ने चम चमाते हुए तीक्ष्ण शस्त्रो को चला कर उसके सिर पर आघात किया। भारी लोहे पर लोहा के लगने से सिरस्त्राण टूटकर खण्ड खण्ड हो गया। उसकी उपमा कवि इस प्रकार करता है मानो रोहिनी नक्षत्र ने मिल-कर उस वीर के शिर पर चन्द्रमा और नक्षत्र चला दिया हो। वह वीर उठकर भिड़ता हुआ शत्रुओ को नष्ट करने लगा, यह देखकर स्वर्ग लोक मे जय जयकार होने लगी। अंत मे भी उसका कमन्ध चार पॉच पल के लिए खड़ा हो गया। कवि कहता है उसे खड़ा हुआ देखकर क्या कारण है कि ध्रुव कम्पित हुआ। अर्थात् ध्रुव को अपने से बढ़कर इस वीर अटल ध्रुव को देखकर शंका हो गई, जिससे वह कम्पित हो उठा।

४४ दुज्जन ···नयौ।

शब्दार्थ—दुज्जन सल = दुर्जन मल्य नाम विशेष। हक्कारिय = ललकारा। हय हय हय = मार मार मार।

अर्थ—कुरंभ पल्हन का भाई दुर्जन मल्य नामक वीर हुँकार करता हुआ उठा, यह देखकर खुरासान खाँ, अपनी लम्बी तलवार को उठाता हुआ, उसके सामने आया। आघात से शिरस्त्राण टूटकर फट गया और वह सिरपर पड़ती हुई कवंध तक पहुँची। ऐसी ताड़ना होते हुए कबंध मार मार उच्चारण करते हुए नृत्य करने लगा। उस नये रुद्र को देखकर रुद्र भी प्रसन्न हुए और डरकर नन्दीगण 'मारे गये', 'मारे गये' कहने लगे। कवि चंद कहता है कि महाभारत के सदृश्य उस वीर का युद्ध देखकर भगवती शैलपुत्री भी चकित हो गई।

४५ सालंकी ······ घुनह।

शब्दार्थ—भृत्त = सेवक [सारग देव]। हे = हय, घोड़ा। चंधे घुनह = घायल होकर भूमने लगा।

अर्थ—सारंगदेव सोलंकी और खिलजी खाँ ने आकर उसका सामना किया [सारंगदेव कमधजी सेना का वीर था, संभव है कमधजी सेना भी शाही सेना की सहायता करने पहुँची हो, पृथ्वीराज की सेना सारंगदेव सोलंकी से भिन्न होनी चाहिए] इधर से कन्ह चौहान बढ़ा, वह पंगुरान के सेवक ['सारंगदेव । को विचलित करके खिलजी खाँ से जा भिड़ा। विपक्षी खिलजी खाँ उछलकर कन्ह के घोड़े के कन्धे पर आ चढ़ा, तब कन्ह ने दूसरे अश्व को ग्रहण किया और हाथी के समान गर्जना की, जिससे पृथ्वी, पहाड़ और कंदराएँ प्रतिध्वनित हो उठीं। युद्ध में पुष्पाजलि अर्पित करते हुए देवताओं ने जयजयकार किया। कन्ह के वार से सब साधनों की साधना करता हुआ भी एक रणक्षेत्र में धराशायी हुआ और दूसरा घायल होकर भूमने लगा।

प्रथम और द्वितीय पंक्ति का अर्थ यह भी हो सकता है :—
उधर सोलंकी सारंगदेव और खिलजी गर्गों भिड़ पड़े, इधर शाही मदद पर आए हुए कन्नौजी सैनिक को विचलित करके चौहान कन्ह उलझ पड़ा, विपक्षी वीर के अश्व के कंधे पर चढ़कर दूसरे विपक्षी के कंधे पर जा चढ़ा।

४६—करी·· ·· ढुल्यौ।

शब्दार्थ—आहुट्ठ वीर = अक्षय वीर। अरक्कै = अड़कर। कविल पील = कुवलिया पीड। रक्कै = पछाड़ता हो। आग्गिन = अच्छिणी ने। सहयौ = साथ किया। हक्कि = गर्जना ने।

अर्थ—इधर अक्षय वीर गोइंदराय अड़कर हाथियों से सामना करते हुए गरजने लगा, मानों कुवलिया पीड़ हाथी के दारुण दाँतों को कृष्ण पकड़कर उसे पछाड़ते हों। उसके आघात से हाथी का सूंड खण्ड खण्ड हो गया और महावत ने हाथी को छोड दिया, सिद्धों ने साधन सिद्ध किया तथा वैताल और अच्छिणी ने मांस को अधिकार में कर लिया। इसप्रकार वह श्रेष्ठ वीर इस युद्ध मे भिड पड़ा और लोहे के आघातों से झूमने लगा। यह कार्य उसने तत्तार खाँन के साथ किया और इस शेर की गर्जना से आकाश हिलने लगा।

४७—पोलि.. ...लहर।

शब्दार्थ—धर = धड़। संभरि = संभलकर। कट्टारिय = कटारी। अंत = आतो के।

अर्थ—तलवार निकालकर वीर रत्नसिंह ने क्रोध में आकर शत्रु के सिर पर मारा, जिससे विपक्षी का धड़ कटकर धराशायी तो हो गया, किन्तु उसने फिर भी सम्हालकर कटारी निकाल ली। वीर रत्नसिंह ने, विपक्षी के साथ उलझ जाने पर भी तलवार का उसने पुनः वार किया, किन्तु वह चूक

गया, इसलिए घायल शत्रु को लोहे को झाड़ी को झेलकर संभलना पड़ा। वह भी शत्रु के साथ ही स्वर्ग को चला, लेकिन उसके चलने का कोई क्रम न रहा। वार के समय उसका हाथ हिल गया, किन्तु वह श्रेष्ठ वीर नहीं हिला। उस श्रेष्ठ वीर के गिर पड़ने पर दाहिर के पुत्र चामंडराय की तीक्ष्ण तलवार की तरंग बढ़ चली।

४८—जैत.......वियौ।

शब्दार्थ—झगरी = लड़ाई महमाय = योगिनियों के बीच। भान-थान = सूर्यमण्डल।

अर्थ—उधर युद्ध करता हुआ जैत्र के भाई लक्ष्मण का पुत्र लाखा धराशायी हुआ। वहाँ योगिनियों में उसके खून के लिए झगड़ा मच गया और देवों ने हुँकार किया। उस हुँकार के साथ ही गिद्धिनी उसे उड़ाने लगी। गिद्धिनियों से अप्सरायें उसे लेना चाहती थीं, किन्तु न पा सकीं। जहाँ से वह पैदा हुआ था, वहीं पर पहुँचा, इससे देवलोक को भ्रम हो गया। वह न तो यमलोक, शिवलोक और न ब्रह्मलोक को गया, वह तो सूर्य-अंशज योद्धा था, इसलिए सूर्य-मण्डल में जा मिला।

४६—तन .....बधुअ।

शब्दार्थ—झंझरि = जर्जरित होकर। मुच्छि = मुर्छित अवस्था में। अपर = अप्सरायें। सतकाल = सती स्त्री। सुकी वधुअ = स्वकीया वधू।

अर्थ—तन से जर्जरित होकर वह प्रमार वीर धराशायी होकर दो घड़ी तक, मुर्छित अवस्था में पड़ा रहा। उसे देख कर स्वर्ग को तज अप्सराओं ने हृदय से आकर उसे लगा लिया। इतने में सतीवाल उस सलखाने के आँधव के पास

पहुँची, तब उस मुर्छित वीर केशव के दोनों हाथों ने यह लिख-कर बताया, उस श्रेष्ठ लेख को उसने पढ़ा। मुर्छित शव ने लिखा था—जन्म-मृत्यु, सुख-दुख और श्रेष्ठ गति, ये अमिट है और शरीर के साथ सदा हैं। अस्तु, अब मुझे नहीं छूना और न इस समय मुझे अपने हिस्से में समझना। हे वधू! केवल दूर ही से वन्दना कर लेना, अब मैं सत्यपुर में तुमसे मिलने का नहीं। अब मेरी आत्मा परमब्रह्म में मिलने वाली है।

५०—राम ... ललचाइ।

शब्दार्थ—अथिर=अस्थिर

अर्थ—उस राय प्रमार के भाई का श्रेष्ठ शिर ईश ने इच्छा करके ग्रहण किया और उसे देख देखकर इसप्रकार लालायित होने लगा, मानों कोई चंचल मनवाला दरिद्री हस्तगत धन को बार बार देखता है। [प्रमार शाखा में सलखानी वंश का जैत्रप्रमार और रायप्रमार होने से उक्त मृत-वीर को एक जगह जैत्र का भाई और एक जगह रायप्रमार का भाई लिखा है।]

५१—जाम . . मीर

शब्दार्थ—जाम=पहर

अर्थ—एक पहर दिन चढ़ते ही जंघारो जोगी-वीर युद्ध-भूमि में झुक पड़ा। वह तीर के समान तेज होकर टूट पड़ा और उसने मीर को मैदान में पकड़ लिया।

५२—जंघारो . . समर।

शब्दार्थ—जटत=जटा। हरसारौ=शोभित। झारौ=जला दिया। इत्तौ=ऐसा।

अर्थ—जंघारा जोगी जिसने योग ग्रहण कर लिया था और केवल फरसा, तुंगी, त्रिशूल और खप्पर का अधिकारी था। जटायुक वह शृंगी तथा विभूति से शोभित श्रेष्ठ शिव के स्वरूप उसने स्वामी और देश के लिए कटार निकाली। और सबल आवाज से ही विषम मतवालों के मद की गंध को नष्टकर दिया। अपनी पंक्ति में वह दृढ़ता से खड़ा था। चन्द कवि कहता है कि उसने अमृतरस के समान अमरत्व को ले लिया। मण्डलेश्वर राजा राम और रावण के भिड़ने पर भी ऐसा युद्ध नहीं हुआ, जैसा उस वीर ने किया।

५३—सिलह .... बुल्लयौ।

शब्दार्थ—वीर वग्गा=वीर रस में लीन हो गया। सत=सौ। सायौ=फैला दिया। वहसि=प्रसन्न होकर।

अर्थ—कवच (सिलह) से सुसज्जित बादशाह ने युद्ध में क्रोधित होकर भारी रणवाद्य बजवाये। उन्हें श्रवणकर लंगरीराय जो अभंग वीर था, वीररस में लीन हो गया, तथा धैर्यवान सौ वीरों में से वह वीर हुंकार करके युद्ध में बढ़ा; पृथ्वीराज के सौ सामन्तों में वह एक ही वीर था, जिसने विपक्षियों के हृदय में मृत्यु का डर उत्पन्न कर दिया। धाक फैलाते हुए, रण में बढ़कर खंग-प्रवाह से आकाश मार्ग को खोल दिया। तलवार को वहन करते हुए तथा आगे बढ़ते हुए उस वीर ने अंग पर विभूति, चन्द्रमा और तिलक धारण करने वाले का नामोच्चारण किया, अर्थात् "हर हर महादेव" ध्वनि की।

५४—लंगा......उभारयौ।

शब्दार्थ—घुमंर घन=गहरे चक्र में। बद्दर=बादल। लंगूर=हनुमान। उभ्भार=फाड़ दिया। दूजै=द्वितीय बार।

अर्थ—लंगरीराय ने शस्त्र उठाकर सेना के गहरे चक्र में प्रवेश किया। उसकी तलवार तलवार से जुटती हुई ऐसी मालूम होने लगी मानों बादल में बिजली की कुछ शलाका दिखाई पड़ती हो। वह सुलतान को इस प्रकार लगी जैसे जंगल मे दावाग्नि प्रज्वलित हो उठी हो अथवा अग्नि लगाकर हनुमान लंका से अलग हो गये हों। उस अक्खड़ मल्ल ने एक को मार-कर फाड़ दिया और एक को चीड़ फाड़कर फेंक दिया। दृढ़ चरण को रोपकर अचानक ही उस समुद्र को तैर गया। फिर भी उस वीर ने द्वितीय बार तलवार को उठाया।

५५—लौहानौ .....परि।

शब्दार्थ—ठट्टर=ठठरी। उरद्ध=उल्टा, पीछे। बहारी= बाँटने वाली, कटारी। अवसान=होश।

अर्थ—इधर से लौहाने ने और उधर से महमूद ने एक दूसरे पर भारी बाण वर्षा की। वे बाण वीरों के पींजरों को बेध कर पीठ पर ऊपर की ओर निकल गये, मानों खिड़की के किवाड़ खुल गये हों। तब वीर लौहाने ने तलवार निकाल सावधानी से संभलकर एक ही बार में उस मीर को चीरते हुए मृत शत्रुओं के शवों का सुमेरू का सा ढेर लगा दिया। इस प्रकार गोरीशाह के ६४ खॉन उस युद्ध मे खेत रहे और चौहानी योद्धाओं में तीन राव और एक राजा रणस्थल मे धरा-शायी हुए।

५६—मानि... मति।

शब्दार्थ—रोस=क्रोध। गाहक्के=गर्जना करने लगा। बाहि=करता हुआ। हहक्के=आक्रमण करता हो।

अर्थ—लौहाने के लोहे को मारुफ खॉ भी मानता हुआ क्रोध करके कुछ बिडुरता (क्रोध से कटकटाता) हुआ गर्जने लगा। मानो आवाज पर आवाज करता हुआ गर्जना करते हुए

पंचानन आक्रमण करते हो। वे दोनों वीर महमूद और मारुफ तेजधारी थे। उनके सिर पर सिंह प्रमार ने केवल एक ही वार किया, जिससे शिरस्त्राण टूट गया। चन्द कवि उसकी उपमा करता है, मानो दो शृंगोरूपी सिरों को तोड़ने के लिए विजली स्थिर प्रवाहयुक्त आ ठहरी हो। परन्तु उनके सिरों पर पड़कर उस तलवार के ही दो दो टुकड़े हो गये, वे ऐसे दिखाई पड़े, मानों यमराज द्वारा प्रेरित काल-रात्रि के नक्षत्र विपक्षियों के सिर पर मंडराते हो।

५७—दस ·· हमसि कैं।

शब्दार्थ—मुख किन्नौ=मुख की ओर भेजा। अकाश वादी=आकाशवाणी। सोमोह=सोमेश्वर के पुत्र ने। हमीस=उत्तेजित होकर।

अर्थ—शाहबुद्दीन गोरी ने अपने अग्रभाग के मुख पर दस हाथियों सहित सुविहान (सुभान) को भेजा और तत्तार खाँ ने आकाशवाणी के समान शोर किया। वह चारों ओर फैल गया। आग्नेयास्त्र और बाणादि के शोर से दसों दिशाएं व्याप्त हो गई, इस शोर से पृथ्वीराज का हाथी भाग पड़ा, जिससे पृथ्वीराज के चित्त में व्याकुलता उत्पन्न हो गई। तब वज्रवत् सोमेश्वर के श्रेष्ठ पुत्र ने व्रज को डुबाने वाली वारि-धारा के समान शस्त्र-वर्षा की और उसके श्रेष्ठ वीर सामंत उत्तेजित होकर खड़े हो गए।

५८—अद्ध ·· कोट हुआ।

शब्दार्थ—सेषन=शेख जाति के मुसलमान। जोर=जुड़ कर। सार=लोहा। पहर=दृढ़।

अर्थ—आधे आधे योजन पर उड़कर मीरों ने साँग फेरना प्रारम्भ कर दिया। तब क्रोधित होकर पृथ्वीराज के सामंतों

ने गोरीशाह को घेरा, किंतु शाह के चारों ओर चक्र चलाने वाले पचासों शेख थे। फिर भी पृथ्वीराज के योद्धा सम्मिलित हो दृढ़ दीवाल स्वरूप हो गये तथा लोहे से मृत्यु प्राप्त करने का उत्साह उनके हृदय में बढ़ गया। शाही दल के अग्रभाग के योद्धाओं ने श्रेष्ठ तलवार बजाई, किन्तु सामंतों की वह दृढ़ दीवाल टूटने के स्थान पर और भी दृढ़ होती गई। उन श्रेष्ठ वीरों ने उस युद्ध रूपी रास मण्डल में धराशायी होते हुए भी शस्त्रधारा का श्रेष्ठ-कोट [दुर्ग] बना दिया।

५६—शब्दार्थ—भष्पै = भक्षण करने लगा। तसबी = माला नंषै = फेंक दी। बिथुरि = उन्मत्त होकर। धामंत = बढ़ते हुए।

अर्थ—तब खुरासान खाँ और तत्तार खाँ क्रोधित हो शत्रुओं के दल को विनष्ट करने लगे, तथा उन वीरों के हृदय में स्वामी के समक्ष दिये हुये वचन खटकने लगे, उन्होंने हट करके माला को डाल दिया। चौहानी सेना के मध्यभाग के कज्जल गिरि के समान हाथी उनके आघातों द्वारा यत्र-तत्र विचलित हो गये। वे विपत्तियों से बोले—जो आप विजयी हैं तो हमसे युद्ध करिये, यह कहते हुए उन्होंने तेरह सामन्तों को दबा दिया। वे फरिस्ते के रूप में तलवार निकालते हुए बढ़े, जिससे चौहान के योद्धा तेरह डग पीछे हट गये। किन्तु श्रेष्ठ वीर समूह अपने वाहनों सहित चतुरांगिणी सजाकर उस आपत्ति का सामाना करने लगे।

६०—पच्छै ... तथ।

शब्दार्थ—अपछर = अप्सरा। सोझतह = वहाँ ढूँढ़ा। जीत सथ = विजय श्री सहित। तथ = वहाँ।

अर्थ—इधर संग्राम से पूर्व ही अप्सराएँ विचरने लगीं तथा मेनका रंभा से पूँछने लगी कि आज तुम्हारा चित्त भारी

क्यो है, तब रंभा ने उत्तर दिया आज कोई प्यारा पाहुना हाथ नहीं आया, मैंने रथ मे बैठकर इस स्थान पर बहुत खोज किया किन्तु प्रीतम को न देख सको। यद्यपि योद्धागण युद्ध मे भिड़कर विजय श्री के साथ कई स्थालो पर मृत्यु को प्राप्त कर चुप ही पड़े है, किन्तु वे उधर [स्वर्ग या ब्राह्मलोक] किस रास्ते से होकर चले गए, कोई भी नहीं जान सका। केवल उनको स्थिर रूप से खड़े खड़े शंभू ही देख पाये।

६१—पॉ .. पुक्करी।

शब्दार्थ—सार बहि=लोहा बजाकर । घट=घायल हो कर। अदिहार दोह=नहीं दृष्टिगत होने वाला [ईश्वर]। पुक्कारि=पुकारा।

अर्थ—गाजो हुस्सेन इस युद्ध मे धराशायी हुआ लेकिन उसका शरीर तलवार बजाकर हो धराशायी हुआ। विपक्षीय दल के हुज्जाब खॉ, शेर खॉ, मारुफ खॉ, और खान खाना घायल होकर झूमने लगे। यह देख गोरी शाह, तथा सुविहान ने विपत्तियो का सामना किया, लेकिन शाह तलवार लेकर सुलतान पना नहीं निभा सका। नहीं दृष्टिगत होने वाला [ईश्वर] जब उस दिन उससे पलट चुका, तब उसने उसको [ईश्वर] को पुकारा।

६२—तब ..ताहिय।

शब्दार्थ—साहिब=शाहबुदोन । गुराइय=गोविन्द राय को। तकंत=ताककर। गहिय=पकड़ लिया।

अर्थ—तब गोरियो के स्वामी शाहबुदीन ने हाथ मे सात बाण लिये। पहिला बाण उसने श्रेष्ठ वीर रघुवंशी गोविन्दराय को मारा और दूसरे बाण से ताककर भीमभट्टी के बल को

तोड़ा। तीसरा बाण उसने चौहान पर ताना, किन्तु वह आधा ही तन पाया था कि चौहान ने कमान साधकर शाह के तीसरे बान के हाथ का हाथ मे ही रख दिया और पृथ्वीराज ने उसको काट दिया। इतने मे रामरण्य बड़गुज्जर ने गोरी को पकड़ लिया।

६३—गहि·· लोकपति।

शब्दार्थ—झोरिकरि=झोलियों मे। गजवंध=हाथी की सॉकल से। दिपत्ति=दीप्ति।

अर्थ गोरी को पकड़ने के बाद गाजी हुस्सैन खॉ को ऊपर उठाया तथा तत्तार खॉ, निसुरत्ति खॉ आदि को पकड़कर झोलियों मे डाल दिया। फिर शाह के राज्य चिह्न चमर, छत्र आदि लूटे गये। तब रण क्षेत्र मे श्रेष्ठ विजय-सूचक वाद्यों के साथ चौहान का जय जयकार सुनाई पड़ने लगा। इसके पश्चात् शाह को हाथी की सॉकल से बॉधकर हाथी के ऊपर रखकर दिल्लीपति दिल्ली को गया। यह देखकर नागदेव आदि स्तुति-करने लगे और इस विजय मे पृथ्वीराज की दीप्ति इन्द्र के समान देदीप्यमान हो गई।

६४—समै मध्यान।

शब्दार्थ—वत्ती=बीतने पर। तपै=तपने लगा।

अर्थ—कुछ समय बीतने पर पृथ्वीराज ने श्रेष्ठ सुलतान को छोड़ दिया और पृथ्वीराज अपने सिंहासन पर इस प्रकार तपने लगा, जिस प्रकार ग्रीष्म ऋतुके मध्याह्न मे सूर्य तपता हो।

६५—मास सुघरि।

शब्दार्थ रुद्धो=रुंधा रहने पर। सुद्धौ=सीधा। मुर=लचकदार। सुज्जकी=सुन्दर। समेल करि=सम्मेलनकर।

अर्थ—इस प्रकार एक माह् और तीन दिन शाह् के संकट मे ग्रसित रह्ने पर शाही उमरावों ने पृथ्वीराज से प्रार्थना की। तव पृथ्वीराज ने अरवी घोड़े दण्ड स्वरूप मॉगा। उस समय नौ ह्जार सात सै अरवी घोड़े और अट्ठाईस सफेद हाथी, जो कभी युद्ध से मुड़ना जानते ही न थे, दिये। और उत्तम नये रत्न, मोती, माणिक देकर मेल और संधि कर ली और पृथ्वी राज की वहुत सी खुशामद कर गोरी गजनी चला गया।

वीसलदेव रासो

१—गवरी को नंदन = गणेश, आव्यो छइ = आया। भाव ध्यान मे; भूलो · ठाइं = भूले हुए अक्षर को यथा स्थान लाकर मिला देना। एक दन्त = गणेश जी; प्रगासु = प्रकाशित करूँ, गाऊँ।

२—उभोछ्इ = वोला, सामर्‌यो राव = साभर देश का राजा बीसलदेव मो सरीखा = मेरे समान, ऊर भुवाल = और राजा, म्हां घर ··उगहइ = मेरे वर सांभर [नमक] उगाहा जाता है अर्थात् नमक द्वारा कर प्राप्त होता है, तुरी = घोड़ा, पायर = जीन, राजिकउ ·अजमेर = राज का स्थान [राजधानी अजमेर है।

ऊपर के दूसरे पद मे वीसलदेव ने गर्व के साथ अपनी सम्पत्ति का वर्णन किया है। अब तीसरे पद से उसकी रानी [राजमती] का उत्तर आरम्भ होता है। रानी कहती है :—

३—हे मेरे पति देव। अभिमान से वाते न करो। लंका-पति [रावण] धनी था। उसकी लका सात समुद्र के बीच मे स्थित थी तथा उसके द्वार पर अस्सी हजार वाजे वजते थे। ऐसी लका को वानरो ने विध्वंस कर डाला। तू [= थे] गढ़ अजमेर की क्या सराहना करता है?

४—सांभर्‌याराव = हे सांभर देश के राजा बीसलदेव। गरभि ·बोलो = गर्व से न वोलो। तो सरीखा ·भुवाल = तुम्हारे ममान और अनेक राजा है। एक उड़ीसा ·धणी = एक तो उड़ीसा का ही धनी राजा है, मान जु मानि = यदि सत्य मानो, ज्युं थारइ··· हीरा खान = जैसे तुम्हारे यहाँ

सांभर उगाहा जाता है, इसी प्रकार उसके [उड़ीसा के राजा के] घर हीरा उगाहा जाता है।

५—धणक = स्त्री का; चमकियउ = चकित हो गया; हूँ वीसखो = मै विश्रब्ध था, मैं भूला था, वेदिठा = सचेत किया।

अर्थ—स्त्री की बातों ने हृदय पर चोट की। वीसलदेव चकित हो गया। उसने कहा—मै भूला था, तुमने मुझे सचेत किया। मै तो बारह वर्ष के लिए लम्बी यात्रा करना चाहता हूँ। या तो मै हीरा उगाह कर लाऊँगा या प्राण त्याग कर दूँगा।

६—वराकी = वाचाल, मोकियउ = छोड़ दो।

अर्थ—रानी ने कहा—मैं वाचाल हूँ। कृपया क्रोध करना छोड़ दे। आपने पैर की जूती पर क्रोध किया है [रानी का भाव है कि वह राजा के पैरों की जूती है] मैंने हँसी मे बाते की थी। आप की ही प्रतिष्ठा से मैं जीवित हूँ। यदि आप मुझे छोडकर चल देगे तो मै कैसे जीवित रह सकूंगी ? क्या जल के बिना हंस जीवित रह सकता है ?

७—परणी आवी···अजमेर = अजमेर मे तू व्याह कर आई।

अर्थ—हे स्त्री ! [गोरी] तू जैसलमेर मे पैदा हुई और व्याह करके अजमेर में आई। तेरी अवस्था बारह वर्ष की है। तूने जगन्नाथ का स्मरण क्यों किया ? तुम अपने पूर्व जन्म की बात बतलाओ, नहीं तो मैं अपना प्राण त्याग दूँगा।

८ - पूछइहो = पूंछते हो। उरहु = उरमे, हृदय मे।

अर्थ—राजमती, वीसलदेव के प्रश्न का उत्तर देती है। वह कहती है कि मै पूर्वजन्म मे हरिणी के वेष मे वन मे रहती थी, उस समय मैं निर्जला एकादशी का व्रत करती थी, वहाँ एक आखेटिक ने मेरे हृदय मे बाण मारा तब मैं जगन्नाथ के द्वार अर्थात् उड़ीसा मे पैदा हुई।

९—धरीय = धारण करने वाले। मांगि है = याचना करना।

अर्थ—हरिणी ने मन में जगन्नाथ का स्मरण किया। शंख, चक्र तथा गदा को धारण करने वाले भगवान प्रगट हुए तथा उन्होंने हरिणी से वर मांगने के लिये कहा। इस पर हरिणी ने कहा—हे त्रिभुवन के स्वामी! यदि आप प्रसन्न हैं, तो मुझे यही वरदान दीजिए कि पूरब देश में मेरा पुनर्जन्म न होवे।

१०—पतिग = पाप।

अर्थ—वीसलदेव कहता है—हे गोरी! तुमने पूरब देश को क्यों भुलवाया। बात यह है कि वहाँ पाप का प्रवेश नहीं है। वहाँ के लोग अत्यन्त चतुर हैं। वहाँ गंगा और गया तीर्थ हैं और वाराणसी भी वहीं है, जिसके दर्शन और स्नान से पाप नाश हो जाते हैं।

११—लोक = लोग। कण संचइ = कंजूस। कुकम = अभक्ष्य।

अर्थ—पूरब देश के रहनेवाले लोग पुरबिहा हैं। पान, फूल मात्र ही उनके भोग की सामग्री है। वे लोग अत्यन्त कंजूस होते हैं तथा अभक्ष्य खाते हैं। ग्वालेर का गढ़ अत्यन्त सुन्दर है और मैं जैसलमेर में प्रत्येक प्रकार के भोगों का उपभोग करती हूँ।

१२—मारू = मारवाड़। नीरोपमी = निरुपम। मेदनी = पृथ्वी। ललयाँगी = सुन्दर अंगवाली। अहिरव = अहितुल्य।

अर्थ—वीसलदेव कहता है—तुम्हारा जन्म मारवाड़ देश में हुआ है। हे राजकुमारी! तुम्हारा रूप अत्यन्त सुन्दर है। पृथ्वी में उसकी उपमा नहीं है। तुम्हारे कपड़े अच्छे हैं और तुम पतली कमरवाली हो। तुम सुन्दर अंग वाली कोमलांगी हो। तुम्हारे केश नागिन की भाँति हैं तथा तुम्हारी दंत-पंक्ति श्वेत है अर्थात् सुन्दर है।

१३—उलगई=परदेश ।

अर्थ—राजकुमारी कहती है—हे साँभर देश के राजा! वीसलदेव सुनो। तुम विदेश क्यों जा रहे हो। यदि तुम मेरी बाते सुनो, तो तुम्हे स्मरण रखना चाहिए कि तुम्हारे अंतःपुर में तुम्हारी साठ स्त्रियाँ हैं। रानी हाथ जोड़कर विनती करते हुए कहती है कि तुम यहीं सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करो।

१४—आंणिसु=लाऊँगा।

अर्थ—राजा कहता है—हे राजकुमारी! सुनो। तुम हृदय मे दुखी क्यो हो रही हो? मै उड़ीसा जाकर जगन्नाथ को प्रणाम करूँगा और तुम्हारे लिए करोड़ रुपये का हार लाऊँगा।

१५—मइला=मुझको। गमीमा=लाना।

अर्थ—हे स्त्री। मै तुम्हारी आशा पूर्ण करूँगा। [इस पर रानी कहती है] हे राजा! मुझे किसीप्रकार भी तुम्हारा विश्वास नहीं हो रहा है। मुझे तुम अपनी दासी समझो। तुम्हारे वियोग मे मै जीवित ही मृतक हूँ। मै सदैव तुम्हारी बातो की इच्छुक हूँ और तुम्हारे वश मे हूँ।

१६ विगोयनो=बात से बात नहीं छिप सकती। मेली=फेंकना। पांगूरई=पनपता है।

अर्थ—हे स्त्री! तुम कड़वी बाते न करो। तुम अपने हृदय से मुझे भुला दो। अब बाते बनाने से काम न चलेगा। अग्नि का जला वृक्ष—कोंपल फेंक सकता है, किंतु वचन से जला मनुष्य पनप नहीं सकता। नाल्ह कह रहा है कि इस बात को सभी लोग सुन ले।

१७—गाहजइ=लगा रहता है।

अर्थ—वहाँ पर पाँच स्त्रियाँ आकर बैठ गई और कहने लगीं हे मूर्खा! यदि तुममे गुण हो, तो तुम्हारा प्रियतम

क्यो परदेश जाय ? जिसप्रकार से फूल पगड़ी मे लगा रहता है, उसीप्रकार तुम्हारे अंचल मे बँधा हुआ, तुम्हारा पति क्यों कहीं जाय ?

१८—दुमनी = दुखित । हीयड़इ = हृदय ।

अर्थ—राजा कहता है—हे राजकुमारी ! सुनो । तुम हृदय मे दुखी क्यो हो रही हो ? यदि तुम मेरी बातें सुनो, तो मैं वहाॅ [उड़ीसा] जाकर केवल छै महीना रहूँगा । वहाँ जगन्नाथ को प्रणाम करके मैं लौट आऊँगा । वे तीनों लोकों के लोगों को मुक्ति देने वाले है ।

१९—हुँकारे = हुँकारना, बुलाना । सचा = सच्चा ।

अर्थ—राजकुमारी ने एकांत में ब्राह्मण को बुलाया । राजा का पुरोहित आ पहुँचा । रानी ने कहा, हे पंडित ! मैं तुम्हारे गुणो की दासी हूॅ । आप कार्त्तिक मास का मुहूर्त दे ।

२०—परगास = प्रकाश-दिखा । वीलवावज्यो = देर करना । फेरई = फिर भी । सोवत = सोने को ।

अर्थ—हे वीर ! मैं तुम्हारे गुणों की दासी हूँ । दस दिन की मुहूर्त बतलाओ । एक महीने और मेरे प्रीतम को रोक दो । एक बार उन्हे और समझाओ । मैं तुझे अपने हाथ की अँगूठी तथा सोने की सींग वाली कपिला गाय दूँगी ।

२१—पतड़ो = पत्रा । जोईसी = ज्योतिषी । खोड़ीला = दूषित योग । नई = नवमी । जीण = उस दिन । थे = तुम ।

अर्थ—हे पंडित ! तुझे राजा बुला रहे हैं, तुम पंचांग लेकर जल्दी आओ । ज्योतिषी पंचाग लेकर पहुँचा । वह अच्छा दिन देखने लगा । उसने पत्रा देखकर बतलाया कि एक महीने तक अच्छा दिन नहीं है । उसने यह भी कहा, कि त्रयोदसी की तिथि सोमवार को है, चन्द्रमा ग्यारहवे है, इसके पश्चात् वाले

दिन मे तीसरे चन्द्रमा तथा दूषित योग है, यद्यपि भद्रा नहीं है, लेकिन कार्तिक महीने मे पुष्य-नक्षत्र नहीं है। जब यह नक्षत्र आवे और उस दिन आप जावे तो निश्चित रूप से आप की आशा पूरी होगी।

२२—परतिप=प्रत्यक्ष। भाड=भण्डन करने वाला। कीसउ =कैसा।

अर्थ—वीसलदेव कहता है—मै तुझे पंडित कहूँ या प्रत्यक्ष भांड कहूँ? तुमने बातें बनाकर के झूंठी बाते कही हैं। राजकुल के लोगो के लिए मुहूर्त्त कैसा? हे ज्योतिषी! यदि तुम मेरी बाते सुनो तो मै आज ही विदेश चला जाऊँ तथा वहाँ जाकर जगन्नाथ की पूजा करूँ।

२३—अर्थ—हे पंडित! यदि तुम मेरी बात सुनो, तो मै विदेश जाता हूं। मुझे घर की स्त्री ने कुवाच्य कहा है। मुझे अपना घर अच्छा नही लगता। मैं उड़ीसा जाकर अपनी बात रखूंगा।

२४—उफिरई=जल्दी करता है। दमोदर=राजा तथा रानी का परिचित व्यक्ति अथवा दास।

अर्थ—राजमती कहती है—हे दामोदर! तुम यहाँ बैठो। मेरे प्रियतम की बातें कहो। वह बड़ा मूर्ख है तथा जल्दी कर रहा है। इस समय अष्टम सूर्य तथा बारहवे राहु है। गणना करने से ग्रह बहुत बुरे है। इसप्रकार से सिर धुनती हुई वह रोने लगती है तथा कहती है।

२५—निरवहु=निर्वाह करूँगी। ढोलसु=झलूंगी। वाई=वायु। पुहर=प्रहर।

अर्थ—मैं दासी होकर के निर्वाह करूँगी तथा साथ चलूँगी। मैं चरण धोऊँगी तथा पंखा झलूंगी। मै प्रति प्रहर जगती रहूँगी तथा अपने प्रियतम की सेवा करूँगी।

२६—गहिली = पागल । कूडइ = कूड़ा ।

अर्थ—हे स्त्री ! तू पगली है तथा तुझे वात रोग हो गया है । भला कोई स्त्री को लेकर विदेश जाता है ? तू पगली, मुग्धा तथा बावली है । भला कहीं चन्द्रमा कूडे में छिपाया जा सकता है, अथवा रत्न भी कहीं छिप सकता है ? बात यह है कि पूरब के राजा हीन होते हैं अर्थात् विश्वास करने योग्य नहीं होते ।

२७—चीरी = पत्र । मोकल्यै = भेजा ।

अर्थ—विदेश जाने का साज सजाया गया । रानी ने हँसकर राजा से कहा—सात वर्ष पूर्व जब तुम विदेश गये थे, तब तुमने एक पत्र भी नहीं भेजा था । मेरा जन्म इसीप्रकार व्यतीत हुआ है । अब तुम जैसा चाहो, वैसा करो ।

२८—बइसा = बैठाई । ऊलँभोउ = उपालंभ दूँ ।

अर्थ—रानी ने अपने अंचल पकड़कर उन्हें बैठाया, तब राजा की भावज आई । उसने कहा—हे राजा ! मैं तुम्हें आज उपालंभ दूँगी । क्या यह स्त्री तुम्हारे हृदय में नहीं समाती ? या यह कटु-भाषिणी है ? हे देवर ! क्या कारण है कि तुम विदेश जा रहे हो ?

२९—रतन = रत्न । नहीच = निश्चय । खाती = मूर्तिकार । कौ = कोई ।

अर्थ—भावज बोली तथा उसने आशीर्वाद दिया । उसने कहा, हे राजा ! रत्न के कटोरे की भाँति यह रानी तुम्हें सौंपी गई है । उसे तू अपने पैर से न ठुकरा । राजाओं के महल में ऐसी रानी न होगी । मन्दिरों में ऐसी मूर्ति नहीं है । इसकी आँखें सुन्दर हैं तथा वचन मैत्रीपूर्ण हैं । मूर्तिकार ने ऐसी

मूर्त्ति कभी नहीं बनाई। सूर्य के नीचे अर्थात् समस्त संसार में ऐसी स्त्री नहीं है।

३०—अर्थ—हे भावज! तू मेरी बातें सुन। राजकुमारी ने मुझे कुवाच्य कहा है। वे बातें मुझे रात-दिन नहीं भूलतीं। यदि राजकुमारी मेरे साथ आवे तो मैं विष खाकर मर जाऊँ। मैं बारह वर्ष तक जगन्नाथ की पूजा करना चाहता हूँ।

३१—पड़िवा=परोवा। सीय=शीत। मीली=आँख लगना। उछइ=कम पानी में।

अर्थ—रानी कहती है हे सखी! अब प्रातः काल हुआ। आज परोवा का दिन है। आज अत्यन्त शीत पड़ा। रात भर मेरी आँख न लगी। मैं उसीप्रकार तड़पती रही जिसप्रकार मछली। मैं बीच बीच में चौंक उठती थी।

३२—बीज=द्वितीया। उपग्रह=उपद्रव। सांसा=संशय।

अर्थ—इसके पश्चात् कृष्ण-पक्ष की द्वितीया आ पहुँची। दिन शुक्रवार था। रानी कहती है कि इस दिन यदि कोई यात्रा करे तो बड़ा उपद्रव हो, यदि कोई पुरुष इस मुहूर्त्त में विदेश जाय, तो उसके लौटने में भी सन्देह है, उसके हिमालय में जाकर गल जाने का डर रहता है।

३३—काजली=कजली। मड़इ=खेल रचना।

अर्थ—तृतीया के दिन प्रत्येक घर में मंगलचार होता है। चारों ओर स्त्रियाँ शृंगार करती हैं। अपनी सहेली के साथ वे कजली का आनन्द लेती हैं। स्त्रियाँ अनेक प्रकार के खेल खेलती हैं। किंतु ऐसे समय भी रानी बिलखती फिरती है, क्योंकि राजा विदेश जा रहा है।

३४—अर्थ—चतुर्थी का दिन आ पहुँचा। उस दिन मंगलवार था, तथा उस दिन स्त्रियाँ व्रत कर रही थीं। बीसलदेव

ने चौथ की पूजा की। हे राजा! यदि मेरी बातें मानों तो प्रसन्नता पूर्वक यहां पूजा करो [बाहर मत जाओ]।

३५—अउत = अनुचित। वइसणउ = बैठकर।

अर्थ— इतने मे पञ्चमी का दिन आ पहुँचा। इस दिन को घर छोड़ना अनुचित है। हे राजा! तुम अपने पुत्र, कलत्र तथा परिवार के साथ अजमेर मे रहो। तुम सांभर का राज्य करो, तथा विदेश जाने के विचार का परित्याग करो।

३६—आवीयो = आने पर।

अर्थ—हे कामिनी! तुम मुझे छोड़ो। मैं विदेश निश्चय पूर्वक जाऊँगा, मैं उड़ीसा के लिए गमन करूंगा। राजा ने यह बातें उस समय कही। तब तक षष्ठी तथा सप्तमी का दिन आ पहुँचा। उसने विदेश जाने के लिए निश्चय कर लिया।

३७—तेडावो = बुलाई गई। कोक = नाम है।

अर्थ—वीसलदेव पूरी सभा मे [उड़ीसा जाने के पूर्व] बैठा। उसने अपने चौरासी सदस्यों को बुलवाया तथा अपनी माता को भी बुलाया। सब ने यह सलाह दी, कि उसके भतीजे कोक को [उसकी अनुपस्थिति में] राज्य का भार सौंपा जाय।

३८—अर्थ—रानी ने कहा यह अच्छा हुआ कि कोक का राज्य भार सौंपा गया, उसे सोना, घोड़ा, घर, चौर तथा राज-निवास आदि सौंपे गये। तत्पश्चात् राजा विदेश चला। अंतःपुर की स्त्रियों ने दुख भरी सांसे छोड़ीं।

३९—झूरई = दुखित होना [सूखना]। सहोवर = सहोदर। सोही = सभी। अंकन कुंवरि = नाम है।

अर्थ—रानी का पति (वीसलदेव) विदेश चला गया। अंतःपुर की रानियाँ उसके वियोग में दुखी हुईं। राजा का

भाई भी दुखी हुआ। धार के लोग भोज के साथ दुखी हुए, क्योंकि साँभर के राजा (वीसलदेव) से वियोग हो गया।

४०—अर्थ—राजा को बहन अकन कुवरि भी दुखी हुईं। सब महाजन तथा उनकी माता भी दुखी हुईं। ब्राह्मण, भाट तथा व्यास दुखी हुए। एक ही बात के कारण राजा विदेश चला गया। सब लोगों ने लम्बी साँसें लीं।

४१—अर्थ—राजा [वीसलदेव] उड़ीसा पहुँच गया। उसने वहाँ के राजा देव को प्रणाम किया। आज का दिन धन्य है। राजा देव ने उसे चौगुनी प्रतिष्ठा दी। उड़ीसा के प्रधान ने [राजा देव ने] उसके ऊपर चँवर डुलाया।

४२—अर्थ—रानी, दूसरे प्रधान तथा अन्य राजाओं ने भी उसका सम्मान किया। राजा देव ने कहा—हे राजा! तुम मेरे भाई हो। उसने अपनी बैठक में उसके ऊपर चँवर डुलाया तथा इच्छानुकूल भोजन और वस्त्र दिये।

४३—धरें=पावे। वीघन=विघ्न। पणिहु=पनरपि।

अर्थ—जो लोग वीसलदेव रासो को सुनते है उनको बहुत धन तथा राज्य मिलता है। नाल्ह ने इस कथा को कहा। जो रानी से वियोग हो गया था, वह गणेश जी कृपा से फिर संयोग में परिणित हो जाय।

४४—चर्य्यौ=कहा। वाग-वाणी=सरस्वती। अस्त्री-रसायण=शृंगार रस का काव्य।

अर्थ—मैंने इस दूसरे खण्ड का वर्णन किया। जो इसे सुनता है उसे गंगा-स्नान का फल मिलता है। राजा उड़ीसा में जाकर रहने लगा। सरस्वती ने मुझे वर दिया कि शृंगार-रस के इस काव्य का मैं वर्णन करूँ।

मान

राज्यारोहण के कुछ समय उपरांत राणा राजसिंह ने अपनी दिग्विजय यात्रा की। राजविलास के छठवें विलास में इस दिग्विजय का विस्तृत-वर्णन है। उसी सर्ग से उद्धृत इस अंश में मालपुरा नामक नगर की लूट का बड़ा ही सजीव चित्रण कवि ने किया है।

दूसरा अंश नवम विलास से लिया गया है। औरंगजेब के बढ़ते हुए अत्याचारों के सामने राजपूताने के प्राय: सभी छोटे बडे राजाओं ने सर झुका दिया; किन्तु जसवन्तसिंह की बढ़ती हुई शक्ति को वह न रोक सका। ज्यों-ज्यों जसवन्तसिंह की शक्ति बढ़ती जाती थी, त्यों-त्यों औरंगजेब की चिन्ता भी बढती जाती थी। फलत: उसने महाराज के पास एक दूत भेजा कि यदि वे बादशाह की आधीनता स्वीकार कर लें तो उनके कोप और सम्मान में और भी वृद्धि कर दी जायगी। महाराज ने उत्तर दिया कि राजपूतों की तलवार में ही उनका सारा कोष और सम्मान निवास करता है, औरंगजेब को सावधान हो जाना चाहिए। बादशाह ऐसी बातें सुनकर तिलमिला उठा और उसने बहुत बड़ी सेना जसवन्तसिंह को पराजित करने के लिए भेजी। उद्धृत-अंश में इसी युद्ध का विस्तृत-वर्णन है। जोधपुर से पांच कोस की दूरी पर शाही-सेना ने डेरा डाला और युद्ध के लिए आमंत्रित किया। वे लोग निश्चित होकर रात्रि में विश्राम कर रहे थे कि राजपूत लोग अचानक आ धमके। घमासान-युद्ध के पश्चात् शाही सेना तितर-बितर हो गई। सेना नायक ने औरंगजेब से कहा कि राठौरों से झगड़ा

चढ़ाने पर बादशाह को फिर पराजित होना पड़ेगा। फलत' औरंगजेब ने फिर संधि का प्रस्ताव किया। जसवन्तसिह ने इस बार प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और संधि के उपलक्ष मे अपने पुत्र को दरबार मे भेजा। किन्तु बादशाह को संधि के अनुसार चलते न देखकर राठौर लोग फिर बिगड़ उठे और सेनाओं का संगठन कर दिल्ली पर आक्रमण कर दिया। तीन पहर तक घमासान-युद्ध के पश्चात् राजपूत विजयी हुए। राजपूतों के रण-प्रयाण तथा उनके आतंक का बड़ा ही सुन्दर चित्रण कवि ने किया है।

—

भूषण

१—तेरो तेज · ··तेरो कर सो।

समत्थ=सामर्थ्यवान्। सोहैं=शोभा होती है। निकर=समूह। अकर=खानि। सो है=समान है। सुरतरु=कल्पवृक्ष।

२—सिह ·· ··सटक्यौ।

सिह-थरि=सिंह की माँद। जावली=देश, जहाँ अफजल खाँ मारा गया था। एदिल=आदिलशाह (बीजापुर का बादशाह)। भभरि भगाने=घबड़ा कर भागे। गाजी=धर्मयुद्ध मे लड़ने वाला योधा। मदगल=मद बहते हुए। सटक्यौ=चुपके से निकल भागा।

३—कवि ·· ··देव है।

करन जीत=कर्ण को जीतनेवाला (अर्जुन)। कमनैत=धनुर्धर। छेव=छिद्र अथवा घाव। धराधर सेस=पृथ्वी को धारण करने वाले शेषनाग। कहरी=आफत ढहानेवाला। मौजलहरी=आनंद की लहर लेने वाला। बहरी=शिकारी चिड़िया।

४—लूट्यौ ·· ··रिसाल है।

अमाल=शासक। गढ़ोइन=गढ़पति। हेरि-हेरि=ढूँढ़ ढूँढ कर। कटक=सेना।

५—अटल गढ़ धरि कै।

दिगअंतन के=दिशाओं के अंत के (समस्त संसार के)। रैयति=प्रजा। राना=महाराणा (उदयपुर)। बाना=अंगीकृत। धर्म,=रीति। चमारू=चमर। चमारू धरि डरि कै=डरकर

घमर धारण कर लिया (शिवा जी पर मुर्छल करने लगे) । निदरि=निरादर करके ।

६—मदजल······विराजै है ।

मदजल · धरन=मद रूपी जल धारण करने वाला । दलन=नाश करने वाले । थंभन=अवलंब । दिल्ली···विराजै है=दिल्ली के नाश करने, दक्षिण का अवलंब होने और स्वाभिमान धारण करने के कारण महाराज शिवा जी शोभित होते हैं ।

७—छुट्यो······एक संग हो ।

आम खास=महल का भीतरी भाग । सुखरुचि=सुख की अभिलाषा । मुखरुचि=मुख की कांति ।

८—उत्तर······मद की ।

विधनोल=विदनूर । खंडहर=मध्यदेश का एक देश । मारि रद की=मार कर चौपट कर दिया ।

९—बचैगा····· सरजा ।

समुहाने=सामने आने पर । अयाने=मूर्ख । चाकर=नौकर ।

१०—श्री ·····नजारे ।

सेत=श्वेत । अरुन्न=अरुण पानिपचारे=पानीदार, कांतिमान् । तिन=। तिनका

११—महाराज ·· झलकी ।

तुरंग=घोड़ा । गनीम=शत्रु । सिगरेई=सम्पूर्ण ।

१२—सहज ···· समात है ।

सलीलसील=जलबहते हुए । पव्वय=पर्वत । सहज अकुलात है— बादलों की भाँति काले शरीरवाले एवं पर्वत के समान (भारी) हाथी देने मे वह अकुलाता नहीं । देरु=

राशि सुमेरु=सोने का पहाड़। जस टंक=थोड़ा सा यश।

१३—बिना......आई है।

गुसलखाने=दरबार के पास का एक कमरा। हथ्थाय=हस्तगत करके। हथ्यार=अस्त्र शस्त्र।

१४—साहितने ....जानियतु है।

बिगिरि कलंक=कालिमाहीन। पंचानन=पाँच मुख वाले [शिव]। बखानियतु=कहा जाता है। सहसकर=सहस्र किरणोंवाला। सहसबाहु=सहस्रबाहु।

१५—इन्द्र.... सिवराज है।

पौन=हवा। रतिनाह=रति के स्वामी अर्थात् कामदेव।

शिवा-बावनी

१६—साजि.. हलत हैं।

गैवरन=श्रेष्ठ हाथियों। रलत हैं=बहता है। ऐल=सेना। खैलभैल=खलभली। उसलत हैं=स्थान-भ्रष्ट हो जाते हैं। धूरि-धारा=(उड़ी हुई) धूल का समूह। थारा=थाल। पारावार=समुद्र।

१७—बाने .... सेस के।

बाने=एक हथियार। बहराने=आवाज करने लगे। उकसाने=स्थान-भ्रष्ट हो गए। कुम्भ=हाथी का मस्तक।

१८—प्रेतिनी चढ़ाई है।

जुत्थ=झुण्ड। दिगम्बर=(दिक्=दिशा=अंबर=वस्त्र) दिशा ही हैं अम्बर जिसके, महादेव जी। सिवा=पार्वती जी। भृकुटि चढ़ाना=क्रुद्ध होना।

१९—सबन ..पियरे।

२०—जोग=योग्य। सियरे=शीतल मीठे वचन।

केतकी = केवड़े का फूल। राना = राणा (उदयपुर)। मकरन्द = पुष्परस

२१—कूम्भ ··सिवराज हैं।

कूरम = कछवाहे राजपूत (जयपुर)। कमधुज = कबंधज (जोधपुर) । गौर = गौडवंशीय । पाँडर = जाति विशेष । बड़गूजर = राजपूतों का एक कुल।

२२—छूटत ·· कोट मे।

कमान = तोप। दावा बाँधि = हिम्मत करके। किम्मति = बहादुरी। झोट = समूह। कँगूरन = बुर्ज।

२३—केतिक · ·राख्यो।

केतिक = कितने ही । मलिच्छ = म्लेच्छ । मले = नाश किया।

२४—गरुड़ · · सिवराज को ।

पुरहूत = इन्द्र। तम = अंधेरा।

२५—वारिधि··· ·सिवराज हो।

दावानल = दावाग्नि। तिमिर = अंधेरा। सचीपति = इन्द्र। कैटभ = राक्षस का नाम।

२६—दुग्ग ·· · दरके।

दुग्ग = दुर्ग। उग्ग = महादेव। उग्ग = आकाश । उदभट—प्रचंड।

२७—मालवा ·· ··उधरते हैं।

भेलास = भेलसा (ग्वालियर राज्य मे) । गैन = (अरबी) ठीक। सिरौंज = बुन्देलखंड मे एक स्थान। परावने परत हैं = = भगदड़ पड़ जाती है।

२८—मारि करि · ···सितारे को।

खाकसाही = भस्मीभूत। खिसि गई = निकल गई। छिसि गई = छूट गई।

२६—जिन ··निगलिगो।

फुतकार = फुफकार । कूरम = कछुआ । झार = भभक चिकारि = चिग्घाड़कर

३०—वेद····· घर मै।

परसिद्ध = प्रसिद्ध । भीडि = मर्दन करना । दुहद्द = सीमा

३१—राखो · दुनी मैं।

हिन्दुवानो = हिन्दुत्व । धरा = पृथ्वी । दुनी = दुनिया।

३२—चदल ·· ··गदाधारी के।

इभ = हाथी । हरमैं = [हरम मे रहने वाली] बेगमे। उभकि उठै = घबड़ा जाती हैं। बयारी – हवा।

३३—सक्र ·· ··देखिए।

सक्र = इन्द्र । अर्क = सूर्य । रैल = समूह । कुभज = अगस्त्य। बिसेखिए – विशेषता रखते है।

३४—रैया·· ··धमकै।

रैयाराव = चंपतराव का खिताब । जोम = (अरबी) घमंड । सेलै = भाल्ले । बैयर = स्त्री।

३५—चाकचक ·· महिपाल की।

चाकचक = चारो ओर से सुरक्षित । चमू = सेना । अचाकचक = अरक्षित । जेर कीन्ही = नीचा दिखाया । विरुदैत = यशश्वी । महेवा = इस गॉव मे छत्रसाल रहते थे।

३६—सागन · ... जाना है।

सॉग = भाला । समद = अमीर अब्दुस्समद । समद = समुद्र । उदंगल = उद्दंड । कत्ता = तलवार । छत्ता = छत्रसाल।

३७—देस · ·रेवा को।

दहपट्टि = चौपट करके । वरगी = बारगीर, वे सिपाही जो सरकारी घोड़े पर राज-कार्य करते थे । देवा = राक्षस।

३८—अत्रगाहि···· लप है।

खेत = रण-क्षेत्र । वेतवा = एक नदी । ईस = महादेव । जमाति = मंडली ।

३९—भुज······खलन के ।

वैसंगिनी = (बयस्—संगिनी । आयुभर साथ देने वाली । पाखर = लोहे की भूल । परछीने = परकटे । पर = शत्रु । छीने = निर्बल ।

४०—राजत · छत्रसाल को ।

छाजत = शोभा पाता है । गाजत = गरजते है । गयंद = गजेन्द्र ।

गोरेलाल

अपने पिता की मृत्यु के उपरांत छत्रसाल ने अपने भाई की परामर्श पर साही सेना मे औरगंजेब की सेवा स्वीकार कर ली ।

प्रसंग

बादशाह ने उन्हे कई युद्धो मे नवाबो की सहायता के लिए भेजा, और सर्वत्र उन्होंने अपने अतुलनीय-पराक्रम का परिचय दिया। उन्हीं के अदम्य-उत्साह और असाधारण-कौशल से शाही सेना की विजय होती थी, किन्तु पारितोषिक मे मनसब बढ़ते थे नवाबो के, और उनको कोई पूछता भी न था। बादशाह की इस कृतघ्नता से उनके हृदय को बड़ा आघात पहुँचा और साथही बड़ा पश्चाताप भी हुआ। फलस्वरूप शाही सेना से उन्होंने सबधं विच्छेद कर लिया। अब उनके हृदय मे हिन्दू-राष्ट्र के पुनरुद्धार की भावना वेगवती हुई जिससे प्रेरित होकर उन्होंने इस दिशा के आदर्श-वीर शिवाजी से मिलने का उपक्रम किया। इस-पुस्तक मे संकलित अंश के पूर्वभाग मे इन्हीं दोनो स्वतंत्रता के पुजारियो के मिलाप का वर्णन है ।

दूसरे अंश मे शैदबहादुर से युद्ध का वर्णन है। एक बार शैदबहादुर के दूतो ने उसे छत्रसाल के शिकार खेलने जाने का समाचार दिया। उसने इस अवसर से लाभ उठाने के लिए छत्रसाल पर आक्रमण किया। किन्तु वह पराजित हुआ। उसके ऊपर विजय प्राप्तकर छत्रसाल ने ग्वालियर के शैदम-नौवर को लूटा। इसके अनंतर कालिंदा के किलेदार और उसके साथियो को हराया। छत्रसाल के बढ़ते हुए आतंक को देखकर बादशाह ने तीस हजार सैनिको के साथ इलाहाबाद सूबेदार को इनका दमन करने के लिए भेजा। किन्तु अत मे उसे पराजित होकर भागना पड़ा।

दूसरी बार औरंगजेब ने रूमी नामक सरदार को भेजा। उससे बासिया मे युद्ध हुआ। रूमी के बारूदखाने में अचानक आग लग गई और उसी समय छत्रसाल ने भी उसपर आक्रमण कर दिया। इस युद्ध मे रूमी की बड़ी करारी हार हुई।

इसी समय जसवंत सिंह के लड़के सीमाप्रात से लौटकर दिल्ली आए। बादशाह उन्हे पकड़ना चाहता था, किन्तु दुर्गादास ने उन्हे बचा लिया। बादशाह ने शाहजादा अकबर को जोधपुर पर आक्रमण करने को भेजा किंतु वह स्वयं राजपूतो से मिलकर दिल्ली का सिंहासन लेने का प्रयत्न करने लगा।

छत्रसाल का एक विवाह साबर मे हो रहा था, इसी समय तहव्वर खॉ ने इन पर आक्रमण किया। छत्रसाल ने बलदाऊ को भेजकर उसे परास्त किया। इस युद्ध मे छत्रसाल की सेना के केवल बारह सैनिक काम आए और मुसलमानो की सेना के तीन सौ सिपाही मरे और दो सौ बीस घायल हुए।

तहव्वरखॉ को पराजित करने के पश्चात् बलदाऊ की सेना ने बलदिवान पर भी हल्ला बोल दिया और उसे हरा दिया।

उद्धृत अंश मे इसी स्थल तक के युद्धो का वर्णन है।

श्रीधर

इस पुस्तक में उद्धृत अंश के पूर्व भाग में फर्रुखसियर तथा जहाँदारशाह की सेनाओं के युद्ध का वर्णन है। यह युद्ध फतेहपुर ज़िले के बिद्को नामक स्थान में हुआ। इसमें जहाँदारशाह के सैनिकों की पराजय हुई और उसकी सेना तितर-बितर हो गई। फर्रुखसियर की सेना की लूट और उसके आतंक का बड़ा सुंदर वर्णन है।

उत्तरार्द्ध में फर्रुखसियर के अंतिम-युद्ध का वर्णन है। इस युद्ध में स्वयं जहाँदारशाह उपस्थित हुआ। फर्रुखसियर की सहायता में राजा छबीलेराम ने बड़े पराक्रम से युद्ध किया। इस युद्ध में जहाँदारशाह के कई सरदार मारे गए और अंत में फर्रुखसियर विजयी हुआ।

सूदन

प्रस्तुत संग्रह में सुजान-चरित का तृतीय जंग उद्धृत किया गया है। इस जंग में दिल्ली के वजीर बख्शीसलाबतखाँ से भरतपुर नरेश सुजानसिंह के युद्धों का वर्णन है। सलाबतखाँ ने तीस सहस्र सैनिकों तथा कई चुने हुए सरदारों के साथ भरतपुर पर आक्रमण किया। दूत से यह समाचार पाने पर जाटों ने भी सूरजमल (सुजानसिंह) के सेना-पतित्व में तुर्कों का सामना करने के लिए बाहर नौगाँव नामक स्थान पर डेरा डाल दिया।

द्वितीय-अंक में सुजानसिंह द्वारा दूत भेजने का वर्णन है। सलाबतखाँ ने उससे यह समाचार भेजा कि दो करोड़ रुपए

देकर जाट लोग दिल्ली की आधीनता स्वीकार कर लें अन्यथा युद्ध अवश्यम्भावी है। सुजानसिंह ने छ सहस्र चुने हुए सैनिकों के साथ आगे बढ़कर दिल्ली की सेना को चारों ओर से घेर लिया।

तीसरे अंक में बहुत दिनों तक घिरे रहने पर दिल्ली सेना के घोर युद्ध करने तथा शाही सेना के अलाकुलीखाँ फतेहअली और कुवरा खाँ के भागने का वर्णन है।

चौथे अंक में हकीम खाँ तथा रुस्तम खाँ से जाट सरदार गोकुलराम, सूरतिराम, श्यामसिंह तथा व्रजसिंह इत्यादि के घोर युद्ध का वर्णन है। इस युद्ध में दोनों शाही सरदार मार डाले गए और उनकी सेना मैदान छोड़कर भाग गई।

दोनों पराक्रमी सरदारों की मृत्यु से सलावतखाँ निस्सहाय हो गया, अतः उसने सुजानसिंह से संधि का प्रस्ताव किया। महाराज ने संधि का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और इसके उपलक्ष्य में अपने दोनों पुत्रों को नवाब की सेना में उच्च पदाधिकारियों के रूप में भेज दिया। तदनन्तर सुजानसिंह ने मथुरा में अपना एक विवाह और किया। यहीं पर तृतीय जंग समाप्त हो जाता है।

जोधराज

महाराज हमीर ने महिमा मंगोल को अपने राज्य में शरण दी थी जिससे अलाउद्दीन बहुत असंतुष्ट था। अनेक

प्रसंग

प्रयत्न करने पर भी जब हम्मीर ने अपने हठ का त्याग न किया तो अलाउद्दीन ने एक विशाल सेना चित्तौर पर विजय करने के लिए भेजी। संपूर्ण सेना ने किले को घेर लिया और महिमा

को वापस माँगा। राजपूतों ने युद्ध करने का दृढ़ निश्चय किया। इस पुस्तक के उद्धृत अंश में इसी युद्ध का वर्णन है।

इस युद्ध में काका रणधीर ने अद्भुत पराक्रम तथा युद्ध-कौशल दिखाया। उन्होंने शत्रु की सेना पर गढ़ से गोले तथा बाणों की वर्षा करवा दी और स्वयं रणक्षेत्र में उपस्थित हुए। शाही सेनापति मोहम्मद अली ने भी किले पर खूब गोले बरसाए। रणधीर तथा मोहम्मदअली का ज्योंही सामना हुआ त्योंही रणधीर ने अपनी तलवार से उसके दो टुकड़े कर डाले। इसके अनन्तर हम्मीर के दोनों राजकुमारों तथा शाही सेना के युद्ध का वर्णन उद्धृत अंश में है।

पद्माकर

इस संग्रह में हिम्मतबहादुर-विरुदावली के अंतिम अंश से कुछ छंद उद्धृत किए गए है। इस अंश में अर्जुनसिंह से हिम्मतबहादुर के युद्ध का विस्तृत-वर्णन है।

प्रसंग इस युद्ध में स्वयं हिम्मतबहादुर के हाथ से अर्जुनसिंह का वध हुआ। यह युद्ध अजयगढ़ और बनगाँव के बीच के मैदान में हुआ था और इसमें अर्जुनसिंह के विरुद्ध राजा चरखारी ने भी हिम्मतबहादुर की सहायता की थी। अंत में हिम्मतबहादुर को आशीर्वाद देते हुए कवि ने विरुदावली समाप्त कर दी है।

चन्द्रशेखर

अलाउद्दीन के राज्य से निर्वासित महिमा मंगोल को हम्मीरदेव के यहाँ शरण मिलने पर बादशाह ने कुपित होकर

प्रसंग

उनके ऊपर चढ़ाई कर दी। हम्मीर के सैनिकों की मार से शाही-सेना के छक्के छूट जाते थे। राजपूत लोग युद्ध के पश्चात् किले में आनंद मनाने के लिए वेश्या का नृत्य करा रहे थे। बादशाह को यह सब असह्य हो उठा अतः उसने उडियान को बुलाकर निशाना मारने को कहा। उड़ियान के निशाने से नाचती हुई वेश्या नीचे गिर पड़ी। हम्मीर को यह सब देखकर बड़ा चोभ हुआ। महिमाशाह ने उनको ढाढ़स बँधाते हुए कहा, "यदि आपकी आज्ञा हो तो बादशाह को मार दूँ अथवा इस उड़ियान को ही नष्ट कर दूँ?" हम्मीर की आज्ञा से उसने एक ही तीर से बादशाह का छत्र भंग कर डाला। इस कृत्य से शाही-सेना इतनी आतंकित हुई कि सभी लोग मैदान से तितर-बितर हो गए। मंत्री ने आकर हम्मीर को इस शुभ समाचार से सूचित किया। इस संग्रह में इसी स्थल तक का अंश लिया गया है।

महावतखाँ की भी वही दशा हुई। इन दोनों सरदारों की मृत्यु से सेना में भगदड़ मचते देखकर अलाउद्दीन ने वाहितखाँ को नया सेनापति बनाया। अत्यंत दृढ़ता-पूर्वक युद्ध करने पर भी अंत में उसकी भी वही दुर्गति हुई।

वाहितखाँ के मरने से अलाउद्दीन भी घबड़ा गया। वजीर मुहम्मदखाँ ने उससे कहा कि राजपूतों से इसप्रकार जीतना असम्भव है। छांडगढ़ पर रणधीर का परिवार रहता है। यदि यहाँ कुछ सेना छोड़कर छांडगढ़ पर आक्रमण किया जाय तो सम्भवतः रणधीर अपने परिवार पर आपत्ति देखकर शरण में आजाय किंतु ऐसा करने पर भी हाथ कुछ न आया। पाँच वर्ष छांड़ का किला हाथ न आया। शाही-सेना

की इसमें एक नई आपत्ति का सामना करना पड़ा। दिन भर हम्मीर की सेना से युद्ध करने के अनन्तर थकी हुई सेना को रणधीर का आक्रमण व्याकुल कर देता था। अनेक शाही सरदारों का बलिदान हुआ, किंतु हम्मीर की कुछ भी हानि न हुई। अब अलाउद्दीन बहुत घबड़ा गया और हम्मीर को परास्त करने के अन्य उपाय सोचने लगा।

इसी समय रणधीर के कहने से हम्मीर ने अपने दोनों राजकुमारों को युद्ध का समाचार भेजकर चित्तौड़ से बुलाया। दोनों राजकुमार तीस हजार राठौर, आठ हजार चौहान, पाँच हजार प्रमार सेना के साथ रणथम्भौर आए। हम्मीर राजकुमारों को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। कुमारों ने रानी अंसुमती के चरण छूकर युद्ध में सम्मिलित होने की आज्ञा मांगी। कुमारों के युद्ध में सम्मिलित होने की सूचना अलाउद्दीन को मिल गई और उसने उनका सामना करने के लिए जमालखाँ को भेजा।

दोनों कुमारों ने अत्यंत वीरता से जमालखाँ को मारा। इसके अनंतर बालनखाँ ने आक्रमण किया। सायंकाल तक युद्ध होता रहा। दोनों कुमार अपनी समस्त सेना के साथ वीरगति को प्राप्त हुए। इस युद्ध में शाही सेना के सत्तर हजार सैनिक तथा अनेक उमराव काम आए। संग्रह में यहीं तक का अंश लिया गया है।

परिशिष्ट २

ग्रन्थानुक्रमणिका

परिशिष्ट ३

नामानुक्रमणिका